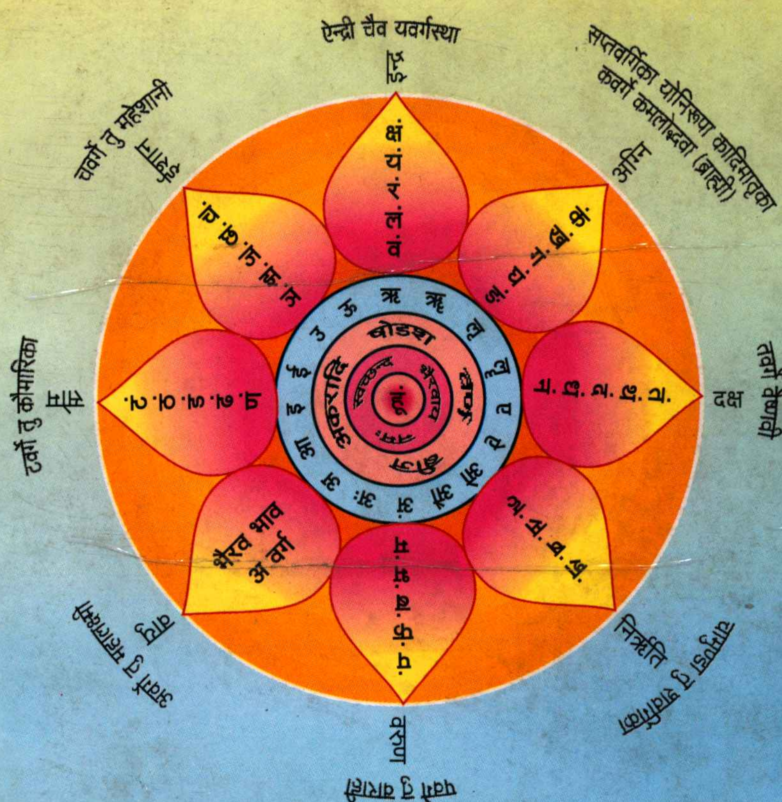
महामाहेश्वराचार्यश्रीक्षेमराजकृतोद्द्योतसहितं
नीरक्षीरविवेकहिन्दीभाष्योपबृंहितञ्च

श्रीस्वच्छन्दतन्त्रम्

[चतुर्थो भागः]

कुलपतेः प्रो. अशोककुमारकालियामहोदयस्य प्रस्तावनया विभूषितम्



हिन्दीभाष्यकारः सम्पादकश्च

डॉ. परमहंसमिश्रः 'हंसः'

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
वाराणसी

योगतन्त्र-ग्रन्थमाला

[३२]

महामाहेश्वराचार्यश्रीक्षेमराजकृतोद्योतसहितं

नीरक्षीरविवेकहिन्दीभाष्योपबृंहितञ्च

श्रीस्वच्छन्दतन्त्रम्

[चतुर्थो भागः]

कुलपतेः प्रो. अशोककुमारकालियामहोदयस्य प्रस्तावनया विभूषितम्

हिन्दीभाष्यकारः सम्पादकश्च

डॉ. परमहंसमिश्रः 'हंसः'



सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

वाराणसी

YOGATANTRA-GRANTHAMĀLĀ
[Vol. 32]

ŚRĪ SVACCHANDATANTRA

[PART FOUR]

With Two Commentaries

'UDDYOTA'

By

MAHĀMĀHEŚVARA ŚRĪ KṢEMARĀJA

&

'NĪRAKṢĪRAVIVEKA'

By

DR. PARAMHANS MISHRA 'HANS'

FOREWORD BY

PROF. ASHOK KUMAR KALIA

VICE-CHANCELLOR

EDITED BY

DR. PARAMHANS MISHRA 'HANS'



VARANASI

2005

Research Publication Supervisor
Director, Research Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi.

ISBN : 81-7270-150-0 (Vol. IV)
ISBN : 81-7270-098-9 (Set)



Published by —
Dr. Harish Chandra Mani Tripathi
Driecter, Publication Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221002.



Available at —
Sales Department,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221002.



First Edition, 500 Copies
Price : Rs. 480.00



Printed by
VIJAY PRESS
Sarasauli, Bhojubeer
Varanasi.

योगतन्त्र-ग्रन्थमाला
[३२]

महामाहेश्वराचार्यश्रीक्षेमराजकृतोद्द्योतसहितं
नीरक्षीरविवेकहिन्दीभाष्योपबृंहितञ्च

श्रीस्वच्छन्दतन्त्रम्

[चतुर्थो भागः]

कुलपतेः प्रो. अशोककुमारकालियामहोदयस्य प्रस्तावनया विभूषितम्

हिन्दीभाष्यकारः सम्पादकश्च
डॉ. परमहंसमिश्रः 'हंसः'



वाराणस्याम्

२०६२ तमे वैक्रमाब्दे १९२७ तमे शकाब्दे २००५ तमे खैस्ताब्दे

अनुसन्धान-प्रकाशन-पर्यवेक्षकः—
निदेशकः, अनुसन्धान-संस्थानस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये
वाराणसी ।

ISBN : 81-7270-150-0 (Vol. IV)
ISBN : 81-7270-098-9 (Set)



प्रकाशकः—
डॉ. हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी
निदेशकः, प्रकाशन-संस्थानस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये
वाराणसी-२२१००२



प्राप्ति-स्थानम्—
विक्रय-विभागः,
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य
वाराणसी-२२१००२



प्रथमं संस्करणम्– ५०० प्रतिरूपाणि
मूल्यम्– ४८०.०० रूप्यकाणि



मुद्रकः—
विजय प्रेस
सरसौली, भोजूबीर
वाराणसी ।

प्रस्तावना

सम्प्रति महामाहेश्वर श्री क्षेमराजकृत **'उद्द्योत'** नामक संस्कृत-व्याख्या एवं **डॉ० परमहंस मिश्र 'हंस'**-विरचित **'नीरक्षीरविवेक'** हिन्दी-भाष्य से उपबृंहित स्वच्छन्दतन्त्र का चतुर्थ तथा पञ्चम भाग तन्त्रागम के रसिक जनों के करकमलों में समर्पित करते हुए महान् हर्ष की अनुभूति हो रही है । विद्वान् पाठकों को यह विदित ही है कि सर्वप्रथम यह ग्रन्थरत्न काश्मीरक पण्डित श्री मधुसूदन कौल द्वारा सम्पादित होकर १९२० ई० में चार भागों में प्रकाशित हुआ था । तदनन्तर १९९३ ई० में प्रो० वि० वेङ्कटाचलम् महोदय के कुलपतित्व काल में यह ग्रन्थ पाँच भागों में मूलरूप में इस विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ ।

स्वच्छन्दतन्त्र प्रधानरूप से परिगणित तन्त्रशास्त्र के आकर ग्रन्थों में अन्यतम है, इससे इसका माहात्म्य स्वत:सिद्ध है । किन्तु तान्त्रिकसाधनरहस्य की अधिकता एवं तन्त्रशास्त्र-मात्र में प्रसिद्ध पारिभाषिक शब्दों की बहुलता के कारण यह अभिज्ञों के लिए भी कहीं-कहीं दुर्बोध हो गया है । इसलिये यह ग्रन्थ व्याख्यागम्य होने के कारण महामाहेश्वर श्री क्षेमराज-प्रणीत सम्प्रदायसिद्ध उद्द्योत व्याख्या से विभूषित होकर सर्वतोभावेन चतुरस्रशोभी बन गया । आधुनिक युग में मूल कारिकाओं एवं क्षेमराज प्रणीत उद्द्योत-टीका के हिन्दी-रूपान्तरण की आवश्यकता निरन्तर अनुभूत हुई । सौभाग्यवश इस सिद्धान्त-ग्रन्थ की नीर-क्षीर-विवेक व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं डॉ० परमहंस मिश्र जी । शैवतन्त्र से अभिसन्धित स्वच्छन्दतन्त्र कौलतन्त्र, कौलमत, त्रिकदर्शन तथा क्रमदर्शन आदि अभिधानों से लोक में प्रसिद्धि को प्राप्त विद्वानों एवं साधकों के बीच **'प्रत्यभिज्ञादर्शन'** के रूप में जाना जाता है । यद्यपि पूर्व-मध्यकाल में काश्मीर में प्रतिष्ठित प्रत्यभिज्ञादर्शन आचार्य उत्पलदेव द्वारा प्रतिष्ठापित माना जाता है, तथापि उसकी परम्परा उत्पलदेव से भी पूर्ववर्तिनी प्रमाणित होती है ।

प्रति+अभि+ज्ञा के संयोग से प्रतिपन्न प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है–पहचान । प्रति का प्रतीप या विपरीत अर्थ है, अभि का अर्थ आमने-सामने अथवा अभिमुख है । ज्ञा का अर्थ ज्ञान या प्रकाश है । इस तरह विस्मृत तत्त्व का अभिमुख रूप से ज्ञान होना ही प्रत्यभिज्ञा है, जिसमें तत्ता तथा इदन्ता की युगप्रत्प्रतीति होती है, उसे प्रत्यभिज्ञा कहते हैं–**तत्तेदन्तावगाहिनी प्रतीतिः प्रत्यभिज्ञा** । जीव (पशु) वस्तुतः शिवरूप ही है; परन्तु संसार के पाश में बँधकर अपने मूल-स्वरूप शिवत्व को भूल जाता है और अपने त्रिविध शरीर को ही अपना स्वरूप मान बैठता है । ऐसे पाशबद्ध जीव को अपने मूल स्वरूप की पहचान कराने के कारण ही यह दर्शन प्रत्यभिज्ञादर्शन के नाम से जाना जाता है ।

प्रत्यभिज्ञादर्शन में परमशिव को स्वतन्त्र, स्वप्रकाश माना गया है। आचार्य अभिनवगुप्त की स्पष्ट उक्ति है–

स्वतन्त्रं हि स्वप्रकाशत्वमुच्यते। जाड्यं परप्रकाश्यत्वमुच्यते।

(तन्त्रालोक)

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र होने से वही स्वच्छन्द भी है। देवाधिदेव परात्पर भगवान् भूतभावन शिव ही भैरव के रूप में स्वच्छन्द हैं। विश्वभरणकर्ता परमशिव ही भैरव है अथवा जगत् के भय से सन्त्रस्त भक्तों का भरण (रक्षण) करने के कारण भी वे भैरव हैं। उनके ध्यान एवं आराधना से मानव सर्वकामना के फल को प्राप्त कर लेता है। जैसा कि कहा गया है–

स्वच्छन्दभैरवं देवं सर्वकामफलप्रदम्।
ध्यायते यस्तु युक्तात्मा क्षिप्रं सिध्यति मानवः।। (स्व० त० २।९७)

स्वच्छन्दतन्त्र में उन्हीं स्वच्छन्द परमशिव की महिमा-गरिमा का प्रतनन किया गया है। इसके चतुर्थ भाग में दशम पटल समाहित है। इसमें देवी पार्वती की अध्वा सम्बन्धिनी जिज्ञासा के शमन के लिए भगवान् भैरव का उपदेश वर्णित है।

काश्मीर शैवागम के अधिकारी विद्वान् आचार्य एवं नैष्ठिक साधक **डॉ० परमहंस मिश्र 'हंस'** ने प्रास्थानिक सिद्धान्त ग्रन्थ का नीरक्षीरविवेक हिन्दी-भाष्य प्रस्तुत कर सामान्यजनसंवेद्य बनाने का सफल प्रयास किया है, इसके लिये अभिनन्द्य डॉ० मिश्र के दीर्घ जीवन की मङ्गलकामना करता हूँ।

इस महनीय ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये प्रकाशन-संस्थान के निदेशक **डॉ० हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी** भी शतशः धन्यवाद एवं बधाई के पात्र हैं, उनके अध्यवसाय से विश्वविद्यालय नित्य विशद यशोराशि से अभिमण्डित हो रहा है। इन्हीं स्वस्तिवाचिक कामना के साथ ग्रन्थ के अधिदेवता के श्रीचरणों में प्रणामाञ्जलि निवेदित करते हुए ग्रन्थपुष्पोपहार समर्पित करता हूँ।

अशोक कुमार कालिया

(प्रो० अशोक कुमार कालिया)
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी
दीपावली
२०६२ वैक्रमाब्द
(०१-११-२००५ ख्रैष्टाब्द)

प्रकाशकीय

'स्वच्छन्दतन्त्र' का चतुर्थ एवं पञ्चम भाग तन्त्रागमीय सहृदय पाठकों के करकमलों में समर्पित करते हुए प्रकाशन-संस्थान आनन्दविभोर हो रहा है। काश्मीरक शैवागम की प्रथम पंक्ति में गणनीय यह स्वच्छन्दतन्त्र तन्त्रशास्त्रीय आकर ग्रन्थों में भी अन्यतम है। इसमें तान्त्रिक साधना का रहस्य अधिक रूप से व्याप्त है ही, तान्त्रिकमात्र में प्रसिद्ध पारिभाषिक शब्दावली का बाहुल्य भी है। इसलिये इस ग्रन्थ की भाषा एवं भाव दोनों ही कहीं-कहीं तन्त्रागम के अभिज्ञ विद्वानों के लिये भी दुर्बोध हो गये हैं। व्याख्यागम्य यह ग्रन्थ महामाहेश्वर श्री क्षेमराज-प्रणीत सम्प्रदायसिद्ध 'उद्द्योत' संस्कृत-टीका से सर्वतोभद्र एवं चतुरस्रशोभी हो गया। यद्यपि यह व्याख्या तत्त्वार्थ के अवगाहन में परमोपकारक है। आचार्य क्षेमराज तन्त्रशास्त्र के मूर्धाभिषिक्त विद्वान् महामाहेश्वर श्री अभिनवगुप्तपादाचार्य के परमाप्त शिष्य हैं, यही इस टीका की प्रामाणिकता में प्रबल प्रमाण है।

आचार्य क्षेमराज ने अपने गुरु और शास्त्र के प्रति जो श्रद्धा और भक्ति दिखलायी है, वह निम्न श्लोक के पद-पद में प्रस्फुटित हो रही है–

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६.२३)

वे यत्र तत्र अपनी व्याख्या में गुरु-वाक्य को प्रमाण में प्रस्तुत करते हैं। वे स्वच्छन्दतन्त्र १.४५ कारिका की व्याख्या में कहते हैं–

'परमभैरवस्फारमयैरस्मद्गुरुभिरपि तन्त्रालोकेऽभिहितम्–

विधिवाक्यमिदं चैव नार्थवादः कदाचन।
नार्थवादाभिरूपत्वं वाक्ये माहेश्वरे भवेत्॥ इति'।

(स्वच्छन्दतन्त्र, १.४५)

आचार्य श्री क्षेमराज मूल में गूढ़रूप से स्थापित मन्त्रों के स्वरूपों को तथा अन्य रहस्यों के स्वरूपों को कहीं उन्मीलित कर महान् उपकार करते हैं, तो कहीं महत्तर शास्त्र के उन्मीलन से डरते हुए विवेकपूर्ण रीति से रहस्य की रक्षा भी करते हैं। कहीं तो 'गुरुमुख से ही प्राप्त करना चाहिए' यह कहकर रहस्यपक्ष को आच्छादित भी करते हैं। यथा स्वच्छन्दतन्त्र की १.६९ कारिका की व्याख्या में कहते हैं–

इत्यलं मन्त्ररहस्यप्रकटनेन । सम्प्रदायस्तु मा परिच्छेदीति किञ्चिदुन्मीलितम् ।

शैवतन्त्र तन्त्रपरम्परा में प्रत्यभिज्ञादर्शन के रूप में भी जाना जाता है । प्रत्यभिज्ञादर्शन में परमेश्वर को चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया शक्ति से सम्पन्न सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रहरूप पञ्च कृत्यों का कर्ता माना गया है । वह परमेश्वरतत्त्व सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, स्वाधीन है । भगवान् शिव ही भैरव के रूप में स्वच्छन्द हैं । वे विश्व का भरण करने के कारण अथवा जगत् के भय से भयभीत भक्तों का भरण (रक्षण) करने के कारण भैरव कहे जाते हैं । विलक्षण गूढ़ साधनाग्रन्थ स्वच्छन्दतन्त्र में भैरवस्वरूप परमशिव एवं पर्वतनन्दिनी पार्वती का प्रणतार्तिविनाशी संवाद ग्रथित है । जैसा कि ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही कहा गया है–

कैलासशिखरासीनं भैरवं विगतामयम् ।
चण्डनन्दिमहाकालगणेशवृषभृङ्गिभिः ।।
कुमारेन्द्रयमादित्यब्रह्मविष्णुपुरःसरैः ।
स्तूयमानं महेशानं गणमातृनिषेवितम् ।।
सृष्टिसंहारकर्तारं विलयस्थितिकारकम् ।
अनुग्रहकरं देवं प्रणतार्तिविनाशनम् ।।
मुदितं भैरवं दृष्ट्वा देवी वचनमब्रवीत् ।।

(स्वच्छन्दतन्त्र, १.१-४)

यह अत्यन्त लोकोपकारक ग्रन्थ सम्प्रति क्षेमराज की रहस्यप्रकाशिका **'उद्द्योत'** नामक संस्कृत व्याख्या से विभूषित होने पर भी हिन्दी-व्याख्या के अभाव में सुकुमारमति सुधीजनों के लिये दुर्बोध एवं दुरभिगम बना रहा । ऐसी स्थिति में **डॉ० परमहंस मिश्र 'हंस'** जी की **'नीरक्षीरविवेक'** हिन्दी-व्याख्या अत्यन्त लोकोपयोगी सिद्ध होगी । यद्यपि **'स्वच्छन्दतन्त्र'** आचार्य क्षेमराज की उद्द्योत व्याख्या के साथ १९९३ ई० में योगतन्त्र-ग्रन्थमाला के उन्नीसवें पुष्प के रूप में प्रकाशित था, तथापि सम्प्रति नीरक्षीरविवेक हिन्दी-व्याख्या के साथ प्रकाशित करते हुए हर्षातिरेक हो रहा है । इसके तीन भागों के प्रकाशन के अनन्तर चतुर्थ भाग भी तन्त्रागमीय सुधीजनों के करकमलों में समर्पित करते हुए हृदय-कमल विकसित हो रहा है । स्वच्छन्दतन्त्र यद्यपि पन्द्रह पटलों में गुम्फित है । इस चतुर्थ भाग में दशम पटल को ही सङ्गृहीत किया जा सका है । इसमें देवी के जिज्ञासित अध्वा का व्याख्यान किया गया है । यथा–

अध्वायं तु महादेव सूचितो न तु वर्णितः ।
कथयस्व प्रसादेन साधकानां हिताय वै ।।

(स्वच्छन्दतन्त्र, १०.१)

इसके पूर्व इस ग्रन्थ के तीन भाग नीरक्षीरविवेक भाष्य के साथ प्रकाशित किये जा चुके हैं । इसमें आचार्य **डॉ० परमहंस मिश्र 'हंस'** का अथक अध्यवसाय अत्यन्त प्रशंसनीय एवं आदरणीय है । इनके प्रति कार्तज्ञ्यभाव से अभिभूत शतशः प्रणामाञ्जलि समर्पित करता हूँ ।

यह ग्रन्थरत्न जिनकी स्नेहिल छाया में प्रकाशित हो रहा है, प्राच्यविद्या के विद्योतित दिवाकरतुल्य तन्त्र-दीक्षा से आलोकित माननीय कुलपति **प्रो० अशोक कुमार कालिया** जी को नतिपरम्परा-निवेदनपुरस्सर अभिनन्दन एवं वन्दन करता हूँ ।

ग्रन्थ के स्पष्ट, शुद्ध एवं मनोहर मुद्रण के लिये 'विजय प्रेस' के सञ्चालक **श्री गिरीशचन्द्र** को शुभाशीर्वाद प्रदान करता हूँ ।

सम्प्रति ग्रन्थ के अधिष्ठातृदेवता माता अन्नपूर्णा एवं काशीविश्वेश्वर को प्रणामाञ्जलि निवेदित करते हुए तन्त्रागमग्रन्थमणिमाला का यह पुष्पोपहार समर्पित कर अपने को कृतार्थ मानता हूँ ।

वाराणसी
दीपोत्सव-महापर्व,
२०६२ वैक्रमाब्द
(०१-११-२००५ ख्रैष्टाब्द)

विद्वद्विधेय

(डॉ० हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी)
निदेशक
प्रकाशन-संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

स्वात्मविमर्श

नीर-क्षीर-विवेक-भाष्य से संवलित **स्वच्छन्दतन्त्र** का यह **चतुर्थ भाग** विश्वात्मा के संविद्विमर्श का एक अप्रतिम उल्लास है। आणव उपाय के क्रम में भगवान् स्वच्छन्द भट्टारक ने स्थानप्रकल्पन को भी शिवप्राप्ति का पंचम उपाय स्वीकार किया है। उच्चार, करण, ध्यान, वर्ण और स्थानप्रकल्पन माध्यमों से शैवमहाधाम में अवश्य प्रवेश प्राप्त हो सकता है। यह ध्रुव सत्य है। इस दर्शन का चरम लक्ष्य प्राप्त करने के छः मार्ग निर्धारित किये गये हैं। वर्ण, पद और मन्त्र, ये तीन अध्वा कालाध्वा और कला, तत्त्व तथा भुवन ये तीनों देशाध्वा के नाम से विख्यात हैं। अध्वा का तात्पर्य ही मार्ग होता है। इस तरह इस दर्शन को षडध्व-दर्शन भी कहते हैं। षडध्व अर्थात् छः मार्ग, एक एक कर इन मार्गों को पार करना पड़ता है। क्रियाशक्ति के माध्यम से पार करने के इस प्रयोग को साधनाविधि के क्रम से जीवन में अपनाते हुए साधक धन्य हो जाता है।

इस भाग का प्रवर्त्तन करते हुए भगवदुत्सङ्गवासिनी भगवती उमा ने स्वच्छन्द भट्टारक से यही कहा था–

"अध्वायं........कथयस्व प्रसादेन साधकानां हिताय वै।"

अर्थात् भगवन् इस स्थानप्रकल्पनरूप भुवन-अध्वा के विषय में हमें बताने की कृपा करें। इससे साधकों का हितसाधन हो सकता है। साधकों के हित के लिये ही यह मेरी भुवनाध्वाश्रवण की जिज्ञासा जागृत है। आप इसे कहने की कृपा करें।

प्रश्न यह है कि, 'भुवन' सृष्टि का स्थूल उपक्रम है। शैव साधक को इस स्थूल उपक्रम को जानने से क्या लाभ ? शिव को किसी की अपेक्षा नहीं होती। वह परम स्वतन्त्र तत्त्व है। स्वातन्त्र्य ही उसका आनन्दात्मक गुण है। देश, काल या किसी आकार से वह नियत नहीं है। फिर उसके इस स्थूल रूप के प्रति किसी प्रकार की प्रवृत्ति नितान्त अनपेक्षित है। ऐसी स्थिति में भुवनाध्वा से साधक का हित कैसे हो सकता है ?

यह एक विचारणीय प्रश्न है। शैव साधक के समक्ष ये प्रश्न आते ही रहते हैं। इन तर्कों से साधना कभी कभी बाधित भी होती है। ऐसे समय में साधक को सावधानी से विमर्श में उतरना चाहिये।

श्रीतन्त्रालोक नामक अशेष आगमोपनिषद् रूप महान् ग्रन्थ में शिव को विश्वाकृति[१] कहा गया है। विश्वाकृति शब्द का अर्थ करते हुए श्री जयरथ ने लिखा है–'चिदचिदाद्याकारवैचित्र्योल्लासकत्वात्' अर्थात् स्वतन्त्र होने के कारण चित् और अचित् चेतन और जड़ आदि आकारों के वैचित्र्य का उल्लासक शिव ही है। इस कथन से यह सिद्ध है कि, परमेश्वर शिव को अच्छी तरह जानने के लिये चित् की तरह अचित् का ज्ञान भी आवश्यक है। उसी में चित् भी है और उसी में अचित् भी है। जड़ और चेतन में वह विभु शाश्वत व्याप्त है। अचित् का न जानना अज्ञान ही है। इस अज्ञान के कारण शिव का ज्ञान अधूरा ही माना जायेगा ? भुवन शिव का अचिद् रूप है। अतः इसका जानना साधक के लिये अवश्य कल्याणकारक है–यह इससे सिद्ध हो जाता है।

कुछ इसी प्रकार की तार्किकता को अन्तर्मन में रखते हुए दीक्षोत्तर शास्त्र शिव के छः प्रकारक रूप का प्रतिपादन करता है–

भुवनं विग्रहो ज्योतिः खं शब्दो मन्त्र एव च।
बिन्दुनादादिसंभिन्नः षड्विधः शिव उच्यते॥

इस श्लोक का प्रथम शब्द ही भुवन है। विग्रह का तो अर्थ ही शरीर होता है। सारी सृष्टि शिव का शरीर ही तो है। शिव ही भुवन है। शिव ही सृष्टि का शरीर है। अथवा यह कहना चाहिये कि चित् और अचित् सारा भुवन, विग्रह, ज्योति, आकाश, मन्त्र, बिन्दु और नाद, रूप और आकार, व्यक्त और अव्यक्त जो कुछ है, वह सभी दृश्य और अदृश्य उल्लास, सब शिव ही है। अतः इसका ज्ञान अत्यन्त अनिवार्य है। यह भुवन अध्वा भी है। यह अध्वा कालाग्नि-भुवन से शिव-भुवन तक अनन्त रूपों, आकारों, वर्णों, प्रमाणों और अपने अनन्त वैचित्र्य में प्रतिफलित है।

भुवनों के साथ भुवनेशों, उनके परिवारों, उनके अवस्थानों और पुरों की सीमाओं में समायी अनन्तानन्त सुषमित आकर्षक भव्यता की भरपूरता का विचार करना ही पड़ता है। यह सब कुछ स्वच्छन्दतन्त्र के इस दशम पटल में स्वयं स्वच्छन्द भट्टारक द्वारा कहा गया है।

सर्वप्रथम कालाग्निरुद्र का भुवन है, जिसके नीचे एक ब्रह्माण्डकर्पर विद्यमान है। इसे कटाह भी कहते हैं। कटाह ही ब्रह्माण्डकर्पर है। कर्पर का ही तद्भव रूप खप्पर है। खप्पर को कापालिक सन्त धारण करते हैं। रुद्र का खप्पर साधारण साधुओं के खप्पर के समान तो हो नहीं सकता। इसी खप्पर की

---

१. श्रीत० १।६०

आधारशिला पर यह पूरा ब्रह्माण्ड अपनी विभिन्न विडम्बनाओं के डिण्डिम से निनादित है। इन अनन्तानन्त भुवनों की संख्या अरबों और पद्मों तक जाती है, फिर भी इस विस्तार का अन्त नहीं मिल पाता। अन्त में शिवत्व ही उपलब्ध होता है, जिसमें यह सारा उल्लास समाहित हो जाता है। यों इस अनन्त ब्रह्माण्ड विस्तार के अधिपति का नाम भी अनन्त परमेश्वर ही है–यह शास्त्र कहता है–

'पद्मानि चाप्यसंख्यानि.....तेषां नायको ह्यत्र त्वनन्तः परमेश्वरः'। श्रीकण्ठ-संहिता में कहा गया है कि, ब्रह्माण्ड के इस विस्तार को असंख्यात ही कहना उचित है।

इस प्रपञ्च की व्याप्ति में अनन्त ब्रह्माण्डों को धारण करने वाला पार्थिव तत्त्व है। जहाँ तक भुवनों की व्याप्ति है, सभी पार्थिव तत्त्व से ओत-प्रोत हैं। इस अनन्त ब्रह्माण्ड विस्तार को भूमण्डल की सीमा के अन्तर्गत ही मानना चाहिये। इसको अपने शरीर पर घटाया जा सकता है। जैसे सारा शरीरभाव पार्थिव है किन्तु इसमें स्थित 'पादाङ्गुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी' की उक्ति के अनुसार पैर के तलवे में वर्त्तमान श्री देवी से लेकर चक्रों का भेदन करते हुए योगी शरीरस्थ बिन्दु, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना को पार करता हुआ उन्मना के परमशैवधाम में समाहित हो जाता है किन्तु वस्तुतः यह पार्थिव साम्राज्य का ही अंग माना जाता है। उसी तरह सारे ब्रह्माण्ड की आश्रय यह भू है, यह परम सत्य है।

भुवन अध्वा का यह सर्वोपरि महत्त्व है कि इस भुवनाध्वारूप शाश्वत विस्तार को हम भूतत्त्व में ही प्राप्त कर लेते हैं। हम यह कहते हैं कि 'यत्र यत्र धृतित्वं तत्र तत्र पृथ्वीत्वम्'। उसी तरह यह भी कहते हैं कि 'यत्र यत्र धृतित्वं तत्र तत्र शिवत्वम्'। इन दोनों वाक्यों से यह निष्कर्ष भी निकलता है कि, 'यत्र यत्र पृथ्वीत्वं तत्र तत्र शिवत्वम्' अर्थात् पार्थिवत्व और शिवत्व का एकीकृत सामरस्य भुवनाध्वा की अनुभूति का अन्तरङ्ग पक्ष है।

इसीलिये सारी दीक्षाओं के अन्त में भुवन-दीक्षा दी जाती है, जिसमें समग्र भुवन मण्डल का शोधन करते हुए साधक शिवत्व में समाहित हो जाता है। इसी तथ्य को यह श्लोक व्यक्त करता है–

'यस्त्वेतान् भजते भावान् सोऽमृतत्वाय कल्पते'।

अर्थात् भुवन के शोधित स्वरूप और इसमें उक्त धर्म भावों से जो भावित हो जाता है, वह अमृतत्व को उपलब्ध हो जाता है। यही तान्त्रिक न्याय है,

यही पाण्डित्य है और शिवशास्त्ररत साधकों का यही परतत्त्व विज्ञान का क्रम है ।

भुवन अध्वा के अन्तर्गत सारे १४० नरक, पाताल, भारतवर्ष, गङ्गा, समुद्र, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, ब्रह्मादि-स्तम्बपर्यन्त ब्राह्म, प्राजेश, सौम्य, ऐन्द्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस, पैशाच, स्थावर, सार्प, मानुष्य, पक्षि, सरीसृप, मृग और पशुओं की नाना योनियों के कर्मतत्त्व का विशोधन करने का विधान है । वस्तुतः कर्म-जाल के शोधन से मनुष्य को अमृतत्व की प्राप्ति हो सकती है । भुवनाध्वा के सारे विस्तार के वर्णनों के साथ यह रहस्य जुटा हुआ है कि, इनके शोधन से ही स्थूलता को पार कर अप्रमेय के पार जाया जा सकता है । भुवनों और भुवनान्तरों के इस अप्रकल्प्य विस्तार में भेदवाद को पूरी तरह निरखने-परखने का अवसर मिलता है । यह वह मंच है, जहाँ अपरमार्थ से परमार्थ की परीक्षा होती है । अपरमार्थ पाशबद्धता का कारण माना जाता है ।

पाशबद्धता का निरास दीक्षा से होता है । इस भुवन-दीक्षा के सारे सन्दर्भ एक एक कर शोधन करते हुए इस भेदवादी वास्तविकता के अन्तराल से झाँकने वाली चित् शक्ति का साक्षात्कार होने लगता है । पुरुष के पाशों का नाश होने लग जाता है और वह पुरुषोत्तम हो जाता है । कल्मष नष्ट हो जाते हैं और ध्यान में परमध्येय उतर आता है । परमध्येय परमशिव रूप महाभैरव देव की दिव्यता के दर्शन हो जाते हैं । भैरव ही एक तरफ विश्व का भरण-पोषण करता है, दूसरी ओर वही संसार-जन्य भीतियों का निराकरण करता है । इन भीतियों के भय से होने वाले रुदन के रव का विमर्श करने की बुद्धि देता है और वही संसार की वृत्तियों का विघटनरूपी वमन भी करता है । इसीलिये शास्त्र उसे भैरव कहते हैं । इसीलिये इस दिव्य देव को महाभीम भी कहते हैं । शास्त्र कहता है–

भ्रियात्सर्वं, रवयति सर्वदा, व्यापकोऽखिले ।
इति भैरवशब्दस्य सततोच्चारणात् शिवः ।।

अर्थात् भरण, रवण और व्यापकता का वमन करने के कारण भैरव भाव का स्मरण करने से व्यक्ति स्वयं शिव हो जाता है । भैरव स्वच्छन्द देव हैं । अतः स्वच्छन्द भैरव हैं । स्वच्छन्द भैरव का यह भुवनाध्वा पटल है । इसमें दशों इन्द्रियों की वृत्तियों का शोधन किया गया है । इस प्रकार यह दशवाँ पटल इस दृष्टि से अन्वर्थ हो गया है ।

दशम पटल भुवन अध्वा का विश्लेषण करता है। यह सिद्धान्त है कि अध्वा ही बन्ध के कारण हैं। भुवनों के आनन्त्य में कर्म-लतिकायें अनन्त पाशव कर्मबीज बन्धों का उद्भव करती हैं। ये बीजबन्ध उसी प्रकार के होते हैं जैसे कोश में रेशम-कीट रहते हैं। कोश का कर्म कीट ही करता है। स्वयम् इसमें बँध भी जाता है। ये भुवन कोश के ही समान हैं। जीव कीट बनकर इसमें बना हुआ है। आश्चर्य तो यह है कि, यह अपने बन्धन को भी नहीं समझता। इसके लिये मन्थन यज्ञ की आवश्यकता होती है। इन सभी अध्वाओं को ही अरणि बनाकर, वागीश्वरी देवी के योनिकुण्ड में आत्मा की आग को मन्थों की मन्थन-प्रक्रिया से मन्थक गुरु उत्पन्न कर लेता है। इसी आग में कीड़े के कोश का हवन होता है। कीट जीव इस अग्नि परीक्षा से ताप्त दिव्यकाञ्चन की तरह शुद्ध हो ज़ाता है और इस मन्थन यज्ञ का प्रत्यक्ष द्रष्टा बन जाता है। इसी तरह पुरुष पुरुषोत्तमत्व को उपलब्ध हो जाता है।

भूलोक की तरह भुवर्लोक की भी शुद्धि करनी पड़ती है। इस लोक में ही सारे ग्रह, नक्षत्र और तारक मण्डल का विस्तार है। भुवर्लोक की तरह स्वर्लोक का भी शोधन होता है। स्वर्लोक के ऊपर महः, जनः, तपः और सत्यम्, रुद्र, शतरुद्र, माया, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव लोकों का इस पटल में वर्णन करते हुए उनकी गतिविधियों पर प्रकाश डाला गया है।

इन लोकों के विषय में विद्वान् क्या सोचते हैं ? सांख्य आदि दर्शनों की क्या दृष्टि है ? संशयवादी क्या कहते हैं ? अन्य आत्मचिन्तकों, वैशेषिकों, हेतु-वादियों के क्या मत हैं, इन सारी दृष्टियों पर विचार करने के उपरान्त स्थिर सिद्धान्त के निर्धारण की आवश्यकता पड़ती है।

'यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' की उक्ति के अनुसार इस शरीर की संरचना पर भी ध्यान देना चाहिये। गायत्री मन्त्र की व्याहृतियाँ यह बताती हैं कि, भूर्भुवः और स्वः इस देह के भाग हैं। कटि प्रदेश के नीचे भूः, गले तक भुवः और ललाट के भ्रूमध्य से उन्मना तक स्वर्लोक हैं। इसी में प्राण सविता का वरेण्य रूप मिलता है, भर्ग की भव्यता है और धी की अवधारणा है। इस शरीर की संरचना में विश्व रूपायित है। इस पटल में इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

भुवनाध्वा की इस पूरी प्रक्रिया को पूर्ण बनाने के लिये गुरु ही उपाय हैं। गुरु-मुख से निकली इस विधि में उतरने से निर्वाण की प्राप्ति अनिवार्य है। एक तरह से गुरु-मुख से ही सारे ज्ञान-विज्ञान चरितार्थ होते हैं। इसीलिये

शरीर के सर्वोच्च और महत्त्वपूर्ण उन्मना पद को भी गुरुवक्त्र कहते हैं । उन्मना पद पर अधिष्ठिति निर्वाण पद की सम्यक् अधिष्ठिति मानी जाती है । वहीं पहुँच-कर सर्वातीत अनामय पद की प्राप्ति सम्भव है । उस निष्कम्प, कारणातीत, विरजस्क, निर्मल परमेश्वर का तादात्म्य वहीं उपलब्ध होता है । इसी उपलब्धि में यह पूरा भुवनाध्वा चरितार्थ हो जाता है । इस गुरुवक्त्र प्रयोग के ज्ञान-विज्ञान से परम पद की प्राप्ति अनिवार्यत: हो जाती है ।

अन्त में इस विश्वविद्यालय के कुलपति **प्रो० अशोक कुमार कालिया** के प्ररोचना-पूर्ण रोचिष्मान् अनुग्रह के लिये आभार व्यक्त कर रहा हूँ । ये आगमिक परम्परा के परिवृढ प्रज्ञा-पुरुष हैं । इनका शत शत अभिनन्दन ।

प्रकाशन-निदेशक **डॉ० हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी** प्रकाशन-प्रक्रिया द्वारा चिन्तामणिरत्नों की प्रभा के शश्वत् प्रसार में सतत संलग्न हैं । मैं इनके सुप्रकल्प्य उत्कर्ष का अभिलाषी हूँ । इनको हार्दिक आशीर्वाद ।

प्रकाशन सहयोगी प्रिय **हरिवंश पाण्डेय, ददन उपाध्याय, श्री कुशवाहा, श्री भाटिया** व **शुक्ल** आदि को स्नेहभरे आशीर्वाद । प्रिय विजय प्रेस, श्री श्रीजी प्रेस के मौद्रिक योगदान के लिये शुभकामनायें ।

वसन्त पञ्चमी
२०६१ वि० सं०

परमहंस मिश्र
ए ३६, बादशाहबाग
वाराणसी

●

विषयानुक्रमः

दशमः पटलः

वामा, ज्येष्ठा और रौद्री शक्तियों का अवस्थान, ये सभी सर्वज्ञ और सर्व-कामप्रदा, इनके रूप, इनके परिवार, तालुरन्ध्र के ऊपर सभी ईश्वरानुगत तत्त्व, इनके अन्तर्गत ११ भुवन भुवन-दीक्षा में शोध्य ११६१-११७१ ३६८-३७४

६०. इसके ऊपर शुद्धावरण के ११ भुवन, शुद्धावरण में ज्ञान और क्रिया शक्तियों का साम्राज्य, इच्छा का शिवेच्छा स्वरूप, ज्ञान और क्रिया शक्तियों के भुवन, इन दोनों के नाम १–भावविद्या और २–अभावविद्या। प्रमाणावरण का अन्त, प्रमाणावरण के ऊर्ध्व भाग में चार रुद्र, इसके ऊपर सुशुद्धावरण, इनके ३ रुद्र, इसके ऊपर शिवावरण, सुशुद्धावरण के ऊर्ध्व शिवा-वरण, शिवावरण में ध्रुव नामक १ भुवन, इसके ऊपर मोक्षावरण, इसके ११ रुद्र, तालुरन्ध्र के ऊपर अवस्थित ११७२-११७८ ३७४-३७६

६१. प्रमाणावरण, शिवावरण और ध्रुवावरण ही स्थूल, सूक्ष्म और पर भेद से ईश्वर तत्त्व के ही आश्रित, ध्रुवावरण में वामा, ज्येष्ठा और रौद्री ये तीन शक्तियाँ ही प्रतिष्ठित, ध्रुवावरण के ऊर्ध्व में प्रबुद्धावरण, प्रबुद्धावरण के आठ रुद्र, इनके ऊपर समयावरण, इसके ५ रुद्र, एक-एक के करोड़ों परिवार, ईश्वर और सदाशिव आवरण के मध्य सुशिवावरण, इनका वर्णन ११७९-१२०० ३७६-३८३

६२. सादाख्य आवरण, मन्त्रमूर्त्तिरूप, सात करोड़ मन्त्रासन, लक्षदल कमलासन, दक्षभाग में ज्ञानशक्ति, वामभाग में क्रिया, इच्छाशक्ति से सारा तत्त्ववाद ही अधिष्ठित, विशिष्ट वर्णन, अनावृत चैतन्य से समन्वित १२०१-१२१३ ३८३-३८९

६३. बिन्द्वावरण, बिन्द्वावरण का विचित्र पद्म, चार कलायें, बिन्दु के वाम भाग में शान्त्यतीताकला, इन कलाओं के इन्हीं नामों के रुद्र, इसके ऊपर अर्धचन्द्रावरण, इसके ऊपर निरोधिका, निरोधिका की पाँच कलायें, बिन्दु, अर्धचन्द्र और निरोधिका का मात्राविभाग,

●

श्रीमन्महामाहेश्वराचार्यश्रीक्षेमराजकृतोद्द्योताख्यविवरणोपेतम्
नीरक्षीरविवेकभाषाभाष्यसंवलितम्

श्रीस्वच्छन्दतन्त्रम्

अथ दशमः पटलः

आ कालाग्नेः शिवपुरपरो योऽयमध्वा स सर्वो
मूर्त्याभासा स्फुरति लहरी यस्य यश्चाखिलं तम् ।
मेयत्वेन प्रथयति परां मातृतां भक्तिभाजां
व्यङ्क्तुं देवो जयति स महाभैरवः श्रीस्वतन्त्रः ॥

नवमपटलोपान्ते कालाग्निरित्यादिना कटाक्षिताध्वस्वरूपावबोधार्थं श्री-देव्युवाच–

ओम् हूम् श्रीस्वच्छन्दतन्त्रम् हूम् ओम्

अथ दशमपटलः

श्रीमन्महामाहेश्वराचार्यवर्यश्रीक्षेमराजकृतोद्द्योतविवरणोपेत
डॉ० परमहंसमिश्रविरचितनीर-क्षीर-विवेकभाषाभाष्यसमन्वित

आकालाग्नि भुवन शिवपुरमय
अध्वा मूर्त्याभास अनुत्तर ।
भैरव-भक्ति-सुधा से शाश्वत
सिक्त जगत अत्यन्त बृहत्तर ।
मेयरूप से प्रथित मातृका
मानक माया-मूल महत्तर ।
सर्वतन्त्र स्वातन्त्र्य समुज्ज्वल
जयतु प्रमातः जय जय जित्वर ॥

नवम पटल के उपसंहार के अवसर पर कालाग्नि भुवन की चर्चा करके इस पटल के प्रारम्भ की सूचना भगवान् ने दी थी । उसी अध्व-स्वरूप के अव-बोध का उपक्रम करती हुई देवी उमा कह रही हैं—

अध्वायं तु महादेव सूचितो न तु वर्णितः ।

कथयस्व प्रसादेन साधकानां हिताय तम् ।।१।।

पारमेशधामप्राप्त्युपायः प्रबुद्धैरदनीयश्चाध्वा अयमिति नवमपटलोपक्रान्तो भुवनात्मा, साधकानामिति भुक्तिं मुक्तिं च साधयतामाचार्यादीनाम् ॥१॥

एतत्प्रश्ननिर्णयं श्रीभैरव उवाच–

अध्वानं सम्प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै ।

अध्वानमिति भुवनरूपम्, सम्यक् तत्तद्भुवनेशाधिष्ठितक्रमेण प्रकर्षेण वैतत्येन वक्ष्यामि ।

तं प्रस्तौति–

अथ कालाग्निरुद्राधः कटाहः संव्यवस्थितः ।।२।।

देवाधिदेव महादेव ! आपने नवम पटलान्त रूप उपसंहार के सन्दर्भ में अध्वा की सूचना दी थी । उसका वर्णन नहीं किया था । भगवान् ! मैं आपके उस कृपा-प्रसाद की प्रतीक्षा में हूँ । उससे मेरी प्रज्ञा में अवबोध का उद्भव होगा, किन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण कार्य साधकों का कल्याण है । आपकी कृपा से वह भी सम्पन्न होगा । भगवन् ! आप उसे अवश्य सुनावें । यह भक्ति और मुक्ति दोनों का साधक विषय है । यह अध्वा परमेश्वर के परम धाम की प्राप्ति का उपाय है और प्रबुद्ध साधकों की अदनीय सुधा का आधार है ॥१॥

भगवान् देवी की उक्ति का समर्थन करते हुए कह रहे हैं कि, सचमुच साधकों के हित को सिद्ध करने वाले इस विषय को इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये मैं अवश्य सुनाना चाहता हूँ । इसे सम्यक् प्रकार से मैं वाणी का विषय बना कर वैखरी को कृतार्थ करूँगा । यह अध्वा भुवन रूप माना जाता है । प्रत्येक भुवन के अधिष्ठाता भुवनेश भी होते हैं । मैं उस अधिष्ठिति के क्रम से विस्तारपूर्वक इसकी चर्चा करूँगा ।

श्री भगवान् भैरव भट्टारक उस अध्व सन्दर्भ का प्रारम्भ अथ अव्यय के माध्यम से कर रहे हैं । उनका कहना है कि, कालाग्नि रुद्र के अधोभाग में कटाह संव्यवस्थित है । इसका विस्तार एक करोड़ योजन है । यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि, यह पृथिवी सभी तत्त्वों से आवृत है । फलस्वरूप इसके ब्रह्माण्ड में सबसे पहले कालाग्नि रुद्र भुवन ही अवस्थित है, यह शास्त्रों की मान्यता है । 'कटाह' शब्द ब्रह्माण्ड का एक कर्पर रूप है । कर्पर शब्द का बोली में 'खप्पर' तद्भव रूप है । खप्पर के ऊपर (उसके पृष्ठ भाग के ऊपर) ही कालाग्नि

कोटियोजनबाहुल्यः

पृथ्व्याः सर्वतत्त्वावृतत्वात् तदीयब्रह्माण्डान्तरवस्थितं कालाग्निरुद्रभुवन-मादौ, तस्याधः कटाहो ब्रह्माण्डकर्परः कटाह इव च यत्र निमज्योन्मज्ज्यते कृच्छ्रात् । बाहुल्यं घनता । किञ्च,

तस्योर्ध्वे भुवनानि तु ।
नवनवतिकोट्यश्चाप्यण्डानां तु सहस्रकम् ।।३।
कोटीनां सप्ततिर्लक्षाण्ययुतानां सहस्रकम् ।
अर्बुदान्यथ वृन्दानि खर्वाणि च तथैव च ।।४।।
पद्मानि चाप्यसङ्ख्यानीत्येवमादीन्यनेकशः ।
तेषां वै नायको ह्यत्र त्वनन्तः परमेश्वरः ।।५।।

तस्य कटाहस्योर्ध्वे पृष्ठे कर्परबाह्ये इत्यर्थः । नवनवतिकोट्य इत्यादिना तद्बहिर्वर्तिनां भुवनानां ब्रह्माण्डानां च निःसंख्यत्वमुच्यते । यथोक्तं श्रीमालिनी-विजये ब्रह्माण्डं प्रकृत्यण्डं चाधिकृत्य—

रुद्र भुवन अवस्थित है । अन्य भुवन भी उसी खप्पर के ऊपर ऊपर ही अवस्थित हैं ।

कटाह के ऊर्ध्व पृष्ठ भाग कर्पर का भी ऊर्ध्व बाह्य भाग है । इसमें ९९ करोड़ अण्डों और भुवनों के सहस्र सहस्र असंख्य भुवन भरे हुए हैं । गणना के लिए असंख्य शब्द भी लगता है कि, अपर्याप्त ही है । भगवान् गिनाते गिनाते थक से रहे हैं । करोड़ों की संख्या को कुछ सीमित करते हुए सतहत्तर लाख और अयुत अर्थात् दस हजार की गणना पुनः करने के बाद संख्या पुनः (अरब) अर्वुद तथा खरब) तक पहुँच रही है । इसमें बहुत से भुवन, वृन्द में झुण्ड के झुण्ड फैले हुए हैं ।।२-४।।

१०० खर्व का एक 'पद्म' होता है । इस 'पद्म' में भी बहुवचन का प्रयोग किया गया है । साथ ही असंख्य शब्द का प्रयोग कर इनके आनन्त्य का ही प्रतिपादन किया गया है । इन भुवनों के सदृश अनन्त भुवन भी वहाँ हैं । इन सभी भुवनों के नायक अनन्त भट्टारक ही माने जाते हैं ।

मालिनीविजयोत्तरतन्त्र के २/५० में यह स्पष्ट ही कहा गया है कि, ब्रह्माण्ड और प्रकृत्यण्ड इन दोनों भुवनों की संख्या अगणनीय है । इन्हें 'असंख्य' इसी प्रसिद्ध शब्द के विशेषण से विभूषित करना उचित है ।

'पृथग्द्वयमसंख्यातम्.............'। इति । (२।५०)

श्रीकण्ठसंहितायामपि–

'ब्रह्माण्डं कोटिविस्तीर्णम्.........'।

इत्युक्तम् । यत्तु टीकाकारैः—

'अथ कालाग्निरुद्राधः............'।

इत्यत्र कालाग्निरुद्रभुवनसामीप्यादाद्यं पार्थिवमनन्तभुवनमुक्तम्, अण्डानामित्यत्र चाण्डशब्देन भुवनान्युच्यन्ते, तेषां च कालाग्निब्रह्माण्डकवाटयोर्मध्यवर्तित्वमिति व्याख्यातम्, तदनागमिकं स्वयंकल्पितमित्युपेक्ष्यम् । यतोऽनन्तभुवनस्य प्रथमत्वेऽपि शतरुद्रमध्यवर्तित्वेनाण्डबाह्याधोभागगतत्वमेव आगमेषु दृश्यते । यथोक्तं श्रीमालिनीविजये–

श्रीकण्ठ संहिता में भी कहा गया है कि, 'ब्रह्माण्ड' के विस्तार को करोड़ों में ही परिकल्पित कर सकते हैं । इस ग्रन्थभाग के टीकाकारों ने श्लोक दो के कालाग्नि· रुद्रलोक के अधोभाग में अवस्थित अत्यन्त समीप पार्थिव अनन्त भुवन का अवस्थान स्वीकार किया है । अण्ड शब्द का अर्थ भी भुवन ही माना है । कालाग्नि और ब्रह्माण्ड कवाट के मध्यवर्ती भुवनों का अर्थ लगाकर व्याख्या की है । आचार्य क्षेमराज की दृष्टि से ऐसा अर्थ आगमिक परम्परा के अनुकूल नहीं माना जा सकता । यह उन टीकाकारों का एक प्रकार का स्वयं का प्रकल्पन है । इसलिये उक्त अर्थ अपेक्षा करने योग्य है ।

कारण यह है कि, अनन्त भुवन के आदि में रहने पर भी शतरुद्र भुवन ही मध्यवर्त्ती माना जाता है । अण्ड के बाहर अधोभाग में शतरुद्र भुवन की मध्यवर्तिता टीका और परम्परा के अनुकूल है । आगमों में भी यही वर्णित है ।

श्रीमालिनीविजयोत्तरतन्त्र में यह लिखा है कि, 'कालाग्नि भुवन के बाहर शतरुद्रों के ही पृथक् पृथक् भुवन हैं' । ५।१२ इस उक्ति से लेकर 'अनन्त उन रुद्रों के प्रथम रुद्र हैं' (५।१३) पर्यन्त में इसका स्पष्ट उल्लेख है । इस ग्रन्थ में एकादश पटल में इसी तथ्य का समर्थन है—

अनन्त भट्टारक के रूप में अध्व का धारक अधिष्ठाता अनाथ अर्थात् स्वतन्त्र शक्तिमन्त रुद्र हैं । (२३) इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट किया गया है कि, समुद्र के ऊर्ध्व भाग पर अवस्थित शक्त्याधार हुहुक नामक रुद्र भी हैं । ग्रन्थ के विविध सन्दर्भों में इसका स्पष्टीकरण है ।

'तद्बहिः शतरुद्राणां भुवनानि पृथक्पृथक्' । (५।१२)

इत्युपक्रम्य–

'अनन्तः प्रथमस्तेषां.......................'। (५।१३)

इति । इहापि एकादेशे भविष्यति

'अनाथोऽनन्तरूपेण स्थितश्चाध्वनि धारकः' । (२१)

इति । तथा–

'संस्थितश्चाम्भसो मूर्ध्नि शक्त्याधारस्तु हूहुकः' । (२३)

इति । एतच्चानन्तरमेव व्यक्तीभविष्यति । अण्डशब्दस्य च भुवनवाचकत्वमप्रसिद्धम् । एवमपि पृथग् भुवनशब्दोऽनुपादातव्यः स्यात् । वक्ष्यमाणे च ब्रह्माण्डान्तर्वर्तिभुवनमानसंख्यामध्ये अनन्तभुवनमानस्यानुद्देशाद् न कर्परिकाकालाग्निभुवनयोर्मध्ये अनन्तभुवनम्; अपि त्वधःकर्परिकाबाह्यपृष्ठभागे अधःस्थशतरुद्रदशकमध्ये इत्यलम् ॥५॥

तदित्थं प्रपञ्चव्याप्त्या अनन्तब्रह्माण्डाश्रया भूः । तस्यात एव अनन्तशब्दवाच्यस्य भगवतः शुद्ध्या सर्वब्रह्माण्डाधोवर्तिनिःसंख्यभुवनशुद्धिरूहकाख्यैः रुद्रभुवनैः सहास्यां भुवनदीक्षायां सम्पद्यत इत्याह–

'अण्ड' शब्द का भुवन अर्थ प्रसिद्ध नहीं हैं । टीकाकारों का यह स्वोपज्ञ अर्थ है । अण्ड वस्तुतः पाँच ही माने जाते हैं–१. पृथ्व्यण्ड, २. प्रकृत्यण्ड, ३. मायाण्ड, ४. शक्त्यण्ड और ५. शिवाण्ड । इस आधार पर भुवनशब्द की अपनी एक सीमा है, जो भुवनाध्वा में व्यक्त है ।

ग्रन्थ में आगे ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत जितने भुवनों की संख्या का निर्धारण किया गया है । उनमें अनन्त भुवन मान की चर्चा नहीं है । इसका निष्कर्ष यह है कि, कर्परिका और कालाग्नि भुवन इनके मध्य में अनन्त भुवन नहीं है । अपितु नीचे कर्परिका के बाह्य पीठ भाग में भी अधस्थ शतरुद्रों के बीच में हैं ।

मेरी दृष्टि से इस विषय में एक गोष्ठी अपेक्षित है । विद्वत्सभा के निर्णय के उपरान्त शास्त्रोक्त वचनों का निर्धारण सम्भव है । जिन शास्त्रों में भुवनों की चर्चा है, उनमें एकवाक्यता अपेक्षित है ॥५॥

विश्वप्रपञ्च के व्यापक प्रसार में भूःतत्त्व और इसकी सीमा पर भी गहन विचार अपेक्षित है । केवल पृथिवी का यह ग्रहीय गोल मण्डल ही 'भूः' नहीं है । वरन् भूः की सीमा में अनन्त ब्रह्माण्डों का आश्रय है । यही मान्यता इस शास्त्र की भी है । इसलिये अनन्त शब्दवाची भगवान् की वास्तविक शुद्धि रूप दीक्षाजन्य ज्ञप्ति से ब्रह्माण्ड के अधोवर्त्ती असंख्य भुवनों की भी ज्ञप्ति हो सकती है

तेन शुद्धेन शुद्धानि त्वण्डान्यत्रोहकैः सह ।

ऊहन्ते तर्कयन्ति परिच्छिन्दन्ति विश्वमित्यूहकाः ।

कीदृशैरूहकैरित्याह–

शक्त्याधाराश्रयैरेव

शक्तिः पारमेश्वर्येव विश्वभित्तिभूतत्वादाधार इवाधारस्तदाश्रयैरेव शक्तिविश्रान्तैरित्यर्थः ।

ते चोहकाः कियन्तः, कीदृशाः, के इत्याह–

द्वात्रिंशत्परिसंख्यया ।।६।।

कोटिकोटिपरीवारास्त्वनौपम्यगुणान्विताः ।
दिव्याङ्गनौघसङ्कीर्णा भ्रूभङ्गललितेक्षणैः ।।७।।

या होती है । भगवान् की शुद्धि के इस प्रयोग पर ध्यान देना चाहिये । यह भुवन दीक्षा का प्रकरण है । इस दीक्षा में शरीरों की शुद्धि के साथ ब्रह्माण्डीय भुवनों की शरीरगत शुद्धि अनिवार्य है । यह शुद्धि कैसे सम्पन्न होती है, भगवान् भैरव भट्टारक उसके सम्बन्ध में भी चर्चा करते हैं । कुछ रुद्रभुवन ऊहक नाम से प्रसिद्ध हैं । इस भुवनदीक्षा में इन ऊहकों के साथ ही यह सम्पन्न होती है, वही कह रहे हैं–

इस भुवनदीक्षा में अण्डशुद्धि, ऊहकों के साथ ही होती है । ऊहकशुद्धि से अण्डशुद्धि—यह शुद्धि की कुञ्जी है । ये शक्त्याधाराश्रय होते हैं । ये विश्व का ऊहन करते हैं अर्थात् तर्क की कसौटी पर कस कर इनकी परिच्छिन्नता का निर्धारण करते हैं । पारमेश्वरी शक्ति ही विश्व की मूलभित्ति मानी जाती है । अत एव शक्ति ही आधार है, यह सिद्ध हो जाता है । ऐसी शक्तिरूप आधार के ये ऊहक ही आश्रय माने जाते हैं । आधार का आश्रय होना महत्त्वपूर्ण तथ्य है ।

शक्तिविश्रान्त इन ऊहकों की संख्या के विषय में सभी प्रकार की भ्रान्तियों का निराकरण करते हुए भगवान् कह रहे हैं कि, इनकी संख्या 'बत्तिस' होती है ।।६।।

ऊहक का विशद वर्णन करते हुए भगवान् कह रहे हैं कि, इनके कोटि परिवार हैं । ये अनुपम गुणों के आधार हैं । दिव्याङ्गनाओं से समन्वित हैं । उनके कटाक्षों और ललित दृष्टियों से नित्य नेत्रोत्सव मनाने में निमग्न ये रहते हैं । अयुत सूर्यों के समान प्रकाशमान हैं । इनके आवास तोरणयुक्त अट्टालिकाओं से मण्डित हैं ।।७।।

सूर्यायुतप्रतीकाशास्तोरणाट्टालमण्डिताः ।

किञ्च,

न तत्र दुःखितः कश्चिन्मुक्त्वा दुःखमनङ्गजम् ।।८।।

रमन्ते तत्र वै वीरा नारीभिः सह लीलया ।

भुवनेषु विचित्रेषु योन्याकारेषु संस्थिताः ।।९।।

अनेन स्त्रैणभोगप्राधान्यमेवैषां भुवनानामुपोद्वलितम् ॥९॥

तदित्थम्–

भुवनान्येवमुक्तानि भुवनान्तरवासिनाम् ।

'तस्योर्ध्वे भुवनानि' (३) इति यान्युपक्रान्तानि, तानीह अनन्तभुवनमध्यगतेषु भुवनविशेषेषु ये वसन्त्यूहकास्तेषामाश्रयत्वेनोक्तानि ।

एवं च दीक्षायाम्–

सर्वाणि शुद्धिमायान्ति तान्यनन्ते विशोधिते ।।१०।।

स्वामिनि अनन्तभट्टारके दीक्ष्यं प्रति भोगप्रदत्वान्निवर्तिते तदधिष्ठिता ऊहकास्तद्भुवनानि चानन्तानि शुद्ध्यन्ति न भोगदत्वेन बन्धकानि भवन्तीत्यर्थः ।

स्त्रैण भोग प्रधान इन भुवनों में दुःखानुभूति नहीं । यदि दुःख है भी तो केवल कामपूर्ति में विलम्ब का ही दुःख वहाँ है । वीर अर्थात् विधिनिषेध से ऊपर उठे हुए लोग वहाँ लीला पूर्वक काम क्रीडा में लिप्त रहते हैं । इनके सारे भुवन भी योनि के आकार के ही होते हैं ॥८-९॥

भुवनान्तरों अर्थात् कालाग्नि रुद्रभुवन के अधोभाग में अवस्थित कटाह में अनन्त भुवनों के मध्य में अवस्थित विशेष भुवनों में रहने वाले ऊहकों के आश्रय जितने भुवन हैं, ये सभी भुवन दीक्षा से शोधित होते हैं और शुद्ध किये जाते हैं । इनकी शुद्धि अनन्त भुवनों की शुद्धि पर ही निर्भर है ।

यह ध्यान देने की बात है कि, अनन्त भट्टारक तो भुवनेश स्तर के स्वामी हैं । दीक्षा की भुवनदीक्षा के फलस्वरूप अनन्त भट्टारक उसकी भोगवादिता निर्धारित करते हैं और भोगप्रद वरदान से उसे कृतार्थ करते हैं । उससे निवृत्त होने पर उसमें अधिष्ठित ऊहक और उनके भुवन सभी दीक्षा से शुद्ध हो जाते हैं । कामशः दीक्ष्य के भविष्यत् उत्कर्ष में वे बाधक नहीं, अपितु साधक ही होते हैं ।

इस विशोंधन प्रक्रिया, ऊहकों के साधक होने तथा भविष्यत् उत्कर्ष में सहायक होने की भगवदुक्ति से यह सिद्ध होता है कि, उत्तरोत्तर इसी तरह उन

एवमेव चोत्तरत्रापि तत्तद्भुवनेशशुद्धिद्वारेण भुवनशुद्धिर्मन्तव्या । शोधने चोपस्थानादि-पूर्वं विधिमग्रे वक्ष्यति । एवं कर्परिकाया बाह्येऽनन्तभुवनम् ॥१०॥

ततस्तु–

अथोपरिष्टात्कालाग्निः श्रीकण्ठेन निवेशितः ।
अधिकारं प्रकुरुते तदाज्ञानुविधायकः ॥११॥
अनेकरुद्रकोटीभिरुपेतस्तिष्ठति प्रिये ।

उपरिष्टादिति कटाहस्य । कालः संहारकृदग्निः । यद्यपि पूर्वोक्तनीत्या स्वतन्त्रभट्टारकमयत्वाद् विश्वस्योर्ध्वाधरप्रविभागो नास्ति, तथापि तदिच्छयैवा-रुरुक्षूणामुपदेश्योपदेशकानामयमित्थमाभासितः क्रमः । कालाग्न्यादिश्च परभैरवमय-त्वाद् व्यापकोऽपि तदिच्छयैव तथावभासितस्तत्र तत्र तथा तथा सन्निविष्टः ।

उन भुवनेश्वरों की शुद्धि से भुवनों की भी शुद्धि हो जाती है । फलस्वरूप दीक्ष्य कृतार्थ हो जाते हैं । कालाग्नि भुवन की बाह्य खर्परिका में अनन्त भुवनों और उनके भुवनेश्वरों की शुद्धि हो जाती है । उनकी साधकता के सन्दर्भों का आसू-त्रण इस श्लोक में समग्रतया निरुक्त है, वह कर्परिका सीमा के बाहर के क्षेत्र में ही सीमित है ॥१०॥

कटाह के उपरितन भाग में कालाग्नि रुद्र भगवान् श्रीकण्ठ के द्वारा निवेशित हैं । उन्हीं की आज्ञा के अनुविधान के अनुसार उनके अनुपालन में लगे रहना कालाग्नि का उत्तरदायित्व है । भगवान् भैरव भट्टारक कह रहे हैं कि, प्रिये पार्वति ! करोड़ों रुद्र परिवारों के साथ संयुक्त होकर ये कालाग्नि रुद्र वहाँ उपस्थित हैं ।

यहाँ विचार करते हुए आचार्य क्षेमराज ने ऊर्ध्व और अधः प्रविभाग का प्रश्न उपस्थापित कर स्वयं समाधान भी दिया है और कहा है कि, स्वतन्त्र भट्टारकमय इस विश्व प्रसार में ऊर्ध्व और अधः प्रविभाग नहीं है । इस सम्बन्ध में मेरा विनम्र निवेदन यह है कि, जैसे राज्यों की सीमाओं का विस्तार राज्यों द्वारा ही निर्धारित कर लिया गया है, उसी तरह भगवद्वचन की प्रामाणिकता की दृष्टि से अदृश्य अन्तरिक्ष लोकों में भी इसतरह के प्रविभाग अवश्य ही प्रकल्पित हैं । उन्हीं श्रीकण्ठ द्वारा निर्धारित सीमाओं में इन रुद्रों का निवेश है । ये सीमायें अदृश्य शक्तियों और शक्ति के अधिष्ठाता देवों द्वारा निर्धारित हैं । उन्हीं में वे निवास करते हैं । यह पार्थिव शरीरधारी जीववर्ग द्वारा अप्रकल्पनीय हैं । इस लोक के बाद उक्त लोकों की यात्रा के इच्छुक शिष्यों को जो उपदेश शास्त्र दे रहा है, गुरुजन भी उसी के अनुपालन का उपदेश देते हैं । उस प्रविभाग के पचड़े में हमें नहीं पड़ना चाहिये ।

एवं कटाहस्याध ऊर्ध्वे च भुवनद्वयमुक्त्वा, पुरप्रमाणं निर्णिनीषुरुपक्रमते–

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि प्रमाणं शिवनिर्मितम् ।।१२।।
योजनानां वरारोहे

तच्चोपक्रमत एव–

यथा भवति तच्छृणु ।

तत्र–

अव्यक्ताद्दशभिर्भागैर्महान् स्थूलो विभाव्यते ।।१३।।
द्विपञ्चभागो महतो भूतादिः स्थूल उच्यते ।

इह योगिनः प्रति विश्वं मेयमयोगिनस्तु प्रकृतितत्त्वात्प्रभृति मेयव्यवस्था मायायाः पुरुषं प्रत्याच्छादकत्वात् कलादेश्च कञ्चुकरूपत्वेन ग्राहकशक्तिमयत्वात् । प्रकृतितत्त्वं तु वेद्यसामान्यरूपं मुमूर्षावसरे कण्ठगतमिव स्मर्यमाणं प्रतिभात्येव । कण्ठो हि प्रकृत्यधिष्ठातुः विष्णोः **स्थितिधाम** । तदित्थं वेद्यरूपादव्यक्ताद्दशगुणं स्थूलत्वं महतो बुद्धेः । बुद्धिर्हि अध्यवसायव्यापाररूपा स्वसंवेदनेन संवेद्यते ।

इस सन्दर्भ में कालाग्नि भुवन को कटाह से ऊपर दर्शाया गया है । अधोभाग के लोक को अधोभाग में अलग से दिखाया जा चुका है । भगवान् कह रहे हैं कि, इस समय देवि ! तुम्हारे समक्ष अब मैं 'पुर' प्रविभाग की चर्चा करूँगा । ये सभी प्रविभाग शिव द्वारा ही निर्धारित हैं । शिव द्वारा निर्धारित सीमा को शिवरूप ये रुद्र ही जान सकते हैं । भौतिक लोगों को इसमें छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिये । शास्त्रीय अर्थ के निर्धारण में बुद्धिवाद का प्रयोग नहीं होना चाहिये । श्रद्धा और आस्था ही अपेक्षित है ॥११-१२॥

पुरों की सीमा का निर्धारण शास्त्र योजन के पैमानों पर आधृत है । भगवान् देवी पार्वती को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि, वहाँ जिस प्रकार की सीमा निर्धारित है, उसे उसी रूप में तुम सुनो ।

वस्तुतः वेद्य रूप अव्यक्त प्रकृति से दशगुणित स्थूल महत् तत्त्व बुद्धि की है । प्रकृति तत्त्व से ही मेय व्यवस्था प्रचलित मानी जाती है । यह सर्वविदित है कि, माया पुरुष का आच्छादन करती है । उसी माया के अंश रूप कला विद्या आदि कञ्चुक कहलाते हैं और ग्राहक बनकर पुरुष को सङ्कोच ग्रस्त कर देते हैं । यह संकोचप्रद मेय व्यवस्था अयोगी पुरुषों के स्तर की मानी जाती है । योग-युक्त पुरुष की दृष्टि से प्रमाता प्रमाण के द्वारा अपनी प्रमा से विश्व को केवल वेद्य मानता है ।

तस्याश्च प्रोक्तप्राकृतरूपाद् वेद्यात् स्थूलत्वं प्रतीतिसाक्षिकमेव । एवंभूताद् महतो द्विपञ्चभाग इति दशगुण एव, भूतानामादिः कारणं तन्मात्रं स्थूलः, न तु भूतादि-रहङ्कारो व्याख्येयस्तस्य महतः आधिक्येनासञ्चेत्यत्वात् । तन्मात्रस्वरूपं तु वासना-रूपतयान्तःस्थितं वृद्धस्येवाभिलाषास्पदीभूतं प्रमदामात्ररूपं स्फुरत्येव । तच्चाध्य-वसायात्मनो बुद्धेराकारतया **स्फुरत्स्थूलतां धत्त एव ।**

तदेतदन्तःकरणैकपरिच्छेद्यमित्याह–

भूतादेः परिमाणं च भावग्राह्यं न चाक्षुषम् ।।१४।।

प्रकृति पुरुषगत इस सन्दर्भ में प्रकृतितत्त्व की एक बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये । जब मरने की अब तब की अवस्था में जीवन सन्ध्या संहार की गोद मे समाने वाली होती है, उस समय कण्ठगत वेद्य सामान्य स्मर्यमाण होता है । कण्ठ में प्राण जब हिचकोले खाता है, उस समय कुछ कुछ स्मृतिपथ में अव्यक्त आभा की स्मृति होती है । यह कण्ठगत अधिष्ठाता विष्णु की वैष्णवी कला का चमत्कार है । शरीर में प्रकृति के इस स्वरूप का साक्षात्कार सामान्यतः सबको होता है ।

जहाँ तक बुद्धि का प्रश्न है, यह उक्त प्रकृतितत्त्व से जिसे श्लोक में अव्यक्त शब्द से व्यक्त किया गया है, इससे दशगुणा स्थूल होती है । यह अध्यवसाय व्यापार रूपा मानी जाती है । आत्मसंवेदना से वेद्य बुद्धि प्रतीति का विषय भी बनती है । बुद्धिमान् पुरुष इसका साक्षी होता है ।

यह महत्तत्त्व रूप बुद्धि जितनी स्थूल है, इससे भी दसगुना स्थूल भूतों का आदि कारणरूप तन्मात्रतत्त्व माना जाता है । भूतों के आदिकारण रूप में अहङ्कार की मान्यता नहीं है । अहङ्कार एक प्रकार से महत्तत्त्व का ही तन्त्र है । तन्मात्रतत्त्व वासना से वासित अन्तः अवस्थित वह तत्त्व है, जो वृद्ध के वार्धक्य में आसक्ति रूप से उद्वेलित होता है और प्रमदा के स्तर तक पूरी तरह स्फुरित रहता है । यह तन्मात्रतत्त्व के स्थूलत्व का प्रत्यक्ष निदर्शन है ।।१३।।

भूतादि का परिमाण भावग्राह्य होता है । उसे चाक्षुष नहीं कहा जा सकता । चाक्षुष चक्षु से रूप आदि रूपों में गृहीत स्थूल पदार्थ रूप होता है । भावग्राह्य अनुभूततत्त्व होता है । जैसे वायु आदि । भावग्राह्य सूक्ष्म पदार्थ से दशगुणा स्थूल चाक्षुष माना जाता है ।।१४।।

तदीदृशाद्–

भूतादेर्यद्दशगुणमणीयो दृश्यते रजः ।

जालान्तरगते भानौ परमाणुः स उच्यते ।।१५।।

अणीयः स्वल्पतरं भूताद्यपेक्षया तु दशगुणं स्थूलं चाक्षुषत्वात् । अयं च परमाणुः तार्किकोपगतपरमाणुविलक्षणः ॥१५॥

ईदृशश्च–

अष्टानां परमाणूनां समवायस्तु यो भवेत् ।

त्रसरेणुः स विख्यातः तत्पद्मरज उच्यते ।।१६।।

समवायः सङ्घट्टनम् । तस्य त्रसरेणुः पद्मरज इति नामद्वयम् ॥१६॥

त्रसरेणवश्च ये त्वष्टौ बालाग्रं तु विधीयते ।

बालाग्राणि तथा त्वष्टौ लिक्षेति परिकीर्तिता ।।१७।।

लिक्षाश्चाष्टौ विदुर्यूकां यूकाश्चाष्टौ यवो भवेत् ।

अष्टौ यवा वरारोहे पर्वाङ्गुष्ठमथाङ्गुलम् ।।१८।।

द्वादशाङ्गुलमानेन वितस्तिस्ताल उच्यते ।

तालद्वयं भवेद्धस्तश्चतुर्विंशतिकाङ्गुलः ।।१९।।

बालाग्रादीनि प्रमाणविशेषाभिधानानि । पर्वणः अङ्गुष्ठमङ्गुलमिति पर्यायः, वितस्तेस्तु तालः ॥१९॥

भूतादि भावग्राह्य से दशगुणा स्थूल चाक्षुष जैसे और अत्यन्त अणीय सूक्ष्मतर जो आँख से दिखायी पड़ने वाले कण जो जाल के अन्तराल से सूर्य की किरणों के प्रभाव से आते जाते दीख पड़ते हैं, उन्हें 'परमाणु' कहते हैं । यह परमाणु तर्कशास्त्र की मान्यता के अनुरूप वह सूक्ष्म पदार्थ है, जो चाक्षुष होता है ॥१५॥

ऐसा यह परमाणु पदार्थ एक साथ आठ का अष्टक एकत्र होकर एक रूपता को प्राप्त करता है, तो उसे त्रसरेणु कहते हैं । त्रसरेणु परागकण के बराबर होता है । इसका दूसरा नाम ही 'पद्मरज' है ॥१६॥

आठ त्रसरेणुओं का एक 'बालाग्र', आठ बालाग्रों की एक लिक्षा, आठ लिक्षाओं की एक 'यूका', आठ यूकाओं का एक 'यव', आठ यवों का एक 'अङ्गुल' १२ अङ्गुलों की एक 'वितस्ति' वितस्ति की ही 'ताल' संज्ञा है, दो तालों का एक हाथ और एक हाथ चौबीस अङ्गुलों का होता है ॥१७-१९॥

चतुर्हस्तो धनुर्दण्डो नालिका यूप एव च ।

धनुष एव दण्डो नालिका यूप इति च नाम ।

धनुःसहस्रे द्वे पूर्णे क्रोशः समभिधीयते ।।२०।।

क्रोशद्वयेन गव्यूतिर्गव्यूती द्वे तु योजनम् ।

एतत्प्रकृते योजयति–

अनेन परिमाणेन योजनानां यशस्विनि ।।२१।।

सिंहासनं महादीप्तं सहस्रद्वयविस्तृतम् ।

सहस्रमुच्छ्रितं तस्य

तस्येति कालाग्नेः ।

महापीठेषु सुव्रते ।।२२।।

तिष्ठते तत्र देवेशः कालो द्वादशलोचनः ।

तिष्ठते प्रकाशते । स पश्चिमोत्तरप्राग्दक्षतः ।

सितरक्तपीतकृष्णश्चतुर्वक्त्रो महाबलः ।।२३।।

ऊर्ध्ववक्त्रमस्यानुन्मीलितं भगवता दर्शितं मा भूद्दूरादिलोकदाह इति ।।२३।।

चार हाथ का एक धनु और धनु की ही 'दण्ड', 'नालिका', 'यूप' संज्ञायें भी होती हैं । दो हजार धनुषों का एक 'क्रोश' और दो क्रोशों की एक गव्यूति होती है । दो गव्यूतियों का एक 'योजन' होता है । भगवान् कह रहे हैं कि, देवेश्वरि ! योजनपर्यन्त यह शास्त्रानुमोदित पैमाने हैं ।।२०-२१।।

देवी को सम्बोधित करते हुए भगवान् भैरव भट्टारक कह रहे हैं कि, यशस्विनि देवि ! दो हजार योजन विस्तृत और एक हजार योजन ऊँचे महापीठों में भगवान् कालाग्नि रुद्र का महादीप्त सिंहासन विराजमान है । वह पश्चिम से उत्तर, उत्तर से पूर्व और पूर्व से दक्ष भाग तक चतुरस्र होता है । चतुरस्र की पश्चिम से उत्तर रेखा सित, उत्तर से पूर्व रेखा रक्त, पूर्व से दक्षिण रेखा पीत और दक्षिण से पश्चिम रेखा कृष्ण वर्णी होती है । इन्हीं चार रंगों की रंजकता में वह सुशोभित होता है, इस प्रकार के सिंहासन पर इन दिशाओं में पड़ने वाले उसके मुख भी चार प्रकार के रंगों से रंगीन हैं। इस प्रकार के चार मुख कालाग्नि के माने जाते हैं । यह ध्यान देने की बात है कि, शिव पञ्चानन होते हैं । कालाग्नि रुद्र भी पञ्चानन ही होते हैं । यहाँ उनके ऊर्ध्व मुख का वर्णन नहीं है । वस्तुतः वह मुख उन्मीलित नहीं होता । उस मुख के खुल जाने पर सारे विश्व-विस्तार के दग्ध हो जाने का भय बना रहता है । इस प्रकार के महाशक्तिमान् बलवान् द्वादशनेत्र शोभमान यह कालाग्नि रुद्रदेव उस महासिंहासन पर विराजमान हैं और भास्कर के समान भासमान हैं ।।२२-२३।।

किञ्च,

रक्ताङ्गोऽथ करालश्च पिङ्गभ्रूश्मश्रुलोचनः ।
वक्त्रज्वाला जटाज्वाला लोमज्वालाः सुजाज्वलाः ।।२४।।
ज्वलन्त्यस्यायुधज्वालाः सुतीव्राः करमध्यगाः ।

इत्थं चायम्–

ज्वलत्पर्वतवद्दीप्तो ज्वलज्ज्वालाभिराजितः ।।२५।।
दशबाहुर्महात्मा वै खड्गखेटकधारकः ।
शरशार्ङ्गविहस्तश्च पाशाङ्कुशधरस्तथा ।।२६।।
कपालखट्वाङ्गधरो वरदाभयपाणिभृत् ।

विहस्तो विशिष्टहस्तः । अपि च–

दश योजनलक्षाणि शरीरं भाति भास्वरम् ।।२७।।

एतद्भास्वरायाः कान्तेः प्रमाणम्, न तु शरीरस्यान्यथा प्रागुक्तासनमानस्यासङ्गतत्वापत्तिः । शरीरमानं त्विह नोक्तम् ॥२७॥

कोटियोजनमानेन भुवनं चास्य जाज्वलम् ।

इनके शरीर के सारे अवयव रक्ताभ हैं । उनसे विकरालता झलकती रहती है । उनकी भौंहें पिङ्गलवर्णी, मूछें भी पिङ्गल और आँखों का अनोखा रङ्ग, उनके विकरालता के प्रतीक हैं । आनन से अग्नि का आग्नेय रूप जटाओं से ज्वालानल का दिग्दाह, रोमावलियों से स्फुलिङ्गों की लौ एक जाज्वल्यमान तेजस्विता का साक्षात्कार कराती हैं । उनके आयुधों से चिनगारियाँ चिटकती हैं । वे नितान्त तीक्ष्ण और तीव्र होती हैं । हाथ में पड़े हथियारों से हाहाकारी लपटें लपलपाती हैं । जानलेवा ज्वालाओं के जाल से ज्वलनशील भैरव का अस्तित्व जलते हुए पर्वत के समान उद्दीप्त लगता है । जलती हुई ज्वालाओं से अभिराजमान कालाग्नि रुद्र अपने आग्नेय रूप में सदा उद्दीप्त रहते हैं ॥२४-२५॥

इस महात्मा रुद्र की दश बाहुओं में खड्ग, खेटक, शर, धनुष, पाश, अङ्कुश, कपाल, खट्वा ये आठ अस्त्रशस्त्र तथा वरद और अभय दो मुद्रायें हैं । उनका अत्यन्त भास्वर शरीर दशलाख योजन में राजमान है । यह उनकी शारीरिक दीप्ति का प्रसार उस लोक की ललामता को अनुक्षण प्रभावित करता है ॥२६-२७॥

इनके भुवन का मान एक करोड़ योजन है । मानो वह भुवन ज्वाला का लोक है । उसी आलोक से आलोकित है । वहाँ रूपवती रुद्रकन्यायें विहार करती हैं । उनकी रक्षा में शूलधारी रुद्र नियुक्त हैं । अनेक प्रकार की प्रभा से भास्वर

तच्च–

सम्भृतं रुद्रकन्याभी रुद्रैर्ज्वलितशूलिभिः ।।२८।।
नानारूपविमानैश्च प्रज्वलद्भिः समावृतम् ।

किञ्च,

ज्वालास्तस्य विनिष्क्रान्ताः कोटयो दश चोर्ध्वतः ।।२९।।

तस्येति भुवनस्य ।।२९।।

तस्योपरिष्टाद्देवेशि पञ्च कोट्यो वरानने ।
न कश्चिन्निवसत्यत्र धूमोष्मपरिवारितः ।।३०।।

एवं कटाहः कोटिस्तदुपरि कालाग्निभुवनं कोटिः, भुवनज्वाला दश कोटयः, शून्यं पञ्च कोटय इति सप्तदश । न चात्र मध्ये अनन्तभुवनपरिमाणमुक्तमिति मध्ये तत्परिकल्पनमसदित्युक्तमेव ।।३०।।

अतः परं वरारोहे नरकाः परिकीर्तिताः ।
पञ्चाशत्कोटयो देवि कथिता ह्यनुपूर्वशः ।।३१।।

अन्तर्भावितण्यर्थत्वाद् नरान् काययन्ति साक्रन्दान् सम्पादयन्ति दुःखानुभवेनेति नरकाः कथिता इति महासंहितासु ।।३१।।

व्योमयानों में भी वे यात्रा करती हैं । वह भुवन ऐसे विमानों से भरा हुआ है । उस भुवन से उठने वाली दीप्तियाँ दश करोड़ योजन तक की ऊँचाई को भी दीप्तिमान् कर देने में सदा समर्थ हैं ।।२८-२९।।

भगवान् के कथनानुसार कालाग्नि रुद्रभुवन के ऊपर पाँच करोड़ योजन तक धूम और धूम की उष्मा से भरे रहने के कारण कोई वहाँ रह नहीं सकता । आचार्य क्षेमराज ने कोटि का अर्थ योजन से नहीं, अपितु सीमा से लिया है । इसमें दो कोटियाँ धूम क्षेत्र में नहीं हो सकतीं । केवल ज्वाला और शून्य कोटियाँ ही निवास योग्य नहीं होती । इसके अन्तर्गत अनन्त भुवन नहीं आता ।।३०।।

भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ! इस कालाग्नि भुवन के अनन्तर नरक लोकों का ही अवस्थान माना जाता है । इनकी संख्या भी आनुपूर्वी रूप से पचास करोड़ मानी जाती है । नक शब्द की व्युत्पत्ति को बतलाते हुए आचार्य-प्रवर कह रहे हैं कि, इस शब्द में अन्तर्भावितण्यर्थ की व्याकरणसम्मत शक्ति काम करती है । इस आधार पर इसका अर्थ होता है–जो नरों को कायित करने को प्रेरित करता है, उसे नरक कहते हैं । कायन का अर्थ दुःख से आक्रान्दित करना होता है । निष्कर्ष यह कि, नरक में दुःख ही दुःख की निरन्तर अनुभूति होती

इह तु–

प्रधानं सम्प्रवक्ष्यामि शतं तत्र वरानने ।

चत्वारिंशत्समोपेतं कथितं

यन्महासंहितासु तत्–

नामतः शृणु ।।३२।।

अवीची रौरवश्चैव महारौरव एव च ।

तामिस्रश्चान्धतामिस्रः सञ्जीवनसुजीवनौ ।।३३।।

तदेते

'अवीचिर्वीचिभिश्छन्नः पूयासृक्कर्दमादिभिः ।

रुदन्तः प्राणिनो यत्र निक्षिप्यन्ते स रौरवः ।।

तामिस्रस्तमसा मिश्रः शर्वरीध्वान्तधूसरः ।

तथारूपोऽन्धतामिस्रस्त्वविभावितदिङ्मुखः' ।।

इति श्रीपरायां निरुक्ताः । रौरव एव सातिशयो महारौरवः । यातनाभिर्मृतकल्पानां पुनर्यातनार्थं यत्र सम्यग्जीवनम्, सुष्ठु भूयो भूयश्च जीवनं तौ सञ्जीवनसुजीवनौ ।।३३।।

रहती है । महासंहिताओं में यही अर्थ समर्थित है । इसलिये मनुष्य को ऐसे कार्यों से बचे रहना चाहिये, जिससे नरक मिले ।।३१।।

भगवान् कह रहे हैं कि, सुमुखि देवि ! इतने बड़े नरकों की राशि में से मैं यहाँ केवल सौ नरक लोकों के विषय में तुमसे कहने जा रहा हूँ । इस शतक में चालिस औरों को भी समाविष्ट करने से इनकी संख्या १४० भी हो सकती है । इन्हें इनके नामों से इस प्रकार समझो ।।३२।।

१. अवीची, २. रौरव, ३. महारौरव, ४. तामिस्र, ५. अन्धतामिस्र, ६. संजीवन, ७. सुजीवन, से सात बड़े भयङ्कर नरक हैं ।

अबीचि पूय एवं रक्त के कर्दमों से और इनकी ज्यादती से भरा हुआ होता है । रोते हुए प्राणी जिसमें निक्षिप्त किये जाते हैं, वह रौरव है । तामिस्र तमस् से आछन्न रहता है । रात्रिकालीन अन्धकार से यह धूसर होता है । नाम के अनुसार ही अन्धकार से भरा अन्धतामिस्र होता है । इसमें यह नहीं ज्ञात होता कि, वह नारकीय जीव किस दिशा में कहाँ कराह रहा है । यह श्रीपराशास्त्र में वर्णित है । रौरव को अतिशायित करने वाला महारौरव होता है । यातनाओं से निर्जीव को पुनः पीड़ित करने के लिये कुछ जीवन जगा देने वाला नरक संजीवन और इसी तरह बार बार जीवनप्रद सुजीवन नरक होता है ।।३३।।

पद्मश्चैव महापद्मः कालसूत्रस्तथैव च ।

एते च श्रीपरायाम्–

'पद्म पद्मसमाकारः सुशीतो हिमकर्दमः ।

महापद्मस्तथारूपः किन्तु शीतहिमोत्तरः ॥

कालसूत्रोऽसितः पाशस्त्रिकण्टदृढवेष्टनः' । इति निरुक्ताः ।

सूचीमुखः

एषोऽपि–

'सूचीमुखः सुतीक्ष्णाग्रसूचीवत्प्रविभेदकः' । इति तत्रैवोक्तः ।

महाकायः

महान् दुर्वाहः कायो यत्र ।

क्षुरधारोऽसिपर्वतः ।।३४।।

'क्षुरधारो लुनात्यङ्गं क्षुरधारानिरन्तरः' ।

इत्युक्तः । असिः खड्गस्तन्मयश्च पर्वतो गच्छतां दुखःदः ॥३४॥

अंसिस्तालो द्रुमश्चैव द्रुममस्तक एव च ।

द्रुमारामश्च विख्यातः

असिसंज्ञः–

'खड्गश्छिनत्ति गात्राणि खड्गधारापरिग्रहः' ।

इति परायां निरुक्तः । तालोऽपि–

'तालस्तालवदङ्गस्थैर्विदारयति वल्कलैः' ।

---

८. पद्म, ९. महापद्म, १०. कालसूत्र, ११. सूचीमुख, १२. महाकाय, १३. क्षुरधार और १४. असिपर्वत ये भी भयङ्कर नरक हैं । इनमें पद्माकार होने से पद्म, सुशील और बर्फ के कीचड़ से भरे होते हैं । महापद्म शीत और महा-हिमाच्छादित होता है । नाम के समान सूई चुभोने वाला सूचीमुख होता है । महान् दुर्वाह काया से युक्त 'महाकाय', अङ्गों को काट काटकर घायल करने वाला 'क्षुरधार' और तलवारों से युक्त पहाड़ों वाले नरक का नाम ही 'असिपर्वत' नरक है ।

१५. 'असि', १६. ताल, १७. द्रुम, १८. द्रुममस्तक, १९. द्रुमाराम, २०. कुम्भीपाक ये भी भीषण नरकों में परिगणित हैं । इनमें असिनरक में तल-वार से वार कर यमदूत अङ्ग-भङ्ग कर देते हैं । 'ताल' नरक में ताल की तरह अङ्गों का विदारण करते हैं । द्रुम नरक दारुण प्रभञ्जन से द्रुम की तरह शरीर को तोड़ डालते हैं । मस्तक पर पेड़ की व्यथा द्रुममस्तक नरक में दी जाती है ।

इति निरुक्तः । द्रुमो दारुणवाताभिभवनीयद्रुमाकारो निश्चलदेहहेतुः । द्रुमो मस्तके यत्र स द्रुममस्तकः । एवं द्रुमाणामारामः समूहो यत्र अङ्गेषु स द्रुमारामः ।

कुम्भीपाकस्तथैव च ।।३५।।

'कुम्भीपाको बृहद्घोरः कुम्भवक्त्रोज्ज्वलच्छिखः' ।

इति निरुक्तः ।।३५।।

अम्बरेषोऽङ्गारराशिः

'अम्बरेषोऽम्बराद्यस्मात्सुतीक्ष्णेषून्प्रवर्षति ।

तप्ताङ्गारोऽग्निसङ्काशो लोहाङ्गारनिकेतनः' ।।

इति निरुक्तावेतौ ।

तीक्ष्णतुण्डस्तथैव च ।

वज्रतुण्डश्च शकुनिः

एवंविधशकुनिभिर्जना यत्र ताड्यन्ते ।

मीनोदरखरोदरौ ।।३६।।

मीनखरयोरुदरे महासन्तापदे यत्र जनाः पीड्यन्ते ।।३६।।

सन्दंशः

सन्दंशो यत्र सन्तप्तैः सन्दंशैर्जनाः पीड्यन्ते ।

वज्रकायश्च

यत्र महायातनानुभववतां वज्रमयः कायः ।

मेदकश्च वरानने ।

ऐसे ही द्रुमाराम भी भयानक नरकों में से एक है । कुम्भीपाक भयङ्कर नरकों में भी भयङ्कर है । कुम्भवत्मुख से उगलने वाले अग्निज्वाला में पका देने की क्षमता से भरपूर यह नरक घोरतम नरक है ।।३४-३५।।

२१. अम्बरेषु, २२. तप्ताङ्गार, २३. तीक्ष्णतुण्ड, २४. वज्रतुण्ड, २५. शकुनि, २६. मीनोदर और २७. खरोदर नामक नरक यथानाम तथागुण वाले होते हैं । अम्बर से बाणों की वर्षा, लोहे के तपे अङ्गारयुक्त, नुकीली तुण्डराशियुक्त वज्रतुण्ड वाले, चोंचों से मारकर पीड़ित करने वाले पक्षी जिसमें बड़ी पीड़ा देते हैं, मीन और गधों के पेट में डाल कर पीड़ा देने वाले ये विशेष सात नरक बड़े भयङ्कर हैं ।।३६।।

२८. सन्दंश, २९. वज्रकाय, ३०. भेदक, ३१. उष्ट्रग्रीव, ३२. महाकाय, ३३. वेताल और ३४. बड़वामुख ये सातों भी क्रमशः भयङ्कर दंश रूप

यत्र महासन्तापवति मेदोमयशरीरता ।

उष्ट्रग्रीवो महाकायो वेतालो वडवामुखः ।।३७।।

उष्ट्रस्येव अतिदीर्घत्वात् कृच्छ्रेणाशनीयप्रापणी ग्रीवा, कायश्च महान् ब्रह्वन्न-भरणीयः, वेताला ज्वालास्या भयानका यत्र । वडवामुखाकारो दारुणोऽनलः सन्तापनो यत्र ।।३७।।

असृक्पूयह्रदश्चैव

असृग्ह्रदः पूयह्रदश्च ।

भ्रमरो मषकस्तथा ।

यत्र भ्रमरा मषकाश्च विषमा दंशकारिणः ।

सङ्ग्रहश्च

यत्र तप्तोदकवज्जनाः सङ्गृह्यन्ते क्वाथ्यन्ते ।

कपालश्च

यत्र कपालेष्विव अपूपाः जनाः पच्यन्ते ।

तप्तकवच एव च ।।३८।।

यत्र तप्तकवचान्तर्निविष्टानि अङ्गानि पीड्यन्ते ।।३८।।

गजपादो महावक्त्रः कूर्माख्यो नकुलस्तथा ।

यत्र गजपादैः जनाः पीड्यन्ते । यत्र महावक्त्रैः प्राणिभिः ग्रसनम् । यत्र कूर्मैर्नकुलैश्च जना भक्ष्यन्ते, त्रास्यन्ते च ।

डङ्क मारकर पीड़ित करना, वज्रशरीररूपता, महासंतापक मेदायुक्त शरीर रूपता, ऊँट की गरदन के कारण खाद्य के निगलने में पीड़ाप्रद, बहुत अन्नाद शरीरयुक्त, जलते मुख वाले वेताल जिसमें पीड़ा देते हैं और बड़वा के समान दारुण ये नरक नितान्त उत्पीड़क हैं ।।३७।।

३५. असृक्ह्रद, ३६. पूयह्रद, ३७. भ्रमर, ३८. मषक, ३९. सङ्ग्रह, ४०. कपाल और ४१. तप्तकवच ये नरक नाम के अनुसार पीड़ा देते हैं । खून और पीब के तालाबों में पापी जीव फेंक दिये जाते हैं । भ्रमर और मच्छर जहाँ काटते रहते हैं । जहाँ पकड़कर पकाये जाते हों, कपाल में अपूपवत् पकाये जाते हों और लोहे के जलते कवच में जीव डाल दिये जाते हों, ऐसे ये नरक कल्पना-तीतयातना देने वाले हैं ।।३८।।

४२. गजपाद, ४३. महावक्त्र, ४४. कूर्म, ४५. नकुल, ४६. पीड़न, ४७. कुम्भीर, ४८. कवच और ४९. शूल नरक बड़े पीड़क हैं । हाथी जहाँ पैरों

पीडनश्चैव

यत्र महाशिलाभिर्जनाः पीड्यन्ते ।

कुम्भीरः

एतन्नाम महाजलचरभीषणः ।

क्रकचः शूलमेव च ।।३९।।

यत्र क्रकचैरङ्गच्छेदनम् । यत्र च शूलारोपणम् ।।३९।।

अनङ्गश्चाङ्गारोद्‌गारः

यत्र तापेन अङ्गानि विलीयन्ते । यत्र च अङ्गारोद्‌गारैः महोष्मभिः सन्तापः ।

प्रदीप्तस्त्रिमुखस्तथा ।

पञ्चवक्त्रः शतास्यश्च

प्रदीप्तोऽन्यत्र–

'अन्तःसन्तापकृत्तापः शोषितोदरकन्धरः' ।

इत्युक्तः । त्रिपञ्चशतमुखाश्च प्राणिनो यत्र दशन्ति ।

जलौको बिलधूमकः ।।४०।।

यत्र जलौकःसमाख्यैः प्राणिभिरुपद्रवः । यत्र च धूमबहुलेषु बिलेषु जन्म ।।४०।।

सुतप्तो जतुपङ्कश्च

'सुतप्तस्तापकृत्प्रोक्तः केवलोज्ज्वलितानलः ।

जतुपङ्को ज्वलल्लाक्षाप्रलेपप्लुष्टविग्रहः' ।।

कुचलते हैं, बड़े मुँह में जहाँ प्राणी झोंक दिये जाते हैं । जहाँ कछुवे काटते हैं, नेवले काटते हैं, अङ्गों में पीड़ा देते हों, कुम्भीर काटते हैं, क्रकच से अङ्गछेदन और शूल पर आरोपण होता है, ऐसे ये आठों पीड़क नरक हैं ।।३९।।

५०. अनङ्ग, ५१. अङ्गार, ५२. उद्गार, ५३. प्रदीप्त, ५४. त्रिमुख, ५५. पञ्चवक्त्र, ५६. शतास्य, ५७. जलौक और ५८. बिलधूमक ये ९ नरक विभिन्न प्रकार की पीड़ायें देते हैं । जैसे प्रदीप्त में आन्तरिक सन्ताप देते हैं । पञ्च-वक्त्र और शतास्य में सैकड़ों मुख वाले प्राणी नित्य दंशित करते हैं । जलौक में जोकों का उपद्रव और बिलधूमक में धूम से भरे बिलों में ही प्राणियों को डाल देते हैं ।।४०।।

५९. सुतप्त (अत्यन्त तापप्रद), ६०. जतुपङ्क (जलती हुई लाक्षापङ्क वाला), ६१. घोररूप, ५२. अतिदारुण, ५३. अस्थिभङ्ग (हड्डियों को तोड़ने

इति श्रीपरायां निरुक्तः ।

घोररूपोऽतिदारुणः ।

यत्र घोररूपा भीषयन्ते, अत एवादिदारुणोऽयम् ।

अस्थिभङ्गः पूतिमांसः

यत्र अस्थ्नां भङ्गः । यत्र च पूतिमयमांसदेहता ।

द्रव्यश्चैव त्वमेध्यकः ।।४१।।

यत्र द्रव्ये बहुमूत्रमध्ये अमेध्यमध्ये च निवासः ।।४१।।

उलूकः परशुर्दण्डः काकाख्यश्च तथैव च ।

यत्रोलूकैर्भक्षणम्, परशुना छेदः, दण्डैस्ताडनम्, काकैश्च भक्षणं जनानाम् ।

सोच्छ्वासश्च निरुच्छ्वासः

'सोच्छ्वासः श्वसनप्रायो निश्चेष्टकृतकाश्रयः ।
निरुच्छ्वासोऽक्षसंरोधान्निरुच्छ्वसनलक्षणः' ।।

वृकास्यश्च तथैव च ।।४२।।

अश्वास्यो गोपलादश्च

महतां वृकाणां शृगालानामश्वानां च भक्षणार्थमास्ये यत्र जनाः सृज्यन्ते । गावः पशवः पलं मांसमदन्ति यत्र । यदुक्तम्–

'मांसादः सर्वदेहस्थसर्वमांसापकर्षकः' । इति ।

अलोको दहनस्तथा ।

यत्राविद्यमानोऽन्यो लोकः । यश्च दहनः–

'उष्णोऽत्युष्णज्वरारम्भः सर्वाङ्गपरितापकः' ।

इत्यन्यत्रोष्ण इति प्रोक्तः ।

श्ववक्त्रोऽथ दवाग्निश्च

वाला), ५४. पूतिमांस (पूतिमांस देह), ५५. द्रव्य (मूत्रमेहमध्य निवास) और ५६. अमेध्यक ये भी भयङ्कर नरक हैं ।।४१।।

५७. उलूक, ५८. परशु, ५९. दण्ड, ६०. काक, ६१. सोच्छ्वास, ६२. निरुच्छ्वास, ६३. वृकास्य, ६४. अश्वास्य और ६५. गोपलाद ये भयङ्कर नरक हैं । गायें ही गोपलाद में मांसभक्षी होती हैं ।।४२।।

६६. अलोक, ६७. दहन (अत्यन्त परितापक), ६८. श्ववक्त्र,

श्ववक्त्रः श्ववक्त्रवान् । दवाग्निमध्ये जन्म यत्र ।

क्षारकूपस्तथा

यत्र क्षारमये कूपे जनाः क्षिप्यन्ते ।

तमः ॥४३॥

'तमःसंज्ञो महामोहश्चैतन्यगुणमोहकः' ।

इति निरुक्तः ॥४३॥

अहीनां निचयश्चैव

भयानककृष्णसर्पमयः ।

तप्तपाषाण एव च ।

'सुदाहकृज्ज्वलल्लोहपाषाणपरिपूरितः' ।

इति निरुक्तः ।

विरूपो रूपवांश्चैव

वैरूप्यप्रद एकः । रूपवद्दुर्लभाभिलषणीयजनदर्शनसम्भाषणाभ्यां दुःखासिकाप्रदो द्वितीयः ।

चित्री चित्रधरस्तथा ॥४४॥

चित्रं श्वित्रिवच्छबलरूपं मुहुर्मुहुरन्यदन्यद् यत्र भूम्ना जुगुप्साप्रदं जायते । चित्रधरस्तु यत्र जन्तोः चित्रमेकमेव रूपम् ।

कृष्णपिङ्गलरक्तास्यः

कृष्णं पिङ्गलं रक्तमास्यमतीव विभीषणं यत्र ।

महिषो राक्षसस्तथा ।

यत्र भीमैर्महिषैः राक्षसैश्च वित्रास्यमाना जायन्ते ।

कुब्जः

कुब्जा एव यत्र जायन्ते ।

उत्तप्ततैलाख्यः

उत्तप्तं तैलमङ्गेषु निषिच्यते यत्र ।

अशनी वृष्टिमुद्‌गरौ ॥४५॥

वृष्टिमुद्‌गरावशनिरूपौ यत्रोपरिष्टात्पततः ॥४५॥

---

६९. दवाग्नि, ७०. क्षारकूप, ७१. तम, ७२. महामोह, ७२. अहिनिश्चय, ७३. तप्तपाषाण, ७४. विरूप, ७५. रूपवान्, ७५. चित्री, ७६. चित्रधर, ७७. कृष्णास्य, ७८. पिङ्गलास्य और ७९. रक्तास्य, ७८. महिष, ७९. राक्षस, ८०. कुब्ज, ८१. उत्तप्ततैल, ८२. अशनिवृष्टि, ८३. अशनिमुद्गरः,

मुसलः

मुसलवृष्टिः ।

अनातपश्चैव

अनातपः शीत इत्युक्तः । तथा च श्रीपरायाम्–

'शीतः शीतज्वरारम्भः समस्ततनुतापकृत्' । इति ।

यमलाद्रिस्तथैव च ।

'युग्माद्रिः कर्कशाश्मादिः सन्दंशपरिपीडितः' । इत्युक्तः ।

क्रिमिकूटः

'क्रिमीणां निचयः प्रोक्तः केवलक्रिमिसञ्चयः' ।

इत्युक्तः । तन्मध्ये यत्र जन्मेत्यर्थः ।

बहुशाखः शाल्मलिश्च फडिस्तथा ।।४६।।

निगडो लोहरज्जुश्च लोहपञ्जर एव च ।

फडिः पादबन्धो निगडः शृङ्खलैकदण्डादिबन्धः, लोहरज्जुः सर्वत्र बन्धाय । एवं लोहपञ्जरः सर्वगात्रनिश्चेष्टत्वोत्पादनाय ।

तनुभेदश्चोरगश्च वृश्चिकः काल एव च ।।४७।।

यत्र तनोर्देहस्य भेदः चूर्णनम् । यत्रोरगैर्जना बाध्यन्ते । यत्र वृश्चिकैः दंश्यन्ते । कालः संहर्तृपुरुषपूर्णः ।।४७।।

वज्रकणः कटाहश्च

तप्तवज्रकणपतिताः कटाहपतिताश्च यत्र जनाः ।

पट्टः

यत्र तप्तैर्लोहपट्टैर्नरा निबध्यन्ते । एष च लोहस्तम्भ इत्यन्यत्रोक्तः ।

यदुक्तम्–

'लोहस्तम्भो ज्वलल्लोहपट्टकप्लुष्टविग्रहः' । इति ।

सङ्कुल एव च ।

यत्र सङ्कुले स्थाने निःस्पन्दतयाङ्गक्लेशः ।

घोरश्चाजगरश्चैव

---

८४. मुसल, ८५. अनातप, ८६. यमलाद्रि, ८७. क्रिमिकूट, ८८. बहुशाख, ८९. शाल्मलि, ९०. फडि (पैर बाँधने का निगड) ९१. निगड, ९२. लोहरजन्तु, ९३. लोहपञ्जर, ९४. तनुभेद, ९५. उरग, ९६. वृश्चिक, ९७. काल, ९८. वज्रकण, ९९. कटाह, १००. पट्ट, १०१. संकुल, १०२. घोर,

यत्र घोरा अजगरा ग्रसन्ते ।

महावैतरणी तथा ।।४८।।

'वैतरण्यां वितार्यन्ते जन्तवः पूयपूरिताः ।
तस्मादसौ नदी घोरा दुर्गन्धा तु वहेत्सदा' ॥ इति ।
वितारणं पिपासातुराणां जलभ्रान्तिजननम् ।।४८।।

गृद्ध्रश्च कुररश्चैव कुक्कुटश्च प्रमर्दकः ।

गृद्ध्राद्यभिधहिंस्रपक्षिसङ्कुला एते चत्वारः ।

कर्दमः

यत्र कर्दममध्ये मग्ना जायन्ते ।

दुर्दुरश्चैव लम्बोष्ठो वज्रनासिकः ।।४९।।

चिपिटः खञ्जरीटश्च

दुर्दुरो मण्डूकबहलः । लम्बोष्ठादय एतद्रूपभयानकप्राणिबहुला नरकाः । खञ्जरीट एतन्नामकोपघातकपक्षिपूर्णः ।

शबलो नील एव च ।

शबलो विचित्रो नीलो नीडो यत्र ।

काकः

विषमकाकपूर्णः ।

कङ्कमुखश्चैव

कङ्कः सन्दंशः, तदाकारमुखपक्षिमयः ।

शिवारावस्ततः परः ।।५०।।

यत्र शिवाभिरारावैर्जनाः त्रास्यन्ते ।।५०।।

गजनादो महानादः सिंहनादस्तथैव च ।

स्पष्टार्था एते त्रयः ।

महाग्राहस्तथा नक्रो मूषिकाकीटसागरः ।।५१।।

---

१०३. अजगर, १०४. महावैतरणी (ऐसी नदी, जो पूय से भरी है और दुर्गन्धमयी है। गोदान से इससे पूँछ पकड़ कर पार होते हैं), १०५. गृद्ध्र, १०६. कुरर, १०७. कुक्कुट, १०८. प्रमर्दक, १०९. दर्दुर, ११०. लम्बोष्ठ, १११. वज्रनासिक, ११२. चिपिट, ११३. खञ्जरीट, ११४. शबल, ११५. नील, ११६. काक, ११७. कङ्कमुख, ११८. शिवाराव, ११९. गजनाद, १२०. महानाद, १२१. सिंहनाद, १२२. महाग्राह, १२३. नक्र, १२४. मूषिक, १२५. कीटसागर, १२६. अवाक्, १२७. त्रिरावर्त्त,

ग्राह्य अतिक्रूरा नक्राख्यजलचरविशेषव्यतिरिक्ता: प्राणिन:, ते महान्तो यत्र स महाग्राह: । तथा नक्र इति महानक्र: । मूषिकामय: सागर: । कीटसागर: सूक्ष्मक्रिमिबहुलामेध्यसागर:, यस्तु श्रीपरायाम्–

'विण्मूत्रो विट्छिलाशीर्णचूर्णास्यकृतपूरण:' । इत्युक्त: ।।५१।।

अवाक्शिरा:

अवाक् अध: शिर:, ऊर्ध्वं तु पादौ यत्र ।

त्रिरावर्त:

त्रिरावर्तन्ते समन्तात् प्रवर्तन्ते यत्र । यदुक्तं श्रीपरायाम्–

'त्रिर्निवास: पिपासार्तिबुभुक्षापीडितोदर:' । इति ।

चक्रपीडनकस्तथा ।

यत्र तिलवज्जनाश्चक्रेण पीड्यन्ते ।

त्रपुलेपस्त्रपुकूप:

गलितत्रपुणा तप्तेन यत्राङ्गानि लिप्यन्ते । यत्र च तादृगेव कूप: ।

इक्षुयन्त्र:

यत्र इक्षुवज्जना: पीड्यन्ते ।

गिरेर्लता ।।५२।।

गिरिप्रभवाभिर्विषलताभिर्यत्र जनास्ताड्यन्ते ।

कटङ्कटश्च विख्यात:

एतन्नाममहाकटाहप्रख्योऽतिविषम: कूप: ।

तप्तबालुक एव च ।

यत्राततप्तासु बालुकासु पापीयांस: सञ्चार्यन्ते ।

तदेते सचत्वारिंशच्छतसंख्याता:—

एतेऽतिघोरा नरकास्त्रिकोणा: परिकीर्तिता: ।।५३।।

---

१२८. चक्रपीडनक, १२९. त्रपुलेप, १३०. त्रपुकूप, १३१. इक्षुयन्त्र, १३२. कटङ्कट, १३३. तप्तबालुक, १३४. अतिघोर तथा बीच में एक साथ कहे गये अन्य छ: मिलकर ये १४० होते हैं । ये सभी नाम जीवों को कर्म विपाक भोग में कष्टकारक नरकों के हैं । श्रीमहासंहिता श्रीपरासंहिता और अन्य ग्रन्थों में इनकी जो परिभाषा में दी हुई हैं, वे विभिन्न कष्टकारक कल्पनाओं के चित्र हैं, जिन कष्टों के आधार पर इन नरकों के नाम हैं । ये बड़े घोर त्रिकोणात्मक नरक हैं । इनसे प्रेरणा लेकर नित्य ऐसे कार्य करें, जिससे पुण्य का पथ प्रशस्त हो सके ।।४२-५३।।

नरकदेशानां संस्थानतस्त्रिकोणत्वमित्यर्थः ।

एते च–

असत्कर्मरतानां च प्राणिनां पातनाय तु ।

असद् एकादशपटलवक्ष्यमाणात् सामान्यविशेषात्मनः स्वस्मात् शास्त्राद्-बहिष्कृतम् । विशेषतस्तु–

निस्त्रिंशकर्मकर्तॄणां शठानां पापिनां तथा ।।५४।।

निस्त्रिंशकर्म परवधादिकम्, शठानां निवारणयापि अनिवर्तमानानाम्, अत एव प्रागर्जितादेव पापसंस्कारात्पुनरपि पापिनामित्याह ।

इत्थं चैषाम्–

निर्दयाधमजातीनां परहिंसारतात्मनाम् ।

तथा–

परदाररतानां च

विशेषतः–

शिवशास्त्रस्य दूषिणाम् ।।५५।।

देवद्रव्यापहर्तॄणां ब्रह्मघ्नपितृघातिनाम् ।

गोघ्नानां च कृतघ्नानां मित्रविस्रम्भघातिनाम् ।।५६।।

कृतमुपकारं घ्नन्तीति कृतघ्नाः । मित्रं विस्रम्भेण विश्वासेन घ्नन्तीति तच्छीला मित्रविस्रम्भघातिनः ।।५६।।

इन नरकों की उपयोगिता यही है कि, जो प्राणी आजीवन असत्कर्मों में ही लगे रहते हैं, उनके कर्मों के भोग के लिये उन्हें इनमें डाल दिया जाता है। कर्मानुसार ये नरक उन्हें मिलते हैं। एकादश पटल में असत् कर्मों का वर्णन है। ये सामान्य और विशेष दो प्रकार के होते हैं। अपने सम्प्रदायसिद्ध शास्त्रीय मर्यादाओं के विरुद्ध पापाचरण बड़े दारुण फल प्रदान करते हैं। विशेष रूप से दूसरों की हत्या के समान निस्त्रिंश कर्मों में लिप्त रहने वाले पापी लोगों के लिये इन नरकों की व्यवस्था अनिवार्य है ।।५४।।

ऐसे निर्दय क्रूर और अधम जन्म प्राप्त करने वाले पर हिंसापरायण लोगों, परस्त्रीगामियों, शिवशास्त्रों के निन्दकों, देवद्रव्यों के अपहर्त्ता, डकैतों, ब्रह्म-हत्यारों, पितृघातियों, गोघातियों, कृतघ्नों और विश्वासघातियों के कर्मफल इन्हीं नरकों में भोगे जाते हैं ।।५४-५६।।

किञ्च,

सुवर्णभूमिहर्तृणां शौचाचारनिवर्तिनाम् ।
दयादाक्षिण्यहीनानां पैशुन्यानृतचेतसाम् ।।५७।।
नरकास्तु समाख्यातास्त्वकर्मपथवर्तिनाम् ।

शौचमाचारश्च निजनिजशास्त्रोक्तौ । अन्यथा-

'किञ्चिज्ज्ञैर्या स्मृता शुद्धिः साशुद्धिः शम्भुदर्शने ।
न शुद्धिर्ह्यशुचिस्तस्मान्निर्विकल्पी भवेन्नरः' ।। (वि०भै० १२३)

इत्यादिश्रुतेर्निर्विषयत्वं स्यात्-

'जिह्मजेनोपवीतेन.............................'। (३/२)

इत्यादि च पूर्वोक्तमवाच्यं स्यात् । अत्र च यथायोगं शरीरमनोवाग्विषयत्वं योज्यम् । एतदेवाकर्मपथवर्तित्वं यत् स्वशास्त्रविरुद्धाचरणम् । प्रकर्षाप्रकर्ष-योगाच्चैषां पापानां तदुचितनरकसम्बन्धः ।

सोने को चुराने वाले, भूमि का अपहरण करने वाले शुचिता के नाशकों, आचार के दूषकों, दया और दाक्षिण्य से रहित लोगों, पैशुन्य भरी दुष्टता के प्रतीकों के लिये ही इन नरकों का सृजन किया गया है । इनमें ऐसे ही दुष्कर्मी फेंक दिये जाते हैं । वहीं अपने कर्म फल भोगते हैं । इसके लिये अर्थात् इनसे बचने के लिये अपने शास्त्रीय आचारों का पालन करना चाहिये । इससे व्यक्ति शुचि और पवित्र रह सकता है ।

'विज्ञानभैरव' भैरवदर्शन साधना का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । उसके (१२३ वें श्लोक) के अनुसार सङ्कोचग्रस्त सामान्य लोग जिसे शुचिता या शुद्धि मानते हैं, वस्तुतः वह शुद्धि शुद्धि नहीं मानी जाती । वह अशुद्धि ही होती है । शुचिता के लिये मनुष्य को निर्विकल्पी होना चाहिये ।

इसी ग्रन्थ के तृतीय पटल के श्लोक २ में यह उल्लेख है, जिह्म से उत्पन्न उपवीत पहने हो । जिह्म शब्द के तीन अर्थ होते हैं । १. टेढ़ा, २. शव के बाल, ३. रेशम के मृत कीड़ों का शरीर, जिनसे रेशम का सूत उत्पन्न होता है । यहाँ यह स्वशास्त्रोक्त वचन है किन्तु इस प्रसङ्ग में यह वाच्य नहीं माना जा सकता ।

यहाँ अर्थवत्ता को सन्दर्भित करने के लिये वाणी, मन और शरीर तीनों का यथायोग समन्वय बना रहे, यह ध्यान देने की बात है । साधक कर्मपक्ष पर अडिग रह कर व्यवहार का संचालन करता है ।

ये तु एतद्विपरीतास्ते–

शुभकर्मरता लोका नरके न पतन्ति हि ।।५८।।

यच्च तेषां सम्बन्धि सुखं कर्म–

तत्समासेन वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।

अनुपूर्वशः–

'वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाङ्निबन्धनाः' ।

इत्युक्तत्वाद् वाचिकादिक्रमेण ।

तच्च–

सत्यं क्षान्तिरहिंसा च

एतानि वाङ्मनःकायकर्माणि सुखानि ।

किञ्च,

शौचं स्नानमकल्कता ।।५९।।

दयालौल्यं च यस्यासौ नरकान्नाधिगच्छति ।

शौचं प्राग्वत् । स्नानं भस्मादिनापि । अकल्कता शुभसङ्कल्पता । अलौल्य-मिन्द्रियाचापलम् ।

उसके शास्त्र के प्रतिकूल पथ का आचार ही अकर्म पथ का आचरण है । उक्त पापों के प्रकर्ष और अपकर्ष के स्तरों का ध्यान रखना चाहिये । पापप्रकर्षता में प्रकृष्ट नरक और अपकर्ष में अपकृष्ट नरक । यह व्यवस्था है ।

इसके विपरीत जो जीवधारी शुभकर्मों में रत रहते हैं, वे नरक में नहीं गिरते हैं, यह निश्चय है । इसलिये नरक से बचने के लिये शुभकर्मरत रहना चाहिये ।।५७-५८।।

भगवान् संक्षेप में यही कहने जा रहे हैं कि, शुभकर्म क्या है ? अनुपूर्वशः का तात्पर्य यह भी समझना चाहिये । शास्त्र कहता है कि, सारे वाच्यार्थ नियत हैं । सभी अर्थों की जड़ वाणी है और सभी अर्थ वाणी से निबद्ध हैं । अतः अनुपूर्वशः का अर्थ वाणी से क्रमिक रूप से समर्थित होना चाहिये ।

भगवान् वाग् सन्दर्भित तथ्यों को क्रमिक रूप से कह रहे हैं– १. सत्य, क्षान्ति और अहिंसा । यहाँ सत्य वाणी का विषय है । क्षान्ति, मन का विषय और अहिंसा शरीर का धर्म है । इस पर विचार करना चाहिये । इसके अतिरिक्त शौच (शुचिता) स्नान, अकल्कता (शुभसङ्कल्पता) दया, अलौल्य (इन्द्रियनिग्रह) ये वृत्तियाँ जिस पुरुष में होती हैं, वे पुरुष नरक के पथिक नहीं बन सकते ।

शान्तो दान्तः सुहृष्टात्मा त्वनहङ्कारवान् समः ।।६०।।

अद्रोही चानसूयश्च परैश्वर्ये च निःस्पृहः ।

नरकान्नाधिगच्छतीत्येव । शान्तो जितचित्तः । दान्तो जितेन्द्रियः । अतश्च विषयवैवश्याभावात् सुहृष्टात्मा, निरहङ्कारश्च । समः शत्रुमित्रादिसाम्येन पश्यन् । परैश्वर्ये निःस्पृहः सन्तुष्टः ।

किञ्च,

अमात्सर्यममानित्वं शिवभक्तिरचापलम् ।।६१।।

जपध्यानरतिः स्थैर्यं कार्पण्यस्य च वर्जनम् ।

व्रतानि नियमाश्चैव स्वाध्यायश्च त्रिसन्ध्यता ।।६२।।

सर्वत्र श्रद्दधानत्वमार्जवं ह्रीर्मनस्विता ।

तेजः प्रशान्तिः सन्तोषोऽप्रियवाक्यविवर्जनम् ।।६३।।

समीक्ष्यकारिता नित्यं मनोऽहङ्कारनिग्रहः ।

अदम्भित्वममायित्वमकल्को ज्ञानशीलता ।।६४।।

व्यक्ति को शान्त, दान्त (जितेन्द्रिय) सुहृष्टात्मा, अहङ्काररहित और शत्रु-मित्र दोनों के प्रति सम होना चाहिये ।।५९-६०।।

मात्सर्य का अभाव, मानापमान के सङ्कीर्णता का परित्याग शैवी भक्ति में निष्ठा और शान्ति, जप एवं ध्यान में अनुरक्ति, स्थिरभाव की दृढ़ता, कृपणता का परित्याग उदात्त भावमय व्यवहार, शास्त्रोक्त व्रतों और नियमों का पालन, स्वाध्यायशीलता, त्रिसन्ध्य अनुध्यानात्मक आचार, शास्त्रीय आदेश में, गुरु-जनों और देवताओं में श्रद्धा, ऋजुता, लज्जा, मनस्विता, ब्रह्मवर्चस्व का परान-भिभवनीय तेज, विशेष शान्ति की सौम्य दृष्टि, सन्तोष और प्रियंवदता इत्यादि आचारप्रिय व्यक्ति नरकगामी नहीं होते । इनके आदर्श व्यवहार से समाज को सदा प्रेरणा मिलती है ।।६१-६३।।

विना समीक्षा किये कोई कार्य नहीं करना चाहिये । सोच विचार कर ही कर्म में प्रवृत्त रहना चाहिये । यह अनवरत ध्यान रखना चाहिये । मन और अहङ्कार के ऊपर निग्रह आवश्यक है । दम्भ कभी नहीं करना चाहिये । दम्भ में और मिथ्याचार में बड़ा अन्तर है । ये दोनों दुर्गुण हैं । इनसे बचना चाहिये । दूसरों को ठगने के लिये लोग मायामय व्यवहार करते हैं । इससे दूर रहना चाहिये । कल्कता पापाचरण की वृत्ति को कहते हैं । इससे दूर रहना चाहिये । सदा ज्ञानवान् अर्थात् समझ-बूझपूर्वक जागरूक रहकर कार्य करना चाहिये । यही सब वास्तविक धर्म हैं ।।६४।।

पितृदेवार्चने भक्तिर्गोब्राह्मणशरण्यता ।
अग्नौ होमो गुरोर्दानं ज्ञानिनां पर्युपासनम् ।।६५।।
एकान्ते च रतिर्ध्यानमात्मन्येव च तुष्टता ।
अव्यापारः परार्थेषु औदासीन्यमनागसः ।।६६।।
अक्रोधित्वमनालस्यमेते धर्माः प्रकीर्तिताः ।

शिवभक्तिर्मुख्यो धर्मः । अचापलं अर्तव्यविषयारूढिः, विशेषात्तु जपध्यान-विश्रान्तौ । तेजः परानभिभवनीयत्वम् । प्रशान्तिः सौम्यदर्शनात् । मनोऽहङ्कारयोः निग्रहो यत्र तत्र वर्तनपरिहारः । दम्भो मिथ्याचारता । माया परवञ्चनम् । अकल्कोऽपापचित्तः । परार्थेषु परवित्तेषु अव्यापारो मनसाप्यचिन्तनम् । औदासीन्य-मिति व्यवहारविषयम् । अनागस इत्यनागस्त्वं गुर्वाज्ञादावप्रमादित्वम् । अनालस्य-मिति उपादेयानुष्ठानोद्योगः । एते धर्माः शुभा आचाराः ।

अतश्च–

यस्त्वेतान् भजते भावान् सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।६७।।

शिवे भक्तिरेकैव मोक्षप्रदा किमङ्गैस्तद्धर्मान्तरसहिता ।।६७।।

यस्मात्–

नश्यन्ति पौरुषाः पाशा येऽप्यनन्ताः प्रकीर्तिताः ।
शिवाचाररतानां तु धार्मिकाणां हि देहिनाम् ।।६८।।

एकान्त सेवन में रुचि, ध्यान में लगना, आत्मतुष्टि विनाकाम के काम का वर्जन और व्यापारशून्यता में बैठने का स्वभाव, दूसरे के धन में उदासीनता या परार्थ में अव्यापार का अन्वय कर दूसरे के धन की बात भी न सोचना, संसार के प्रति उदासीनता क्रोध पर विजय और गुरुजनों के प्रति अप्रमाद अनलस भाव से सदा स्फूर्त्त रहकर अपने उत्तरदायित्व की पूर्त्ति ये सब जीवन के उच्च व्यवहार ही वास्तविक धर्म हैं । इन्हीं से प्रजा का, समाज का, विश्व का और स्वात्म का धारण होता है । जो व्यक्ति अपने जीवन में इन गुणों को उतार लेता है, वही वास्तविक धर्मात्मा है । वह अमृतत्व की उपलब्धि कर पाता है । **'मृत्योर्मा अमृतं गमय'** के वैदिक आदेश का वह सच्चा अधिकारी है । यह मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त करने वाला शिवभक्ति योग का सिद्धान्त है ।।६५-६७।।

इस प्रकार के धर्माचरण से पौरुष पाशों का विनाश होता है । वे अना-यास नष्ट हो जाते हैं । यद्यपि ये पाश अनन्त माने गये हैं । शैव आचार में निरन्तर निमग्न रहने वाले शैवधर्म की धुरा के सन्धान में लगे धार्मिक देहधारियों के सभी पाश नष्ट हो जाते हैं । इसलिये इन तथ्यों का सम्यग् विवेचन करना चाहिये और अपने मन को सदा धर्म में ही नियोजित करना चाहिये ।

तस्मादेवं तु विज्ञाय मनो धर्मे नियोजयेत् ।

पुरुषतत्त्वभुवनावसरे पौरुषा ये पाशा वक्ष्यन्ते, तेऽपि शिवभक्तिभाजां नश्यन्ति । धर्म इति प्रोक्तरूपे ।

किञ्च,

यस्य चित्तमसम्भ्रान्तं निर्विकल्पमकल्मषम् ।।६९।।
स याति परमांल्लोकान्नरकांश्च न पश्यति ।

अकल्मषत्वादपापत्वाद् निर्विकल्पं कृत्वा तात्त्विकेऽर्थे समाश्वस्तम् । न पश्यतीति दर्शनमात्रमप्यस्य नास्तीति तदुपभोगे कैव सम्भावना ।

यस्य बुद्धिरसम्मूढा सर्वभूतेष्वपातकी ।।७०।।
अकल्कवान् सत्त्ववान् यो नरकान् स न पश्यति ।

असम्मूढा निवृत्ताज्ञाना । अकल्कवान् शुद्धाशयः, अत एव सत्त्ववृत्तिनिष्ठः ।

जितानि येनेन्द्रियाणि मनो यस्य वशे स्थितम् ।।७१।।

जिस पुरुष का चित्त सांसारिक भ्रान्तियों में न पड़ कर निर्भ्रान्त रहता है, जो विश्व के विकल्पों को पाकर निर्विकल्पता में लीन रहता है और जो कञ्चुकों—कलुषित कलङ्कों को भक्ति के अमृत से प्रक्षालित कर नित्य अकल्मष होता है, ऐसे पुरुष परमेश्वर के परम धाम में प्रवेश कर जाता है । उसकी नेत्रज्योति से नरक नष्ट हो जाते हैं । यही जीवन का तात्त्विक अर्थ है । इसी तत्त्व के अनुदर्शन से प्राणी का परम कल्याण होता है ॥६८-६९॥

अकल्मषता, निर्विकल्पता आदि ऊपर कहे गये ऐसे धर्म हैं, जिनके आचरण से नरक उपभोग की कौन कहे, उसके दर्शन की भी संभावना नहीं रहती । इसके लिये जागरूक बुद्धि की आवश्यकता होती है । सावधान व्यक्ति संमूढ नहीं हो सकता । ऐसी सचेत बुद्धि वाले पुरुष समस्त पातकों से दूर रहते हैं और सभी प्राणियों का कल्याण चाहते हैं । प्राणिमात्र का हित ही उनका धर्म होता है । ये नरक का मुख नहीं देखते ॥७०॥

कल्कता से रहित शुद्ध आशय का पुरुष, सत्त्वनिष्ठ सात्त्विक वृत्तियों वाला पुरुष धर्मात्मा होता है । वह इन्द्रियजेता होता है । उसका मन सदा उसके वश में होता है । ऐसे पुरुष नरक का दर्शन नहीं करते ॥७१॥

वास्तव में इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना विश्व पर विजय प्राप्त करने के समान है । सारा सचराचर जगत् ऐसे पुरुषों द्वारा धर्म की शक्ति के आधार

तज्जयेन जितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।

सर्वा भोगभूरनेन सुप्रापेत्यर्थः । एतदेव श्लाघते-

स्वकार्ये परकार्ये वा यस्य बुद्धिः स्थिरा भवेत् ।।७२।।

एतदेव हि पाण्डित्यं शेषाः पुस्तकवाचकाः ।

स्वकार्यमात्मज्ञाननिष्ठत्वम्, परकार्यं परेषामात्मज्ञाने योजनम् ।

उपसंहरति-

इत्येष तान्त्रिको न्यायः कथितस्तु समासतः ।।७३।।

अतान्त्रिकाणामन्येषां परिसंख्या न विद्यते ।

तान्त्रिकः परमेशसंहिताप्रसिद्धः । अतान्त्रिका धर्मसूत्रकारादिप्रसिद्धाः ।

असामान्यैराचारैः-

शिवशास्त्ररता ये तु गुरुभक्तिपरायणाः ।।७४।।

विजित हो जाता है । इसी आनन्दवाद में उसकी सारी भोगवादिता तृप्त और तुष्ट हो जाती है । वह भले दूसरे का कार्य हो, उसे स्वकार्य मान कर पूरा करने में लग जाता है । सब जगह, सारे भावों में वह सुस्थिर भाव से सोचता है और कार्य में सफल हो जाता है ।।७१-७२।।

उक्त धर्माचरण के सारे आदेश जीवन को उत्कर्ष की ओर प्रेरित करते हैं और यह सिद्ध करते है कि, इनका आचरण करने वाला ही वास्तविक विद्वान् और बुद्धिमान् है । वही सच्चा पण्डित है । यही सच्चा पाण्डित्य है; क्योंकि वह जो कुछ जानता है, उसे अपने आचरण में उतारता है, उसे जीता है और जीवन में आदर्श की स्थापना करता है । इसके विपरीत आचरण करने वाले तो मात्र पुस्तकों का वाचन कर कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं । वे वास्तविक पण्डित नहीं है । यह तन्त्रशास्त्रीय आचारपरम्परा के प्रतीक सूत्र हैं । यह शास्त्रीय सिद्धान्त है, देवि ! भगवान् कहते हैं कि, मैंने तुम्हें संक्षेप रूप से सुनाया है ।।७३।।

तान्त्रिक वही है, जो परमेश्वर विरचित संहिता के निहितार्थ का व्यवस्थापक और आचारवान् होता है । इसके विपरीत साचारी अतान्त्रिक होते हैं । उनकी संख्या भी अगणित है । जो धर्म के सूत्रों की रचना तो करते हैं, किन्तु आचारवान् नहीं होते । यह सत्य है कि, असामान्य आचारों से तन्त्रशास्त्राचार्य निरन्तर शिवशास्त्र में ही रत रहते हैं । गुरु को शिव रूप से समझते हुए गुरुभक्ति में परितः परायण रहते हैं । वे वस्तुतः परमार्थ-तत्त्व वेत्ता होते हैं । उनके द्वारा दुरित की सम्भावना भी नहीं होती ।।७४।।

परतत्त्वविदो ये तु न तेषां दुरितं भवेत् ।

दुष्टमितमागमनं जन्मेत्यर्थः ।

एवं प्रसङ्गादुक्त्वा प्रकृतमाह–

एतेषां नरकाणां तु प्रधानानि निबोध मे ।।७५।।

पञ्चत्रिंशत्तु नरकाः

यस्मादेत एव–

चतुर्भेदाः प्रकीर्तिताः ।

पञ्चत्रिंशत् चतुर्भिर्गुणिताः चत्वारिंशदधिकं शतं भवतीत्यर्थः ।

तदाह–

चत्वारिंशच्छतं ह्येतत्समासात्परिकीर्तितम् ।।७६।।

यस्मात्–

तैर्विशुद्धैर्विशुद्ध्यन्ति पञ्चाशत्कोटयस्तु ताः ।

तैरिति चत्वारिंशदधिकशतसंख्यैः । ता इति पूर्वोपक्रान्ताः ।

यदि वा–

पञ्चत्रिंशद्यदा वैते द्वात्रिंशद्वा विशोधिताः ।।७७।।

दुरित शब्द की व्युत्पत्ति का प्रदर्शन करते हुए आचार्य क्षेमराज दुः+इत का शब्द विभाग करते हैं और कहते हैं कि, धर्मात्मा पुरुष से दुः अर्थात् दुष्टता का इत अर्थात् आगमन या जन्म नहीं होता । इनसे विश्व शाश्वत अनुगृहीत रहता है ।

इसके आगे भगवान् पुनः प्रधान नरकों का वर्णन कर रहे हैं–

इन ऊपर कहे गये नरकों के अतिरिक्त अन्य प्रधान नरकों को मुझसे सुनो । ऐसा आदेश देकर भगवान् उन ३५ नरकों के नाम पुनः गिना रहे हैं । साथ ही यह भी बता रहे हैं कि, वे चार प्रकार के हैं, ऐसा शास्त्रों में वर्णित है । इस प्रकार ३५ को चार से गुणा करने पर ये १४० हो जाते हैं । यह निर्विवाद सत्य है ।।७५-७६।।

इन १४० नरकों को भुवन दीक्षा में शुद्ध कर लेने पर शेष पचास करोड़ नरक स्वतः शान्त हो जाते हैं । इनमें यदि कोई ३५ भी शुद्ध कर ले, तो भी उसका पथ प्रशस्त हो जाता है । इसी तरह ३२ को शुद्ध करना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है । इनकी शुद्धि से ये १४० नरक भी शुद्ध मान लिये जाते हैं, ऐसा मान्यता है । तीन के शुद्ध हो जाने पर वे ३० भी शुद्ध होते हैं ।

चत्वारिंशच्छतं शुद्धं तदेतत्स्याद्वरानने ।

अवीचीकुम्भीपाकरौरववर्जं वक्ष्यमाणनामानो द्वात्रिंशत् । यद्वा–

त्रिभिः शुद्धैस्तु द्वात्रिंशच्छुद्धा एव भवन्ति हि ।।७८।।

निर्विशेषं न सामान्यमिति स्थित्या सामान्यशुद्ध्या विशेषशुद्धिः, विशेषाणां वा गर्भीकृतसामान्यानां शुद्ध्या सामान्यशुद्धिः । अत्र चायं गुरूणामाशयः–यस्य दीक्ष्यस्य पापभूयस्त्वं निश्चितम्, तस्य वितत्य नरकशुद्धिः कर्तव्या, अन्यस्य तु सङ्क्षेपेणेति प्रघट्टकचतुष्टयेन शुद्धिरत्रोक्ता, किरणायां तु प्रघट्टकत्रयेण । यदुक्तम्–

'चत्वारिंशत्समधिकं यदेतेषां प्रकीर्तितम् ।

द्वात्रिंशत्तत्र राजानो राजराजेश्वरास्त्रयः' ॥ इति ।

श्रीमालिनीविजये कूष्माण्डरुद्रशुद्ध्यैव तच्छुद्धिरुक्तेति प्रक्रियाभेदः ॥७८॥

अथ–

तेषां नामानि वक्ष्यामि त्रयाणां वरवर्णिनि ।

अवीचिश्चैव विख्यातः कुम्भीपाकश्च दारुणः ।।७९।।

महारौरवराजश्च स्थानं तेषां निबोध मे ।

अधोमध्योर्ध्वभागेषु संस्थितास्ते यथाक्रमम् ।।८०।।

सामान्य निर्विशेष नहीं होते । सामान्य शुद्धि अपेक्षित होती है । इससे विशेष की शुद्धि भी हो जाती है । यह ध्यान देने की बात है कि, विशेषों के सामान्य अन्तर्गर्भित होते हैं । इस तरह विशेष शुद्धि से सामान्य शुद्धि भी हो जाती है ।

गुरुजनों का पारम्परिक आशय है किं, जिस दीक्षायोग्य शिष्य में पाप का आधिक्य है, उसकी नरक शुद्धि विस्तार पूर्वक करनी चाहिये । अन्य शिष्यों की शुद्धि संक्षेप रूप से भी हो सकती है, यह इस शास्त्र का विचार है ।

किरणशास्त्र की दृष्टि कुछ दूसरी है । वहाँ इनकी १४० संख्या कही गयी है । इनमें ३२ राजा नरक हैं और तीन राजराजेश्वर सम्राट् हैं । श्रीमालिनीविजयोत्तरतन्त्र में कूष्माण्डरुद्र शुद्धि से ही सबकी शुद्धि हो जाती है । यह अन्तर प्रक्रियाभेद के कारण है ॥७७-७८॥

उनके नाम की द्विरुक्ति कर रहे हैं–

१. अवीचि, २. कुम्भीपाक दारुण और तीसरा मुख्य नाम है महारौरवराज । इन तीनों के स्थान का निर्धारण इस प्रकार से करना चाहिये । १. अधोभाग, २. मध्यभाग और ३. ऊर्ध्वभाग में ये तीनों यथाक्रम अवस्थित हैं । इनकी अवस्थिति को इसी क्रम से जानना उचित है ॥८०॥

किञ्च,

व्याप्तिं तेषां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।

द्वात्रिंशन्नरकास्त्रिभिर्यथान्तर्गर्भीकारेण व्याप्ताः, तथेत्यर्थः ।

अत्र-

नरकैकादशगतमवीचिं शोधयेत्प्रिये ।।८१।।

आत्मना द्वादशं देवि कुम्भीपाकं विशोधयेत् ।

महारौरवसंज्ञं चाप्येवमेव न संशयः ।।८२।।

तानेतान्-

पञ्चत्रिंशत्प्रवक्ष्यामि समासेन वरानने ।

अवीचिः क्रिमिनिचयो नदी वैतरणी तथा ।।८३।।

लोहश्च शाल्मलिश्चैवाप्यसिपर्वत एव च ।

सोच्छ्वासश्च निरुच्छ्वासः पूतिमांसः परस्तथा ।।८४।।

तप्तत्रपुः क्षारकूपो जतुलेपस्तथैव च ।

अन्तर्भूता अवीचौ तु कुम्भीपाकस्य श्रूयताम् ।।८५।।

अवीचिरेव क्रिमिनिचयपदेन विशेषितो न तु पूर्वनिर्दिष्टादसौ व्यतिरिक्तः संख्याधिक्यप्रसङ्गात् ।

अस्थिभङ्गः क्रकचच्छेदः कूपश्चापि कटङ्कटः ।

वसामिश्रो ह्ययस्तुण्डस्त्रपुलेपः प्रकीर्तितः ।।८६।।

इनकी यथावत् आनुपूर्वी व्याप्ति का स्पष्टीकरण करते हुए भगवान् भैरव कह रहे हैं कि, इनमें ही ३२बत्तीस नरक व्याप्त हैं । जैसे एकादश नरक गत अवीचि का शोधन सबसे पहले करना चाहिये । तत्पश्चात् स्वयं द्वादश नरकों को अपने अन्तर्गत व्याप्त रखने वाले कुम्भीपाक का विशोधन कर शेष नव का शोधन महारौरव के शोधन से सम्भव हो जाता है ।।८१-८२।।

३५ नरकों का निरूपण-

अब अवीचि में अन्तर्भूत नरकों का नामोद्देश पूर्वक उल्लेख कर रहे हैं-१. अवीचि क्रिमिनिचय, २. वैतरणी ३. लोह, ४. शाल्मलि, ५. असिपर्वत, ६. सोच्छ्वास, ७. निरुच्छ्वास, ८. पूतिमांस, ९. तप्तत्रपु, १०. क्षारकूप, ११. जतुलेप ये ग्यारह अवीचि नरक में ही अन्तर्भूत माने जाते हैं ।।८३-८५।।

कुम्भीपाकश्च विज्ञेयस्तीक्ष्णासिश्च तथैव च ।
तप्तलोहश्च विज्ञेयः क्षुरधारपथस्तथा ।।८७।।
अशनिश्च सुतप्तश्च द्वादशैते प्रकीर्तिताः ।
एकादशान्तर्विज्ञेयाः कुम्भीपाकस्य दारुणाः ।।८८।।
महारौरवराजे च अत ऊर्ध्वं निबोध मे ।
कालसूत्रो महापद्मः कुम्भः सञ्जीवनेक्षुकौ ।।८९।।
पाशोऽम्बरेषकश्चैव अयःपट्टस्तथैव च ।
दण्डयन्त्रस्त्वमेध्यश्च घोररूपस्तथापरः ।।९०।।
महारौरव एतेषामुपरिष्टाद्व्यवस्थितः ।

वसामिश्र इति यः पूर्वं उक्तः । अयस्तुण्डस्तु तीक्ष्णतुण्ड इति, तीक्ष्णासिरसिरिति, कुम्भस्तु कुम्भीर इति, अशनिरिति अशनी वृष्टिमुद्गराविति, पाशोऽप्युरग इति, दण्डयन्त्रो दण्ड इति पूर्वमुक्तः ।

यदा आदाववीच्यादित्रयमेव शोध्यते, तदा–

अवीचौ कृमिनरकान् कुम्भीपाके सुदारुणान् ।।९१।।
महारौरवकेऽमेध्यानन्तर्भूतान् विचिन्तयेत् ।

अथैतैस्त्रिभिर्व्याप्तानाम्–

द्वात्रिंशन्नरकाणां च मानं चैव निबोध मे ।।९२।।

कुम्भीपाक के अन्तर्भूत नरक–

१. अस्थिभङ्ग, २. क्रकचच्छेद, ३. कूप, ४. कटङ्कट, ५. वसामिश्र, ६. अयस्तुण्ड, ७. त्रपुलेप, ८. कुम्भीपाकरूप तीक्ष्ण असि, ९. तप्तलोह, १०. क्षुरधार, ११. अशनिदृष्टि मुद्गर और १२. सुतप्त ये १२ नरक कुम्भीपाक के अन्तर्गत हैं ।

महारौरवराज के अन्तर्गत–

१. कालसूत्र, २. महापद्म, ३. कुम्भ (कुम्भीर), ४. संजीवनी, ५. इक्षुक, ६. पाश, ७. अम्बरेषु, ८. अयःपट्ट, ९. दण्डयन्त्र, १०. अमेध्य और ११. घोररूप ये महारौरवराज के अन्तर्गत माने जाते हैं । महारौरवराज इन सबके ऊर्ध्व देश में अवस्थित है ॥८६-९०॥

जैसे पहले शोधन के क्रम में अवीचि, कुम्भीपाक और महारौरव यही तीन शोधित किये जाते हैं, उस समय उसी तरह अवीचि में ही क्रिमि नरकों, का कुम्भीपाक में सुदारुण नरकों का, महारौरव में अमेध्य नरकों का, शोधन करना चाहिये । इन तीनों से व्याप्त ३२ नरकों का मान इस प्रकार शास्त्र में वर्णित है ॥९१-९२॥

तत्र योजनानां

नवनवतिर्लक्षाणि एकैकस्योच्छ्रयः स्मृतः ।

एते च–

लक्षमात्रान्तरा ज्ञेया द्वात्रिंशच्चाप्यनुक्रमात् ।।९३।।

एवमेतन्मानं द्वात्रिंशत्कोटयो नरकभूः ॥९३॥

अथ–

एतेषामुपरिष्टात्तु प्रभुत्वेन वरानने ।
योगैश्वर्यगुणोपेतः कूष्माण्डाधिपतिः स्थितः ।।९४।।

एष च–

'क्विति क्षितिः समुद्दिष्टा तस्यामूष्मानुलोमतः ।
सोऽण्डे यद्वद्दुरालोकः कूष्माण्डस्तद्वदुद्भटः' ॥

इति श्रीपरायां निरुक्तः । अस्य च कुकर्मजनानुशासकत्वात् क्रूररूपत्वं क्रूररूपनिर्वृत्तत्वं श्रीपरायामुक्तमतः समस्तनरकशुद्धिं कृत्वैतच्छ्रावणा कार्या । एवमन्यत्र ॥९४॥

किञ्च,

नवनवतिर्लक्षाणि पुरं तस्य प्रकीर्तितम् ।

अथ–

तस्योपरिष्टात्पातालान् कथयामि समासतः ।।९५।।

एक एक नरक का उच्छ्रय ९९ लाख योजन माना है । इनमें एक एक लाख का अन्तराल भी है । इस तरह एक नरक के लिये एक करोड़ का मान निर्धारित है । ३२ नरकों का मान ३२ करोड़ के अनुसार नरक की भूमि ३२ करोड़ योजन क्षेत्र में फैली मानी जाती है ॥९३॥

इन नरकों के ऊपर कूष्माण्डाधिपति का प्रमुख क्षेत्र है । वे समस्त योगैश्वर्य गुणों से समुपेत महाधिपति माने जाते हैं । श्रीपरासंहिता में उल्लिखित है कि, 'कु' इस संज्ञा से विभूषित क्षिति ऊष्मा के अनुलोमपूर्वक जिस अण्ड में हो तथा गर्भ में आलोक प्रदान करती हो, वैसी ही कूष्माण्ड नामक यह उद्भव भूमि है । यह कुकर्मी जनों पर अनुशासन करने वाला लोक है । इसलिये श्रीपराशास्त्र में इसकी क्रूररूपता का वर्णन है । समस्त नरकों की शुद्धि करने के बाद इसको शिष्य को सुनाना चाहिये ॥९४॥

इसका मान भी ९९ लाख का ही है । इसके ऊपर पातालों की अवस्थिति है । इन्हें संक्षेप में मैं तुम्हें सुनाने जा रहा हूँ, सुनो ॥९५॥

आभासं वरतालं च शर्करं च गभस्तिमत् ।
महातलं च सुतलं रसातलमतः परम् ।।९६।।
सौवर्णमष्टमं ज्ञेयं सर्वकामसमन्वितम् ।

विशेषणमेतत्सर्वसाधारणम् । आ समन्तात् सर्वरत्नादिभिर्भासनात्, वरभोगयोगात्, शर्करावत्स्पृहणीयगुणत्वात्, भास्वरत्वात्, महाभोगयुक्तत्वात्, शोभनतलत्वात्, रसास्वादयुक्तत्वात्, सुवर्णमयत्वाच्च एतान्येषां नामानि । यदुक्तं श्रीपरायाम्–

'समन्तात्सर्वरत्नानां भासो यस्माद्विभान्त्यलम् ।
तद्धर्म्याणां च तत्स्त्रीणामाभासं तेन तत्स्मृतम्' ॥

इत्यादि । शर्कराख्यं तु तत्र नितरां भोगसम्पत्त्यादितलमित्युक्तम् ।

अथ–

आभासाद्यावत्सौवर्णं प्रमाणं कथयामि ते ।।९७।।
सहस्रनवकोत्सेधमेकैकं तु पुरोत्तमम् ।

उत्सेध औन्नत्यम् । तथा–

एकैकस्यान्तरं ज्ञेयं सहस्रपरिसंख्यया ।।९८।।

एवं पातालानि अशीतिसहस्राणि ॥९८॥

आभास, वरताल, शर्कर, गभस्तिमान्, महातल, सुतल, रसातल और सौवर्ण ये आठ सभी अभीष्टपूर्त्ति योग्य और कामनासाधक लोक हैं । ये सारे नाम एक प्रकार के विशेषण ही है । जैसे–१. चारों ओर सब प्रकार के रत्नों से भासित होने वाला लोक 'आभास' लोक है । २. श्रेष्ठ तल के कारण वरताल, ३. शर्करा की तरह मधुर गुण से भरपूर 'शर्करा' लोक, ४. किरणों से सुसज्जित गभस्तिमान्, ५. महाभोग युक्त महातल, ६. सुन्दरतल, ७. सुतल, ८. रसास्वाद युक्त रसातल और ९. सुवर्ण से भरपूर रहने के कारण सौवर्ण । यह वर्णन पराशास्त्र में ही प्राप्त है ॥९६॥

ये लोक इतने समृद्ध हैं कि, इन्हें पाताल कहने में भी संकोच होता है । इन्हें तो स्वर्ग कहना चाहिये । आभास से लेकर सुवर्णपर्यन्त इन लोकों के मान का वर्णन भगवान् भैरव कहने जा रहे हैं ॥९७॥

नौ हजार योजन एक एक का औन्नत्य है । इन लोकों का एक दूसरे से अन्तराल एक हजार मात्र है । इस तरह ८० हजार योजन क्षेत्र में ये पाताल लोक फैले हुए हैं ॥९८॥

किञ्च,

छत्राकाराणि सर्वाणि तेषां वै भुवनानि तु ।
सर्वकामैः समेतानि गुणैः सर्वैर्युतानि तु ।।९९।।
हेमप्राकारशिखरैश्छत्रध्वजसमाकुलैः ।
किङ्किणीजालमुखरैस्तोरणाट्टालमण्डितैः ।।१००।।
निर्गमैः सगवाक्षैश्च दिव्यवस्त्रविभूषितैः ।
तन्त्रीमुरजवाद्यैश्च गेयतूर्यरवाकुलैः ।।१०१।।
नानाभुवनपङ्क्त्योघैः सर्वरत्नसमुज्ज्वलैः ।
प्रासादैस्तुङ्गशिखरैश्चन्द्रातपसमप्रभैः ।।१०२।।
रथ्यामार्गवरारामैः सदापुष्पफलान्वितैः ।
कोकिलारावमधुरैः शिखिषट्पदसेवितैः ।।१०३।।

इनके ये यारे भुवन छत्राकार होते हैं । इनमें भी वे सारे साधन भरे हुए हैं । जिससे वहाँ के प्राणियों की सारे अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं । इसके अतिरिक्त वहाँ कोई दुर्गुण नहीं होते । सभी गुण उन लोकों और उनके लोकवासियों में हैं ॥९९॥

स्वर्ण निर्मित अट्टालिकाओं के चतुर्दिक् स्वर्ण की ही चहारदीवारियाँ बनायी हुई हैं । उन राजमहलों के शिखर भी स्वर्णमय हैं । सभी घरों में छत्र और ध्वज फहराते हैं । तोरणों और किङ्किणियों की मधुर ध्वनियाँ नित्य आनन्द की वर्षा करती हैं । अट्टालिकायें पूरी तरह मण्डित हैं ॥१००॥

अट्टालिकाओं के सारे निर्गम (निकास) गवाक्षों और खिड़कियों से खुली हवा के आने का मार्ग प्रशस्त करते हैं । उनमें दिव्य परदे लगे हुए हैं । घरों से तन्त्री और मुरज की मृदुल ध्वनियाँ निकलती रहती हैं । उसके निवासी सिद्ध कलाविद् हैं । गीतिकाओं की श्रुतिमधुर रागिनियों से पूरा प्रदेश व्याप्त रहता है ॥१०१॥

अनेक भुवनों की मालाओं का समूह बड़ा ही आकर्षण है । रत्नों से समुज्ज्वल सारे निवास बड़े ही सुरुचिपूर्ण हैं । प्रासादों की पंक्तियाँ वहाँ सुशोभित हैं, जिन पर उत्तम शिखर निर्मित हैं । चन्द्रातप से चमत्कृत कक्षों से सारे नगर अलङ्कृत हैं ॥१०२॥

रथ्याओं से प्रथित, राजमार्गों से सज्जित, आरामों से शुद्ध वानस्पतिक विलास परिपूर्ण, सदा खिले फूलों की बहार से भरे पूरे, फलों से परिपूर्ण, कोकिलों की काकली से आकर्षक मोरों और भौरों से भूषित वहाँ का नगरीय विलास उल्लास पूर्ण लगता है ॥१०३॥

हंसकारण्डवाकीर्णैश्चक्रवाकोपशोभितैः ।
सारसारावसङ्घुष्टपद्मिनीषण्डमण्डितैः ।।१०४।।
तडागैः स्वच्छतोयाढ्यैर्दीर्घिकाभिर्युतानि तु ।
पुरुषैश्च महाकायैर्महाबलपराक्रमैः ।।१०५।।
सर्वैश्वर्यस्वरूपाढ्यैः सर्वलक्षणसंयुतैः ।
दिव्यवस्त्रैः सुताम्बूलैर्दिव्यगन्धानुलेपनैः ।।१०६।।
दिव्याभरणसंयुक्तैर्मुकुटै रत्नमण्डितैः ।
युक्तानीत्येव । मुकुटैरित्युपलक्षितैरित्यर्थः ।
किञ्च,
शिवाराधनसक्ता ये तत्प्रसादेन साधकाः ।।१०७।।
ते विशन्ति महादेवि पातालं सिद्धसेवितम् ।
तत्प्रसादेनेति काकाक्षिवद् योज्यम् । विष्ट्वा तु-
रसं रसायनं दिव्यं सिद्धद्रव्यं लभन्ति ते ।।१०८।।

वहाँ के उपवनों में वापियों में जङ्गलों में विविध पक्षी विहार करते हैं । उनमें हंस, कारण्डव हैं, चक्रवाकों का चक्र है । सारसों का समूह है । इनकी सम्मिलित ध्वनियों का सम्मर्द है । वापियों पद्मिनियों का आमोद है अर्थात् सुन्दरता का साम्राज्य वहाँ व्याप्त है ॥१०४॥

तडागों के निर्मल जल, दीर्घिकाओं की अनर्घ शोभा हृदयहारी है । वहाँ के भाग्यशाली निवासी जीवन का आनन्द मनाते हैं । उनकी महनीय काया बड़ी आकर्षक है । वे महान् बलशाली हैं । पराक्रम की परा-काष्ठा से वे अपराजेय जीवन जी रहे हैं ॥१०५॥

संसार के सारे ऐश्वर्य वहाँ फैले हुए हैं । सारा रूप वहाँ रूपायित है । उन पुरुषों में सारे शुभ लक्षणों का लावण्य है । उनके वस्त्र दिव्य हैं । मुख ताम्बूल से वासित हैं । दिव्य गन्धों के वे आगार हैं । विभिन्न आलेपनों से वे ललित लगते हैं ॥१०६॥

वे दिव्य आभरणों से भूषित हैं । शिरों पर मुकुट की रमणीयता है । मुकुटों में जड़े रत्न अपनी शोभा से सत्ता का शृङ्गार कर रहे हैं । यही नहीं, भावना से भावित वहाँ के नागरिक शिव की आराधना में नित्य अनुरक्त हैं और परमेश्वर के प्रसाद से नित्य प्रसन्नता का अनुभव करते हैं ॥१०७॥

भगवत्कृपा से वे पाताल के दुर्लभ क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं, जहाँ सिद्ध जन अपनी तपस्या के तेज से वातावरण को तैजस बना चुके होते हैं । वहाँ जाकर

रसं हेमसाधनम् । रसायनं शरीरस्थैर्यहेतुः । सिद्धद्रव्यं पादुकादि तदुचित-सिद्ध्यर्थं लब्ध्वा यथारुचि भुवनानि चरन्तीत्यर्थः ॥१०८॥

ये तु ततो न निर्यान्ति, ते

क्रीडन्ति चान्ये सततं दिव्यानां योषितां गणैः ।
कामिनः कामरूपैस्तु मत्तमातङ्गगामिभिः ॥१०९॥
सर्वाभरणसंयुक्तैः कामशास्त्रसुपेशलैः ।
दिव्यवस्त्रपरीधानैः स्तनभारसमानतैः ॥११०॥
मध्यक्षामैः प्रसन्नास्यैस्तरलायतलोचनैः ।
सकिङ्किणीनितम्बैश्च हारकेयूरशोभितैः ॥१११॥
सुगन्धिगन्धलिप्ताङ्गैः काञ्चीमेखलमण्डितैः ।
एवं ते कथिता देवि पातालान्तरवासिनः ॥११२॥

किञ्च,

त्रयोऽसुरास्तथा नागा राक्षसाश्च विभागतः ।
एकैकत्र च पाताले कथितास्ते वरानने ॥११३॥

वे रसों और रसायनों को तथा दिव्य सिद्ध द्रव्यों की अनायास उपलब्धि से धन्य हो जाते हैं ॥१०८॥

जो वहाँ से अन्यत्र नहीं जाते, वे तो और भी आनन्द रस में डूबकर उज्ज्वल होते रहते हैं । दिव्य अप्सराओं के साथ क्रीडा का अलभ्य अवसर उन्हें अनायास उपलब्ध होता है । मत्त मातङ्गों पर सवारी करने वाली कामिनियों की क्रीडा से उनके काम की कमनीयता रति को भी अतिक्रान्त करती है । वहाँ की अप्सरायें सभी आभरणों से भूषित, कामशास्त्रीय पेशलता से प्रेरित, दिव्य परिधानों से सज्जित, उन्नत उरोजों के भार से विनम्र, पतली कमर से कामोत्पादक, प्रसन्न वदना, तरल लोचनों से तिरछे निहारतीं, आयत नेत्रों से कटाक्ष करने वाली, नितम्बों पर किङ्किणी युक्त करधनी से रुनझुन गजगामिनी, हार और केयूर से कमनीय, सुरभि सुगन्धित लिप्त अङ्ग वाली, काञ्चीमेखला से मेखलित गज-गामिनियों के साथ विहार करने का उन्हें वहीं अवसर प्राप्त होता है ॥१०९-११२॥

वहाँ असुर, नाग और राक्षसों के पृथक् पृथक् विभाग हैं । एक एक नगर उनके विभाग के साथ शासित हैं । श्रीपरासंहिता में लिखा है कि, 'आभास में शङ्कुकर्ण नामक कुटिल एवं विकल अधीश्वर ही वहाँ का अधिकारी है । वरताल में प्रह्लाद का शासन है । लोहितानन वासुकि भी वहाँ प्रह्लाद के अधीन शासक हैं ।

कथिता इत्येतदन्यशास्त्रोक्तं श्रीभैरवः श्रीदेवीं स्मारयति । तथा च श्री-परायाम्–

'आभासे शङ्कुकर्णाख्यः कुटिलो विकलः पतिः ।
वरतालेऽपि प्रह्लादो वासुकिर्लोहितानन: ॥
नितले शिशुपालाख्यः कम्बलो यमदंष्ट्रकः ।
गभस्त्याख्ये सकर्कन्धुः कर्कटो विकटाननः ॥
महातले हिरण्याक्षः कालाङ्गश्च कराङ्कक: ।
रसातले बृहद्भोगो दुर्दर्शो भीमनिःस्वनः ॥
षडेतानि त्रिखण्डानि भोग्यान्येभिर्महात्मभिः ।
सुतले संस्थितोऽधस्ताद्बलिस्तक्षकपिङ्गलौ' । इत्युक्तम् ॥११३॥

किञ्च,

पातालसप्तके ज्ञेयास्तथान्ये भुवनाधिपाः ।
बलो ह्यतिबलश्चैव बलवान् बलविक्रमः ॥११४॥
सुबलो बलभद्रश्च बलाध्यक्षश्च कीर्तिताः ।

यतः सप्तसु पातालेषु यथाक्रमं स्थिता एते रुद्रास्ततः–

एतैः शुद्धैरिमे शुद्धाः सप्तपातालवासिनः ॥११५॥

सप्तसु पातालेषु भूम्ना वसनं यैः स्वकर्मार्जितैः भोगविशेषैस्त इमे प्रोक्ता भोगविशेषाः शुद्ध्यन्तीत्यर्थः ॥११५॥

'नितल' में शिशुपाल जिसे कम्बल और यमदंष्ट्रक का सहयोग है, वही शासक है । 'गभस्तिमान्' में कर्कन्धु के साथ विकटानन कर्कट राज्य करता है । 'महातल' में हिरण्याक्ष, कालाङ्ग और कराङ्कक हैं । रसातल में बृहद्भोग नामक भीमनिःस्वन दुर्दर्श राक्षस नियन्ता है । ये छः, तीन खण्डों में वहाँ के राजाओं द्वारा भोग्य हैं अर्थात् शासित हैं । इनके नीचे के सुतल खण्ड में बलि अवस्थित है । वहाँ इसके सहयोगी के रूप में तक्षक और पिङ्गल नाग भी काम करते हैं । यह परासंहिता की उक्ति है ॥११३॥

सात पाताल के दूसरे ही शासक हैं । उनके नाम क्रमशः 'बल', 'अति-बल', 'बलवान्', 'बलविक्रम', 'सुबल', 'बलभद्र' और बलाध्यक्ष हैं । ये रुद्र रूप हैं । इनके शुद्ध हो जाने पर अन्य भी शुद्ध हो जाते हैं अर्थात् सप्तपाताल निष्ठ निवासियों की भी शुद्धि हो जाती है । इनमें अपने विशेष कर्मों द्वारा जिन्होंने प्राप्त किया है, वे भोग सहित शुद्धि को प्राप्त होते हैं, वे भुवन दीक्षा से शुद्ध हो जाते हैं ॥११४-११५॥

अतस्तु–

यदूर्ध्वे चैव सोवर्णं पातालं परिकीर्तितम् ।

तत्र वसत्यसौ देवो हाटकः परमेश्वरः ।।११६।।

पुरकोटिसहस्रैस्तु समन्तात्परिवारितः ।

सिद्धै रुद्रगणैर्दिव्यैर्भगिनीमातृभिर्वृतः ।।११७।।

सिद्धैः रुद्रैरिति सिद्धविशेषाप्तरुद्रमूर्तिभिः, भगिन्यो ब्राह्म्याद्यंशकोद्भूता देव्यः, मातरस्तु ब्राह्म्याद्याः, ता हि प्रपञ्चव्याप्त्या परापरभावेन प्रायः सर्वत्र स्थिताः ।।११७।।

किञ्च,

योगिनीयोगकन्याभी रुद्रैश्चैव सकन्यकैः ।

योगिन्यो योगेन सिद्धाः, योगकन्यास्तु जातमात्रा एव संस्मारितयोगाः ।

किञ्च,

सिद्धद्रव्यसमैर्मन्त्रैश्चिन्तामणिरसायनैः ।।११८।।

सिद्धद्रव्यसमत्वं प्राप्तमात्राणामेवाभीष्टप्रदत्वम् । चिन्तामणिभिः रसायनैश्चेत्यर्थः ।।११८।।

ऊर्ध्व भाग में अवस्थित 'सौवर्ण' नामक जिस पाताल की बात कही गयी है, वहाँ पर देव रूप परमेश्वर 'हाटक' रहते हैं । इनके शासन में करोड़ों करोड़ पुर बसे हुए हैं । इनमें सिद्ध रुद्रगण दिव्य बहनों, भाइयों, माताओं के साथ निवास करते हैं ।

सिद्ध वही कहलाता है, जो विशेष सिद्धियों को प्राप्त कर चुका हो, ये सभी रुद्रमूर्त्ति होते हैं । भगिनी के रूप में ब्राह्मी आदि शक्तियों के अंश ही परिगणित हैं और ब्राह्मी आदि तो मातृस्थानीय हैं । ये ही प्रपञ्च व्याप्ति में परापर भाव से अवस्थित रहती हैं ।।११६-११७।।

जहाँ तक हाटकेश्वर के मन्दिर (आवास) का प्रश्न है, वहाँ सिद्ध योगिनियाँ योगकन्याओं के साथ निवास करती हैं । वहाँ अन्य रुद्र भी रुद्रकन्याओं के साथ ही परिवार के रूप में रहते हैं । वहाँ इन मन्त्रों का प्रयोग होता है, जो सिद्धद्रव्य के समान स्वयं सिद्ध हैं । मन्त्रों के साथ सिद्ध द्रव्यों का समत्व अपेक्षित होता है । उनके पास चिन्तामणि के समान रसायन हैं, जिनसे वे जो चाहते हैं, वही उपलब्ध हो जाता है ।।११८।।

तदित्थम्–

सिद्धविद्यासमृद्धं वै हाटकेशस्य मन्दिरम् ।

एतच्च उक्तरुद्राद्युपलक्षणपरम् ।

हाटकपदं निर्वक्ति–

हठात्प्रवेशयेल्लोकांस्तद्भावगतमानसान् ।।११९।।

तेनासौ हाटकः प्रोक्तो देवदेवो महेश्वरः ।

देवानां बलादीनां देवः, भगवतः श्रीकण्ठस्यैवेत्थं भोगप्रदत्वेनानया मूर्त्या स्थितत्वान्महेश्वरः ।

एवं चान्तर्भूतपातालसप्तके तत्पुरशुद्धौ हाटकरुद्रोपस्थापनपूर्वं चतुर्थपटलोक्ताध्वसंधानादिसमस्तेतिकर्तव्यतां श्रावणान्तां कुर्यात् । एवं प्रतिभुवनेशमेतदेव स्मर्तव्यम् । तदेवं भूकटाहः कोटिः, कालाग्निरुद्रपुरं कोटिः, तज्ज्वाला दश कोटयः, धूमः पञ्च कोटयः, नरका द्वात्रिंशत्कोटयः, कूष्माण्डपुरं नवनवतिलक्षाणि, पातालमशीतिसहस्राणि, इत्येवं सहस्रविंशत्यूनाः पञ्चाशत्कोटयः । एतावदन्तोऽध्वा कोटिपञ्चाशतैव, शिष्टानि तु–

तस्योर्ध्वे तु सहस्राणि योजनानां तु विंशतिः ।।१२०।।

इस प्रकार सिद्धि विद्याओं से समृद्ध हाटकेश्वर का आवास अत्यन्त श्लाघ्य है । हाटकेश्वर के प्रति सद्भाव और श्रद्धाभाव रखकर उनके लोकों को जो पाने की प्रार्थना करते हैं । भगवान् हाटक उन पर अनुग्रह कर अपने लोकों में प्रवेश दे देते हैं । इसी कृपालुता के कारण हाटक बल सुबल आदि देवों के देव माने जाते हैं । वे श्रीकण्ठ की ही भोगप्रदमूर्त्ति के प्रतीक हैं । अतः महेश्वर कहे जाते हैं ॥११९॥

हाटकपुर में ही पाताल सप्तक अन्तर्भूत हैं । इसलिये हाटकपुर की शुद्धि से उनकी भी शुद्धि हो जाती है । इसमें हाटक रुद्र का उपस्थापन करना पड़ता है । इसी दीक्षा सन्दर्भ में चतुर्थ पटलोक्त अध्वसंधान की विधि की श्रावणा भी अवश्य करणीय मानी जाती है । प्रतिभुवनेश्वर की यही इतिकर्त्तव्यता है । इसका ध्यान रखना चाहिये ।

इस तरह भूकटाह की कोटि, कालाग्निरुद्र पुर कोटि, उसकी ज्वाला मात्र दश कोटि, धूम ५ कोटि, नरक ३२ कोटि, कूष्माण्डपुर ९९ लाख, पाताल अस्सी हजार कुल मिलाकर २० हजार कम पचास कोटि योजन का इनका आयाम इस गणना से सिद्ध होता है । इस तरह पचास करोड़ योजन के क्षेत्र में

भूकटाहः समुद्दिष्टः समन्तात्तु वरानने ।

भूकटाहो मनुष्याधारभूः । एवमियदन्तं ब्रह्माण्डस्यार्धम् ।

अतो भगवती पृथ्वी नानाजनपदाकुला ।।१२१।।

तस्या मध्ये महामेरुः सौवर्णश्च वरानने ।

तस्याचलस्य विस्तारमूर्ध्वाधः कथयामि ते ।।१२२।।

जनपदो लोकानां निवासः ।।१२२।।

तत्र–

योजनानां सहस्त्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः ।

षोडशैव सहस्त्राणि अधोभागे प्ररोपितः ।।१२३।।

वैपुल्यमस्याह–

तान्येव मूलविस्तारः

तानीति षोडशैव ।

द्विगुणो मूर्धविस्तरः ।

द्वात्रिंशन्मूर्धविस्तारोऽस्येत्यर्थः ।

अध्वा सम्पन्न होता है । इसके ऊर्ध्व भाग में बीस हजार योजन का अन्तराल भूकटाह का सिद्ध होता है । यह भूकटाह ही मनुष्यों की आधार भूमि है । यह ब्रह्माण्ड का अभी आधा भाग ही होता है । इस भूकटाह की आधार शक्ति यह माता पृथिवी अनन्त और विविध जनपदों से समन्वित मानी जाती है । पृथिवी हमारी माता है । हम इसके पुत्र हैं । श्रुति कहती है–'माता पृथिवी पुत्रोऽहं पृथिव्याः' । यह हमेशा याद रखना चाहिये ।।१२०-१२१।।

पृथिवी के मध्य में महामेरु है । यह सौवर्ण पर्वत है । भगवान् भगवती को सम्बोधित कर कह रहे हैं कि, सुमुखि ! देवि ! इस अचल का ऊर्ध्वाधः विस्तार अनुसन्धान का विषय है ।।१२२।।

भगवान् कह रहे हैं कि देवि ! मेरु पर्वत की ऊँचाई चौरासी हजार योजन है । इसमें १६ हजार योजन इसके अधोभाग में शिलापूजन के रूप में निहित है ।।१२३।।

इसका मूल विस्तार भी १६ हजार योजन ही निर्धारित है । इसकी मूर्धा का विस्तार अधोभाग की अपेक्षा द्विगुणित माना जाता है । शास्त्र कहता है कि, भैरवीय लिङ्ग इस पर प्रतिष्ठित है । धरणी उसी की पीठिका रूप है । शिव लिङ्ग की यह अर्घा है । ऐसा गुरुजन कहते हैं । भैरवीय लिङ्ग को श्रीपरासंहिता में कर्णिका के आकार का शिरोभाग कहा गया हैं ।

'भैरवीयं च तल्लिङ्गं धरणी चास्य पीठिका'।

(तं० ८आ० श्लो०४५)

इति गुरवः । एष च श्रीपरायां कर्णिकाकारमस्तक इत्युक्तः ।

अथ-

तस्योर्ध्वे तु सभा दिव्या नाम्ना चैव मनोवती ।।१२४।।

चतुर्दश सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः ।

सर्वरत्नसुशोभाढ्या स्त्रीसहस्रसमन्विता ।।१२५।।

सर्वभोगगणोपेता ब्रह्मणस्तु महात्मनः ।

ब्रह्मणः सत्यलोकस्थब्रह्मांशावतारस्यास्थानभूः, अतश्च सर्वत्र मध्यं ब्रह्मस्थानमुच्यते । सा च

सिद्धविद्याधराकीर्णा ऋषिभिः परिवारिता ।।१२६।।

तस्या ईशानदिग्भागे ज्योतिष्कं शिखरं स्मृतम् ।

ज्योतिष्कं स्फाटिकम् । तच्च

सूर्यकोटिप्रतीकाशं गणप्रथमसेवितम् ।।१२७।।

उसके ऊपरी भाग में दिव्या मनोवती नामक सभा उस समय रही होगी । यदि यह दिव्या है और लौकिक नहीं हो, तो इसकी क्या स्थिति है, कहा नहीं जा सकता है ॥१२४॥

इसका प्रमाण चौदह हजार योजन क्षेत्र में शास्त्र द्वारा परिपुष्ट है । यह सभी रत्नों से भरी पूरी है । परिणामतः शोभा की खान ही सिद्ध होती है । इसमें स्त्रियों की संख्या भी हजारों में आँकी जा सकती है । सत्यलोकस्थ ब्रह्म के अंशावतार ब्रह्मा की अपनी भूमि ही मानी जाती है । यह मध्य भूमि है । मध्य भूमि ही ब्रह्मास्थान माना जाता है । यह समस्त भागों के साधनों से समवेत है । यह सिद्धों विद्याधरों से व्याप्त और ऋषियों से संयुक्त नगरी है अर्थात् इसमें ऋषियों का निवास भी है ॥१२५-१२६॥

इसके ईशान कोण की ओर ज्योतिष्क शिखर है । ज्योतिष्क स्फटिक को कहते हैं । इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि, वह शिखर पूरा का पूरा स्फटिक मणि का ही है । प्रकृति की अद्भुत देन है । करोड़ों सूर्यों के समान यह प्रकाशमान है । गणों और प्रमथों से यह समन्वित और सेवित है ॥१२७॥

सर्वर्तुकुसुमोपेतं देवगन्धर्वसेवितम् ।
स्त्रीसहस्रसमाकीर्णं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ।।१२८।।

गणप्रथमाः प्रधानगणाः ।।१२८।।

तत्रास्ते भगवान् देवस्त्र्यम्बकः परमेश्वरः ।
लोकपालैर्वृतोऽसौ हि ब्रह्मविष्ण्विन्द्रनायकः ।।१२९।।
ममांशं तं विजानीयात् सुरसिद्धनमस्कृतम् ।

कैलासवासिन उमापतेरियमुक्तिः । स च तत्र–

अधिकारं प्रकुरुते परेच्छासम्प्रचोदितः ।।१३०।।

एवं चाभिदधत् पर एवाहं श्रीसदाशिवेशानन्तश्रीकण्ठरूपतया विष्णुभुवनोर्ध्वस्थरुद्रत्त्वेन मेरुशिखरगतत्र्यम्बकत्वेन अधिकारं च प्रपञ्चव्याप्त्यावस्थितो न तु पृथक्त्वमेषामित्यादिशति । ब्रह्मविष्ण्विन्द्रनायकत्वमेव । एतच्च शृङ्गं प्रधानत्वादिहोक्तम्, न त्वेतदेवास्ति श्रीचन्द्रगर्भादौ

'शृङ्गत्रयसमोपेता ब्रह्मविष्णुहरालयाः' ।

सभी ऋतुओं के कुसुमों से यह सुशोभित नगरी अत्यन्त रमणीय है । देव और गन्धर्व भी इसमें निवास करते हैं । हजारों हजार रमणियों से रमणीय यह दिव्या सभा सारे ऐश्वर्यों से समन्वित है ।।१२८।।

यहाँ भगवान् त्र्यम्बकेश्वर विराजमान हैं । ये परमेश्वर रूप ही हैं । सभी लोकपालों से ये आवृत हैं । यहाँ ब्रह्मा, विष्णु और नायक इन्द्र भी रहते हैं । भगवान् कैलासवासी उमापति कहते हैं कि, देवों और सिद्धों द्वारा नमस्कृत भगवान् त्र्यम्बकेश्वर मेरे ही प्रतिरूप हैं, ऐसा मानना चाहिये । वे ही त्र्यम्बक देव यहाँ के अधिकारी हैं । परेच्छा अर्थात् मेरी इच्छा से प्रेरित होकर ही इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हैं ।

उमापति कह रहे हैं कि, मैं ही श्री सदाशिव, ईश्वर अनन्तेश्वर और श्रीकण्ठ रूप से विष्णु भुवन के ऊर्ध्व रुद्रत्व रूप से तथा मेरु शिखर के अन्तर्गत त्र्यम्बक रूप से भी इस प्रपञ्च व्याप्ति के नियमानुसार स्वयं अवस्थित हूँ । इनसे मेरे पार्थक्य का परिकल्पन व्यर्थ है । यह भी ध्यान देने की बात है कि, मेरा अधिकार क्या है ? यह ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र के रूप में नायक भाव का निर्वाह ही तो अधिकार है ।

इति, श्रीकिरणायां तु–

'त्रिभिः शृङ्गैः समायुक्तो रुक्मकाञ्चनरत्नजैः' ।

इति प्रतिपादितत्वात् ॥१३०॥

अस्य च मेरोः–

सभाया ब्रह्मणोऽधस्तात्सहस्राणि चतुर्दश ।

योजनानां परित्यज्य चक्रवाटः समन्ततः ॥१३१॥

चक्राकारो वाटः पुरीणां समूहः ॥१३१॥

एष एव च–

स्वर्गाष्टकं समुद्दिष्टं

यतः–

तत्र तिष्ठन्ति लोकपाः ।

इन्द्रादयः । तत्र–

पूर्वेणेन्द्रस्य विख्याता पुरी नाम्नामरावती ॥१३२॥

तेजोवती तथाग्नेय्यां चित्रभानो प्रकीर्तिता ।

दक्षिणे यमराजस्य नाम्ना संयमनी पुरी ॥१३३॥

कृष्णाङ्गारा तु नैर्ऋत्यां राक्षसेशस्य कीर्तिता ।

पश्चिमेन जलेशस्य नाम्ना शुद्धवती स्मृता ॥१३४॥

यह त्र्यम्बकेश्वर शिखर प्राधान्य के कारण पहले कहा गया है । इसके अतिरिक्त भी यहाँ शिखर हैं । श्री चन्द्रगर्भ शास्त्र में स्पष्ट ही कहा है कि, तीन शृङ्गों से संयुक्त यहाँ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के आलय हैं । श्रीकिरणा की उक्ति है कि, रुक्म, काञ्चन और रत्नों के तीन शृङ्गों से यह समायुक्त है ।

ये लेख यह सिद्ध करते हैं कि वहाँ कई शिखर और देवालय हैं ॥१३०॥

ब्रह्मसभा के नीचे १४ हजार योजन छोड़कर वहाँ चक्रवाट अर्थात् पुरियों का समूह विद्यमान है ॥१३१॥

वहीं आठ स्वर्ग हैं । ऐसा शास्त्र कहते हैं । उनमें लोकपालन करने वाले, इन्द्र आदि शासक भी व्यवस्था में संलग्न हैं । वहीं पास में इन्द्र की विश्व-विख्यात नगरी 'अमरावती' विद्यमान है । अग्निकोण पर 'तेजोवती' नगरी है । इसे चित्रभानु अग्निदेव की नगरी कहते हैं । दक्षिण दिशा में यमराज की नगरी है । इसे 'संयमनी' कहते हैं । निर्ऋति कोण में निर्ऋति राक्षस की नगरी है ।

वायव्यां तु पुरी वायोर्नाम्ना गन्धवहा प्रिये ।
उत्तरेणापि सोमस्य पुरी नाम्ना महोदया ।।१३५।।
ऐशान्यामीशराजस्य पुरी नाम्ना यशोवती ।

तथा–

एतासामुत्तरे देवि शृणु षड्विंशतिं पुरीः ।।१३६।।
दक्षिणेनामरावत्याः कामवत्यप्सरःपुरी ।
सौवर्णी सिद्धसङ्घानां तस्या वै दक्षिणेन तु ।।१३७।।
तस्या वै दक्षिणेनान्या पद्मरागोपशोभिता ।
आदित्यानां पुरी ख्याता नाम्ना चांशुमती शुभा ।।१३८।।
साध्यानां राजती दिव्या ख्याता वै कुसुमावती ।

दक्षिणेनेत्येव । कामवती रेवत्याः पुरीत्यसत् कामवती सौवर्णीति हि नामनी ।

वह्नेः पश्चिमदिग्भागे विश्वेषां रेवती पुरी ।।१३९।।

रेवत्याख्या, विश्वेदेवा यत्र स्थिताः ॥१३९॥

उसका नाम **'कृष्णाङ्गारा'** है । पश्चिम दिशा वरुणराज की नगरी जिसे **'शुद्धवती'** कहते हैं, विराजमान है । वायुकोण में गन्धवहा नामक वायु की नगरी है । उत्तर में सोम की **'महोदया'** नामक बड़ी रमणीय नगरी विद्यमान है । ईशान कोण में ईशान की नगरी है । उसे **'यशोवती'** कहते हैं । इन सभी के उत्तर में एक से एक सुन्दर और आकर्षक पुरियाँ हैं । इनकी संख्या २६ है ॥१३२-१३६॥

अमरावती के दक्षिण में **कामवती** नामक आप्सराओं की नगरी है । उसके दक्षिण भाग में सिद्धों की नगरी है । उसका नाम **'सौवर्णी'** है । नाम के अनुसार ही यह सुन्दर है । उसके भी दक्षिण भाग पद्मराग मणियों से निर्मित रमणीय नगरी है । यह आदित्यों की पुरी के रूप में विज्ञात एक नगरी है, जिसे शुभा **'अंशुमती'** कहते हैं । साध्यों की नगरी जो रजत निर्मित राजमान है, बड़ी दिव्य है । इसका नाम **कुसुमावती** है । कुछ लोग कामवती को रेवती की पुरी कहते हैं, यह असत् पक्ष है । वास्तविकता का प्रमाण ग्रन्थ का ही यह भाग है । अग्नि के नगर **'तेजोवत्'** के पश्चिम की ओर विश्वेदेवों की एक सुन्दर नगरी है । उसे **रेवती** पुरी कहते हैं ॥१३७-१३९॥

तस्यास्तु पश्चिमे देवि दिव्या वै विश्वकर्मणः ।

दिव्येति नाम्ना ।

पश्चिमे धर्मराजस्य मातृनन्दा पुरी स्मृता ।।१४०।।

क्रीडन्ति मातरस्तत्र मधुपानविघूर्णिताः ।

रुद्राणां पश्चिमे तस्या रोहिता नाम काञ्चनी ।।१४१।।

तत्र शूलधरा रुद्रा यमस्य परिचारकाः ।

तस्याः पश्चिमतो ज्ञेया नाम्ना गुणवती पुरी ।।१४२।।

एकादशानां रुद्राणां वज्रप्राकारतोरणा ।

निर्ऋतेः पूर्वभागे तु पिङ्गला नाम वै पुरी ।।१४३।।

स्वकर्मसंज्ञा देवेशि पिशाचास्तत्र संस्थिताः ।

स्वेन कर्मणा पिशिताशनेन निमित्तेन संज्ञा येषाम् ।

नैर्ऋत्युत्तरसामीप्ये पुरी कृष्णावती स्मृता ।।१४४।।

निस्त्रिंशा नाम तत्रैव वसन्ति राक्षसाः सदा ।

नैर्ऋत्या दिश उत्तरं यत्सामीप्यं समीपं तत्र ।

तस्या अप्युत्तरे भागे पुरी हैमी सुखावती ।।१४५।।

इसके भी पश्चिम की ओर विश्वकर्मा की नगरी है, जिसका नाम ही **'दिव्या'** है । नामानुरूप यह दिव्य नगरी है । इसके भी पश्चिम में **'मातृनन्दा'** नाम की धर्मराज की नगरी है । नाम के अनुरूप ही मातृजातीय कामिनियाँ मधुपान से प्रभावित विभिन्न प्रकार की काम क्रीडाओं में निरत रहती हैं, इसके भी पश्चिम दिग्विभाग में रुद्रों की पुरी अवस्थित है । इसका नाम **रोहिता** है । यह काञ्चनी नगरी अतीव कमनीय है ॥१४०-१४१॥

इस नगरी में शूलधारी रुद्र यम के परिचारक माने जाते हैं । इसके भी पश्चिम में **गुणवती** पुरी स्थित है । वज्रप्राकारों से समन्वित तोरणवती यह नगरी एकादश रुद्रों के अधीन अवस्थित है । निर्ऋति नगरी के पूर्व भाग में पिङ्गला नामक पुरी है । इससे पिशित के अंश रूप स्वकर्म से पहचाने जाने वाले पिशाच ही रहते हैं । निर्ऋति के सटे उत्तर दिग्भाग में **'कृष्णावती'** नाम की नगरी है । इसमें 'निस्त्रिंश' नामक राक्षस ही निवास करते हैं । इससे भी कुछ उत्तर **सुखावती** नामक स्वर्ण नगरी है । इसमें अनेकानेक भृत्यों से भरे पूरे परिवार के

मित्रो वसति तत्रैव बहुभृत्यजनावृतः ।

सुखावतीति नाम्ना ।

तस्या अप्युत्तरे हैमी गान्धर्वी नाम विश्रुता ।।१४६।।

वसन्ति तत्र गन्धर्वा दिव्यकन्यासमावृताः ।

दशकोटिसहस्राणि तेषां संख्या प्रकीर्तिता ।।१४७।।

भूतानां सिद्धसेना तु वरुणस्य तु दक्षिणे ।

हेमसंज्ञा वसूनां तु वरुणस्यापि चोत्तरे ।।१४८।।

वरुणस्येति तत्पुर्याः ॥१४८॥

तस्यास्तूत्तरतो देवि नाम्ना सिद्धवती पुरी ।

सर्वविद्याधराणां तु सा पुरी परिकीर्तिता ।।१४९।।

वायोर्दक्षिणतो देवि सिद्धा नाम पुरी स्मृता ।

वसन्ति किन्नरास्तत्र पुरैर्हेमार्कसप्रभैः ।।१५०।।

वायोः पूर्वेण गान्धर्वी हैमी चित्ररथस्य तु ।

गन्धर्वराजमुख्यस्य दिव्यगन्धर्वनादिता ।।१५१।।

साथ मित्र निवास करते हैं । इसके भी उत्तर भाग में गान्धर्वी नामक विख्यात नगरी अवस्थित है ॥१४२-१४६॥

इस नगरी में गन्धर्व जाति के लोग निवास करते हैं । इन लोगों की कन्यायें ही इनके यशोवर्धन के आधार हैं । अतः इन कन्याओं के साथ गन्धर्व सुखपूर्वक निवास करते हैं । इनकी संख्या भी दश हजार करोड़ मानी जाती है । वरुण की पुरी के धुर दक्षिण में भूतों की सिद्धसेना नामक नगरी है और वरुण नगर के उत्तर भाग में वसुओं की नगरी हेमवती है ॥१४७-१४८॥

हेमवती के उत्तर में सिद्धवती नामक नगरी है । इसमें विद्याधर देव जाति के नागरिक निवास करते हैं । वायव्यकोण के दक्षिणी भाग में सिद्धा नामक नगरी है । इसमें किन्नर लोग निवास करते हैं । किन्नरों के ये नगर स्वर्णनिर्मित हैं । इनसे निकलने वाली प्रकाश-रश्मियाँ सूरज की आभा को भी अतिक्रान्त करती हैं ॥१४९-१५०॥

वायु के पूर्वभाग में चित्ररथ नामक गन्धर्वराज की हैमी गान्धर्वी नगरी अवस्थित है । गन्धर्वराज के प्रमुख की यह राजधानी है । यह दिव्य गन्धर्वों के

आस्ते भगवती साक्षात्सप्तस्वरविभूषिता ।
ग्रामत्रयपरीधाना जातिमेखलमण्डिता ।।१५२।।
मूर्च्छनातानचित्राङ्गी नानातालकलोदया ।
लक्षणव्यञ्जनोपेता मध्यमेनावगुण्ठिता ।।१५३।।
गन्धर्वैर्गीयमाना सा तत्र देवी सरस्वती ।
नारदाद्यैश्च ॠषिभिर्नागकिन्नरसेविता ।।१५४।।

ग्रामाः षड्जमध्यमगान्धाराः । षाड्जीनन्दयन्त्याद्या जातयोऽष्टादश, ता एव मेखलाः । स्वरा मूर्च्छन्ति गुम्फनया समुच्छ्रायं नीयन्ते याभिस्ता मूर्च्छना उत्तरमन्द्राद्याः–

'क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्च्छनेत्यभिशब्दिताः' । (२८/३४)
इति भरतनाट्यशास्त्रे लक्षिता एकविंशतिः, तास्तायन्ते विस्तार्यन्ते यैस्ते तानाः एकोनपञ्चाशत् पञ्चत्रिंशच्च । यदुक्तं तत्रैव–

गायन से रागिनीमय लगती है । इसमें सातों स्वरों के सरगम से साम गानरता साक्षात् भगवती सरस्वती निवास करती हैं । भगवती सरस्वती का परिधान षड्जमध्यम गान्धार रूप रागिनी के तीन 'ग्राम' हैं । १८ 'जाति' संज्ञा से विभूषित मृदुल आरावों से वह महीयसी देवी मण्डित रहती हैं । मूर्च्छना के मन्द्रादि के साक्षात्कार, तानों के तनन से सरस्वती के अङ्ग चित्राकार प्रतीत होते हैं । तालतान की कलित कलाओं से नित्योदित लालित्य को वे प्रतीक हैं । लक्षणा और व्यजना के स्वर वहाँ अनवरत फूटते रहते हैं । सरगम का मध्यम स्वर वातावरण को अवगुण्ठित करता है । उनके साथ गन्धर्व कन्यायें गान मग्न रहती हैं । ऐसे रागरसालय में देवी सरस्वती अपने अस्तित्व से उस पुरी को पुलकित करती हैं । नारद आदि देवर्षि, अनेकानेक ॠषि, नाग और किन्नरों का योगदान स्वरयोग का स्वारस्य वहाँ रस भर देता है ।

इस सन्दर्भ में भरतनाट्यशास्त्र की कुछ पारिभाषिक शब्दावलियाँ प्रयुक्त हैं । आचार्य क्षेमराज ने कुछ शब्दों का विवरण दिया है । जैसे–

मूर्च्छना–सातों स्वर जहाँ क्रमिक से गायन में प्रयुक्त होते हैं, ऐसी स्वर-सरणी मूर्च्छना कहलाती हैं । इनके उत्तर, मन्द्र आदि कई भेद होते हैं । भरत-नाट्यशास्त्र में ये भी २१ परिगणित हैं ।

तान–मूर्च्छनाओं के माध्यम से स्वरों का तनन तान कहलाता है । इनके ४९ और ३५ भेद प्रसिद्ध हैं ।

'षट्पञ्चस्वरकास्ताना...............'। (२८/३४)

इत्युपक्रम्य 'तत्र मूर्च्छनाश्रयास्तानाश्चतुरशीतिरेकान्नपञ्चाशत्षट्स्वरा:, पञ्चत्रिंशत्पञ्च-स्वरा:' इंति । तालाश्चञ्चत्पुटाद्या यत्यात्मका: । कलास्तु तालाक्षररूपा गुरुलघु-मात्रा: । लक्षणानि-

'भूषणाक्षरसङ्घातौ शोभोदाहरणे तथा' ।

इत्यादीनि षट्त्रिंशत् । व्यञ्जनेति व्यज्यन्ते येषु गीतकविशेषेषु तैरुपेता । मध्य-मेनेति मध्यमाख्येन स्वरेण श्रव्यतातिशययोगादवगुण्ठिता । नायिकापक्षे रूपकानां श्लेषच्छाया स्पष्टा ॥१५४॥

इस विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि, 'स्वरों को छ: और पाँच सरणियों में बाँटकर गायन से तान बनते हैं' । वस्तुत: तान मूर्च्छना पर ही निर्भर होते हैं । इनके ८४, उनचास, भेदों में छ: स्वरों का प्रयोग होता है और ३५ भेदों में पाँच स्वर ही प्रयुक्त होते हैं ।

ताल—यति रूप होते हैं । इसमें स्वरों के ऐसे पुट होते हैं, जो मानों लहराते हुए ध्वनिपुट पर बन्द होकर फिर लहर उठते हैं । चञ्चत्पुट शब्द इसका विशेष है ।

कला—ताल के अक्षरों के उच्चारण में उच्चावच गुरु लघु रूप मात्रा होती है । इनकी संख्या ३६ मानी जाती है । ये अक्षरों के सङ्घात में व्यक्त होती हैं और राग की शोभा की हेतु मानी जाती हैं ।

लक्षणा और व्यञ्जना

अपने नामों के अनुरूप गीतों से व्यक्त होने वाली रागशास्त्र की वे ध्वनियाँ हैं, जो श्रोताओं को चमत्कृत कर जाती है ।

मध्यम—स्वर का नाम । षड्ज, ऋषभ, गान्धार और मध्यम ये प्रसिद्ध स्वर है । इनके साथ पञ्चम, धैवत और निषाद ये सातों स्वर तन्त्री के कण्ठ से समुत्थित होकर स्वरशास्त्र के महिमा को मण्डित करते हैं । सा रे ग म प ध नि इनके उच्चारण के क्रम सरगम कहलाते हैं । मध्यम से अवगुण्ठित स्वर के आकर्षण को कोई कलाकोविद ही पहचान पाता है । गायन विद्या के गन्धर्वशास्त्र की ये विधायें सारस्वतवरदान रूप मानी जाती हैं । इस पूरे सारस्वत सन्दर्भ में यदि नायिका पक्ष को अन्तर्गर्भित माना जाय, तो श्लेषा-लङ्कार की ललामता का आयाम रसज्ञ सहृदय को रसविभोर करता प्रतीत होता है ॥१५१-१५४॥

तस्याः पूर्वेण चित्रा वै तुम्बुरोर्नारदस्य च ।
सोमस्य पश्चात्प्रमदा गुह्यकानां पुरी स्मृता ।।१५५।।
पूर्वेणैव तु सोमस्य नाम्ना चित्रवती पुरी ।
सर्वधातुमयी चित्रा कुबेरस्य महात्मनः ।।१५६।।

स हि तत्र–

षड्विंशतिसहस्रैस्तु कोटीनां परिवारितः ।
यक्षाणामुत्तमः श्रीमानास्ते भोगैरनुत्तमैः ।।१५७।।

युक्तः ॥१५७॥

तस्याः पूर्वे शुभा नाम्ना जाम्बूनदमयी पुरी ।
तत्र वै कर्मदेवास्तु

ते च–

देवत्वं कर्मणा गताः ।।१५८।।

वाजपेयादिना ॥१५८॥

पश्चिमेनेशराजस्य विष्णोर्वै श्रीमती पुरी ।
तत्रास्ते श्रीपतिः श्रीमानतसीपुष्पसन्निभः ।।१५९।।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः ।
ईशस्य दक्षिणे भागे नाम्ना पद्मवती पुरी ।।१६०।।

हैमीपुरी के पूर्व दिशा में तुम्बरु और नारद की पुरी **चित्रा** का अवस्थान है । उत्तर भाग में गुह्यकों की **'प्रमदा'** पुरी और उसके कुछ और पूरब में कुबेर की राजधानी **चित्रवती** है । यह सर्वधातुमयी पुर सर्वातिशायिनी समृद्धि से भर-पूर मानी जाती है । यह यक्षों की नगरी २६ हजार करोड़ परिवारों से आवृत है । इसमें उत्तम भोगों की पूरी व्यवस्था है ॥१५५-१५७॥

इसके पूर्वी क्षेत्र में एक ऐसी नगरी है, जिसमें अपने कर्म से देवत्व को प्राप्त करने वाले कर्म देव नामक देव श्रेणी के लोग रहते हैं । इसको **जाम्बूनद-मयी** पुरी कहते हैं । ईशान के कोण ईशान से पश्चिमी भाग में सर्वविश्रुता **श्रीमती** पुरी अवस्थित है । यहां विष्णु का वैकुण्ठ धाम है । इसी में अतसीपुष्प सुन्दर भी विष्णु देव निवास करते हैं ॥१५८-१५९॥

शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण करने वाले, पीताम्बर, भगवान् जनार्दन विष्णु श्रीपति उसी पुरी में निवास करते हैं ।

महापद्मोपविष्टस्य पद्ममालाधरस्य तु ।

पद्मपत्रायताक्षस्य ब्रह्मणः पद्मजन्मनः ।।१६१।।

सत्यलोकनिवासिब्रह्मांशावतारस्य ॥१६१॥

तस्या दक्षिणतो देवि नाम्ना कामसुखावती ।

अश्विनौ तत्र देवेशि

देववैद्यौ ।

तथा धन्वन्तरिः स्थितः ।।१६२।।

गोवैद्यः ॥१६२॥

उत्तरे त्वमरावत्या महामेघेति विश्रुता ।

विनायकानां सा दिव्या वसतिस्तत्र कल्पिता ।।१६३।।

ते हि पूर्वं

दशकोटिसहस्राणि वीर्यवन्तः शुभास्तथा ।

विनायका महादीप्ता अग्निज्वलिततेजसः ।।१६४।।

असुराणां वधार्थाय अङ्गुष्ठान्निर्मिता मया ।

अङ्गुष्ठात् कालाग्निस्थानान्निर्मितत्वाद्दीप्तत्वमेषाम् ।

ईशान कोण के दक्षिण भाग में सत्यलोक निवासी ब्रह्म के अंशावतार पद्मजन्मा ब्रह्मा की पुरी है । इसका नाम **पद्मवती** है । ये ब्रह्मा महापद्म में ही उपविष्ट हैं । पद्म की ही माला धारण करते हैं । पद्मपत्र के समान लम्बी चौड़ी सुन्दर इनकी आँखे हैं । यह विश्व के विधाता हैं ।

इस पुरी के दक्षिण भाग में **कामसुखावती** नामक नगरी है । यहाँ अश्विनी कुमार नामक युगलदेव रहते हैं । ये देवताओं के वैद्य हैं । वहीं पर देवताओं के स्वर्ग के वैद्य श्री धन्वन्तरि भी निवास करते हैं ॥१६०-१६२॥

अमरावती के उत्तर भाग में अवस्थित विनायकों की विख्यात बस्ती है । उसका नाम **महामेधा** है ॥१६३॥

ये विनायक बड़े पराक्रमी, अग्नि के समान तेजवन्त और महादीप्तिमन्त दस हजार करोड़ की संख्या में रहते हैं । असुरों के वध के लिये भगवान् भैरव ने ही अङ्गुष्ठ से उत्पन्न किया था । अङ्गुष्ठ शरीर में कालाग्नि रुद्र के स्थान पर निर्मित है । इसीलिये कालाग्नि रुद्र के प्रभाव से ये विनायक इतने दीप्तिमन्त

उपसंहरति–

एवंविधैरधश्चोर्ध्वं मेरुः पुरवरैर्वृतः ।।१६५।।

ऊर्ध्वं ब्रह्मसभाया ज्योतिष्कगतत्र्यम्बकपुरेण ॥१६५॥

एताश्च

पुर्यश्च याः समाख्याता मेरोश्चैव समन्ततः ।
पुरकोटिसहस्रैस्तु सर्वास्ताः सम्भृताः प्रिये ।।१६६।।
सर्वैश्वर्यसुसम्पूर्णाः सर्वरत्नसमुज्ज्वलाः ।
दिव्यस्त्रीभिः समाकीर्णा दिव्यपुंभिः समाकुलाः ।।१६७।।

तत्र–

आनन्दः सततं देवि देवानां च पुरे पुरे ।
विमाननगरारामैश्चतुरोद्यानमण्डपैः ।।१६८।।
छत्रध्वजपताकाभिर्गजवाजिसमाकुलैः ।
दुन्दुभीनन्दिशब्दैश्च शङ्खकाहलनिःस्वनैः ।।१६९।।
गीतनृत्तैस्तथाकीर्णं देवानां मन्दिरं सदा ।

होते हैं। इस प्रकार मेरु पर्वत ऊपर नीचे चारों ओर नगरों से पूरी तरह से आवृत है। ऊर्ध्व में ब्रह्मसभा की ज्योतिर्मण्डल में स्थित त्र्यम्बकपुर अवस्थित है ॥१६४-१६५॥

मेरु पर्वत के चारों ओर जितनी पुरियाँ बसी हुई हैं, वे सभी अवान्तर पुरों की करोड़ों की संख्या निवास करती है। अर्थात् ये पुरियाँ ही पुरों से भर-पूर हैं। ये नगर भी समस्त ऐश्वर्यों से सम्पूर्ण है। रत्नों की वे खान हैं और रत्नों की चमक से नित्य चमत्कृत हैं। वहाँ दिव्य स्त्रियाँ निवास करती हैं और उनमें दिव्य पुरुष भी विहार करते हैं ॥१६६-१६७॥

देवताओं की पुरियों ये सदा आनन्द सुधा की वर्षा होती रहती है। विमानों से उनकी यात्रायें होती हैं। नगर उद्यानों और चतुरजनों के चारुतर उद्यानों से तथा मण्डपों से भरे हुए हैं। राजमहलों पर ध्वज लहरा रहे होते हैं। घरों में छत हैं। छोटे घरों पर पताकायें फहरा रही हैं। घरों के आगे घोड़ों और हाथियों का हजूम बँधा हुआ है। दुन्दुभियों का निनाद चतुर्दिक् सुनायी दे रहा है। देव मन्दिरों की बड़ी संख्या इन नगरों में है ॥१६८-१६९॥

भारतवर्ष में रहते हुए इष्टापूर्त्त की प्रक्रिया पूरी करते हुए जीवन जी रहे हैं और भगवान् महेश्वर की आराधना में लगे रहते हैं, वे ही मेरु स्थित इन नगरों

आकीर्णमाकुलम् । अतश्च–

इष्टापूर्तरता देवि ये नरा पुण्यभारते ।।१७०।।

त्र्यम्बकं सकृदर्चन्ति मेरुं गच्छन्ति ते नराः ।

पुण्यजनाश्रये वक्ष्यमाणे भारते वर्षे इष्टापूर्ते रता ये च त्र्यम्बकं महेश्वरं सकृदेकवारं हेलामात्रेण अर्चयन्ति ते मेरुं प्राप्नुवन्ति, गृहीतदीक्षास्तु सततं तदर्चा-परा मुच्यन्त एव ।

येऽपि–

गङ्गातोयसुसंसिक्ताः

तेऽपि–

क्रीडन्ति सुरसत्तमाः ।।१७१।।

प्राप्तप्रधानसुरभावाः ॥१७१॥

एवं श्रुतगङ्गाप्रभावा तज्जिज्ञासार्थं श्रीदेव्युवाच–

कथं गङ्गा समुत्पन्ना सुरसिद्धनमस्कृता ।

कथयस्व प्रसादेन समासात्सुरसत्तम ।।१७२।।

श्रीभैरव उवाच–

गङ्गायाश्च समुत्पत्तिं कथयिष्यामि सुव्रते ।

तां वक्तुमुपक्रमते–

जगन्माता महादेवि मम पत्नी पुरा हि सा ।।१७३।।

के निवास का सौभाग्य प्राप्त करते हैं । जो दीक्षा के द्वारा दीक्षित हैं, वे सतत महेश्वर की आराधना के फलस्वरूप वे मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥१७०॥

जो पुरुष गंगा के पावन नीर में श्रद्धा पूर्वक डुबकी लगाते हैं, वे देव बन-कर देवयोनियों में विहार करते हैं; क्योंकि जाह्नवी के प्रभाव से वे देवत्व प्राप्त कर लेते हैं ॥१७१॥

श्री देवी उमा गङ्गा-विषयक बात सुनकर प्रसन्न हो उठीं । उनमें जिज्ञासाओं के अङ्कुर निकले । उन्होंने पूछा–हे देवेश्वर ! आपने अभी सुरस्रोतस्विनी स्वर्धुनी की चर्चा की है । प्रभो ! मेरे ऊपर आप की महती कृपा है । पुनः कृपा कर हमें यह बताने का अनुग्रह करें कि, सुरसिद्ध नमस्कृता देवी गङ्गा कैसे उत्पन हुई ।

भगवान् भैरव ने कहा–देवि ! गङ्गा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मैं तुम्हें अच्छी तरह बताऊँगा । सुनो, प्रिये ! तुम तो मेरे रहस्यात्मक रूपों से पूरी तरह परिचित हो ! तुम यह भी जानती हो कि, आदिसर्ग में मेरी परा व्याप्ति का रूप

मम परया व्याप्त्या विश्वकारणस्य परयैव व्याप्त्या स्थिता पत्नी क्षयाख्या शक्तिरत एव पुरा जगन्माता आदिसर्गे विश्वप्रसरहेतुः ।

स्वातन्त्र्याद्गृहीतरुद्रलोकाधिष्ठातृरुद्रमूर्तेस्तु असौ–

मम नेत्रोदकं चैव

आनन्दाश्रु इत्यर्थः । यस्मादाकृतिमत्या प्रणयकेलिवशेन कदाचित्–

करजैश्छादिते मम ।
पुनरुद्घाटिते नेत्रे जगन्मातः पुरा त्वया ।।१७४।।
मन्नेत्रेभ्योऽस्रवत्तोयं त्वदीयाङ्गुलिभिः प्रिये ।

एवं चाभिदधदुमापतिरूर्ध्वस्थरुद्रलोकवर्तिरुद्रभट्टारकाभेद आत्मनः, तत्रस्थ-देव्यभेदश्चोमाभट्टारिकाया इत्यादिशति ।

यच्च तत्तोयमङ्गुलिभिः स्रुतम्, तदेव–

दशधा निःसृता गङ्गा

तासां मध्यात्–

क्या था ? विश्व के आदि कारण रूप उस मेरी पराव्याप्ति में भी परारूप से मेरी पत्नी के रूप में एक शक्ति काम कर रही थी । उसका नाम क्षया था । वह जगन्माता आदि सर्ग में विश्व प्रसर की प्रथम हेतु बनी । उस समय उसका नाम क्षया था ।

स्वातन्त्र्य के प्रभाव से जब मैंने रुद्रलोक के अधिष्ठाता रुद्र की मूर्त्ति धारण कर रुद्र रूप में स्फुरित हुआ, उस समय गङ्गा मेरे नेत्रों की नीर थी । वे आनन्द के अश्रु थे । उससे मेरे नेत्र तरल थे । तरल नेत्रों से आकृतिमती रुद्राणी रूप तुमको मैंने ज्यों ही देखा, तुम्हारी प्रणयवती कामकला में लालित्य उद्वेलित हो उठा । तुमने अपनी अङ्गुलियों से मेरी आँखें बन्दकर दीं । अङ्गुलि नखों का आच्छादन भी मेरे लिये आनन्द प्रद था ।

हे जगज्जननी ! तुमने मेरी आँखों से अङ्गुलियों को ज्यों ही हटाया, वे आनन्दाश्रु छलक उठे और तुम्हारी मृदुल अङ्गुलियों में वे जा लगे । तुमने दोनों हाथों से मेरी दोनों आँखें ढकी थीं । अतः तुम्हारी दशों अङ्गुलियों में लगकर वह तरल नेत्र जल दश भागों में विभक्त हो गया ।

बस सृजन में एक चमत्कार घटित हो गया । गङ्गा दश भागों में विभक्त हो गयीं । उस पावन जल में रुद्र के प्रणव का पवित्र तारल्य था । तुम्हारे प्रणय की प्रेरणा थी । अतः गङ्गा वहाँ रुक न सकी । वहाँ से सात भागों में वह उछल पड़ी । मेरा पहला रुद्रावतरण कपालावरण कहलाता है । वहाँ कपालीश के रूप

कपालावरणे मम ।।१७५।।

सप्तैव संस्थितास्तत्र

कान् प्रजापतीन् पालयतीति कपालो रुद्रस्तदावरणे तल्लीके ब्रह्माण्डोर्ध्व-कपालोपलक्षितावरणे रुद्रलोके इत्यर्थः । यद्वक्ष्यति–

'वरेण्या वरदा चैव वरिष्ठा वरवर्णिनी ।
वसिष्ठा च वराहा च वरारोहा च सप्तमी ।।
गङ्गा ह्येताः समाख्याता रुद्रलोकवहाः सदा' । इति । (१०/५४५)

तिसृणां मध्यात्तु–

एका विष्णुपुरे स्थिता ।

द्वितीया ब्रह्मलोकोर्ध्वे

ब्रह्मलोकस्य सत्यलोकस्य यदूर्ध्वम्–

'कोटियोजनमानेन सत्यलोकोपरि प्रिये ।
ब्रह्मासनमिति ख्यातं जपासिन्दूरसप्रभम्' ।।

इति यद् ब्रह्माणो निवासस्थानं तत्र ।

तृतीया सत्यलोकगा ।।१७६।।

में विराजमान हूँ । 'क' अर्थात् प्रजापतियों को पालन करने वाले रुद्र ही कपा-लेश या कपालीश रुद्र नाम शास्त्रों ने दिया है । उस कपालीश रुद्रलोक में गङ्गा (१०/५४५ के अनुसार) 'वरेण्या, वरदा, वरिष्ठा, वरारोहा, वरवर्णिनी, वशिष्ठा, वराहा और वरारोहा इन सात नामों से आज भी बहती हैं' ।

बच गयीं तीन अङ्गुलि वाली जलधारायें । उनमें से एक विष्णुपुरी अर्थात् श्री पति पुरी में जा गिरी । वहीं उसका प्रवाह विष्णुपुर को पावन करने लगा ।

उसका दूसरा स्फुरण ब्रह्मलोक के ऊर्ध्वभाग के क्षेत्र में प्रवाहित हो उठा । यह पद्मवती पुरी वाला ब्रह्मांशावतार का ब्रह्मलोक नहीं वरन् सत्यलोक में अवस्थित ब्रह्मलोक का ऊर्ध्वभाग है, जहाँ यह दूसरा प्रवाह प्रवाहित हो उठा । उसके विषय में लिखा है कि,

हे प्रिये ! करोड़ योजन मान में सत्यलोक के ऊपर ब्रह्म का सिंहासन है । यह बड़ा प्रसिद्ध आसन है । जपाकुसुम और सिन्दूर की आभा से भास-मान है । यह प्रवाह उस ब्रह्मासन को प्रक्षालित करते हुए प्रवहमान है ।

तृतीयैव प्राकाम्यवशात्

स्वर्गे चैव

किञ्च,

पुनः सा वै संस्थिता सोममण्डले ।

सोमलोके । एषैव तु–

सोमाच्चैव विनिःसृत्य पुराकाशे व्यवस्थिता ।।१७७।।

सोमात् सोमलोकात् ।।१७७।।

ततोऽहं संस्तुतो देवि ब्रह्मविष्णुपुरःसरैः ।

यथा–

गङ्गा नदीं महापुण्यां मर्त्यानां हितकाम्यया ।।१७८।।

अवतार्य महादेव मर्त्यलोकं विसर्जय ।

आकाशादित्यर्थात् ।

ततो मया सुरेशानि प्रोक्ता सा त्वपराजिता ।।१७९।।

लोकानां तु हितार्थाय आगच्छ सुरसुन्दरि ।

अथासौ–

आगत्य मम मूर्धानं

ममेति ज्योतिष्कशिखरगतस्य ।

मेरुमूर्ध्नि पुनर्गता ।।१८०।।

तीसरी धारा सत्यलोक में बहने लगी, किन्तु उसमें इतना वेग था कि वह सत्यलोक से स्वर्ग में आ गिरी । स्वर्ग से वह सोममण्डल में पहुँची । सोम मण्डल में वह अपना उद्वेग नहीं सम्भाल सकी । यह सोम मण्डल से निकल कर आकाश में अव्यवस्थित हो रही हैं ।।१७१-१७७।।

उसी समय मेरे पास ब्रह्मा, विष्णु पुरःसर देवताओं ने मुझसे प्रार्थना की और कहा—देवाधिदेव ! यहाँ पुण्यप्रदा पावन गङ्गाप्रवाह इस समय आकाश में ही अव्यवस्थित है । भगवन् ! इसे इस अवस्था से उबारकर और अवतरित कर मर्त्यलोक में विसर्जित करने की कृपा करें ।

हे देवेश्वरि ! देववर्ग की यह प्रार्थना सुनकर मैंने उस 'अपराजिता' प्रवाह शक्ति रूपा गङ्गा से कहा—हे सुरसुन्दरि गङ्गे ! लोककल्याण के उद्देश्य से तुम मर्त्यलोक को अपने प्रवाह से कृतार्थ करो और आकाश से उतर कर तुम धरा-धाम पर अवतीर्ण होने की कृपा करो ।

तस्मान्निर्गत्य देवेशि चतुर्दिक्षूदधिं गता ।

सा च–

पूर्वे सीता समुद्दिष्टा सुवहा दक्षिणेन तु ।।१८१।।

सुनन्दा पश्चिमे भागे भद्रसोमा तथोत्तरे ।

बहुपर्वतादिव्यवहितचतुर्दिग्गतोदधिप्राप्तिर्गङ्गायाः प्राकाम्यादिति मन्तव्यम् ।

प्रसङ्गाद् गङ्गामाहात्म्यमुक्त्वा प्रकृतमाह–

मन्दरस्तु महादेवि गन्धमादनसंज्ञकः ।।१८२।।

विपुलश्च सुपार्श्वश्च पूर्वाद्या उत्तरान्तकाः ।

विष्कम्भाश्च समाख्याताः

'एतैर्भुवमवष्टभ्य मेरुस्तिष्ठति निश्चलः' । इति । (८/६०)

एषां पर्वतानाम्–

वर्णांश्चैव निबोध मे ।।१८३।।

उसी समय वह मेरी मूर्धा में आकर समा गयी । जटाओं के जाल से मैंने पुनः उसे निकाला और मेरु के शिखर की ओर प्रवाहित कर दिया । वहाँ से निकल कर वह चारों दिशाओं में स्थित चार समुद्रों में समाने के लिये प्रवाहित होने लगी ।

पूर्व दिशा में प्रवाहित उस देवी का नाम सीता पड़ा । दक्षिण में प्रवाहित गङ्गा 'सुवहा' नाम से बहने लगी । पश्चिम में प्रवाहित गङ्गा सुनन्दा बन गयी और उत्तर में बहने वाली इस नदी का नाम 'भद्रसोमा' पड़ा ।।१७८-१८१।।

मन्दर, गन्धमादन, विपुल, सुपार्श्व ये उन पर्वतश्रेणियों के नाम हैं, जो पूरब से उत्तर तक फैली हुई हैं । इनमें अनेकानेक विष्कम्भ भी हैं । विष्कम्भ दर्रो को कहते हैं, जहाँ श्रेणियाँ टूट कर नये सिरे से प्रारम्भ होती हैं । इन पर्वतों और विष्कम्भों से धरा को अवस्तम्भित करता हुआ मेरु पर्वतराज निश्चल खड़ा है ।

इन पर्वतों की रमणीयता प्रकृति के वरदान रूप में विश्व को प्राप्त है । कोई श्वेत, कोई पीत, कोई नील और इनमें से कोई अनार की लाली से ललित है । कहीं स्फटिक की शोभा है, तो कहीं सोने सा लुभावना माहौल है । कहीं महानीलमणि की नीलिमा है, तो कहीं पद्मराग का अनुराग है । इनके मान का उल्लेख यहाँ नहीं है । अतः हमें इलावृत को ही आधार बनाना चाहिये ।

सितं चैव हरिद्राभं नीलं दाडिमसप्रभम् ।

स्फटिकहेममहानीलपद्मरागसमा एते इत्यर्थः ।

एषां च पृथङ्मानस्यानुक्तत्वाद् भाविनवसहस्रेलावृताङ्गतैव मन्तव्या । तथा च श्रीकिरणायाम्–

'..........................इलावृतम् ।

मेर्वन्तं चतुरस्रं तु सहस्रनवसंयुतम्' ॥

इति तस्योक्तत्वाद् अर्थात्तदेकदेशता पादपर्वतानाम् ।

किञ्च,

प्राग्विष्कम्भसमीपे तु नाम्ना चित्ररथं वनम् ।।१८४।।
तत्रारुणोदकं नाम तडागं पद्ममण्डितम् ।
गन्धमादनसामीप्ये नन्दनं तु महावनम् ।।१८५।।
तस्य मध्येऽम्बुजच्छन्नं मानसं तु सरोवरम् ।
विपुलस्य समीपे तु वैभ्राजं तु महावनम् ।।१८६।।
सितोदं तस्य मध्ये तु तडागं विमलोदकम् ।
वनं पितृवनं नाम स्वपार्श्वस्य समीपतः ।।१८७।।
तस्यान्तस्तु महाभद्रं तडागं च मनोरमम् ।

अत्रैव–

कल्पद्रुमांश्च चतुरः कथयामि निबोध तान् ।।१८८।।

किरणाशास्त्र में लिखा है कि, इलावृत्त वह पर्वत है, जो मेरुपर्यन्त नव-सहस्र योजन मान वाला है । पाद पर्वतों के एक देश के रूप में यह पैमाना माना जा सकता है ।

इसी सन्दर्भ में यह जानना चाहिये कि, पूर्वी १–पहले विष्कम्भ के पास चित्ररथ नाम का वन है । वहाँ अरुणोदक नाम का विशाल तडाग विद्यमान है । उसमें पद्मों का साम्राज्य है ।

२–गन्धमादन के सामीप्य में नन्दन नाम का विशाल रमणीय अरण्य है । उसी के मध्य में विकसित अरविन्दों से व्याप्त मानस सरोवर है ।

३–विपुल के पास वैभ्राज नामक वन विभ्राजित है । इसके बीच में सितोदक नाम का तालाब है । उसमें निर्मल जल लहरा रहा है ।

४–सुपार्श्व नामक पर्वत के पार्श्वभाग में पितृवन नामक पावन वन है । उसके आन्तरिक भाग में महाभद्र नामक मनोरम तडाग है ।

इन्हीं चारों में चार कल्पवृक्ष हैं ॥१८२-१८८॥

मन्दरेऽथ कदम्बं स्यान्मस्तके तु व्यवस्थितम् ।
सहस्रयोजनायामं शाखापञ्चशतोच्छ्रितम् ।।१८९।।
पुष्पैः कुम्भप्रमाणैश्च भ्राजते तत्सुपुष्पितम् ।

कदम्बं वृक्षः । तच्च शाखाभिः सह सार्धसहस्रयोजनोच्छ्रायम् ।

तत्प्रमाणा स्मृता जम्बूर्गन्धमादनमूर्धनि ।।१९०।।
तस्याः फलसमूहोत्थो रसो ज्ञेयोऽमृतोपमः ।
तेन जम्बूनदी जाता प्रिये वेगवती भृशम् ।।१९१।।

तेनेति रसेन ।।१९१।।

स च–

मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य जम्बूमूलं विशेत्स्वकम् ।
तत्सम्पर्कात्समुत्पन्नं कनकं देवभूषणम् ।।१९२।।
तेन जाम्बूनदं लोके ज्ञायते भूषणोत्तमम् ।
तत्र वृक्षलतागुल्माः पक्षिणः श्वापदादयः ।।१९३।।

भगवान् इन चारों के नाम और उनके महत्त्व का ख्यापन कर रहे हैं–

१–पहले कल्पवृक्ष का नाम 'कदम्ब' है । यह मन्दर के क्षेत्र में अवस्थित है । यह न कहकर यह कहना उचित होगा कि, यह उसके मस्तक पर ही विराजमान है । इसका आयाम एक हजार योजन है । यहाँ योजन की परिभाषा बदलनी होगी । पाँच सौ ऊँची शाखाओं में इसका उच्छ्राय मानो सभी वृक्षों की ऊँचाईयों को अतिक्रान्त करता है ।।१८९।।

२–इसके कुसुम कुम्भों के सदृश आकर्षक हैं । इसी के नाम के बराबर मान्यता वाला 'जम्बू' नाम का वृक्ष गन्धमादन पर्वत के मस्तक पर फैला हुआ है । इसके फल इतने रसीले होते हैं कि, वे अमृत के समान प्रतीत होते हैं । उनसे रसों का विगलित द्रव जम्बूनदी बन कर बह रहा है । यह वेगवती नदी है । फलों के स्राव से प्रवहमान विश्व इतिहास की यह पहली नदी है ।।१९१।।

इतना ही नहीं मेरु की प्रदक्षिणा कर जब यह नदी अपने जम्बू वृक्ष के मूल में प्रवेश करती है, तो उस समय चमत्कार घटित होता है । पूरा का पूरा क्षेत्र सोना बन कर जम जाता है । परिणाम स्वरूप जम्बूरस का घनीभूत सोना जाम्बूनद कहलाने लगता है । सोने का यह एक पर्याय है । इससे सुन्दर आभूषण निर्मित होते हैं । वहाँ के अन्य वृक्ष, तृण, गुल्म लतायें और यहाँ तक कि श्वापद जंगली बर्बर जानवर भी सोने के समान हो गये हैं । वहाँ के निवासी भी चीनियों की तरह पीले पीले ही जन्मते मरते हैं ।।१९२-१९३।।

जाम्बूनदमयाः सर्वे ये चान्ये तत्र वासिनः ।

किञ्च,

विपुलेऽपि तथाश्वत्थः केतुमाल इति श्रुतः ।।१९४।।

तथेति तत्प्रमाणकः ॥१९४॥

केतुमालसंज्ञां व्याचष्टे–

तस्येन्द्रेणासुराञ्जित्वा रत्नमाला प्रलम्बिता ।

तेनासौ केतुमालेति ख्यातः सिद्धनिषेवितः ।।१९५।।

किञ्च,

न्यग्रोधश्च सुपार्श्वे तु तत्तुल्यः परिकीर्तितः ।

प्रमाणमहत्त्वाभ्याम् । तदित्थम्–

अनेकगुणसम्पन्नो मेरुः ख्यातः समासतः ।।१९६।।

अथ यथायं समासत उक्तः–

तत्पार्श्वस्थान् प्रिये देशान् कथयामि समासतः ।

तत्रादौ–

मेरुमध्याच्चतुर्दिक्षु लक्षार्धं तु समासतः ।।१९७।।

लवणोदधिपर्यन्तं जम्बुद्वीपं समन्ततः ।

३–विपुल पर्वत पर केतुमाल नामक पीपल का पेड़ भी इसी कल्पवृक्ष श्रेणी का ही वृक्ष है । इसकी एक पुरानी कथा है । इन्द्र ने असुरों पर विजय प्राप्त की थी । उसी विजय की खुशी में यहाँ ध्वज फहराया था और उसी पर एक रत्नों की माला भी प्रलम्बित थी । इसी आधार पर यह अश्वत्थ भी लगाया गया था । उसी समय से इसका नाम केतुमाल पड़ गया था । यहाँ सिद्ध लोग निवास करते हैं ॥१९४-१९५॥

४–सुपार्श्व पर्वत पर एक न्यग्रोध अर्थात् बरगद का वृक्ष इसी अश्वत्थ के समान ही विशाल उच्छ्राय वाला है । इस प्रकार समास दृष्टि से देख कर यह स्पष्ट ही कहा जा सकता है कि, मेरु पर्वत अनन्त गुणों का आगार है और सृष्टि चक्र का प्रधान पर्वत है ॥१९६॥

देवि ! मेरु के आस-पास रहने वाले देशों के विषय में भी तुम्हारी जिज्ञासा हो सकती है । मैं तुम्हारे पूछने के पहले ही इस विषय में बताना चाहता हूँ ।

मेरुमूलमध्यात् पञ्चाशत्सहस्राणि, तत्पार्श्वद्वयकलनया लक्षं भवति ।

पर्वतान्तरितास्तत्र नव भागा भवन्ति हि ।।१९८।।

तत्रेति जम्बुद्वीपे । भागाः खण्डाः । तथा हि–

दक्षिणे चैव दिग्भागे त्रयो ज्ञेया महीधराः ।
निषधो हेमकूटश्च हिमवानिति ते त्रयः ।।१९९।।

'निषिद्धो यत्र वै तार्क्ष्यः शेषाहिं हन्तुमुद्यतः' । इति ।

'हेमकूटस्तथा सोऽद्रिर्यत्र दत्तः प्रजापतेः ।
सुवर्णस्य महाकूटो यागार्थं धनदेन तु' ।। इति ।

'.......................हिमवान् हिमकूटवान् ।
रत्नाढ्योऽपि हिमप्रायस्तेनासौ हिमवान् गिरिः' ।।

इति श्रीपरायां निरूपितम् ।।१९९।।

किञ्च,

उत्तरे चापि मेरोस्तु नीलः श्वेतोऽथ शृङ्गवान् ।

'शनिस्तत्र सुनीलाभो जातो नीलस्त्वतो गिरिः ।
नीलवच्च गिरिः श्वेतो यत्र श्वेतो महामुनिः ।।

सबसे पहले मेरु मध्य से चारों ओर लवण समुद्र पर्यन्त चारों दिशाओं में जम्बूद्वीप ही फैला हुआ है । पर्वतों के अन्तरण के कारण इसको नौ भागों में बाँटा जा सकता है ।।१९७-१९८।।

इस द्वीप के दक्षिण भाग में तीन पर्वत विद्यमान हैं । १. निषध, २. हेम-कूट और ३. हिमवान् । ये तीनों प्रसिद्ध पर्वत हैं । श्रीपरासंहिता में यह लिखा हुआ है कि, पृथ्वी को धारण करने वाले शेष को एक बार गरुड ने देख लिया था । देखते ही वे उनको मारने के लिये दौड़ पड़े थे । तब से तार्क्ष्य का यहाँ आना ही निषिद्ध कर दिया गया था ।

जहाँ तक हेमकूट का प्रश्न है, यहाँ पर प्रजापति को यज्ञ करने के लिये ब्रह्मा को अनन्त धन अर्पित किया था । इसी के फल स्वरूप इसका नाम हेम-कूट पड़ गया । हेमकूट के समान ही हिमवान् भी महान् पर्वत है । बर्फ से ढके रहने के कारण हेमकूट होने पर भी यह हिमवान् ही कहलाता है । यही दोनों में भेद है ।।१९९।।

मेरु पर्वत के उत्तर में नील पर्वत, श्वेत और शृङ्गवान् ये तीन पर्वत ही अवस्थित हैं । श्री परा में इनके विषय में भी लिखा है कि, एक बार यहाँ शनि

मृत्युना ग्रस्यमानोऽपि रक्षितश्चन्द्रमौलिना' । इति ।

'श्वेतवच्च त्रिशृङ्गोऽद्रिर्वज्रपातोपमर्दनः ।

त्र्यश्रितस्तेषु शृङ्गेषु किल देवास्त्रयः स्थिताः' ॥

इत्यपि तत्रैवोक्तम् । एषां मानमाह–

प्राक्पश्चिमायता ह्येते षडेव तु महीधराः ॥२००॥

पूर्वाब्धेः पश्चिमाब्धिं प्राप्ताः ॥२००॥

तत्रापि–

नीलश्च निषधश्चैव लक्षायामौ प्रकीर्तितौ ।

मध्यासन्नत्वात् । द्वीपवर्तुलतानुपाततस्तु

श्वेतश्च हेमकूटश्च सहस्रनवतिः स्मृतौ ॥२०१॥

हिमवान् शृङ्गावांश्चैव सहस्राशीतिरेव तु ।

तदेते–

लवणोदधिपर्यन्ताः

पार्श्वमानात्तु

सहस्रद्वयविस्तृताः ॥२०२॥

देव उतरे । उतरते ही उनका नीलवर्ण और भी गाढ़ा हो गया था । इसी घटना के कारण इस पर्वत का नाम ही नील पड़ गया ।

श्वेत पर्वत पर 'श्वेत' नामक प्रख्यात मुनि देवर्षि तपस्या कर रहे थे । तपस्या के ही दौरान मृत्यु ने उन्हें ग्रास बनाना चाहा । भगवान् चन्द्रमौलि शिव ने उनकी रक्षा की थी ।

जहाँ तक शृङ्गवान् की बात है, यह त्रिशृङ्ग माना जाता है । इन्द्र से इन पर्वतों का सदा विरोध रहा है । एक बार क्रुद्ध इन्द्र ने इस पर वज्र प्रहार कर दिया था । परिणामतः यह तीन भागों में खण्डित हो गया था । अब तो उन तीनों शृङ्गों पर तीन देवताओं का निवास है । ये तीनों महीधर पूरब से पश्चिम तक फैले हुए हैं । पूरब समुद्र से पश्चिम समुद्र का स्पर्श ये पर्वत करते हैं ॥२००॥

नील और निषध इनके आयाम एक लाख कहे गये हैं । श्वेत और हेम-कूट का मान नब्बे हजार का है । हिमवान् और शृङ्गवान् इन दोनों का आयाम अस्सी हजार ही प्रकीर्त्तित है । ये सभी पर्वत लवण समुद्र तक ही सीमित हैं । इनका पार्श्वमान दो हजार मात्र है ॥२०२॥

किञ्च,

कैलासयुक्तो हिमवांस्त्रिशृङ्गश्च सजारुधिः ।

हिमवतो मध्ये कैलासः शृङ्गरूपः । यदुक्तं देवीयामले–

'तस्य मध्ये महाशृङ्गं शतयोजनविस्तृतम्' ।

इत्युपक्रम्य–

'तत्रासावमरैः सार्धं शूली वसति सर्वदा' । इति ॥

शृङ्गवतस्तु जारुधिः संलग्नः ।

एषां प्रातिलोम्यतो वर्णं निरूपयति–

शृङ्गावांश्चन्द्रकनिभः सितः श्वेतो विराजते ।।२०३।।
नीलरत्नमयो नीलो निषधः पद्मरागभः ।
सौवर्णो हेमकूटश्च हिमाभो हिमवानिति ।।२०४।।

मेरोः पूर्वपश्चिमयोः पर्वतावाह–

पूर्वेण माल्यवान् मेरोः पर्वतस्तु विराजते ।
चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि योजनानां सुरेश्वरि ।।२०५।।

हिमवान् पर्वत में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और पावन शिखर कैलास है । यह जारुधि पर्वत शिखर को लेकर त्रिशृङ्ग माना गया है । यह हिमवान् के मध्य में एक शिखर रूप ही है । देवीयामल में इसका वर्णन इस प्रकार है–

हिमवान् के मध्य भाग में महाशृङ्ग रूप कैलास शिखर है । यह सौ योजन विस्तार वाला है । इस उपक्रम के साथ और भी कहते हैं कि, वहीं पर देवताओं के साथ त्रिशूलेश्वर भगवान् शिव निवास करते हैं ।

शृङ्गवान् पर्वत से ही संलग्न 'जारुधि' भी है । पहले इसे हिमवान् के साथ ही 'सजारुधिः' शब्द का प्रयोग किया गया है । उसी श्लोक में पुनः 'शृङ्गवतस्तु जारुधिः संलग्नः' भी कहा गया है ।

जो हो प्रतिलोम क्रम से उनके वर्णों की चर्चा कर रहे हैं–

१–शृङ्गवान् पर्वत अष्टमी के चन्द्रमा की तरह संरचना और रमणीयता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पर्वत है ।

२–श्वेत अपने नामानुकूल श्वैत्य से ओत-प्रोत है । भगवान् कह रहे हैं कि, देवि यह चौंतीस हजार योजन के विस्तृत आयाम में आकाश को छू रहा है ॥२०३-२०५॥

याम्योत्तरायतो भाति सहस्रं तस्य विस्तृतिः ।

तथैवापरदिग्भागे तत्तुल्यो गन्धमादनः ।।२०६।।

आयामविस्ताराभ्याम् । अयं च दक्षिणस्थाद्विष्कम्भकगन्धमादनादन्यः । एतौ च श्रीपरायाम्–

'दृष्ट्वा माल्यानि दिव्यानि ब्रह्मसेवार्थमागतैः ।

सम्भृतानि यतः सिद्धैर्माल्यवांस्तेन लप्यते' ॥ इति ।

तथा च–

'मदमत्ता पुरा दृष्टा माल्या विद्याधरी किल ।

ऋषिणा नारदेनास्मिन्नाघ्राता मोदभाविता ॥

गन्धो मे मादनो विप्रेत्युक्तस्तद्गन्धमादनः' ।

इति निरुक्तौ ॥२०६॥

एषां सर्वेषामुच्छ्रायमानमाह–

नीलश्च निषधश्चैव माल्यवान् गन्धमादनः ।

चत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानां समुच्छ्रिताः ।।२०७।।

नीलादयो मेरोः प्रतिप्राकारस्थानीयत्वेन स्थिता एवंप्रमाणकाः । दक्षिणोत्तरगतानां तु श्वेतशृङ्गवद्धेमकूटहिमवतां दशयोजनसहस्रोच्छ्रितत्वम् । यदुक्तं श्रीमृगेन्द्रोत्तरे–

३–दक्षिण से उत्तर सहस्रायत श्वेत के अपर दिग्भाग में इसी के समान गन्धमादन पर्वत फैला हुआ है । इसकी लम्बाई चौड़ाई भी श्वेत के समान ही है । यह दक्षिणस्थ विष्कम्भ रूप गन्धमादन के अतिरिक्त इसी नाम का पर्वत है । श्री परा में यह लिखा है कि,

ब्रह्मा के सेवा में संलग्न सिद्ध यहाँ के विपुल कुसुमावली समाकुल माल्यादि लेने आये और यहाँ की शोभा देखी, तो वे इसी के हो गये । उन्होंने इसका नाम ही 'माल्यवान्' रख दिया । और यह भी लिखा है कि, 'यौवन मद से मत्त एक मालवती विद्याधरी महर्षि नारद द्वारा देखी गयी थी । उसके अस्तित्व की सुधामयी सुरभि को सूँघते ही उन्हें भी काम सूँघ गया और बोल पड़े—आह मादन गन्ध ! और उसी समय इसका नाम ही गन्धमादन पड़ गया ॥२०६॥

इन पर्वतों की ऊँचाई के विषय में बता रहे हैं कि, नील और निषध, माल्यवान् और गन्धमादन ये सभी चालीस हजार योजन ऊँचे हैं । ये सभी मेरु पर्वत के प्रति प्राकारवत् स्थित हैं । उसकी चहारदिवारी की तरह शोभित हैं ।

'सहस्रद्वयविष्कम्भा दशोत्सेधा नवान्तरा:' । इति ॥ (१३ पट०)

एवं दक्षिणोत्तरस्थैस्त्रिभिस्त्रिभि: पूर्वपश्चात्स्थाने च एकैकेनेत्यष्टाभि: पर्वतैर्विभक्तं नवधा जम्बुद्वीपं जातम् ॥२०७॥

किञ्च,

चतुर्दिक्षु गतौ मेरोर्द्वौ द्वौ सीमान्तपर्वतौ ।

पूर्वादिदिगभिमुखौ समुद्रान्तं प्राप्तौ । तत्र–

जठरो हेमकूटस्तु पूर्वभागे व्यवस्थितौ ।।२०८।।

कैलासो हिमवांश्चैव दक्षभागे व्यवस्थितौ ।

निषध: पारियात्रश्च अपरेण महीधरौ ।।२०९।।

जारुधि: शृङ्गवांश्चैव उत्तरेण व्यवस्थितौ ।

पूर्वोक्तहेमकूटादिसमानामान: अन्य एवामी हेमकूटाद्या: । एते चाष्टावलङ्घ्यत्वाद् नवधा विभक्तस्य जम्बुद्वीपस्य नवभागान्तरहेतव इति ।

पूर्वोक्तपर्वतैर्नवविभक्तेऽत्र नामभेदेन देशविभागमाह–

मेरो: समन्ततो रम्यमिलावृत्तमुदाहृतम् ।।२१०।।

दक्षिण से उत्तर फैले हुए श्वेत, शृङ्गवान्, हेमकूट और हिमवान् इन चारों की ऊँचाई दश हजार योजन मानी जाती है । श्रीमृगेन्द्रोत्तरतन्त्र में लिखा है कि, दो हजार विष्कम्भ, दश उत्सेध और नव श्रेणियों में ये फैले हुए हैं । इस प्रकार दक्षिण-उत्तर पूरब-पश्चिम एक एक अवस्थान में ४×८ भागों में फैलाव के कारण पूरा जम्बूद्वीप ही नव भागों में प्राकृतिक रूप से बाँट सा दिया गया है ॥२०७॥

मेरु की चारों दिशाओं में फैले दो दो सीमान्त पर्वत समुद्र पर्यन्त गये हैं । इनमें जठर और हेमकूट पूर्व भाग में अवस्थित हैं । कैलास और हिमवान् दक्षिण भाग में अवस्थित हैं । निषध और पारियात्र पश्चिम में फैले पर्वत हैं तथा जारुधि और शृङ्गवान् उत्तर भाग में अवस्थित हैं । ये पर्वत पूर्वोक्त पर्वतों के समान मान वाले दूसरे पर्वत हैं । यही जम्बूद्वीप नौ भागों में विभक्त होने के कारण हैं ॥२०८-२०९॥

इन पर्वतों से देश भी प्रभावित हुए और उनके नाम भी अलग अलग पड़े । मेरु के चारों ओर रम्य इलावृत नाम का देश है । उसके साथ पुरों का जो समूह है, उसके नीचे की ओर नौ हजार योजन दोनों पार्श्व में अवस्थित यह इलावृत नामक देश है । १६ हजार मेरु नव नव हजार के दैर्घ्य के कारण कुल क्षेत्रफल चौंतीस हजार योजन होता है । इसके विषय में कहा गया है कि,

अधस्ताच्चक्रवाटस्य नवसाहस्रविस्तृतम् ।
योजनानां चतुर्दिक्षु चतुरस्रं समन्ततः ।।२११।।

तेन् मध्यवर्तिनः षोडशसाहस्त्रिकस्य मेरोः पार्श्वद्वयं नव नव सहस्राणीत्या-कलय्य दैर्घ्यदिशा चतुस्त्रिंशत्सहस्रमेतद्भवति । अत एव पूर्वपश्चात्स्थयो-र्माल्यवद्गन्धमादनयोश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि दैर्घ्यमिति युक्तमुक्तम् । अस्य च निर्वचनम्–

'इला नामाप्सरा दिव्या रूपयौवनशालिनी ।
दृष्टा सामृतरूपेण विचरन्ती मनोहरा ॥
भुजाभ्यामावृता रागात्तेनेलावृतमुच्यते' ।

इति श्रीपरायामुक्तम् ॥२११॥

अत्र च चक्रवाटावृतत्वात्–

नातपो भानुजस्तत्र न च सोमस्य रश्मयः ।
प्रभवन्ति हि लोकानां

किन्त्वेतत्–

मेरोर्भासा प्रभासितम् ।।२१२।।

अत एव–

प्रत्यग्राम्बुजपत्राभा जनाश्चातीव कोमलाः ।
जम्बूरसफलाहारा जरामृत्युविवर्जिताः ।।२१३।।

'इला नाम की एक अप्सरा बड़ी दिव्य स्त्री थी । रूप और यौवन से सम्पन्न वह वहीं विचरण कर रही थी, किसी ने उसे स्नेहपूर्वक अपने अङ्ग में भर लिया, इसलिये इला के आवृत होने के कारण इलावृत नामक देश इसका नाम पड़ा । यह श्रीपरा की ही उक्ति है ॥२१०-२११॥

मेरु की अप्रकल्प्य उच्चता के कारण सूर्य और सोम के रश्मियों का प्रभाव वहाँ रहने वालों पर नहीं पड़ता, यह मेरु की आभा से ही प्रभा-सित हैं ॥२१२॥

यहाँ के रहने वाले लोग ताजे खिले कमलदलों की आभा और सौकुमार्य समन्वित और अत्यन्त कोमल होते हैं । जम्बूरस का ही वे आस्वादन करते हैं । फलाहारी वे लोग जरा से जीर्ण नहीं होते । नित्य सुन्दर बने रहते हैं । वृद्धावस्था के कारण उनकी मृत्यु नहीं होती ॥२१३॥

त्रयोदशाब्दसाहस्रं तेषामायुः प्रकीर्तितम् ।

अतश्चाकालमृत्युविवर्जिता इत्युक्तं भवति । किञ्च,

देवगन्धर्वसिद्धाश्च ऋषयोऽथ विनायकाः ।।२१४।।

गणमातृभगिन्यश्च वेताला राक्षसादयः ।

एवमाद्यैरसंख्यातैर्वृतं चैतदिलावृतम् ।।२१५।।

अथ–

गन्धमादनवारुण्या समुद्रस्य च पूर्वतः ।

केतुमालमिति ख्यातं वर्षं सर्वगुणोत्तमम् ।।२१६।।

मेरुपश्चात्स्थगन्धमादनस्य या वारुणी, सा पश्चिमाब्धेः पूर्वैव भवति । उक्तं च श्रीपरायाम्–

'देवासुराणामारम्भे दारुणे समुपस्थिते ।

अकस्मात्तत्र केतूनां या माला सहसोत्थिता ।।

तां दृष्ट्वा विबुधा भीताः केतुमालमतो मतम्' । इति ।

वर्षं जनपदः ।।२१६।।

नीलोत्पलदलश्यामा जनास्तत्र सुशोभनाः ।

पनसस्य रसं पीत्वा जीवन्त्ययुतमेव च ।।२१७।।

उनकी आयु तेरह हजार वर्ष की होती है । अतः अकाल मृत्यु नहीं होती । वहाँ देव, दानव, गन्धर्व, सिद्ध अनेक वर्गों के लोग रहते हैं । वहाँ ऋषियों के निवास हैं । विनायक रहते हैं । गणमातृकायें, बहनें, वेतालों और राक्षसों के तथा इनके सदृश असंख्यात लोग रहते हैं । ऐसे लोगों से वह देश भरा रहता है ।।२१४-२१५।।

मेरु के पीछे अवस्थित गन्धमादन पर्वत से निकलने वाली वारुणी का प्रवाह पश्चिम समुद्र के पहले ही अपना मुहाना बनाती है । वहीं केतुमाल जनपद भी है । श्रीपरा में लिखा हुआ है कि, 'आदिकालिक दारण देवासुर संग्राम के समय अकस्मात् केतुओं पुच्छल ताराओं की माला वहाँ लपलपाने लगी थीं । उसे देखकर देवता भी भयभीत हो गये थे । तभी से इसका नाम ही केतुमाल रख दिया गया' । वर्ष का अर्थ जनपद ही होता है ।।२१६।।

नील उत्पल दल के समान श्यामवर्ण के लोग यहाँ निवास करते हैं । वे बड़े सुन्दर और आकर्षक होते हैं । पनस के रस पीकर वे प्रसन्न और स्वस्थ्य रहते हैं । दस हजार वर्ष की उनकी आयु का प्रमाण है ।।२१७।।

दश सहस्राणि अयुतम् । किञ्च,

जयन्तो वर्धमानश्च अशोको हरिपर्वतः ।

विशालः कम्बलः कृष्णस्तत्र सप्त कुलाद्रयः ।।२१८।।

मेरोरग्रे तु–

माल्यवत्पूर्वभागेन समुद्रस्यापरेण तु ।

वर्षं भद्राश्वसंज्ञं च तत्रापि त्वयुतायुषः ।।२१९।।

जनाश्चन्द्रप्रतीकाशाः कालाम्रफलभोजनाः ।

उक्तं च श्रीपरायाम्–

'उच्चैःश्रवास्तु भद्राश्वः क्षीरोदमथनोद्गतः ।

तस्मिंश्चरति येनाश्वो भद्राश्वं तेन तत्स्मृतम्' ॥ इति ।

किञ्च,

कौरञ्जः श्वेतपर्णश्च नीलो मालाग्रकस्तथा ।।२२०।।

पद्मश्चैव समाख्यातास्तत्र पञ्च कुलाद्रयः ।

एते च केतुमालभद्राश्वे–

द्वात्रिंशत्तु सहस्राणि पूर्वपश्चायते स्मृते ।।२२१।।

इसके अतिरिक्त जयन्त, वर्द्धमान, अशोक और हरिपर्वत, विशाल, कम्बल और कृष्ण नामक सात पर्वत श्रेणियाँ यहाँ अवस्थित हैं ॥२१८॥

मेरु के अग्रभाग में माल्यवान् पर्वत के पूर्वी भाग में लवण समुद्र के दूर अपर भाग में भद्राश्व वर्ष (जनपद) है । इसमें रहने वाले लोगों की आयु भी दश हजार वर्ष की होती है । इस द्वीप के मनुष्य चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण के होते हैं । वे सर्वदा अपने समय पर पकने वाले आम्र फल का ही सेवन करते हैं । श्रीपरा में भी लिखा हुआ है कि, उच्चैश्रवा नाम भद्राश्व जो क्षीरसमुद्र के मन्थन से समुद्भूत हुआ था, उसी द्वीप में विचरण करता है, इसी के फलस्वरूप इसका नाम 'भद्राश्व' रखा गया था' ।

इसमें पाँच कुल पर्वत हैं । १. कौरञ्ज, २. श्वेतपर्ण, ३. नील, ४. माला-ग्रक और ५वाँ पद्म ।

ये केतुमाल और भद्राश्व बाइस सहस्र वर्ष पूर्व पश्चिम क्षेत्रों में फैले हुए हैं । तथा चौंतीस हजार योजन उत्तर दक्षिण की ओर चौड़े हैं । इस हिसाब से

चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि दक्षिणोदक्समायते ।

एवं च केतुमालभद्राश्वे प्राक् पश्चाद् द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशद् सहस्राणि, गन्धमादनो माल्यवांश्चैकमेकं सहस्रम्, इलावृतमुभयपार्श्वगतमष्टादश, षोडश मेरुरित्येवं लक्षयोजनं जम्बुद्वीपं पूर्वापरतः । जठरादिसीमान्तपर्वतमानं जयन्तादिकुलपर्वतमानं च तत्रैव एकदेशीभूतत्वान्न पृथग्गणनीयम् ।

एवं पूर्वपश्चिमयोर्वर्षस्थितिमुक्त्वा उत्तरेऽपि तामाह–

वर्षे द्वे तु समाख्याते

समाख्यात इत्युपसंहारोपक्रमयोः काकाक्षिवद्योजनीयम् । पूर्वपश्चाद्गते केतुमालभद्राश्वे समाख्याते ।

मेरोरुत्तरे तु ये वक्ष्यमाणविभागे कुरुहिरण्मये वर्षे तयोर्मध्यात्–

कुरुवर्षनिवासिनः ॥२२२॥

कुरवो नाम लोकास्ते

यस्मात्–

कुरुवृक्षफलाशिनः ।

अतश्च–

त्रयोदशसहस्राणि जीवन्ति स्थिरयौवनाः ॥२२३॥

केतुमाल और भद्राश्व ३२-३२ हजार योजन, गन्धमादन और माल्यवान् एक एक हजार योजन, इलावृत उभयपार्श्वगत अष्टादश सहस्रयोजन और सोलह सहस्र योजन मेरु है । इस प्रकार पूर्वापर की दृष्टि से जम्बूद्वीप एक लाख योजन मान वाला सिद्ध होता है । जठर आदि सीमान्त पर्वतों का मान और जयन्त आदि कुल पर्वतों का मान भी पृथग्गणनीय नहीं है; क्योंकि ये सब एक में ही वहाँ अवस्थित हैं ।

उक्त मान पूर्व से पश्चिम पर्यन्त पर्वतों के मान के समान है । मेरु के उत्तर में उनके पास ही कुरुवर्ण और हिरण्मय दो पर्वत भी अवस्थित हैं । उनमें भी जीवन का उच्चकोटि का मान शास्त्रों में निर्दिष्ट है ॥२१९-२२२॥

कुरु नाम के लोग कुरुवर्ष में निवास करते हैं । ये कुरुवृक्ष के फल को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि, ये लोग स्थिरयौवन होते हैं । जरा यहाँ नहीं होती और तेरह हजार वर्ष का सुखी जीवन का उपभोग करते हैं ॥२२३॥

युग्मं युग्मं प्रसूयन्ते वियोगभयवर्जिताः ।

तुल्यकालं जायन्ते, तथैव म्रियन्ते इत्यर्थात् । अतश्च पतिमनुयातानां स्त्रीणामनुजन्म सम्भाव्यते ।

किं चात्र

श्यामापुष्पनिभाः स्निग्धाः सुरूपाः पुरुषाः स्त्रियः ।।२२४।।

स्त्रियश्चेत्यर्थः ।।२२४।।

तथा–

सर्वरत्नमयी भूमिर्हिमबालुकया चिता ।

एतच्च कुरुवर्षं पार्श्वमानात्–

नवयोजनसाहस्रं धन्वाकारं प्रकीर्तितम् ।।२२५।।

धन्वाकारमित्यत्र सकारलोपश्छान्दसः । दैर्घ्यादेतच्छृङ्गवत्प्रमाणम् । अनुपातेन वलयाकृत्यवस्थितोत्तराब्धिसमीपगतत्वाद् धनुराकारतैवास्य भवति ।

यहाँ युग्म युग्म उत्पन्न होने की विचित्र बात प्रकृति के प्रभाव से होती है । वियोग के भय से एकाकी जन्म न लेने में उनका कर्त्तव्य स्वीकार्य है । इसीलिये लिखा है कि, उनमें वियोग का भय नहीं होता । अर्थात् स्वभावतः युग्म उत्पन्न होना वहाँ की विशेषता है । साथ ही जन्म और साथ ही मृत्यु । शायद यह कुरु वृक्ष के फल खाने का ही प्रभाव है ।

पति-पत्नी में तो युग्म उत्पन्न होने का कोई प्रभाव न पड़ता हो । एक ही समय में किन्हीं गावों में लड़के लड़कियाँ साथ उत्पन्न हों, तो खोज कर उसी से विवाह करने पर दोनों साथ मर सकें । पर यहाँ सब कर्मविपाक के विपरीत और कर्मभोग पर आश्रित आयु और भोग के सिद्धान्त के भी विरुद्ध है । साथ ही ईश्वरीय नियम के भी विपरीत है ।

यहाँ के लोग श्यामा कुसुम की श्याम शोभा से सुशोभित श्यामवर्णी लोग बड़े सुन्दर होते हैं । उनके स्वभाव भी स्निग्ध और सुकोमल होते हैं । स्त्री और पुरुष दोनों रूपवान् होते हैं ।।२२४।।

वहाँ की भूमि सर्वरत्नमयी सर्वोत्कृष्ट मिट्टी वाली है । हिमबालुका से भी व्याप्त है या हिमवान् की बालुका से आचित है । यह कुरुवर्ष नौ हजार योजन आयाम वाला है । इसकी आकृति भी धनुषाकार मानी जाती है । धनु से धनुष

सूर्यकान्तेन्दुकान्तौ च द्वौ तत्र कुलपर्वतौ ।
कल्पवृक्षः कुरुर्नाम तत्रैव कुसुमोज्ज्वलः ।।२२६।।
तस्य नाम्ना तु तज्ज्ञेयं कुरुवर्षं सुशोभनम् ।

श्रीमत्परायाम्–

'रम्यवत् कुरुवर्षाख्यमुपमन्युर्हरेण सः ।
कुर्वेवं तु पिब क्षीरं यत्रोक्तस्तेन तत्कुरु' ॥

इति निरुक्तम् ॥२२६॥

अथ–

तस्य चोत्तरदिग्भागे प्रविश्य लवणोदधिम् ।।२२७।।
पञ्चयोजनसाहस्रं चन्द्रद्वीपं प्रकीर्तितम् ।
तथा वायव्यदिग्भागे प्रविश्य लवणोदधिम् ।।२२८।।
योजनानां सहस्राणि चत्वार्येव वरानने ।
दशयोजनसाहस्रं द्वीपं भद्रं प्रकीर्तितम् ।।२२९।।

चत्वार्येवेत्येवकारात् पूर्वत्राप्यब्धिप्रवेशे एतत्सम्बन्ध्यत एव ॥२२९॥

भी गृहीत होता है । सकार लोप को आचार्य छान्दस कहते हैं । अनुपातत: वलयाकृति होने पर भी समुद्र तटीय भूमि होने के कारण धनुराकारवती होना सहज सम्भाव्य है ॥२२५॥

यहाँ सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त ये दो और कुल पर्वत अवस्थित हैं । कुरु नाम का कल्पवृक्ष भी यहाँ है । अकल्प कुसुमावली से कलित यह अत्यन्त उज्ज्वल भूमि है । कुरु कल्पवृक्ष के नाम पर ही 'कुरुवर्ष' की संज्ञा से इसे भूषित करते हैं । श्रीपरा में यह स्पष्ट उल्लेख है कि, रम्यवान् और कुरुवर्ष ये दो कुल पर्वत प्रसिद्ध है । यह कथा है कि, भगवान् शंकर द्वारा ऋषि उपमन्यु को यह आदेश हुआ कि, तुम ऐसा करो और तब क्षीर पान करो । उन्होंने आदेश का पालन किया । 'कुरु' यह क्रियात्मक आदेश देश की संज्ञा बन गया । इतिहास की यह क्रियात्मक क्रीडा ही है ॥२२६॥

इसके उत्तरी दिग्भाग में लवण समुद्र में पाँच हजार योजन का एक द्वीप हैं । उसे 'चन्द्रद्वीप' कहते हैं । इसी तरह वायव्य दिग्विभाग में लवण समुद्र में सात हजार योजन प्रवेश कर भद्र नामक एक महाद्वीप है । यह दस हजार योजन क्षेत्रफल में है ॥२२७-२२९॥

किञ्च,

भद्राकारमिति ज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम् ।

अयुत्तायुषो जनास्तत्र दिव्यामृतफलाशिनः ।।२३०।।

इत्थमेव–

चन्द्राख्येऽप्ययुतं चायुर्जीवन्ति फलभोजिनः ।

एवं शृङ्गवदुत्तराभ्यन्तराले कुरुवर्षमुक्त्वा, हिरण्मयं वर्षमाह–

श्वेतशृङ्गवतोश्चैव मध्ये ज्ञेयं हिरण्मयम् ।।२३१।।

हेममयत्वादिहैवमुक्तम्, परायां तु–

'यत्र गन्धर्वमुख्येन रमणा रमिता बलात् ।

रमणं तत्परं वर्षम्........................' ।।

इति संज्ञान्तरेणोक्तम् । गन्धर्वमुख्येन चित्ररथेन, रमणाख्या अप्सराः ।।२३१।।

लकुचस्य फलं प्राश्य जनास्तत्रेन्दुसन्निभाः ।

जीवन्त्यब्दसहस्राणि मानेनार्धत्रयोदश ।।२३२।।

भद्राकार नामक यह समस्त कामोपभोग का सुफल प्रदान करने वाला द्वीप है । यहाँ के निवासी दश हजार वर्ष की आयु का आनन्द प्राप्त करते हैं । दिव्य अमृत फल का ये अशन करते हैं ।।२३०।।

शृङ्गवान् पर्वत के उत्तरान्तराल कुरुवर्ष और श्वेतशृङ्गवान् के मध्य में हिरण्मय पर्वत है । स्वर्णमय होने के कारण इसे हिरण्मय पर्वत कहते हैं । श्री परा में लिखा हुआ है कि, 'रमणा' नामक नायिका के साथ गन्धर्व प्रमुख चित्ररथ ने बलात् रमण किया था । उसी की स्मृति में इसका यह नाम रमण पड़ा था । इस तरह इसके दो नाम हिरण्मय और 'रमण' हैं । हिरण्मय में भी रमण की श्रुति हो रही है । रमण को छुपा कर हिरण्मय नाम रख दिया गया हो, यह भी सम्भव है ।।२३०-२३१।।

ये 'लकुच' (बड़हर) का फल विशेषतः पसन्द करते हैं । उसी का आस्वाद भी लेते हैं और उसी को खाते भी हैं । उससे वहाँ के लोग चन्द्र के सदृश सुन्दर और आकर्षक लगते हैं । साढ़े छः हजार वर्ष की इनकी आयु होती है ।।२३२।।

अथ–

नीलस्योत्तरदिग्भागे तथा श्वेतस्य दक्षिणे ।

रम्यकं नाम वर्षं तु

'उर्वशी याप्सरा भद्रा दृष्ट्वा चन्द्रमसा किल ।

प्रोक्ता रम्येति तद्वाक्यात्तेनेदं रम्यनामकम्' ॥ इति निरुक्तम् ।

तत्र च–

न्यग्रोधफलभोजनाः ।।२३३।।

नीलोत्पलदलश्यामा जरारोगविवर्जिताः ।

अतश्च–

द्वादशाब्दसहस्राणि तेषामायुः प्रकीर्तितम् ।।२३४।।

एतच्च दैर्घ्यमानात्पूर्वमुक्तमपि, पार्श्वतः–

नवसाहस्रविस्तारं रम्यकं च हिरणमयम् ।

रम्यकं च हिरणमयं चेत्यर्थः ।

मेरोरुत्तरे वर्षस्थितिमुक्त्वा दक्षिणे क्रमेणाह–

हेमकूटस्य सौम्येन दक्षिणे निषधस्य तु ।।२३५।।

हरिवर्षं समाख्यातं रौप्याभास्तत्र जन्तवः ।

द्वादशैव सहस्राणि जीवन्तीक्षुरसाशिनः ।।२३६।।

नील पर्वत के उत्तर दिग्भाग में तथा श्वेत के दक्षिण में रम्यक नामक वर्ष है । इसकी कहानी यह है कि, एक बार यहाँ चन्द्रमा किसी उत्सव में आये हुए थे । उसमें 'उर्वशी' नामक अप्सरा को देखकर और उसकी कला से प्रभावित होकर बरवस उनके मुख से निकल पड़ा रम्या ! बस क्या था ? यह इतिहास बन गया । उस देश का नाम 'रम्यक' वर्ष पड़ गया । यहाँ के लोग न्यग्रोध अर्थात् वट वृक्ष के फल को पसन्द करते हैं । उसको बड़े चाव से खाते हैं ॥२३३॥

नील उत्पल दलवत् श्याम ये लोग बड़े आकर्षक नित्य यौवनसम्पन्न और जरा के रोग से रहित होते हैं । इनकी आयु बारह हजार वर्ष की होती है ॥२३४॥

रम्यक और हिरणमय ये दोनों देश पार्श्व दृष्टि से नव हजार योजन विस्तार वाले हैं । यह मेरु पर्वत के उत्तर की स्थिति हुई । दक्षिण भाग की स्थिति के विषय में कह रहे हैं कि, हेमकूट पर्वत के उत्तर निषध पर्वत के दक्षिण भाग में हरिवर्ष नामक जनपद है । यहाँ के जीव रजत राजित और सुन्दर होते हैं ।

अतीव शोभनं तच्च नवसाहस्रविस्तृतम् ।

एतच्च–

'यत्र नागेन शेषेण हरिराराधितस्तथा' ।

इति श्रीपरायां निरुक्तम् । अथ

हेमकूटस्य याम्येन हिमवतस्त्वथोत्तरे ।।२३७।।
वर्षं किंपुरुषं नाम तत्र हेमनिभा जनाः ।
नववर्षसहस्राणि जीवन्ति प्लक्षभोजनाः ।।२३८।।
नवैव तु सहस्राणि विस्तारस्तत्र कीर्तितः ।

किंपुरुषम् । एतदपि–

'यत्र विद्याधरी रम्या विद्याधरकरच्युता ।
किं त्वया पुरुषस्त्यक्त इत्युक्ता.........'॥

इति परायां निरुक्तम् । अथ–

याम्ये हिमाचलेन्द्रस्य उत्तरे लवणोदधेः ।।२३९।।
भारतं नाम वर्षं तु तत्र चाल्पं सुखं स्मृतम् ।

यतः–

जना रोगभयत्रस्ता दुःखिता मन्दसम्पदः ।।२४०।।

ये ईख रस के प्रेमी होते हैं । इनकी आयु बारह हजार वर्ष की होती है । नव हजार योजन विस्तृत यह जनपद अत्यन्त प्राचीन काल से प्रसिद्ध है । आदि शेष ने भगवान् विष्णु की यहीं उपासना की थी । यह तथ्य श्रीपरा नाम के शास्त्र में उद्घाटित है ।

हेमकूट के दक्षिण और हिमवान् के उत्तर भाग में 'किंपुरुष' नामक जनपद है । यहाँ के रहने वाले प्राणी पीतवर्णी होते हैं । ये प्लक्ष भोजक लोग नौ हजार वर्ष जीवित रहते हैं । यहाँ का क्षेत्र विस्तार भी नौ हजार योजन का है ॥२३५-२३८॥

जब एक दूसरे ग्रन्थ की ही बात कहनी हो, तो उसी के वचनों का संग्रह करना उचित है । बहुत से संग्रह ग्रन्थों में ऐसा होता है । यह बार बार श्रीपरा के इतिहास की पुनरावृत्ति मूलग्रन्थ के लिये शोभा की बात नहीं मानी जा सकती । क्या तुमसे पुरुषत्यक्त कर दिया गया ? इन कहानियों से देश का किंपुरुष वर्ष नाम पड़ा । इसमें देश के लोगों का अमरत्त्व नहीं वरन् उनकी मूर्खता ही झलकती है ।

सुरूपा मन्दरूपाश्च सुभगा दुर्भगाः परे ।
भोगिनो मन्दभोगाश्च तथान्येऽत्यन्तदुःखिताः ।।२४१।।
गौराः श्यामास्तथा कृष्णा बभ्रवः श्वेतपिङ्गलाः ।
वर्णजातिप्रभेदेन नानाकर्मानुरूपतः ।।२४२।।
चतुर्वर्णा अन्त्यजाश्च जायन्ते भारताह्वये ।

वर्णो ब्राह्मणादिः । जातिः पुलस्त्यपुलहादिगोत्ररूपा । एतदपि वर्षम्–
'भरतेन भृतं दुःखं यत्र पुत्रैः कुमार्गगैः' ।
इति श्रीपरायां निरुक्तम् । एवमेतानि नव वर्षाणि श्रीपरायां निरुक्तानि । इह तु इलावृताद्याख्यस्वाम्यधिष्ठितत्वादिति वक्ष्यति । अत्र च–

स्वदेशभाषायुक्तानि द्वीपद्वीपान्तराणि च ।।२४३।।

हिमालय के दक्षिण भाग में और लवण समुद्र के उत्तर में जो देश है, इसे भारतवर्ष कहते हैं । इसमें सुख की अल्पता का ही उल्लेख शास्त्रों में हैं । यहाँ के लोग रोगभय से त्रस्त, दुःखग्रस्त और मन्द सम्पत्ति वाले ही होते हैं । यदि यहाँ कोई सुभग सुन्दर है, तो दूसरी ओर दुर्भग और दरिद्र भी है । इसी तरह कोई रूपवान् हैं, तो अधिकतर कुरूप और भद्दे होते हैं । यहाँ कोई भोगी है, तो बहुतेरे यहीं नरक भोग की दुर्दशा से ग्रस्त हैं और कातरतामयी विपत्ति के मारे फूटे भाग्य को रोकर ही गुजार देने के लिये लाचार है ॥२३९-२४१॥

यहाँ के लोग गौर, श्याम, काले, भूरे, श्वेत, पिङ्गल सब तरह के रंगों को अपने रूप का आश्रय प्रदान करते हैं । विभिन्न वर्णों, विभिन्न जातियों में विभक्त हैं । नाना कर्मों के कुफल और सुफल भोग के विश्वासी हैं ॥२४२॥

भारत एक अकेला ऐसा देश है, जिसमें चार वर्ण हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अतिरिक्त यहाँ अन्त्यज हैं, श्वपच हैं, चाण्डाल हैं । कोई पुलस्त्य है, तो कोई पुलह है । हजारों गोत्र हैं । भरत द्वारा प्रवर्त्तित यह देश उन्हीं के कुमार्गी पुत्रों द्वारा दुःख और व्यथा का केन्द्र बन गया है—यह श्रीमती परा संहिता लिखती हैं । इसमें अपने अपने देश खण्डों की विभिन्न भाषायें हैं । द्वीप है और द्वीपान्तर भी यहाँ विद्यमान हैं ॥२४३॥

पण्डिताश्च तथा मूर्खाः शिल्पविज्ञानिनस्तथा ।
योगिनो ज्ञानिनश्चैव धर्मिष्ठाः पापिनोऽपरे ।।२४४।।
याच्चकाश्चापि जायन्ते दातारश्चापरे जनाः ।
प्रेष्या दासाश्च बहवो मानवाः सततं प्रिये ।।२४५।।

द्वीपेष्वन्तर्द्वीपानि द्वीपान्तराणि । प्रेष्या विनियोज्या अदासा अपि भवन्ति ॥२४५॥

तदित्थं दोषवत्यपि

गुणस्त्वेकः स्थितस्तत्र शुभाशुभफलार्जनम् ।

द्वयमप्यत्र सम्भवति । सचेतसस्तु अशुभवर्जनेन शुभार्जनाय उद्यच्छन्ति । यदुक्तं श्रीमृगेन्द्रायाम्–

'गुण एको यदुद्युक्तो नेष्टं किञ्चिन्न साधयेत्' । इति । (१/२३)

किञ्च, भारतवर्जमन्यवर्षेषु–

नाष्टासु विद्यते काचिद्युगत्रयमयी स्थितिः ।।२४६।।

यहाँ एक से एक पण्डित हैं । बड़े से बड़े मूर्ख हैं । बड़े से बड़े महान् शिल्पी हैं, कलित ललित कलाकार हैं । ज्ञानी हैं, विज्ञानी हैं । योगी और यति हैं । एक से एक बड़े धर्मात्मा और धर्मनिष्ठ हैं, तो पापाचार की पराकाष्ठा पार करने वाले पापियों के पालक पापिष्ठ भी हैं ॥२४४॥

यहाँ याचकों की कोई संख्या निर्धारित नहीं, असंख्य हैं, दाताओं का तो यह देश ही है, पूरा देश ही नहीं, वेहिचक पूरा ब्रह्माण्ड ही दान कर दें । यहाँ प्रेष्य हैं, दास हैं, भृत्य हैं, क्रीत हैं और बलात् प्रणीत हैं । भगवान् कह रहे हैं कि, प्रिये ! मत पूछो, यह एक अबूझ पहेली का परमेश्वर प्रणीत देश है । जगत् का एक मात्रचित्र है । इसे देखकर परमेश्वर भी प्रसन्न हो जाते है 'प्रीणाति परमेश्वरः' ॥२४५॥

इतने दोषों के बावजूद यहाँ सबसे बड़ा एक गुण भी है कि, शुभ और अशुभ फलों का अर्जन यहाँ होता है । ये दोनों यहीं सम्भव हैं । जितने जागरूक और सुचेता पुरुष हैं, वे अशुभ का परित्याग कर शुभ फलों के अर्जन के लिये प्रयास करते हैं । मृगेन्द्र (१/२३) में यह स्पष्ट उल्लेख है कि,

'यहीं एक महान् गुण है कि, उद्युक्त पुरुष कभी भी अनिष्ट साधन में नहीं प्रवृत्त होता' ।

कृतयुगव्यतिरेकेण त्रेतादिमयी ॥२४६॥

तस्मात्–

चतुर्युगवती ज्ञेया भारताख्ये वरानने ।

एवं च–

तत्रैव यत्कृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम् ।।२४७।।

वसन्ति तेन लोकाश्च शिवाद्यवीचिमध्यगाः ।

अत्रैव भोगमोक्षसिद्धिसाधनस्वयंभूपुण्यतीर्थमहानदीसम्पदस्तीत्याह–

महाकालस्तथैकाम्रमेवमादि वरानने ।।२४८।।

तीर्थानां कोटिरुद्दिष्टा महापुण्यफलोदया ।

गङ्गादीनां नदीनां च तत्र पञ्च शतानि च ।।२४९।।

एवमादीत्यादिशब्दात् श्री-अमरेशादिपञ्चाष्टकानां वाराणस्यादिगतश्रीमहा-देवाष्टषष्टेश्च परिग्रहः । तीर्थानामिति प्रभासादीनाम् । यदुक्तं श्रीदेवीयामले—

उन उपर्युक्त पुरियों में मात्र कृतयुग होता है । केवल भारतवर्ष ही ऐसा देश है जहाँ द्वापर, त्रेता और कलि इस युगत्रयी का काल प्रवाह तीन रूपों में कर्म प्राधान्य की दृष्टि से विभक्त होता है ॥२४६॥

भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ! भारतवर्ष नामक इस देश में ही चतुर्युग-वती काल शक्ति की अपनी समय सीमायें परिवर्त्तित होती रहती है । यहाँ शुभ कर्म और अशुभ करने वाले लोग दोनों प्रकार के फलों के कर्मविपाक भोग के युम के अनुसार शिव धाम फलप्रदता की दृष्टि से शैवतादात्म्यावगाही योगियों से लेकर अवीचि नामक नारकीयता के प्रतीक लोकों के अधिकारी लोग यहाँ रह पाते हैं ।. इस तरह यहाँ भोग की भुक्ति भी और मोक्ष तथा जीवन्मुक्ति भी लभ्य है । यहाँ समस्त सिद्धियों के साधन उपलब्ध हैं । यहाँ स्वयंभू ज्योतिर्लिङ्ग हैं । महादेव हैं । यहाँ पुण्य पवित्र तीर्थ हैं । नदी और नद हैं, यहाँ विश्वलक्ष्मी का लीलाविलास भी है । यहाँ साक्षात् महाकालेश्वर हैं । एकामृतेश्वर आदि हैं । यहाँ करोड़ों तीर्थ हैं, जिनके सेवन से अनन्तकोटि शुभ फलोदय अनायास प्राप्त हो जाता है । गङ्गा सरस्वती सदृश पुण्यतोया नदियाँ हैं । पाँच और सौ में बटे यहाँ पुण्यप्रद अमृतसाधन हैं, जैसे अमरेश आदि पाँच अष्टकों का, वाराणसी सदृश शैव धामों में भैरवाष्टकों के अष्टक और योगिनियों आदि की षष्टि संख्या का महत्त्व है । प्रभास आदि तीर्थों की तारक श्रेणी है । देवी यामल में उल्लेख है कि,

'प्रभासाद्या तु तीर्थानां कोटिरेका वरानने ।
पञ्चाष्टकं तु तत्रैव लोकानुग्राहकं सदा' ॥ इति ॥२४९॥

कुरुवर्षं च–

नवयोजनसाहस्रं धन्वाकारं निबोध तम् ।

भारते च वर्षे–

नव भेदाः स्मृतास्तत्र सागरान्तरिताः प्रिये ॥२५०॥

हिमवद्दैर्घ्येण अवतारितैः सामुद्रैर्वारिभिः कृतव्यवधानाः । अत्र चाष्टमो वारिदेशो बिन्दुसरःसंज्ञः । यद्वक्ष्यति–

'बिन्दुसरःप्रभृत्येव कुमार्याह्वं..............'। (२५४) इति ॥२५०॥

तदत्र योजनानाम्–

एकैकस्य तु द्वीपस्य सहस्रं परिकीर्तितम् ।

जलेन सह मानमेतदित्यर्थः । यदाह–

शतानि पञ्च विज्ञेयं स्थलं पञ्च जलं तथा ॥२५१॥

प्रभास आदि तीर्थों की करोड़ों की सत्ता भारत में विद्यमान है, यहीं लोकानुग्रह कारक पंचाष्टक भी विद्यमान है ॥२४७-२४९॥

कुरुवर्ष धनुष के आकार का है । यह नौ हजार योजन आयाम वाला है । वही भारतवर्ष के सागर और पर्वतों के अन्तराल के कारण नौ भेद हो गये हैं । हिमवान् पर्वत के दैर्घ्य के कारण और समुद्र वारि की उत्तालता के कारण प्राकृतिक व्यवधान यहाँ बन गये हैं । इसका आठवाँ वारिकृत भाग 'बिन्दुसर' कहलाता है । यह कुमारी खण्ड में आता है ॥२५०॥

जल के साथ एक एक द्वीप की सीमा एक हजार योजन परिकीर्त्तित है । पूरे भारत के मान में पाँच सौ मान स्थल का और पाँच सौ जल का भी है । यह पार्श्वमान है । यह हिमवान् और समुद्र के अनुपात से सम्भव है । स्थल और जल का यह अनुपात उस समय था, जिस समय यह तन्त्रग्रन्थ अस्तित्व में आया होगा । इस काल सीमा का प्रकल्पन नहीं किया जा सकता । आज के युग में स्वच्छन्द या मृगेन्द्र, या किरणा या परासंहिता का वर्णित यह कुछ नहीं है । बड़ा बदलाव आ गया है । सारा चित्र बदल गया है और नाप-जोख की सारी

एतत् पार्श्वमानम् । दैर्घ्यं तु हिमवद्यथानुपातमर्धं पञ्चशतिकजलव्यवहित-त्वात् ॥२५१॥

एवं च–

परस्परमगम्यास्ते

ते इति द्वीपविशेषाः ।

तेषां नामानि मे शृणु ।
इन्द्रद्वीपं कशेरुं च ताम्रवर्णं गभस्तिमत् ।।२५२।।
नागद्वीपं च सौम्यं च गान्धर्वं वारुणं तथा ।
द्वीपं कुमारिकाख्यं च नवमं परिकीर्तितम् ।।२५३।।

द्वीपाष्टकस्य सागराः सप्त व्यवधायका उक्ताः । नवमस्य तु अवधिनिरूपणेन व्यवधायकमाह–

बिन्दुसरःप्रभृत्येव कुमार्याह्वं प्रकीर्तितम् ।

पूर्वेभ्योऽस्यायं विशेषः, यदयम्–

योजनानां सहस्रं तु

नेतरवत्पञ्चशतिकम् । केवलं साहस्रिकस्यास्य विभागो वारुणान्तस्थेन बिन्दुसरसा कृतः । एतच्च–

नानावर्णाश्रमान्वितम् ।।२५४।।

वर्णाः ब्राह्मणाद्याः ॥२५४॥

परिभाषायें भी बदल गयी हैं । आवश्यकता इस बात की है कि, प्राक्कालीन का अधुनातन देशकाल से बैठकर विद्वद्वर्ग नयी सीमानीति निर्धारित करें ॥२५१॥

उस समय ये द्वीप परस्पर अगम्य थे । आज काल आवागमन की अनन्त सुविधायें उपलब्ध हैं । उनके उस समय के नाम इस प्रकार थे ।

इन्द्रद्वीप, कशेरुद्वीप, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, सौम्य, नागद्वीप, गान्धर्व, वारुण और नवाँ कुमारिका द्वीप, इन नौ द्वीपों के व्यवधान सागर के आठ खण्ड थे । नवें के विषय में व्यवधायक का सीमावधि सहितवर्णन कर रहे हैं–

बिन्दुसर से लेकर समुद्र पर्यन्त द्वीप कुमारिका द्वीप कहलाता है । यह एक हजार योजन पर्यन्त विस्तृत क्षेत्रफल में है । यह भी नाना वर्णाश्रमधर्म से अन्वित है ॥२५२-२५४॥

किञ्च,

ये पूर्वोक्ता गुणा लोके भारते वरवर्णिनि ।

ते तत्रैव स्थिता लोके कुमारीसंज्ञके प्रिये ।।२५५।।

गुणाः शुभार्जनस्वयंभूतीर्थपुण्यनद्यधिष्ठानादिरूपाः कुमारीद्वीप एव । यदुक्तं श्रीश्रीकण्ठ्याम्–

'तत्र मध्ये महद्द्वीपं कुमारीद्वीपसंज्ञकम् ।

तत्र रुद्रशतं पूर्णमवतीर्णं शुभङ्करम् ।।

पशूनां हेतुभूतं च स्मरणात्पापनाशनम्' ।। इति ।

इन्द्रद्वीपादिस्तु म्लेच्छादिप्रायाणां निवासो देवतातीर्थाद्यनधिष्ठितश्च । तदुक्तमन्यत्र–

'वर्णाश्रमसमाचारः कुमार्याख्ये न संशयः ।

इतरे म्लेच्छसंज्ञेयाः शिष्टाचारबहिष्कृताः' ।। इति ।।२५५।।

अन्यच्च–

भूधराः सप्त विज्ञेयास्तत्रैव तु सुशोभनाः ।

महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमानृक्षपर्वतः ।।२५६।।

भगवान् भैरव कह रहे हैं कि, वरद वर्णों से विभूषित देवि ! भारत के जिन गुणों की चर्चा पहले की गयी है, वे सभी इस कुमारिका द्वीप में भरे हुए हैं । गुणों में स्वयं लिङ्गों, तीर्थों, नदियों और विभिन्न अधिष्ठानों की सारी बातें आती हैं ।

श्रीकण्ठी संहिता में लिखा हुआ है कि, भारत क्षेत्र के मध्य भाग में कुमारिका नामक द्वीप अवस्थित है । इस द्वीप में पहले शतरुद्र उत्पन्न हुए थे । ये बड़े ही शुभङ्कर रुद्र माने जाते हैं । ये पशुजनों के पापों के विनाशक देव हैं । इनके स्मरणमात्र से जनता का कल्याण हो जाता है ।

अन्य जितने इन्द्रद्वीप आदि द्वीप हैं, उनमें असभ्य म्लेच्छों का निवास है । उनमें देवों तीर्थों की कमी है । एक स्थान पर कहा गया है कि, वर्णाश्रम का सम्यक् आचार, कुमारी द्वीप में है, इसमें संशय नहीं । इतर द्वीप शिष्टाचार से अनभिज्ञ ही हैं ।।२५५।।

कुमारी खण्ड में सात पर्वत बड़ी अच्छी तरह अवस्थित हैं । १.महेन्द्र, २.मलय, ३.सह्य, ४.शक्तिमान्, ५.ऋक्ष, ६.विन्ध्य, ७.पारियात्र, ये कुल

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च भान्त्येते कुलपर्वताः ।

सुशोभनाः सिद्धिसाधनानुगुणाः । केतुमालस्थात्पारियात्रादयमन्यः । एवमन्यत्र । अथ–

दक्षसागरमध्यस्थान्युपद्वीपानि षट् प्रिये ।।२५७।।

तान्याह–

अङ्गद्वीपं यवाख्यं च मलयं शङ्खसंज्ञकम् ।
कुमुदं च वराहं च इत्येवं परिकीर्तितम् ।।२५८।।

एषां मध्यात्–

कथितो मलयद्वीपे मलयो नाम पर्वतः ।
तस्य पादे त्रिकूटो वै लङ्का तस्योपरि स्थिता ।।२५९।।

पादे पर्यन्ते ॥२५९॥

सा च–

चामीकरमयी शुभ्रा चत्वरोद्यानमण्डिता ।

चत्वरैः शिवाधिष्ठितैश्चतुष्पथैर्मुक्तिदैः, उद्यानैश्च भोगस्थानैर्भूषिता । तथा–

चित्रप्राकाररचिता वज्रवैडूर्यमण्डिता ।।२६०।।
अनन्तविभवास्तत्र राक्षसा देवकन्यकाः ।
रमन्ते कन्यकासक्ता महाबलपराक्रमाः ।।१६१।।

पराक्रमः उत्साहः ॥२६१॥

पर्वत माने जाते हैं । इसी तरह दक्ष सागर में अवस्थित छः उपद्वीप भी हैं । ये सभी बड़े आकर्षक हैं ॥२५६-२५७॥

अङ्ग, यव, मलय, खङ्ग, कुमुद और वराह इनके नाम हैं । इनमें मलय द्वीप में मलय नामक पर्वत है । इसके पद भाग में त्रिकूट पर्वत है । इसी पर लङ्का बसी हुई है ॥२५८-२५९॥

यही वह लङ्का है, जो स्वर्णनिर्मित थी । यह शुभ्रवर्णों से सुशोभित, शिवाधिष्ठित चतुष्पथों से प्रथित है । इसके पुष्पों से मण्डित उद्यान बड़े मनोहर हैं । इसकी चहारदिवारियाँ चारु और चित्राकार हैं । वज्र और वैदूर्य से विभूषित हैं ॥२६०॥

अत्यन्त वैभवशाली राक्षस जाति के लोग यहाँ रहते हैं । देवकन्याओं से यह दिव्य है । उनमें नितान्त आसक्त रसिकशिरोमणि, महाबली और उत्साह सम्पन्न राक्षस लोग रहते हैं ॥२६१॥

अन्यच्च–

अगस्त्यशिखरं तत्र मलये भूधरोत्तमे ।
तत्राश्रमो महापुण्य आगस्त्यः स्फटिकप्रभः ।।२६२।।
तत्रान्योन्यविरुद्धास्तु सत्त्वाः क्रीडन्त्यशङ्किताः ।
न तत्र जायते मारी नाकालः सम्प्रवर्तते ।।२६३।।
न जरा न च शोकश्च नोपसर्गभयं क्वचित् ।

मारी बहुमरणम् । अकालो वर्षातपवैपरीत्यम् । उपसर्गा व्याधयः । किञ्च,

न वदत्यनृतं कश्चिद्रागद्वेषौ न कुत्रचित् ।।२६४।।
अगस्त्यस्य प्रभावेण त्वज्ञानं दूरतो गतम् ।
तत्र वै ऋषयो वीरा ज्ञानयोगकृताश्रमाः ।।२६५।।
जपाध्ययनहोमादिपूजास्तुतिपरायणाः ।
त्र्यम्बकस्य महादेवि नित्यमाराधने रताः ।।२६६।।

अगस्य नामक शिखरस्थली उक्त मलय पर्वत की पावनता की प्रतीक है । वहीं महर्षि अगस्त्य का स्फटिक के समान पारदर्शी, महापवित्र आश्रम है ॥२६२॥

वहाँ की एक सबसे बड़ी विशेषता है कि, तपस्या के प्रभाव से जन्मजात शत्रु श्वापद भी परस्पर प्रीतिपूर्वक विहार करते हैं । वहाँ किसी प्रकार की भीषण और महासंहारप्रदा महामारियाँ नहीं होतीं । ऋषि के पुण्य से उस क्षेत्र में अकाल नहीं पड़ता ॥२६२-२६३॥

वहाँ के लोगों को जरा नहीं सताती । शोक नहीं होता । किसी प्रकार के उपसर्ग छुआ-छूत के गहन रोग नहीं होते । वहाँ का निवासी कोई व्यक्ति असत्य सम्भाषण नहीं करता । कहीं खोजने पर पारस्परिक रागद्वेष का भाव किसी में नहीं प्राप्त होता ॥२६४॥

महर्षि अगस्त्य के प्रभाव से सर्वत्र ज्ञान का प्रकाश प्रसरित है । अज्ञान का नामोनिशान वहाँ नहीं । वहाँ सर्व अर्पित करने वाले वीर उपासक निवास करते हैं । ज्ञानयोग में निष्णात शास्त्रसिद्ध इन वीरों के आश्रमों का यहाँ महा प्रभाव है ॥२६५॥

वहाँ साधक प्राणसम जप करते हैं । अध्येता वर्ग स्वाध्याय में संलग्न और अध्ययन रत रहते हैं । यथावसर जपान्त होम सम्पादन करते हैं । वहाँ के लोग भागवत्पूजा, स्तुति एवं प्रार्थनाओं में परायण रहते हैं । भगवान् भैरव कह रहे हैं कि, महादेवि ! वहाँ के निवासी भगवान् शिव के परम उपासक हैं ॥२६६॥

अगस्त्यसहिताः सर्वे मोक्षाभ्युदयवादिनः ।

तिष्ठन्ति भावितात्मानः शापानुग्रहकारिणः ।।२६७।।

मोक्षमेवाभ्युदयं वदन्ति तच्छीलाः । भावितः शिवत्वं प्रापित आत्मा यैः ॥२६७॥

उपसंहरति–

लक्षयोजनविस्तीर्णं जम्बुद्वीपं समन्ततः ।

पूर्वपश्चिमतः प्राग्दर्शितं दक्षिणोत्तरतस्तूच्यते । कुरुहिरण्मयरम्यकहरि-किंपुरुषभारतवर्षाणि षट् प्रत्येकं नवसहस्राणि—इति चतुष्पञ्चाशत्, प्रत्येकं द्वि-साहस्रिकाः शृङ्गवच्छ्वेतनीलहेमकूटनिषधहिमवन्तः–इति द्वादश, मेरोः सव्याप-सव्यगतमिलावृतमष्टादश, मेरोः षोडश सहस्राणि–इत्येवं लक्षयोजनं जम्बुद्वीपं भवति । अस्य च–

लक्षयोजनविस्तीर्णं लवणाम्भः स्थितं बहिः ।।२६८।।

लवणाम्भः क्षारसमुद्रः ॥२६८॥

तच्च–

त्रिगुणं परिणाहेन स्थितं वै मण्डलाकृति ।

अगस्त्य के साथ रहने वाले सभी मोक्ष और जीवन के अभ्युदय के पक्ष-धर हैं, उनकी बातों से, व्यवहार से और साधना से धन्य वे महान् पुरुष इतने समर्थ हैं कि, शापों का भी निग्रह-अनुग्रह कर सकते हैं । विश्व भाव से भावित उनकी आत्मायें बड़ी पवित्र हैं ॥२६७॥

उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि, यह पूरा जम्बूद्वीप एक लाख योजन दीर्घ विस्तार वाला है । कुरु, हिरण्मय, रम्यक, हरि, किंपुरुष और भारत ये प्रत्येक नौ हजार योजन विस्तार वाले हैं । कुल मिलाकर ६×९=५४ हजार योजन का यह सिद्ध क्षेत्र है । इनमें शृङ्गवान्, श्वेत, नील, हेमकूट, निषध और हिमवान् ये द्विसाहस्रिक विस्तार के कारण कुल २×६=१२ हजार योजन के हैं ।

मेरु के सव्य और अपसव्य गत इलावृत वर्ष १८ मेरु से १६ हजार योजन कुल मिलाकर लाख योजन का यह अकेला जम्बूद्वीप है । इसके बाद एक लाख योजन विस्तीर्ण लवण समुद्र लहरा रहा है ॥२६८॥

यह समुद्र तिगुने विस्तार के साथ माण्डलिक रूप वृत्ताकार अस्तित्व में नित्य पुलकायमान हो रहा है । श्रीमलय नामक शास्त्र में भी यह उल्लेख है कि, 'इसका फैलाव सर्वत्र तिगुना ही है' ।

उक्तं च श्रीमलये–

'सर्वत्र त्रिगुणो नाहः....................'। इति ।

किञ्च,

वृत्रारिभयसन्त्रस्ताः प्रविष्टास्तत्र पर्वताः ।।२६९।।

द्वादशैव महावीर्यास्तान् ब्रवीमि समासतः ।

वृत्रारिरिन्द्रः । तानाह–

वृषभो दुन्दुभिर्धूम्रः प्रविष्टाः पूर्वभागतः ।।२७०।।

चन्द्रः कङ्कस्तथा द्रोणः प्रविष्टा उत्तरेण तु ।

अशोकोऽथ वराहश्च नन्दनश्च तृतीयकः ।।२७१।।

अपरेण नगास्तत्र प्रविष्टा लवणोदधिम् ।

चक्रो मैनाकसंज्ञश्च तृतीयस्तु बलाहकः ।।२७२।।

दक्षिणेन वरारोहे प्रविष्टाश्चैव भूधराः ।

अत्र च–

चक्रमैनाकयोर्मध्ये तिष्ठेद्वै वडवामुखः ।।२७३।।

यह ध्यान देने की बात है कि, इस द्वीप के सभी पर्वत वृत्रारि के भय से सन्त्रस्त होकर समुद्र में ही प्रविष्ट हैं। वह इन पर्वतों का शत्रु है। यह पुराणों की प्रसिद्ध कथा है। इन पर्वतों में द्वादश महापराक्रमी मुख्य पर्वत ही समुल्लेख्य हैं ।।२६९।।

भगवान् कह रहे हैं कि, मैं संक्षेप में उनका वर्णन करने जा रहा हूँ। १.वृषभ, २.दुन्दुभि और ३.धूम्र, ये तीन पर्वत पूर्व भाग से समुद्र में प्रविष्ट हुए थे। चन्द्र, कङ्क और द्रोण ये तीनों उत्तर भाग से प्रविष्ट हुए थे। अशोक, वराह और नन्दन ये तीनों पश्चिम भाग से लवण समुद्र में प्रविष्ट हुए थे। चक्र और मैनाक तथा तीसरा बलाहक, ये तीनों दक्षिण भाग से समुद्र में प्रवेश कर गये थे ।।२७०-२७२।।

यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि, चक्र और मैनाक इन दोनों के बीच में बड़वामुख नाम क पर्वत भी समुद्र में ही बैठा हुआ है ।।२७३।।

इस प्रकार इन लवण समुद्रों से परिवृत द्वीप ही जम्बूद्वीप है। इन महाद्वीपों के नाम में प्राचीन इतिहास की साङ्केतिकता प्रधान कारण हैं। इनके प्राचीन स्वामियों की ये अधिष्ठान भूमियाँ थीं। उन्हीं पर इनके नाम रखे गये थे। क्रमशः उनका वर्णन भगवान् भैरव इस सन्दर्भ में कर रहे हैं–

तदेवमब्धिपरिवृतम्–

जम्बुद्वीपं समाख्यातं

अथैषां वर्षाणामिलावृतादिनामकस्वाम्यधिष्ठानादेव ताः संज्ञा इति देवता-संज्ञानामुत्पत्तिहेतुरूपं प्रभवं दर्शयितुमुपक्रमते–

प्रभवस्त्वधुनोच्यते ।

तत्राद्यो भूपतिः

स्वायंभुवो मनुर्नाम

अभूत् ।

तस्य पुत्रः प्रियव्रतः ॥२७४॥

तस्याथ दश पुत्रा वै जाता वीर्यबलोत्कटाः ।

अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वपुः ॥२७५॥

ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः सत्र एव च ।

एषां मध्यात्–

मेधाः सत्रोऽग्निबाहुश्च एते प्रव्रजितास्त्रयः ॥२७६॥

सप्तद्वीपेषु ये शेषा अभिषिक्ता महाबलाः ।

तत्र–

जम्बुद्वीपे तथाग्नीध्रः

उनके अनुसार प्रभव नामक द्वीप की चर्चा कर रहे हैं। इसके आदि नृपति का नाम स्वायंभुव मनु था। उनके पुत्र का नाम प्रियव्रत था ॥२७३-२७४॥

नृपति प्रियव्रत के महापराक्रमी और महाबली दश पुत्र थे। १.अग्नीध्र, २.अग्निबाहु, ३.मेधा, ४.मेधातिथि, ५.वपुष्मान्, ६.ज्योतिष्मान्, ७.द्युतिमान्, ८.हव्य, ९.सवन और १०.सत्र (इन पुत्रों के) यही नाम थे ।

इन पुत्रों में से तीन १.मेधाः, २.सत्र और ३.अग्निबाहु, ये तीनों सांसारिकता के माया-प्रवाह से पराङ्मुख होने के कारण शिवतादात्म्य पथ के पथिक बन प्रव्राजक बन गये ॥२७५-२७६॥

शेष बचे सात। यही सात सप्तद्वीपों के अधिपति के रूप में अभिषिक्त हुए। ऋषियों ने सम्राट् के रूप में इनका शास्त्रानुसार राज्याभिषेक किया। ये सातों महाबलशाली सम्राट् इतिहास में प्रसिद्ध थे ।

तथेत्यभिषिक्तः ।

तस्य पुत्रा नव स्मृताः ।।२७७।।

नाभिः किंपुरुषश्चैव हरिश्चैव इलावृतः ।

भद्राश्वः केतुमालश्च रम्यकश्च हिरण्मयः ।।२७८।।

नवमस्तु कुरुर्नाम

एते–

नववर्षाधिपाः स्मृताः ।

अग्नीध्रतस्तु जाता वै शूराश्चातिबलोत्कटाः ।।२७९।।

तेषां नामाङ्कितानीह नववर्षाणि पार्वति ।

तत्र भारतं वर्ष प्रथमं नाभिनामाङ्कितमभूत् । पश्चात् तु–

नाभेः पुत्रो महावीर्यो वृषभो धर्मतत्परः ।।२८०।।

तस्यापि हि सुतो ज्ञेयो भरतस्तु प्रतापवान् ।

तन्नाम्नैव तु विज्ञेयं भारतं वर्षमुत्तमम् ।।२८१।।

अथ–

तस्याप्यष्टौ पुनः पुत्रा जाता कन्यापरा प्रिये ।

जम्बूद्वीप में अग्नीध्र अभिषिक्त हुए थे । अग्नीध्र के नौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥२७७॥

१.नाभि, २.किंपुरुष, ३.हरि, ४.इलावृत, ५.भद्राश्व, ६.केतुमाल, ७.रम्यक, ८.हिरण्मय और ९.कुरु । ये नौ वर्षों के अधिपति शास्त्रों के द्वारा आज भी स्मरण किये जाते हैं ॥२७८॥

अग्नीध्र नामानुरूप बड़े तेजस्वी राजा थे । उनसे महान् शूर-वीर और बल की दृष्टि से भीषण शक्तिशाली वे पुत्र थे, जिन्होंने उक्त नौ जनपदों के अधिपतित्व के उत्तरदायित्व का निर्वाह किया था । इतिहास इसका साक्षी है ॥२७९॥

भारतवर्ष में नाभिकी परस्परा ही पनप सकी । नाभि धर्म की रक्षा में तत्पर सम्राट् था । उसके पुत्रों में सर्वश्रेष्ठ वृषभ था । यह भी धार्मिकशिरोमणि था । इसी वृषभ का पुत्र प्रतापशाली वीर पुङ्गव 'भरत' था । इसी के नाम पर इस देश का नाम भी भारतवर्ष पड़ा ॥२८०-२८१॥

उसके भी आठ पुत्र उत्पन्न हुए । नवीं कन्या थी । इन आठों को भारत के आठ जनपद प्रजापालन के उद्देश्य से दिये गये, नवीं पुत्री को

तेषां मध्यात्–

भारते त्वष्टद्वीपेऽत्र अष्टौ पुत्रा निवेशिताः ।।२८२।।
नवमस्तु कुमार्याह्वः कुमार्याः प्रतिपादितः ।

कन्याप्रतिपादनादेव कुमार्याह्वः । ततश्च–

तेषां नाम्ना तु ते द्वीपा भरतेन प्रकीर्तिताः ।।२८३।।

ये पूर्वम्–

'इन्द्रश्चैव कशेरुश्च................'। इत्युक्ताः ॥२८३॥

तदेवं सप्तदशधाविभक्तजम्बुद्वीपानुवादपूर्वं द्वीपान्तराण्याह–

जम्बुद्वीपं च शाकं च कुशं क्रौञ्चं च शाल्मलिम् ।
गोमेदं पुष्करं चैव सप्त द्वीपानि पार्वति ।।२८४।।

यैः समुद्रैर्वलयितानि द्वीपानि, तान्–

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि समुद्रांस्तव सुव्रते ।
क्षारः क्षीरं दधि घृतं तथा इक्षुरसोऽपि च ।।२८५।।

कुमारी द्वीप दिया गया । कुमारी को देने के कारण ही यह कुमारी जनपद माना गया ॥२८२॥

भारतवर्ष के जनपदों के नाम भी भरत ने अपने पुत्रों के नामों के अनु-रूप ही निर्धारित किया था । जैसे कन्या के नाम पर शासित जनपद का नाम कुमारी नामक जनपद ही पड़ा ॥२८३॥

इस प्रकार जम्बुद्वीप ९+८=१७ भागों में विभक्त हो गया ।

जम्बुद्वीप का नाम वस्तुतः जम्बुफल के नाम पर पड़ा था । जम्बु और जम्बुशब्दों में ह्रस्व और दीर्घ का कोई विचार नहीं है । जैसे जम्बुनदी (श्लोक १९१) जम्बुमूलम् (श्लोक १९२) जम्बुद्वीपं (श्लोक १९८) जम्बुरस फलाहारा जम्बुद्वीपे (श्लोक २७७) जम्बुद्वीपं (श्लोक २७४) जम्बुद्वीपं)२८४) इससे यह स्पष्ट है कि नदी और नद के लिये तो दीर्घ प्रयोग और द्वीप के लिये ह्रस्व उकार का प्रयोग होना चाहिये ।

जम्बुद्वीपं के साथ अन्य द्वीपों का नाम इस प्रकार हैं–१.जम्बुद्वीप, २.शाक, ३.कुश, ४.क्रौञ्च, ५.शाल्मलि, ६.गोमेद, ७.पुष्कर, ये ही सात द्वीप हैं । यह तथ्य भगवान् भैरव ने पार्वती से कहा ॥२८४॥

जिन समुद्रों से ये द्वीप बलयित हैं, उनके नाम बतला रहे हैं–१.क्षार, २.क्षीर, ३.दधि, ४.घृत, ५.इक्षुरस, ६.मदिरा और ७.स्वादूदक ॥२८५॥

मदिरोदश्च स्वादूदः समुद्राः सप्त कीर्तिताः ।

प्रोक्तद्वीपानुसारमेते यथोक्तक्रमेणैव स्थिताः सर्वेषु पारमेशेषु एवमेवोक्तत्वात् । तेनेक्षुरससुराघृतदधिक्षीरस्वादूदका इति पातञ्जले यः क्रमो दृश्यते, स लेखकदोषाद्विपर्यस्त इति मन्तव्यम् ।

अथोक्तजम्बुद्वीपप्रमाणानुवादेनैषां द्वीपसमुद्राणां प्रमाणमाह–

जम्बुद्वीपं स्मृतं लक्षं योजनानां प्रमाणतः ।।२८६।।
परिमण्डलतो ज्ञेयः क्षारोदस्तत्समो बहिः ।

परिमण्डलत इति वैपुल्यात् ।

एवं द्विगुणवृद्ध्यात्र समुद्रा द्वीपसंस्थिताः ।।२८७।।

संस्थिता इति संशब्दः सहार्थे । तेन शाकादिभिः द्वीपैः सह क्षीरादिसमुद्राः क्रमाद् द्विगुणवृद्ध्या स्थिताः । तद्यथा शाकद्वीपं द्वे लक्षे, तथा क्षीराब्धिः । कुशद्वीपं लक्षाणि चत्वारि तथैव दध्यब्धिः । क्रौञ्चमष्टौ, तथैव च घृताब्धिः । शाल्मलिः षोडश, तद्वदिक्षुरसाब्धि । गोमेदो द्वात्रिंशत्, तद्वद् मदिराब्धिः । पुष्करश्चतुष्षष्टिः, तथैव स्वादूदः । एतच्च द्वीपसमानत्वमब्धीनामुपसंहरिष्यति–

'पुष्करद्वीपगुणितः स्वादूदोऽन्ते व्यवस्थितः' । (१०/३२७)

इति । इत्थं च मेर्वर्धात् स्वादूदान्तं कोटिद्वयत्रिपञ्चाशल्लक्षाणि पञ्चाशच्च सहस्राणि भवन्ति । यद्वक्ष्यति–

क्रमशः उक्त द्वीपों के साथ ही इन सात समुद्रों के नाम और क्रमिक रूप से ही इनका समुल्लेख समस्त पारमेश्वर शास्त्रों में किया गया है । पातञ्जल में इसके विपरीत क्रम का उल्लेख लेखक के कारण विपर्यस्त हो गया है, इसे दोष मानते हैं । वास्तविकता का अपलाप नहीं होना चाहिये । इनमें जम्बुद्वीप एक लाख योजन का प्रमाणित है । इसके बाहर क्षारोदक समुद्र परिमण्डलित है ।।२८६।।

इसके अतिरिक्त सभी द्वीप और उनके समुद्र द्विगुणित रूप से अवस्थित हैं । इस तरह शाक आदि द्वीपों के साथ क्षीर आदि समुद्र क्रमशः द्विगुणित होते जाते हैं । यदि शाक द्वीप क्षीर समुद्र के साथ दो लाख योजन हुआ, तो कुश द्वीप दधि समुद्र के साथ ४ लाख योजन होता है ।

क्रौञ्च और घृताब्धि, शाल्मलि और इक्षुरस सोलह गोमेद और मदिरा समुद्र ३२, पुष्कर और स्वादुसमुद्र बत्तीस गुणा होता है । अध्येता को सावधानी पूर्वक निर्णीत करना चाहिये । आगे इसी पटल के ३२७ वें श्लोक द्वारा इसका उपसंहार होने वाला है ।

'पञ्चाशच्च सहस्राणि त्रिपञ्चाशत्तथैव च ।
योजनानां तु लक्षाणि कोटिद्वितयमेव च ॥
मेर्वर्धाद्यावत्स्वादूदं प्रमाणं परिकीर्तितम्' । (१०/३२८)

इति ॥२८७॥

तथा च-

अग्नीध्रश्च समाख्यातो जम्बुद्वीपे वरानने ।

तथा-

शाके मेधातिथिर्नाम वपुष्मान् कुशसंज्ञके ॥२८८॥
राजा क्रौञ्चेऽथ ज्योतिष्मान् शाल्मलौ द्युतिमान् स्मृतः ।
गोमेदे हव्यनामा तु सवनः पुष्करे तथा ॥२८९॥

किञ्च,

त्रेतायुगसमः कालः शाकगोमेदवासिनाम् ।
तथा वर्णाश्रमाचारा ज्ञेयास्तत्र निवासिनाम् ॥२९०॥

तथेति त्रेतायुगानुगुणाः । अन्यत्र विशेषानभिधानात् चतुर्युगसमत्वं सम्भाव्यते ॥२९०॥

इस प्रकार मेरु पर्वत के अर्धभाग से स्वादूदकान्त पर्यन्त दो करोड़ तिरपन लाख पचास हजार योजन का संगणन पूरा होता है । वहीं कहा गया है कि,

मेरु के अर्धभाग से स्वादूदक पर्यन्त सारे अवस्थानों का मान दो करोड़ तिरपन लाख पचास हजार योजन का है (१०/३२८) । यह कैसे नापा गया अथवा योजन का दूरी की यह मान कैसे प्रमाणित है, इसका कोई विवरण यहाँ नहीं है । 'आप्तवाक्यं प्रमाणं' के आधार पर ही यह मान्य है ॥२८७॥

इससे यह प्रमाणित है कि, अग्नीध्र जम्बुद्वीप के अधिपति थे । शाक के मेधातिथि, कुश के वपुष्मान्, क्रौञ्च के ज्योतिष्मान्, शाल्मलि के द्युतिमान्, गोमेद के हव्य और पुष्कर के सवन नामक सम्राट् थे ।

शाक और गोमेदवासियों के लिये ऋतु त्रेता युग की तरह होता है । यहाँ के निवासियों में भी वर्ण और आश्रम की व्यवस्था है । अन्य द्वीपों के विषय में किसी प्रकार का कोई उल्लेख न होने के कारण यह सम्भव है कि, वहाँ चारों युगों के समान ही देश काल की व्यवस्था हो ॥२८८-२९०॥

शाकादिद्वीपविभागान्तरमाह–

मेधातिथेः सप्त पुत्राः शाकद्वीपेऽभिषेचिताः ।

शान्तोऽभयस्त्वशिशिरः सुखदो नन्दकः शिवः ।।२९१।।

क्षेमकश्च ध्रुवश्चेति वर्षनाम्ना तु तेऽङ्किताः ।

प्रसिद्धवर्षनामानुसारीणि तेषां नामानीत्यर्थः ।

वर्षाणि सप्त ख्यातानि

तत्प्रविभागहेतून्

पर्वतांश्च निबोध मे ।।२९२।।

गोमेदश्चन्द्रसंज्ञश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा ।

सोमक ऋषभश्चैव वैभ्राजश्च कुलाद्रयः ।।२९३।।

एते च शाकद्वीपस्य पार्श्वमानविभागेन स्थिताः सप्तधात्वं कुर्वन्ति एव-मन्यत्र ।।२९३।।

किञ्च,

सुकृता चानसूया च सुमुखी च तृतीयका ।

विपाशा त्रिदिवा कुम्भी तथा चामृतनालिका ।।२९४।।

एता एव महानद्यो गिरिष्वेतेषु निर्गताः ।

संस्थिताः सत्य एभ्यो निर्गता इत्यर्थः । एताश्च–

पूर्वादारभ्य निष्क्रान्ताः प्रविष्टाः क्षीरसागरम् ।।२९५।।

मेधातिथि के सात पुत्र थे । वे शाक द्वीप में अभिषिक्त थे । शान्त, अभय, अशिशिर, सुखदायक नन्दक, शिव क्षेमक, ध्रुव ये सातों अपने अपने नामों के अनुसार इन्हीं नाम वाले जनपदों में राजा बने ।।२९१।।

इन सात वर्षों के अतिरिक्त इनमें सात कुल पर्वत भी थे । १.गोमेद, २.चन्द्र, ३.नारद, ४.दुन्दुभि, ५.सोमक, ६.ऋषभ और ७.वैभ्राज ।।२९३।।

इन उक्त पर्वतों से १.सुकृता, २.अनसूया, ३.सुमुखी, ४.विपाशा, ५.त्रिदिवा, ६.कुम्भी, ७.अमृतनालिका । ये सातों महानदियाँ मानी जाती हैं । ये सभी पूरब से निकाल कर क्षीरसागर में गिरती हैं और अत्यन्त पावन हैं ।।२९४-२९५।।

अत्र च–

शाकद्वीपे तु ये लोकाः क्षीराहाराः फलाशिनः ।

अतश्च–

चन्द्रकान्तसमाः सर्वे सुरूपाः प्रियदर्शनाः ।।२९६।।
क्रीडन्ति दिव्यनारीभिः सर्वैश्वर्यसमन्विताः ।

तदेवम्–

कुशे वपुष्मता पूर्वं सप्त पुत्रा निवेशिताः ।।२९७।।
श्वेतलोहितजीमूता हरितो वैद्युतस्तथा ।
मानसः सुव्रतश्चेति वर्षनाम्नैव चाङ्किताः ।।२९८।।

अत्र च विभागहेतवः–

कुमुदश्चोर्वदश्चैव वाराहो द्रोणकङ्कतौ ।
महिषः कुसुमश्चैव सप्त सीमान्तपर्वताः ।।२९९।।

अत्र च–

श्वेततोया तथा कृष्णा चन्द्रा शुक्ला च लोचनी ।
वीवृता च विवृन्दा च सप्तैतास्तु सरिद्वराः ।।३००।।

शाकद्वीप के लोग दूध पर निर्भर रहते हैं और फलाहार करते हैं । इनकी कान्ति चन्द्रमा के समान रुचिकर और आकर्षक है । सभी प्रियदर्शन लोग वहाँ रहते हैं ।।२९६।।

वे दिव्य अप्सराओं और नारियों के साथ विहार करते हैं । उनके पास संसार के सारे ऐश्वर्य भरे पड़े हैं ।

कुश में वपुष्मान् ने सात पुत्रों को अभिषिक्त किया था । १.श्वेत, २.लोहित, ३.जीमूत, ४.हरित, ५.वैद्युत, ६.मानस, ७.सुव्रत । इन्हीं के नाम के जनपदों के ये सर्वाधिकारी थे ।।२९७-२९८।।

इस महाद्वीप के सात पर्वतों ने इन जनपदों को विभक्त कर दिया था । १.कुमुद, २.उर्वद, ३.वाराह, ४.द्रोण, ५.कङ्कत, ६.महिष और ७.कुसुम—ये सातों इसीलिये सीमान्त पर्वत कहलाते हैं ।।२९९।।

इसकी सात सरितायें भी इन्हें सींचती हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं–१.श्वेततोया, २.कृष्णा, ३.चन्द्रा, ४.शुक्ला, ५.लोचनी, ६.वीवृता और ७.विवृन्दा । ये सभी महानदियाँ मानी जाती हैं ।।३००।।

दध्युदकं प्रविष्टास्ता निम्नगाः पावनोदकाः ।
जनास्तु सुखिनस्तत्र दध्नामृतफलाशिनः ।।३०१।।
दिव्यभोगरताः सर्वे क्रीडन्त्येते सयोषितः ।

दध्ना सह अमृतमयानि फलानि चाश्नन्ति । एवमुत्तरत्र ।

ज्योतिष्मता सप्त पुत्राः क्रौञ्चद्वीपे निवेशिताः ।।३०२।।
उद्भिज्जश्च समाख्यातो वेणुर्मण्डल एव च ।
रथकारश्च लवणो धृतिमान् सुप्रभाकरः ।।३०३।।
कपिलश्चेति राजानो वर्षनाम्ना च तेऽङ्किताः ।

अत्रापि विभागहेतवः-

वैद्रुमो हेमनाभश्च द्युतिमान् पुष्पदन्तकः ।।३०४।।
कुशलो हरिमर्दश्च सप्तैते तु कुलाद्रयः ।

तेभ्यः-

मही धाता शिवापापा पवित्रा सन्ततद्युतिः ।।३०५।।
दम्भा चेति समाख्याताः सप्तैताः सरितः स्रुताः ।
घृतोदं प्रविशन्त्येताः सर्वाः पापहराः प्रिये ।।३०६।।

ये सभी दधिसमुद्र में सङ्गम बनाती हैं । इनका जल भी अत्यन्त पवित्र होता है । यहाँ के निवासी सुखी हैं । दही से मिलाकर अमृत फल का आहार लेते हैं । दिव्य भोगोपभोग में रत सपत्नीक विहार करते हैं ।।३०१।।

ज्योतिष्मान् ने सात पुत्रों को क्रौञ्चद्वीप में अभिषिक्त किया था । १.उद्भिज्ज, २.वेणु, ३.मण्डल, ४.रथकार, ५.लवण, ६.धृतिमान्, ७.कपिल, ये सभी वर्ष के नामनुसारी राजा हैं ।।३०३।।

इन सभी राजाओं को अपने नाम के देश में पर्वतों के आधार पर ही राज्य मिले थे । इन पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं-१.वैद्रुम, २.हेमनाभ, ३.द्युतिमान्, ४.पुष्पदन्तक, ५.कुशल, ६.हरिमर्द और ७.हरिमर्द । ये सात कुलाद्रि हैं ।।३०४।।

१.मही, २.धाता, ३.शिवा, ४.अपापा, ५.पवित्रा, ६.सन्ततद्युति और ७.दम्भा । ये सात स्रोतस्विनियाँ वहाँ सदा से प्रवाहित हैं । ये सभी घृत समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं । बड़ी पावन हैं और पापों का हरण करती हैं ।।३०६।।

जनास्तद्वासिनः सर्वे सुरूपास्तेजसोत्कटाः ।
घृतामृतफलाहाराः सुतृप्ताः स्मरपीडिताः ।।३०७।।
क्रीडन्ति वनितायुक्ताः पद्मपत्रायतेक्षणाः ।

स्मरपीडितत्वं सम्भोगैकनिष्ठत्वम् । तथा–

सप्त द्युतिमता पुत्राः शाल्मलावभिषेचिताः ।।३०८।।
मनोनुगस्तथोष्णश्च पावनो ह्यन्धकारकः ।
मुंनिर्दुन्दुभिनामा च कुशलश्चेति ते स्मृताः ।।३०९।।
वर्षनामानि तेषां वै सप्तानां तु सप्त क्रमात् ।
क्रौञ्चोऽथ वामनश्चैवाप्यन्धकारो दिवाकृतिः ।।३१०।।
द्विबिन्दुः पुण्डरीकश्च दुन्दुभिश्च कुलाद्रयः ।
पौण्डरी कौशिकी गौरी सिद्धा चैव कुमुद्वती ।।३११।।
सन्ध्या रात्री च विख्याता समासात्परिकीर्तिताः ।
नद्यस्ताः शैलनिष्क्रान्ता गच्छन्तीक्षुरसार्णवम् ।।३१२।।

यहाँ के रहने वाले बड़े ही रूपवान् तेजस्वी और विशाल व्यक्तित्वसम्पन्न होते हैं । घृतसेवी और अमृत फलों का आहार ग्रहण करते हैं । नित्य तृप्त रहते और बड़े ही कामुक होते हैं ॥२०७॥

वनिताओं के साथ नित्य विहार करना इनकी कामुक प्रवृत्ति का प्रमाण है । यहाँ की वनिताओं की आँखें कमलदल के आकार की अत्यन्त आकर्षक होती हैं ॥३०८॥

नृपति द्युतिमान् ने शाल्मलि में सात पुत्रों का राज्याभिषेक किया । इनमें मनोनुग, उष्ण, पावन, अन्धकारक, मुनि, दुन्दुभि और कुशल नामक यही उनके पुत्र थे ॥३०९॥

उनके जनपदों के नाम सातों के सात क्रमशः वहीं नाम थे, वहाँ सात कुलपर्वत १.क्रौञ्च, २.वामन, ३.अन्धकार, ४.दिवाकृति, ५.द्विबिन्दु, ६.पुण्डरीक और ७.दुन्दुभि थे ॥३१०॥

वहाँ की नदियाँ भी १.पौण्डरी, २.कौशिकी, ३.गौरी, ४.सिद्धा, ५.कुमुद्वती, ६.सन्ध्या, ७.रात्रि, नाम वाली थीं ॥३११॥

पर्वतों से निकल कर ये सभी इक्षुरस समुद्र में गिरती थीं ॥३१२॥

पिबन्तीक्षुरसं तत्र ये जनास्तन्निवासिनः ।
दिव्यकान्तियुताः शान्ताः सुरूपाः प्रियवादिनः ॥३१३॥
नानानारीसमाकीर्णाः सर्वकामसुखोदयाः ।

एवम्–

हव्यराजः सुतान् सप्त गोमेदे चाभ्यषेचयत् ॥३१४॥
जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मरीचकः ।
कुमुदश्चोन्नतश्चैव महाभद्र इति स्मृताः ॥३१५॥
तेषां नाम्ना च वर्षाणि अङ्कितानि स्वनामतः ।
उदयः केसरश्चैव जठरोऽथ सुरैवतः ॥३१६॥
श्यामोऽम्बिकेयो मेरुश्च शैलाः सीमान्तगास्त्विमे ।
गभस्ती सुकुमारी च कुमारी नलिनी तथा ॥३१७॥
वेणुका चाप्यथेक्षू च धेनुकेति सरिद्वराः ।
मदिरोदं वहन्त्येताः पुण्याः पुण्यजलोद्वहाः ॥३१८॥

वहाँ के लोग इक्षुरस के बड़े प्रेमी हैं । दिव्यकान्ति से समन्वित, शान्त, रूपवान् और प्रियवादी हैं ॥३१३॥

वहाँ अनेक विवाह करने की प्रथा के कारण अनेक नारियों के साथ वे रहते हैं । उनके लिये सुख के सभी साधन प्रकृति ने स्वयं प्रस्तुत किये हैं ।

इनके अतिरिक्त गोमेद वर्ष में 'हव्य' ने भी सात पुत्रों का राज्याभिषेक किया ॥३१४॥

उन पुत्रों के नाम हैं—१.जलद, २.कुमार, ३.सुकुमार, ४.मरीचक, ५.कुमुद, ६.उन्नत और महाभद्र ॥३१५॥

इन्होंने अपने नामों पर ही देश बसाये । वहाँ के कुल पर्वत–१.उदय, २.केशर, ३.जठर, ४.रैवत हैं ॥३१६॥

५.श्याम, ६.अम्बिकेय और ७.मेरु ये सात पर्वत हैं । वे सभी सीमा के विभाजक थे ।

वहाँ की नदियों के नाम भी १.गभस्ती, २.सुकुमारी, ३. कुमारी, ४.नलिनी, ५.वेणुका, ६.इक्षु और ७.धेनुका है । ये सभी मदिरा के समुद्र में गिरती है । इनके जल बड़े ही पवित्र और पुण्यप्रद हैं ॥३१७-३१८॥

अमृतोपमानि स्वादूनि फलान्यत्र वरानने ।
भक्षयन्ति च तल्लोकाः पिबन्ति मदिरामृतम् ।।३१९।।

मदिरोमिदति 'कालभावगन्तव्याध्वानः कर्मसंज्ञाः ॥३१९॥
ते च–

सर्वकामसमृद्धाश्च सुरूपा व्याधिवर्जिताः ।
नानायुवतिवृन्दैश्च रूपयौवनगर्वितैः ।।३२०।।
मदालसैः पानमत्तै रमन्ते सततं प्रिये ।
अतश्च पुष्कराख्ये च सवनस्तत्र नायकः ।।३२१।।
द्वौ पुत्रौ तेन विख्यातौ पुष्कराख्ये निवेशितौ ।

वक्ष्यमाणसंज्ञौ । तत्र च–

पर्वतो वलयाकारो मानसोत्तरसंज्ञितः ।।३२२।।
पञ्चाशदुच्छ्रयस्तस्य विस्तारः पञ्चविंशतिः ।
योजनानां वरारोहे

स च–

सर्वरत्नसमन्वितः ।।३२३।।

वहाँ के फल बड़े ही आस्वादपूर्ण और स्वादिष्ट होते हैं। वहाँ के लोग उन्हीं का आहार करते और अपने पावन मदिरामृत का पानकर प्रसन्न रहते हैं ॥३१९॥

(मदिरा शब्द मदी हर्षे इस दिवादिधातु से इषिमदि इत्यादि सूत्र से किरच् प्रत्यय लगाकर निपन्न होता है। भाव अर्थ में यहाँ कर्म संज्ञा हुई है ॥३१९॥)

यहाँ के रहने वाले सर्वकाम समृद्ध होते हैं। सुन्दर हैं, रूपवान् हैं और स्वस्थ रहते हैं। युवतियों के साथ जो रूप और यौवन से गर्बीली हैं, उनके साथ समय बिताना इनकी हावी है ॥३२०॥

मद से अलस रहना, पीकर मदमत्त हो जाना, इनका स्वभाव है। सतत रमणशील रहते हैं ये लोग।

इनके साथ यह जानना आवश्यक है कि, पुष्कर द्वीप में सवन नायक था ॥३२१॥

उसके दो पुत्र थे। जिन्हें उसने पुष्कर में निवेशित किया था। वहाँ वलयाकार मानसोत्तर नामक पर्वत शोभायमान है ॥३२२॥

पचास योजन ऊँचा २५ योजन का विस्तार है। भगवान् कह रहे है कि, देवि ! वह द्वीप सभी रत्नों से समृद्ध है ॥३२३॥

तेन द्विधाकृते देशे सति–

धातकी मध्यमे राजा महावीतो बहिर्नृपः ।

मध्यम इति भूगोलापेक्षया । अत्र च–

ईर्ष्यया रागतृष्णाभिरीतिभिश्च विवर्जिताः ।।३२४।।

ईतय आधिदैविकदुःखहेतवः ॥३२४॥

अत एव–

सर्वे ते सुखिनस्तत्र तस्मिन् वर्षद्वये जनाः ।

स च पर्वतः

चक्राकारस्तु बोद्धव्यो मानसस्तु वरानने ।।३२५।।

अथ–

चतुर्णां लोकपालानां पुरीस्त्वत्र ब्रवीमि ते ।

अत्रेति पर्वते । तत्र पूर्वादिक्रमेण–

हरेर्वस्वेकसाराख्या याम्या संयमिनी पुरी ।।३२६।।

सुखाह्वा वारुणी चैव सोमस्य तु विभावरी ।

पूर्वोद्दिष्टस्वरूपमानमेव स्वादोदस्येति स्मारयति ।

पुष्करद्वीपगुणितः स्वादूदोऽन्ते व्यवस्थितः ।।३२७।।

गुणित इति क्रमद्विगुणवृद्ध्या चतुःषष्टिलक्षसंख्यो यथा विभक्तं प्राक् ।

पुष्कर के मध्य भाग में राजा धातकी राज्य करता था । बाहर के राजा का नाम महावीत था । वहाँ ईर्ष्या, राग-द्वेष, तृष्णा, ईति का कोई भय नहीं था ॥३२४॥

यह कहा जा सकता है कि, वे सभी लोग अर्थात् पुष्कर के दोनों भागों के लोग सब तरह से सुखी हैं । वह पर्वत भी बड़ा ही रमणीय है और चक्राकार है ॥३२५॥

इस पर्वत चार लोकपालों की पुरियाँ भी हैं । पूर्व में इन्द्र की वस्वैकसारा (अमरावती), दक्षिण में यम की संयमिनी पुरी है ॥३२६॥

पश्चिम में सुखाह्वा वारुणी और उत्तर में सोम की विभावरी नगरी है । यहाँ के दीर्घ विस्तार के क्रम के विषय में यह स्पष्ट कर रहे हैं कि, क्रमशः द्विगुण वृद्धि के क्रम से स्वादूदक समुद्र पर्यन्त ६४ लाख योजन का इनका मान सिद्ध है ॥३२७॥

तदित्थं मेरुमध्यात् स्वादूदाकान्तमुक्तं प्रमाणं सङ्कलयति–

पञ्चाशत्तु सहस्राणि त्रिपञ्चाशत्तथैव च ।
योजनानां तु लक्षाणि कोटिद्वितयमेव च ।।३२८।।
मेर्वर्धाद्यावत्स्वादूदं प्रमाणं परिकीर्तितम् ।

एतत्प्रागेव व्याख्यातम् ।

ततो हेममयी भूमिर्दश कोट्यो वरानने ।।३२९।।
देवानां क्रीडनार्थाय लोकालोकस्त्वतः परम् ।
[1]पर्वतो वलयाकारो योजनायुतविस्तृतः ।।३३०।।
लक्षमात्रसमुत्सेधो योजनानां वरानने ।

अयुतं दशसहस्राणि । स च–

सर्वरत्नसमोपेतो हेमवर्णः प्रकीर्तितः ।।३३१।।

किञ्च,

तस्यान्तर्भासयेद्भानुर्न बहिः सुरसुन्दरि ।

लोकोऽन्तःस्थितानां चतुर्दशभूतात्मनां लोकानामालोको यत्र । यद्वा, लोकः प्रकाशोऽलोकश्च तमोऽन्तर्बहिश्च यस्य स लोकालोकः, आदित्यस्य लोकालोक-समानोच्छ्रायत्वाद् मेरोस्त[2]दन्तरालवर्तित्वाच्च न तद्बहिर्भासकत्वम् । अन्यच्च–

मेरु पर्वत के मध्यभाग से स्वादूदक पर्यन्त सभी द्वीप मानों का सङ्कलन करते हुए कह रहे हैं कि, इन सबका दो करोड़ तिरपन लाख पचास हजार योजन मान है ॥३२८॥

मेरु के अर्ध से स्वादूदक पर्यन्त का पार्यन्तिक यही प्रमाण है । इसके बाद भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ! दश करोड़ योजन स्वर्णिम भूमि है ॥३२९॥

देवों के खेल के मैदान के रूप में यह भूमि निर्धारित है । यह भूमि दश करोड़ योजन की है । इसके बाद लोकालोक वलयाकार पर्वत दश हजार योजन में विस्तृत है ॥३३०॥

लक्ष योजन उसका समुत्सेध है । यह सभी प्रकार के रत्नों का एक तरह का कोष है । इसका वर्ण भी स्वर्ण का ही है ॥३३१॥

इस लोकालोक पर्वत के नीचे ही सूरज का प्रकाश प्रसरित होता है । बाहर नहीं जाता । चौदह लोकों का आलोक इसके ही अन्तः में स्थित है ।

---

१. 'सर्वतो' क. पाठः । २. 'मेरुत' ख. पाठः ।

लोकपालाः स्थितास्तत्र रुद्राश्चामोघशक्तयः ।।३३२।।

च एवार्थे । रुद्रा एव भगवन्तोऽन्तर्वर्तिसमग्रलोकपालास्तत्र स्थिताः, न तु तावदध्वपालने इन्द्रादीनां सामर्थ्यमस्ति, अतो रुद्राणामेवात्र नियोगः । इन्द्रादयस्तु भगवच्छक्तिमयामोघशक्त्या एतद्रुद्रांशाधिष्ठानादेव लोकपाला उच्यन्ते, अत एव भगवदावरणत्वेन पूज्यत्वमेषाम् ।

एतान्नामत उद्दिशति–

विरुजो वसुधामा च शङ्खपात् कर्दमस्तथा ।

हिरण्यरोमा पर्जन्यः केतुमान् [1]भाजनस्तथा ।।३३३।।

एते–

जाम्बूनदमये शुभ्रे सिद्धामरनिवेशने ।

पूर्वादारभ्य क्रमशो यावदीशानगोचराः ।।३३४।।

अथवा प्रकाश और अन्धकार क्रमशः अन्तर्बाह्य उभयात्मक रूप से रहते हैं । आदित्य के सामान उच्छ्राय वाले इस पर्वत के सम्बन्ध में मेरु के अन्तराल में रहने की बात पर वैज्ञानिकों को विचार करना चाहिये । प्रकाश क्यों बाहर नहीं जाता ? क्या कोई ऐसा समय था या लोकालोक पर्वत भुवर्लोक की उच्चता का नाम है, जहाँ से प्रकाश ऊपर नहीं जाता । इस पर आधुनिक वैज्ञानिकों को विचार करना चाहिये ।

उक्त लोकपाल वहाँ अवस्थित हैं । साथ ही अमोघशक्ति रुद्र भी यहाँ रहते हैं । रुद्र वहाँ के सर्वाधिकारी हैं । लोकपाल उनके ही अन्तर्गत वहाँ रहते हैं । अध्वपालन में इन्द्रादि लोकपालों का सामर्थ्य नहीं होता । वस्तुतः रुद्रांशा-पादन से ही उन्हें लोकपालों का सामर्थ्य मिलता है ॥३३२॥

विरुज, वसुधामा, शंखपात्, कर्दम, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, केतुमान् और भाजन ये आठ लोकपाल हैं ॥३३३॥

जाम्बुनदमय सिद्धों और अमरों के शुभ्र क्षेत्र में पूर्व से लेकर अग्नि और दक्षिण होते हुए ईशान कोण पर्यन्त ये अपने लोकपाल के उत्तरदायित्व का पालन करते हैं ॥३३४॥

---

१. 'राजसः' क; ।

लोकपालाः स्थितास्ते वै पालयन्त इमाः प्रजाः ।

सिद्धानां योगिनाममराणां च निवेशनेऽर्धस्थितिधाम्नि । इमा इति, अन्त-र्द्वीपवर्तिचतुर्दशविधभूतसर्गात्मनः । तदाह–

अस्य मध्ये वरारोहे योनयस्तु चतुर्दश ।।३३५।।
चेष्टन्ते विविधाकाराः स्वकर्मपरिरञ्जिताः ।

यदुक्तम्–

'तस्यान्तर्भासयेद्भानु...............'। इति ।

तस्य लोकालोकसन्निकर्षविप्रकर्षोन्मिषितगतिवैचित्र्येण दक्षिणोत्तरायणस्थिति-मादिशति–

लोकालोकोपरिष्टात्तु सवितुर्दक्षिणायनम् ।।३३६।।
तथोत्तरायणं तत्र उत्तरेण प्रकीर्तितम् ।

इह मेरुलोकालोकयोरन्तर्वर्तिगगनपथमध्ये सञ्चरन्[1] भूपीठिकाप्रतिष्ठितलिङ्ग-मूर्तिमेरु[2]मनवरतं परमेश्वरनियतिनियन्त्रितषष्टिघटिकात्मना बाह्यकालेन प्रदक्षिणयन् ध्रुवनाभिनिबद्धभचक्रसञ्चारिग्रहमध्यगो ग्रहग्रामणीः तत्तद्राशिसञ्चारानुसारितत्तद्दत्त-सहभावादाश्रिततीव्र[3]मन्दमन्दादिदीप्तिभेदोऽन्योन्यरूपो भूतसर्गवर्तनी[4] विचित्रां

अन्तर्द्वीपपवर्त्ती चतुर्दश भूतसर्ग का पालन करने वाले ये लोकपाल यहाँ रहते हैं । ये चौदह योनियाँ ही भूतसर्ग कहलाती हैं । ये विविध प्रकार के आकारों वाले विविध कर्मों में अपनी रञ्जकता चरितार्थ करते हैं ।।३३५।।

उसी लोकालोक पर्वत के उपरितन भाग से सविता दक्षिणायन में प्रवेश करते हैं ।।३३६।।

वहीं से उत्तर की ओर आने पर उत्तरायण की ओर प्रस्थान करते हैं । यहाँ मेरु और लोकालोक पर्वत के मध्यवर्त्ती गगन मण्डल के पथ के मध्य में भू-मण्डल पर प्रतिष्ठित मेरु लिङ्ग के प्रति भक्ति व्यक्त करते हैं और कह रहे है कि, परमेश्वर की नियति से नियन्त्रित साठ घड़ीरूप बाह्य काल से उसकी प्रदक्षिणा करते हुए ध्रुव की नाभि में निबद्ध समस्त नक्षत्र चक्र के सञ्चालक ग्रहों के अधि-पति सूर्य उन उन विभिन्न राशियों में संचार करते हैं । तदनुसार एक सहभाव के साथ कहीं तीव्र, कहीं मन्द, कही मन्दातिमन्द दीप्ति को वितरित करते हुए इस सृष्टिचक्र में चङ्क्रमण करते हैं ।

---

१. 'चरभ्' क; २. 'मूर्ति मे' क;
३. 'मन्दामन्दादिभेदः' क; ४. 'वर्तिनीं' ख;

वर्तयति । अतश्च स विभुः लोकालोकोपरिष्टादिति तन्नैकट्येन भ्रमणात् । तत्रेति, लोकालोकमेर्वन्तरालवर्तिनि विषये स्थित्वा क्रमात्क्रमं मेरुनिकटाद्बहिर्निःसरणेन भ्रमणात् कर्कटादिराशिषट्कसञ्चाररूपं दक्षिणायनम्, लोकालोकसन्निकर्षान्मेरु-नैकट्येन अन्तरन्तः प्रवेशात्मनोत्त[1]रेण भ्रमणान्मकरादिसञ्चाररूपं[2] तूत्तरायणं भवति । वक्ष्यति हि–

'सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे' । इति ।

एवं सङ्गतागमिकप्रक्रिययैव एतद्व्याख्येयं न तु परस्परविसंवादिज्योतिःशास्त्र-मतानुसरणसङ्गत्या ।

इस दृष्टि से वह सर्व समर्थ परमेश्वर प्रत्यक्ष, ब्रह्मा लोकालोक के कभी उपरितन भाग से कभी नैकट्य पूर्वक भ्रमण कर विश्व को प्रकाशमान करते हैं । मेरु और लोकालोक पर्वतों के अन्तरालवर्त्ती क्षेत्र में रहकर क्रमशः मेरु के सान्निध्य से बाहर निःसरण करते हैं । कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और धनु राशियों में सञ्चार करते हैं । यह दक्षिणायन सञ्चार माना जाता है । लोकालोक सन्निकर्ष से उत्तर मेरु की निकटता के क्रम से भीतर ही भीतर मकर से मिथुन राशि सञ्चार करते हैं, वही उत्तरायण कहलाता है । कहा भी गया है–

'मेरु पर्वत सबसे उत्तर और लोकालोक सबसे दक्षिण है । यह आगमिक प्रक्रिया की संगति है । इसी प्रक्रिया से इसकी व्याख्या की जानी चाहिये । इसमें ज्योतिशास्त्रीय बड़ा विसंवाद है' ।

मेरी दृष्टि से इसकी व्याख्या इस प्रकार भी नहीं होनी चाहिये । वस्तुतः लोकालोक और मेरु की स्थिति का आकलन शरीर दृष्टि से होना चाहिये । मेरु उन्मना भूमि है और लोकालोक नाभि केन्द्र । इन्हीं दोनों के मध्य प्राण सूर्य संचार करता है । मकर से मिथुन तक ६-६ अंगुल की राशिसंक्रान्तियों को पार करता हुआ प्राण सूर्य उन्मनान्त यात्रा करता है और कभी चिति केन्द्र तक की यात्रा करता है । इसी क्रम से कर्क से धनु तक की छः राशियों की छः संक्रान्तियों को अतिक्रान्त करता हुआ प्राण सूर्य लोकालोक नामक नाभिकेन्द्र में आता है । ३६अंगुल का ऊर्ध्वचार और ३६ अंगुल के दक्षिणायनचार में कुल प्राणा-पानवाह ७२अंगुल का होता है । इसको ज्योतिशास्त्री बाह्य प्रदक्षिणा चक्र और ग्रह चक्र के नियन्ता सूरज के साथ घटावें, यह उनका दायित्व है ।

---

१. 'न्तरेण' क; २. 'रूपं' क ।

एवं दक्षिणोत्तरायणस्थितिमुक्त्वा उदयास्तमयभेदमाह–

अर्धरात्रोऽमरावत्यामस्तमेति यमस्य च ।।३३७।।
मध्याह्नश्चैव वारुण्यां सोम्ये सूर्योदयः स्मृतः ।
यदैव चामरावत्यामुदयस्तस्य दृश्यते ।।३३८।।

आगमिक साधकों ने गहन छान-बीन कर जीवन तत्त्व के उत्स का अविष्कार किया था । किन्हीं शास्त्रकारों ने प्राणचार की अन्त:प्रक्रियापरक साधना की थी और एक श्वास में साठ वर्षों तक के नितान्त मन्द क्रम से प्राण सूर्य के साथ मेरु से लोकालोक तक की प्राणयात्रा का अनुभव किया था । एक श्वास में नाभिकेन्द्र से चितिकेन्द्र तक की पन्द्रह तिथियों का एक पक्ष और चितिकेन्द्र से नाभिकेन्द्र की १५ तिथियों का कृष्णपक्ष का एक क्रम मिलाकर १ मास की यात्रा का तो सामान्यत: थोड़ा ध्यान देने पर ही अनुभव हो जाता है ।

भगवान् भैरव सूर्योदय और सूर्यास्त की दृष्टि से ज्योति:शास्त्रीय इस समस्या का तत्कालीन वर्णन कर रहे हैं–

भगवान् सूर्य अर्ध रात्रि में अमरावती में रहते हैं । अर्धरात्रि की निशीथ सन्ध्या का महत्त्व तन्त्रशास्त्र में इसी आधार पर अङ्कित किया गया है । यम की राजधानी में अस्त होता है । मध्याह्न वारुणी में होता है और सौम्यभाव में सूर्योदय होता है । जब अमरावती में इसका उदय दीख पड़ता है, तो इसका अस्तमन काल वारुणी में होता है । यह सूर्य के उदय और अस्त का क्रम बड़ा तात्त्विक है ।

भगवान् के इस कथन का जो भाष्य आचार्य क्षेमराज ने किया है, इसका कोई महत्त्व नहीं है । यह मात्र पांडित्य प्रदर्शन है । सभी यह जानते हैं कि, सूर्य केवल भुर्वर्लोक में गतिशील है । स्वर्ग की अमरावती में इस सूर्य का प्रकाश नहीं जाता है । न संयमनी में और न वरुण की शुद्धवती में, न उत्तर की महोदया पुरी में । ये सुबह शाम, अर्धरात्रि और मध्याह्न शरीर में प्राणसंचार के माध्यम से होने वाले स्थान हैं । प्राण सूर्य के चंक्रमण की इस गाथा को भगवान् कह सकते हैं । सृष्टि चक्र की बात तो कोई व्यास ही कर सकता है ।

आचार्य क्षेमराज तान्त्रिक न्यास की बात तो करते हैं । (१०/७३) किन्तु तान्त्रिक व्याख्या नहीं करते । स्वच्छन्दतन्त्र के इस दशम पटल की व्याख्या जयरथ को करनी चाहिये थी । यदि विश्वप्रसर की दृष्टि अपनानी थी, तो पूरा पैमाना देना चाहिये था कि, नील निषध माल्यवान् और गन्धमादन पर्वतों की ४० हजार योजन उच्छ्राय का अर्थ क्या है ? चालिस हजार योजन का पैमाना

तदास्तमेति वारुण्यामित्यादित्यगतागतम् ।

निर्दिष्टनीत्या मेरुं प्रदक्षिणयतः सूर्यस्य यदा सौम्य इति मेरोरुत्तरे भागे उदयो वारुण्या आगच्छतो दर्शनं तदा मेरुतत्पार्श्वस्थप्रोक्तपर्वतच्छायावशाद् यमस्य दिशि सूर्योऽस्तमेति, न दृश्यते तत्प्रकाश इत्यर्थः । तदैव च वारुण्यां दिशि मध्याह्नः, [1]तत्पूर्वगस्यार्कस्योदयदेशाद् दक्षिणदिशः पञ्चदशघटिकावधेर्गतेः सम्पन्न-त्वात् तदैव त्वमरावत्यामर्धरात्रः, घटिकापञ्चदशकेन अत्र सूर्योदयस्य भविष्य-त्वात् । इत्थं च यदैवामरावत्यामस्योदयः, तदैव वारुणीवर्तिनां सौरस्य त्रिंशद्घटिकावाहस्य जातत्वाद् वारुण्यां सूर्योऽस्तमेति दिनान्तो जायते, इत्यनेन प्रकारेणादित्यगतागतं विदिक्ष्वपि मन्तव्यं प्रतिपादितक्रमस्य उपलक्षणभूतत्वात् । अत्र च–

सुवीथी उत्तरे तस्य अजवीथी च दक्षिणे ।।३३९।।

एतद् व्याचष्टे–

पितृदेवपथो ह्येष कथितस्तु मया तव ।

शोभना वीथी मार्गो देवपथः[2] । न जाता उत्पत्तिस्थाने सम्प्रति न किमपि प्राप्ता इत्यजाः पितरस्तेषां वीथी पन्था इति यथासम्भवं योज्यम् । उत्तरायणस्य दिव्यसिद्धिहेतुत्वाद् देवमार्गता, दक्षिणायनस्य तु ऐहिकसिद्धिपूरकत्वात् पितृमार्गते-

---

क्या है ? इस ऊँचाई का क्या अर्थ है ? आपने अर्थ भी (१०/२०७) कर दिया और सन्तुष्ट हो गये ।

इस दृष्टि से विद्वद्वर्ग का यह कर्त्तव्य है कि शरीर में प्राण सूर्य की गति-शीलता का मर्म समझे । श्लोक ३३७ और ३३८ का अर्थ है कि, एक प्राणचार में अश्विनीमुद्रा द्वारा जब प्राण मूलाधार के आधार पर मणिपूर में रुका, तो वह अनाहत होते हुए अस्त होता है । पुनः गतिशील होकर अपने मध्य बिन्दु पर होता है । और सौम्य में सूर्योदय होता है । अमरावती में उदय और वारुणी में अस्त होना प्राणसूर्य की श्वास गाथा है ।

इस आन्तरिक प्रक्रिया का समर्थन आचार्य क्षेमराज ने यद्यपि श्लोक ३३९-३४० के अर्थक्रम में किया है । इसके लिये मैं उन्हें और उनकी व्याख्या को प्रणाम करता हूँ । उन्हीं की इसी प्रकार की व्याख्या को प्रधानता देनी चाहिये थी । इससे शास्त्र का और शास्त्र की परम्परा का प्रथन होता एवम् अर्थ के निहितार्थ से जिज्ञासुओं की परितृप्ति भी होती ।

---

१. 'तद्वत्' ख. पाठः । २. 'देवमार्गः' ख. पाठः ।

त्यर्थः । एतच्च कालाधिकारोक्तनीत्या अन्तरिव बहिरपि ज्ञेयम् । यदुक्तं गीतासु–

'शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
अनयोर्यात्यनावृत्तिमेकया वर्ततेऽन्यया' ।। इति ।

अन्तरपि हृत्पद्मकर्णिकैवं मेरुः, तदुपरि चिज्ज्योतिर्मात्ररूपस्यात्मनो ध्रुवस्यानुलग्नः प्राणादित्यः काला[1]कारोक्तसकलभचक्रग्रहाद्यनुयातः कर्णिकोपकण्ठगत-

---

गीता की इस उक्ति का उद्धरण देकर उन्होंने शास्त्र के अन्तःपक्ष को परखा है । गीता कहती है कि, श्वास-श्वास में शुक्ल और कृष्ण पक्षों की गतिशीलता जगत् के जीवन का शाश्वत सत्य है । एक से मुक्ति और दूसरी से भुक्ति के उभयविध फलों की प्राप्ति होती है । इसकी व्याख्या में आचार्य क्षेमराज कहते हैं–

अन्तर्दृष्टि का यह निष्कर्ष है कि, हृदय पद्म की कर्णिका ही मेरु है । इसके ऊपर चितिशक्ति की ज्योति रूप आत्मा का ध्रुव है । उसी से अनुलग्न प्राणसूर्य है । काल के अधिकार में चलने वाला सकल शरीरस्थ ग्रह और राशियों के साथ, कर्णिका में सम्पृक्त प्रधान नाडियों के संचार स्पर्श के साथ प्राणचार में प्रवृत्त है । उसी क्रम से एक श्वास में १२ संक्रान्तियों को ३६-३६ अंगुल के प्राणचार में सम्पन्न करता है । इसमें उत्तरायण और दक्षिणायन घटित होता रहता है । यह उक्त प्रायः तो है, किन्तु पूरे शास्त्र की रहस्यमयता इसी पर आधारित है । यह सोचकर इसकी प्रमुखता पूरे भाष्य में होनी चाहिये थी ।

इस तान्त्रिकी दृष्टि के साथ आचार्यप्रवर ने बाह्य मेरु और लोकालोक पर्वतों का जो समन्वय किया है, यह भी विचारणीय है । मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा सूर्य नित्य करता है । उस मेरु पर्वत की अवस्थिति कहाँ है ? सूर्य अपनी कक्षा पर साठ हजार मील प्रति घण्टा के क्रम से आकाशगङ्गा के केन्द्र की परिक्रमा कर रहा है, अपने समस्त ग्रह मण्डल के साथ । इसके साथ पृथ्वी भी घूम रही है । सूर्य पृथिवी की प्रदक्षिणा करता है, यदि यह माना जाय तो वह मेरु पृथ्वी में कहा है ? यह सब निर्णीत होना चाहिये । यह सिद्धान्त है कि, सूर्य मेरु की दिन रात प्रदक्षिणा कर रहा है, आज अमान्य है । यदि दोनों ध्रुवों को उत्तरी ध्रुव को मेरु और दक्षिणी ध्रुव को लोकालोक माना जाय, तो दोनों के बीच कर्क और मकर रेखा के बीच सूरज का घूमना माना भी जाय, तो मेरु की प्रदक्षिणा सूर्य करता है ? यह बात असत्य हो जायेगी ?

---

१. 'कालाधिका' ख;

प्रधाननाडीमुखस्पर्शेन प्रदक्षिणमनारत[1]मावर्तमानस्तिष्ठन् तत्तन्मकरादिसङ्क्रान्ति-क्रमेण उत्तरदक्षिणादिविभागं दर्शयतीत्युक्तप्रायम् । यतश्च मेरुं (मेरुलोकालोकान्त-रालस्थव्योमपथमध्येन) प्रदक्षिणयति अनिशं दिनेशः, तत एव तदुदयस्थानात्मक-पूर्वदिगभिमुखानां इलावृतवर्जप्रतिपादितवर्षाष्टकद्वीपान्तरादिस्थानां जनानां सर्वेषा-मुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे । मेरुं प्रदक्षिणयन् हि भास्करस्तत्पश्चात्केतुमालादि-वासिनां मेरोर्दक्षिणत उदेति, तदुत्तरस्थकुरुवर्षादिवासिनां पश्चिमतः, तत्पूर्वभद्रा-श्वादिवासिनामुत्तरतः, तद्दक्षिणहरिवर्षादिनिष्ठानां पूर्वत इति स्थित्या सर्वेषां द्वीपान्तर-गतानामपि मेरुलोकालोकौ उदग्दक्षिणस्थौ भवत इलावृतवर्जम्, तत्रापि वा छाया-मात्रेण सूर्यप्रकाशानुसारिणी काचिदवस्थितिरस्तीति कल्पनीयम् ।

एवं प्रसङ्गाद् दक्षिणोत्तरायणे उदयास्तमयस्थितिं च प्रतिपाद्य प्रकृतमाह–

अस्य बाह्ये तमो घोरं दुःप्रेक्ष्यं जीववर्जितम् ।।३४०।।
पञ्चत्रिंशत्स्मृताः कोट्यो लक्षाण्येकोनविंशतिः ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानां वरानने ।।३४१।।

आचार्य की कोई बात सत्य से परे लगती है । सभी ८ वर्षों (इलावृत को छोड़कर) में रहने वाले जनों के उत्तर में मेरु और लोकालोक दक्षिण में पड़ता है । मेरु की प्रदक्षिणा करता हुआ भास्कर केतुमाल आदि के निवासियों के लिये मेरु के दक्षिण में उदित होता है । इसके उत्तर स्थित कुरुवर्ष के निवासियों के पश्चिम, भद्राश्वादि देशवासियों के उत्तर उसके दक्षिण हरिवर्ष आदि देशवासियों के लिये पूर्व में उदित होता है ।

इस दशा में सभी द्वीपान्तर गत लोगों के भी दृष्टि से मेरु और लोकालोक उत्तर दक्षिण, कहीं छायामात्रानुसारिणी किसी विलक्षण प्रकार की अवस्थिति रहती होगी, जो केवल कल्पना की बात है ।

उक्त स्थितियों के सन्दर्भ को अपनी दृष्टि से व्याख्या करने के उपरान्त भगवान् अपनी वास्तविक बात की ओर ध्यान आकर्षित कर रहे हैं–

इस पथ से बाहर एक ऐसा क्षेत्र भी आता है, जहाँ सूरज की रोशनी नहीं जा पाती । परिणामतः वहाँ घोर अन्धकार ही अन्धकार रहता है । वहाँ जीव सृष्टि नहीं होती ।।३३७-३४०।।

तिरपन करोड़ १९ लाख ४० हजार योजन का अन्तर लोकालोक और मेरु का है । लोकालोक का विष्कम्भ दश हजार योजन है । इसके साथ पचास

---

१. 'नागतं' क;

लोकालोकविष्कम्भो दश सहस्राण्युक्तः, तैः सह पञ्चाशद् मेर्वर्वाक्[१] जम्बुद्वीपः । पञ्चाशदित्यनेन लक्षेण प्राक्सङ्कलनासङ्कलितेन कोटिद्वयेन हेमभूकोटिदशकेन च सह सप्तचत्वारिंशत्कोटयो भवन्ति ॥३४१॥

अथ–

सप्तसागरमानं तु गर्भोदस्तत्समः स्मृतः ।

गर्भेऽन्तः सप्तसागरसम्बन्ध्युदकोपलक्षितलोकालोकतमःपर्यन्तं विश्वं यस्य स गर्भोदः । तत्सम इति क्षारा[२]ब्धिरसतुल्यः । यदुक्तं परातन्त्रे–

'गदिता येऽब्धयः सप्त तेऽत्र गर्भे यतः स्थिताः ।

प्रथितस्तेन गर्भोदः समस्ताब्धिरसोद्वहः' ॥ इति ।

स च सप्तानां क्षारादिसागराणामेकलक्षात् प्रभृति द्विगुणवृद्ध्या यन्मानं कोटिरेका सप्तविंशतिर्लक्षाणि, तत्तुल्यमानः । एवमियदवधि प्राक्तनेन मानेन सह

लाख योजन मेरु से जम्बुद्वीप, इसमें दो करोड़ योजन और जोड़ने पर एक रात और हेमक्षेत्र के दश करोड़ योजन के साथ ४७ करोड़ योजन का क्षेत्रफल सिद्ध होता है । कुल मिलाकर उनसठ करोड़ पचास लाख योजन का यह क्षेत्र बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है ॥३४१॥

यहाँ सातों सागरों के मान के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कर रहे हैं– सभी सागरों से सम्बन्धित उदक से उपलक्षित लोकालोक के तमस् पर्यन्त अन्तःस्थित जलराशि गर्भोदक कहलाती है । यह सारी जलराशि क्षार से लेकर सभी अन्तःस्थित जलराशि के तुल्य है ।

इस विषय में परातन्त्र में कहा गया है—

जो ये सात समुद्र कहे गये हैं, ये सभी गर्भ में ही स्थित हैं । इसलिये यह सारा जलगर्भोद संज्ञा से जाना जाता है । यह सातों समुद्रों के रस का उत्प्रवाह प्रदान करता है । 'उद्वह' सारे समुद्रों के लहराव को कह सकते हैं । इसका कारण गर्भोदक का अवस्थान है ।

सभी सागरों के जल का द्विगुणवृद्धि सिद्धान्त की दृष्टि से मापन होना चाहिये । ब्रह्माण्ड कर्परिका का मान एक करोड़ और सातों समुद्रों का द्विगुण-

---

१. 'मेर्वधात्' ख ।
२ 'क्षारादिसर्वाब्धि' ख ।

एकोन[1]पञ्चाशत्कोटयो भवन्ति । ब्रह्माण्डकर्परिका च कोटिरिति पञ्चाशत्कोटयो मेरुमध्यात् कर्परिकान्तम् ।

तदाह–

ब्रह्मणोऽण्डकटाहेन युक्ता वै मेरुमध्यतः ।।३४२।।

पञ्चाशत्कोटयो ज्ञेया दशदिक्षु समन्ततः ।

उभयपार्श्वकलनया तु–

एवमेतच्छतं ज्ञेयं कोटीनां पार्थिवं महत् ।।३४३।।

पार्थिवमिति पृथ्वीगतं वैपुल्यम् ।।३४३।।

एवं पृथिव्या अधो मध्ये मानमुक्तम्, अधुना तु–

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं वरवर्णिनि ।

ऊर्ध्वमिति भुवर्लोकाधिगतम् ।

आस्तां वैतत्, भूर्लोकगतभुवनशुद्धौ पूर्वोक्तसंस्कारक्रमं मा विस्मार्षीदुपदेश्य इत्याशयेन तमेव तावत् स्मारयितुमाह–

अथवात्र महादेवि परिपाट्या समन्ततः ।।३४४।।

वृद्धि के अनुसार ४९ करोड़ मान कुल मिलाकर ५० करोड़ योजन मान मेरु-मध्य से कर्परिकापर्यन्त है । यह सारा मान मेरु मध्य से ब्रह्माण्डकटाह से मेरु पर्यन्त माना जाना चाहिये ।।३४२।।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि, सभी दशों दिशाओं का मान ५० करोड़ योजन और दोनों पार्श्वों का मान ५०+५०=१०० करोड़ योग होता है ।।३४३।।

इस मान-गणना का कोई प्रमाण नहीं । इस आप्तवचन प्रमाण को मानना शास्त्रीय लाचारी है ।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस समय जो मान निकाला है, आज के विश्व के लिये यह प्रामाणिक है । विश्व के मानचित्र में युगों की उथल-पुथल से जो परिवत्तर्नन आये हैं, उसका कोई लेखा-जोखा आज उपलब्ध नहीं है । यह ग्रन्थ जिस समय लिखा गया होगा, उस समय का यह मानचित्र और योजन वाले मान सभी आज के विद्वानों का आह्वान कर रहे हैं कि, वास्तविकता का आविष्कार होना चाहिये । इसी तथ्य का समर्थन इस श्लोक से भी हो रहा है ।।३४४।।

---

१. 'एकान्त' क ।

दीक्षाकाले तु संस्काराः

ये कर्तव्याः–

क्रमं तेषां निबोध मे ।

कलादीक्षायां कलोपस्थापनपूर्वं ये संस्कारा उक्ताः, त एवेह भुवनोपस्थापनपूर्वं यद्यपि क्रियन्ते, तथापि शिष्यहितत्वात् परमेश्वरस्तान् स्मारयति वक्तव्यशेषं च योजयति ।

शक्ति[1] तत्त्वं च भुवनं योनिं चैव निवेशयेत् ।।३४५।।

संस्कृताग्नौ आदावध्वसन्धितदवलोकनतदुपस्थापनतत्सान्निध्यानन्तरं शक्तिमाधाररूपां ततोऽपि भुवनाश्रयं तत्त्वं ततोऽपि भुवनेशसहितं भुवनं निवेशयेत् शोध्यत्वेनाभिसन्दधीत । ततोऽपि हृदा वागीशीं सर्वयोनिव्यापिकां न्यसेत् ॥३४५॥

ततः–

तेषा गन्धोपचारं तु[2] कृत्वा चैव यथाक्रमम् ।

तेषामिति आधारशक्तितत्त्वभुवनादीनाम् ।

अत्र च शोधनीयानि भुवनेशसहितानि भुवनानि क्रमेण दर्शयति–

अनन्तं चैव कालाग्निं नरकांश्च यथाक्रमम् ।।३४६।।

इसी आधार पर यह घोषणा भी कर रहे हैं कि, दीक्षा के समय इनका संस्कार होना चाहिये । उनका क्रम इस प्रकार होना चाहिये । कलादीक्षा में कला के उपस्थापन के साथ जितने संस्कार उक्त हैं, वे सभी भुवनदीक्षा में भुवनों के उपस्थापनपूर्वक सम्पन्न किये जाते हैं, फिर भी उनका स्मरण परमेश्वर इसलिये करा रहे हैं कि, शिष्य का परम कल्याण हो ।

संस्कृत अग्नि में पहले अध्व सन्धि, उसका अवलोकन, उपस्थापन, शक्ति का निवेशन, भुवनाश्रयतत्त्व निवेशन और इसी क्रम से भुवन-भुवनेश का निवेशन कर इनका शोधन किया जाता है । सबके बाद हृदय मन्त्र से वागीशी की स्थापना करनी चाहिये । यही क्रम इसमें अपेक्षित है ॥३४५॥

निवेशन के अनन्तर गन्धोपचार से उनका पूजन आवश्यक है । आधार शक्ति और भुवनों की पूजा से उनमें देवत्व की प्रतिष्ठा होती है ।

शोधन के लिये क्रमशः अनन्त, कालाग्नि, नरक पाताल और उनके ऊर्ध्व देश आदि का निवेशन आवश्यक है । यह ध्यान रहे कि सारा क्रम कला दीक्षा की तरह होना चाहिये ॥३४६॥

---

१. 'शक्तितत्त्वं' क; २. 'च' क ।

पातालानि ततश्चोर्ध्वे शोधयेदनुपूर्वशः ।

नरकानिति, प्रोक्तप्रघट्टकमध्यादेकतमेन भेदेन शोधने चात्र कलादीक्षोक्त-प्रक्रिया भुवनेशश्रावणान्ता सर्वानुसर्तव्या ।

इयदन्तं संशोध्य–

उपस्थानं ततः कुर्याद् भुवर्लोकस्य वरानने ।।३४७।।

'धामादिः प्रणवादिश्च....................' ।

इत्यादिना मन्त्रेण पूर्वोक्तेन केवलं कलास्थाने भुवनानामप्रक्षेप्यता उपस्थानं च कलशाद्यग्न्यन्ताधिकरणषट्के न्यसनम् ।।३४७।।

एवं कृत्वा–

ततो वागीश्वरी देवी सम्पूज्या कुसुमादिभिः ।
ततः पशुस्तु सम्प्रोक्ष्यस्ताड्यो विश्लेष्य एव च ।।३४८।।

अथास्य–

छेदनं च तथाकर्षो ग्रहणं योजनं ततः ।
गर्भधारित्वजनने अधिकारं तथैव च ।।३४९।।
योगं भोगं लयं चैव ततो योनिविशोधनम् ।

कुर्यात् । सर्वमेतत्प्रागेव व्याख्यातम् ।

यदुक्तं योनिविशोधनमिति तत्र ता योनीः–

चतुर्दश समासेन कथयाम्यनुपूर्वशः ।।३५०।।

इनका संशोधन शिष्य के कल्याण के उद्देश्य से होता है । इन सबके बाद भुवर्लोक का उपस्थापन करना चाहिये । इसमें प्रणवादि धाम मन्त्र का प्रयोग किया जाता है ।।३४७।।

गन्ध पुष्प आदि से वागीशी देवी की पूजा का विधान पूरा करना चाहिये । तत्पश्चात् शिष्य का संप्रोक्षण, ताडन और विश्लेषण आदि विधेय है ।।३४८।।

पुनः छेदन, आकर्षण, ग्रहण, योजन, गर्भधारण, प्रजनन, अधिकार श्रावण, योग, भोग, लय और योनिविशोधन आदि आवश्यक कृत्य करना चाहिये ।।३४९।।

जहाँ तक योनिविशोधन का कार्य है, यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इनमें जिनका शोधन किया जाना चाहिये, उनका क्रमिक उल्लेख यहाँ किया जा रहा है ।।३५०।।

पैशाचं राक्षसं याक्षं गान्धर्वं त्वैन्द्रमेव च ।
सौम्यं तथा च प्राजेशं ब्राह्मं चैवाष्टमं विदुः ।।३५१।।

एतच्चोक्तमेव ।।३५१।।

संहारक्रमयोगेन शोधनीयाः शिवाध्वरे ।

संहारक्रमयोगेन इत्यनेन चेदमाह–यत् स्थावरादि पश्वन्तं[1] तामसं पञ्चकं संशोध्य मानुष्यं शोधयेत् । ततः पैशाचादि ब्राह्मान्तं देवयोन्यष्टकमित्येष एव च क्रमोऽग्रे स्फुटीभविष्यति ।

एवं योन्यष्टकमुद्घाट्य योनिषट्कमप्याह–

पशुपक्षिमृगाश्चैव तथान्ये च सरीसृपाः ।।३५२।।
स्थावरं पञ्चमं चैव षष्ठं मानुषयोनिकम् ।

तदेतत्–

देवयोनिसमायुक्तं प्रोक्तं संसारमण्डलम् ।।३५३।।
चतुर्दशविधं चैव

एतच्च–

भूर्लोके तु विशोधयेत् ।

भूर्लोके कर्मानुसारेण एतदर्ज्यते, इत्यत्र विभागेनैतत्सर्वं शोधनीयम्, अन्यत्र तु सामान्येनापि इत्याशयः ।

पैशाच, राक्षस, याक्ष, गान्धर्व, ऐन्द्र, सौम्य, प्राजेश और ब्राह्म इन आठों योनियों का शोधन अवश्य होना चाहिये ।।३५१।।

शिवसिद्धान्त की दृष्टि से परम्परा की रक्षा करते हुए इसमें संहार क्रम को ही अपनाना चाहिये । स्थावर योनि से लेकर पशु योनि तक तामस योनि शोधन पूर्वक मानुष्य योनि का शोधन होना चाहिये । इसके बाद पैशाच और तत्पश्चात् ब्राह्मान्त देवयोन्यष्टक का शोधन करना चाहिये । यही कह रहे हैं–

पशु, पक्षि, मृग, सरीसृप, स्थावर, मानुष्य तत्पश्चात् देवयोनि समायुक्त संसारमण्डल का शोधन होता है ।।३५२-३५३।।

उक्त १४ प्रकार का शोधन कार्य भूलोक में आवश्यक है । कर्मानुसार इसे जीव अर्जित करता है । विभागपूर्वक इनका शोधन शिष्य के अस्तित्व को शुद्ध

---

१. पश्वन्तमित्यनन्तरमीदृशः पाठः क पुस्तके–
'तामसं पञ्चकं शोध्य मानुष्यं शोधयेत्ततः ।
पैशाचादि ब्राह्मान्तं देवयोन्यष्टकमिति' ।।

कस्माच्चैतत् संसारमण्डलमित्याह–

आत्मा संसरति ह्यत्र मायाद्यवनिगोचरे ।।३५४।।

संसारः प्रोच्यते तस्मात्पर्यटेत्स यतस्ततः ।

संसारश्च–

सुखं दुःखं तथा मोहं भुङ्क्ते चैवाध्वमध्यगः ।।३५५।।

बन्धत्रयसमायुक्तो[1]वामाशक्त्या त्वधिष्ठितः ।

ईश्वरेण निमित्तेन सृष्टिसंहारवर्त्मनि ।।३५६।।

साक्षान्मन्त्रमहेशादिमुखेन वा ईश्वरेण संसारवमनारूपया स्वया वामा[2]-शक्त्याधिष्ठितः परतन्त्रीकृतः, तत एव चाणवादिबन्धत्रयेण समायुक्तः सम्यगाक्रान्तोऽभिभूतः सुखादित्रयं भुञ्जानः ॥३५६॥

पुनः पुनश्चाध्वमध्ये युज्यते स शुभाशुभैः ।

अतश्च–

अध्वमध्ये तु ये पाशा ज्ञेयाश्चानन्तकोटयः ।।३५७।।

कर देता है । माया के प्रभाव से आत्मा इसमें अर्थात् संसारचक्र में भ्रमण करता है ॥३५४॥

इसी संसरण के कारण इसे संसार कहते हैं । इस योनि से उस योनि में भ्रमण करना भूलोक की विवशता है । यहाँ नाना प्रकार के सुख-दुःख माया-मोह का भोग भोगना पड़ता है । यह अध्व-मध्यग भोग माना जाता है ॥३५५॥

संसार के आणव, कार्म और मायीय बन्धों से जीव बन्धन ग्रस्त हो जाता है । कर्मानुसार सारी व्यवस्थायें चलती हैं । स्थूल भोगों के कारण सूक्ष्म दोष भी होते हैं । मन्त्र, मन्त्रेश, मन्त्रमहेश्वरादि क्रम में भी जीव पड़कर ऊर्ध्वगतिशील होता और संसार का वमन करने वाली पाश शक्ति द्वारा ईश शक्ति के प्रभाव से परतन्त्र भी होता है । इस चक्र की कहानी का पात्र यह जीव ही बनता है और सृष्टि तथा संहार का सुख भोगता है ॥३५६॥

शुभ अशुभ कर्मों के द्वारा ही अध्वमार्ग में आना और भोगना इस जीव की यात्रा की कथा है । अध्वमध्य में पाशों का जञ्जाल है । वे जीव को पशु बना देते हैं ॥३५७॥

---

१. वामश. क. पाठः । २. वामश. क. पाठः ।

प्रधानगुणभेदेन यावच्चानाश्रितं पदम् ।

तदुक्तम्–

'समनान्तं वरारोहे पाशजालमनन्तकम्' । इति ।

यतश्चैवम्–

तस्मादेवं विजानीयात्

किञ्च,

अध्वा बन्धस्य कारणम् ।।३५८।।

तदियति संसारमण्डले कर्मैव कारणमित्याह–

चतुर्दशविधं यच्च प्रोक्तं संसारमण्डलम् ।

तस्य भेदा ह्यनन्ताश्च

ये ते–

भिद्यन्ते कर्मभेदतः ।।३५९।।

तदित्थं संसारमण्डलहेतुभूताः–

कर्मवल्ल्यो ह्यनन्ताश्च कर्मेशानादिकारकाः ।

अनादिमायाशक्तिमुषितमहिमा हि अणुः स्वोपभोगाय चेष्टमानोऽनन्ताभिः कर्मसन्ततिभिर्बद्धः ।

कभी प्रधान भोग, कभी गौण, कभी सरल कभी भीष्मप्रद इन कर्मों का उच्छेद भी जीव ही भाग्यवश करता है और अनाश्रित पद को भी अविश्रान्त प्राप्त कर सकता है । इसलिये समनान्त अनन्त पाशों की राशि को ध्वस्त कर उन्मना की वास्तविकता को जानना चाहिये और यह निश्चय कर लेना चाहिये कि हमें षडध्व को अतिक्रान्त करना ही है । बन्ध का मूल कारण षडध्व ही है ।।३५८।।

संसार मण्डल चतुर्दश प्रकार का है, यह शास्त्र कहते हैं । इसके अनन्त भेद भी हैं । ये कर्मों के भेद से भेदित भी किये जाते हैं ।।३५९।।

यहाँ कर्मों की अनन्त लतायें और वल्लरियाँ हैं । अनादि माया शक्ति से मुषित महिमा वाला जीव ही अणु बन जाता है । उपभोग के व्यापारों में व्यापृत रहता है । अनन्त कर्म परम्पराओं के कारण कर्मों के संचालक शक्तिमन्त्रों को जानकर इससे सावधान और इनसे मुक्त होना ही जीव का मुख्य धर्म है ।

न चैतदस्यान्यतः क्वचिदायातम्; अपि त्वपूर्णमन्यतयैवेत्याह–

आत्मना बद्ध्यते ह्यात्मा

बद्धं च तमसामर्थ्यात्–

मुञ्चेन्नात्मानमात्मना ।।३६०।।

परमेश्वरानुग्रहं विनेत्यर्थात् । मुञ्चेदात्मानमिति पाठो न सङ्गतः ।।३६०।।

एतद्दृष्टान्तेन स्फुटयति–

कोशकारो यथा कीट आत्मानं वेष्टयेद्दृढम् ।
न चोद्वेष्टयितुं शक्त आत्मानं स पुनर्यथा ।।३६१।।
तथा संसारिणः सर्वे बद्धाः स्वैरेव बन्धनैः ।
न च मोचयितुं शक्ताः पशवः पाशबन्धनाः ।।३६२।।
स्वयमेव स्वामात्मानं यावद्वै नेक्षते शिवः ।

अनुग्रहशक्त्या । यतः

शिवशक्तिनिपातात्तु मुच्यन्ते पाशबन्धनात् ।।३६३।।
अन्यथा नैव जानन्ति स्वरूपं यत्सुनिर्मलम् ।
यत्तत्स्वाभिजनं शुद्धमनौपम्यमनामयम् ।।३६४।।

यह स्वयं से स्वयं बद्ध होने वाला पशु स्वयं से स्वयं को मुक्त भी कर सकता है । हाँ, इसके लिये परमेश्वर के परानुग्रह की आवश्यकता होती है ।।३६०।।

इसे दृष्टान्त से समझें । कोशकार कीट अपने को रेशम के सूत्र कोश में दृढता पूर्वक आवेष्टित कर लेता है । उसमें से वह स्वयं निकलने में भी असमर्थ होता है । खौलते पानी से मरना ही उसकी नियति बन जाती है ।

उसी तरह सारे संसारी अपने ही कर्मों से बँध जाते हैं । अपने से इससे मुक्त भी नहीं हो पाते । पाशों ने उन्हें इतना जकड़ रखा है कि खौलता पानी ही उन्हें संहार की ओर ढकेल सकता है ।।३६१-३६२।।

कहा जाता है कि, स्वयं गृहीत संकोच भाव शिव ही जीव है । ऐसी दशा में शिव रूपी जीव की दृष्टि परमेश्वर की कृपा से स्वयं पर कभी पड़ जाती है । गुरु द्वारा शास्त्राभ्यास द्वारा और साधना द्वारा यह ज्ञान होते ही कि, मैं स्वयं शिव हूँ, वह अपने उद्धार में प्रवृत्त हो जाता है और शिव हो जाता है ।।३६३।।

इसके विना जीव अपने रूप को कभी पहचान नहीं सकता । अपने परम नैर्मल्य को वह जान नहीं पाता । वह सोच भी नहीं पाता कि, मैं स्वयं परम शिव

सुनिर्मलं परमशिवैकरूपम्, अत एव द्वितीयाभावाद् अनौपम्यम्, तथा स्व आत्मैव अभिजनं कारणं यस्य तद् अनन्यकार्यं स्वतन्त्रवस्त्वित्यर्थः । यस्मात् शुद्धं चिदेकघनमतश्च अनामयं मायासंस्पर्शशून्यं यत्तदिति लोकोत्तरम् ॥३६४॥

कस्मादेतत्स्वरूपं न जानन्तीत्याह–

मोहिता मलमोहेन बद्धाः कर्मकलादिना ।
निगूढास्तत्र निष्ठन्ति काष्ठे वह्निर्यथा तथा ॥३६५॥

'....................अभिलाषो मलोऽत्र तु' ।

इति यः पूर्वमपूर्णमन्यतात्मा स्वरूपाख्यातिरूपो मल उक्तः, स एव मोहोऽज्ञानं तेन मोहिता अज्ञीकृताः, अत[1] एव स्वभोगार्जनाय चेष्टमानाः, कर्मणा तदुत्थेन च कलादिना क्षित्यन्तेन च देहाद्यात्मना मायीयेन च मलेन बद्धा अस्वतन्त्रीकृताः, अतश्च तत्रैव पाशबन्धे निगूढा निमग्नप्रोक्तस्वस्वरूपास्तिष्ठन्ति यथा काष्ठेऽन्तरग्निः ॥३६५॥

परमेश्वर हूँ । वह वास्तव में अनुपम है । उसकी उपमा किसी से दी भी नहीं जा सकती; क्योंकि वह अकेला ही ऐसा है । अतः अनौपम्यभावभावित है । वह आत्मरूप है । आत्मा ही उसका अभिजन है । अतः वह स्वाभिजन स्वयं है । शुद्ध चिद्घन स्वयम् है । अतः वह अनामय है । मायासंस्पर्शशून्य लोकोत्तर तत्त्व है । इस तथ्य की जानकारी उसे नहीं हो पाती । जिस क्षण यह प्रत्यभिज्ञान उसे हुआ, उसी क्षण वह मुक्त, शिव है । इसमें सन्देह नहीं ॥३६४॥

अपने वास्तविक स्वरूप को न जानने का कारण क्या है ? यह एक विचारणीय विषय है । भगवान् इसे स्वयं समझा रहे हैं । उनके अनुसार मल रूप अज्ञान से जीव मुग्ध हो जाता है । दूसरी ओर कर्म की कलाओं के काल जाल में फँस जाता है । इसका परिणाम बड़ा भयङ्कर होता है । जैसे काष्ठ में आग है । प्रतीत नहीं होती । छूने पर भी उष्ण नहीं लगता । पर उसमें है, वही दशा जीव की है । जीव ही शिव है । शरीर में है । इसी शरीर में रहते हुए भी काठ में स्थित आग की तरह स्वात्म तैजस भाव का बोध नहीं होता । अपने से अपने को नहीं जान पाता ।

अपने भोग के अर्जन की चेष्टा में लगा रहता है । कला से क्षिति-पर्यन्त देहादिमायीय मल के द्वारा परतन्त्र अपने ही पाश में अपने ही फँस जाता है ॥३६५॥

---

१. 'अत एव' इति प्रभृति 'अस्वतन्त्रीकृताः' इत्यन्तं 'क' पुस्तके न दृश्यते ।

स चेत्काष्ठनिगूढः–

उद्धृतस्तु यथा वह्निर्मन्थकस्य वशात्स्फुटम् ।
स्वस्वरूपं प्रपश्येत भास्वरं यत्सुनिर्मलम् ।।३६६।।
अन्येषामपि जन्तूनां तिमिराक्रान्तचक्षुषाम् ।
प्रकाशयति वस्तूनि हत्वा वै रश्मिभिस्तमः ।।३६७।।
तथात्मा तु विजानाति यत्स्वरूपमनादिमत् ।
मन्थकस्य वशाद्देवि नान्यथा तु कथञ्चन ।।३६८।।

मन्थकस्य वशादित्युक्तिं विभजति–

मन्थकस्त्विह देवेशि स्वयमेव सदाशिवः ।
आचार्यतनुमास्थाय सदा चानुग्रहे स्थितः ।।३६९।।

च एवार्थे ॥३७९॥

मन्त्रा मन्थनवज्ज्ञेया अध्वा चात्रारणिर्यथा ।
वागीशी योनिसंस्थाना धूमो ज्ञेयो मलादिवत् ।।३७०।।

मन्थन के मन्त्रों से मन्थित होते ही अग्निनारायण की तरह साधना और अभ्यास द्वारा अनुसन्धान करते ही स्वात्मशिवत्व का बोध प्रकाशमान हो जाता है । अपने परम भास्वर सम्यक् रूप से निर्मल स्वात्मरूप को पहचान लेता है ॥३६६॥

उसमें अनुग्रह की शक्ति का भी उल्लास हो जाता है । फलतः तिमिर रूप अज्ञान से आक्रान्त अन्य जीवों के अज्ञान को भी अपनी ज्ञानरश्मियों से दग्ध कर उसके वास्तविक स्वरूप को व्यक्त करा देता है । उसके तम का हनन तो करता ही है, उसके स्वात्म का संदर्शन भी करा देता है ॥३६७॥

इसी नैपुण्य के परिणाम स्वरूप यह स्वात्म स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान कर लेता है । वह जान लेता है कि, मेरा अनादिमत् स्वरूप है । यह पहचान केवल मन्थक के ही अधीन है । किसी दूसरे के वश में नहीं ॥३६८॥

भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ! वह मन्थक मात्र सदाशिव देव ही हैं । वही गुरु और आचार्य का शरीर धारण कर सदा अनुग्रह करने के लिये तत्पर रहते हैं ॥३६९॥

इसीलिये मन्त्र ही मन्थन रूप मुक्ति के साधन हैं और अध्व ही अरणि माने जाते हैं । वागीशी शक्ति जो कुण्डयोनि में अवस्थित होती है, शक्ति है । अग्नि का धूम मल रूप है । आत्मा ही आग है और परम शिव ही बोधक आचार्य हैं ।

आत्मा वै वह्निवज्ज्ञेया बोधकस्तु परः शिवः ।

मन्थानं मथनकारणं[1] वैशाखं तद्वन्मन्त्राः, समनान्तोऽध्वाऽरणिः, यदावृत आत्मा वह्निः पूर्वनिर्णीतव्याप्तिदृशा वागीशीयोनौ धूमस्थानीयाख्यातिरूपतुच्छमलापासनं परमशिवेन प्रबोध्यते गुरुमूर्तिस्थसदाशिवभट्टारकप्रयुक्त्या । अतश्च

उद्बोधितो यथा वह्निर्निर्मलोऽतीव भास्वरः ।।३७१।।
न भूयः प्र[2]विशेत्काष्ठं तथात्माध्वन उद्धृतः ।
मलकर्मकलाद्यैस्तु निर्मुक्तो विगतक्लमः ।।३७२।।
तत्रस्थोऽपि न बध्येत यतोऽतीव सुनिर्मलः ।

मलादिनिर्मोकादेवासंसारतया विगतक्लमस्तत्रस्थोऽपि उपनत[3]भोगातिवाहनमात्रप्रयोजनतस्तन्मध्यवर्त्यपि न बध्येत तदहंभावाभिमानवान् न भवति; अपि तु सुष्ठु निर्मलचिद्घनात्माविष्ट एव सर्वदा ।

किञ्च,

रसवह्निसमायोगात्ताम्रं कालिकया यथा ।।३७३।।

आचार्य ने मन्थन कारण का 'वैशाख' यह विशेषण दिया है । यह वह मुद्रा होती है, जिसमें अरणि मन्त्रों को बोलते हुए ऋत्विग् मन्त्रोच्चारण करते हैं । अरणि के स्थान पर अध्वा भी समनान्त लिखा है । यह साधना विषय के लिये है और नितान्त सत्य है । आत्मा वागीशी योनि में ही स्थापित होता है । अख्याति रूप मलों का अपासन होता है । गुरु मूर्त्तिस्थ परम शिव द्वारा ही प्रबोध प्राप्त होता है ।।३७०।।

यह दृष्ट सत्य है कि, उज्ज्वल प्रज्ज्वलित अग्नि अत्यन्त निर्मल, निर्धूम और भास्वर हो जाता है । उसी तरह यह आत्मा भी परम शिवत्व को उपलब्ध हो जाता है ।।३७१।।

जैसे आग उद्घृत होने पर पुनः काष्ठ में प्रविष्ट नहीं होता, उसी तरह उद्धृत आत्मा भी अध्वा में प्रविष्ट नहीं हो सकता तथा मल कर्म और कला से निर्मुक्त आत्मा स्वात्मविश्रान्त हो जाता है ।।३७२।।

तत्रस्थ रह कर बन्धन को प्राप्त होना एक विरोधाभास है । पर यह सम्भव है । मल के आवरण के दूर होते ही संसार मिट जाता है । फिर संसार में रहते हुए भोग भोगता है । उसे मिथ्या अहं नहीं होता; क्योंकि वह निर्मल होकर चिद्घनाविष्ट हो जाता है ।

गुरु के द्वारा रस (पारद) और अग्नि के संयोग से ताम्र की कालिका नष्ट हो, स्वर्ण में परिवर्त्तित होने के लिये ताम्र को स्वतन्त्र कर देती है ।।३७३।।

---

१. 'करण' क. पाठः; २. 'आवि' क.; ३. 'उपरतो भोगः' क. ।

विश्लेषितं तु तत्त्वज्ञैर्हेमत्वं प्रतिपद्यते ।
न भूयस्ताम्रतां याति तथात्मा न कदाचन ।।३७४।।

अख्यातिरूपया कालिकया गुरुणा वियोजित आत्मा न पुनर्युज्यत इत्यर्थः ।।३७४।।

अत्र च–

रसवन्मन्त्रशक्तिस्तु क्रिया ज्ञेया तु वह्निवत् ।
तज्ज्ञश्चैव शिवो ज्ञेय आचार्यतनुविग्रहः ।।३७५।।
आत्मा वै हेमवज्ज्ञेयो मलो ज्ञेयस्तु कालिका ।

क्रिया दीक्षा, तज्ज्ञो रसवह्नियोजनावज्ज्ञानयोगक्रियामयदीक्षा-सतत्त्ववित् ।।३७५।।

अतश्च–

मन्त्रद्रव्यक्रियायोगद्वह्न्याधारे तथा प्रिये ।।३७६।।
गुरुणा तन्त्रविदुषा ह्यात्मा वै निर्मलीकृतः ।
न भूयो मलतां याति शिवत्वं याति निर्मलम् ।।३७७।।

तथेति, चतुर्थपटलोक्तप्रक्रियायोजनिकाक्रमेण । तन्त्रविदुषेति, तन्त्रज्ञानमत्र पर उपाय इति शिक्षयति । उक्तं हि–

कालिमा का मिट जाना और हेमत्व को उपलब्ध हो जाना एक दूसरे पर आश्रित तत्त्व है । तत्त्वज्ञ पुरुष इसका विश्लेषण करते हैं । शास्त्र इसकी घोषणा करता है । यह त्रिकाल सत्य सिद्धान्त है । इस मर्म का मर्मज्ञ स्वयं शिव होता है । आचार्य का शरीर ग्रहण कर इस सत्य को प्रतिष्ठित करता है ।।३७४।।

मल ही कालिमा है । मन्त्र की शक्ति ही पारद है । क्रिया दीक्षा है । दीक्षा आग है । कालिमा मल है । ज्ञानयोगमय क्रिया योग की दीक्षा स्वर्ण होने के लिये अनिवार्यतः अपेक्षित है । मन्त्र, द्रव्य और क्रिया का योग हो, वह्नि का आधार हो, तन्त्र का विज्ञानवान् गुरु हो, तो आत्मा के निर्मलीकरण में कोई बाधा नहीं रह जाती । वह निर्मल हो जाता है और यह निश्चय है कि, वह पुनः मल रूप अज्ञान के अन्धकार से ग्रस्त नहीं हो सकता । यह ध्रुव सत्य है कि स्वात्मनैर्मल्य के परिणाम स्वरूप वह शिवत्व को उपलब्ध हो जाता है ।

एक उक्ति है, जो साधक को सावधान करती है, शास्त्र कहता है—

'क्रिया काल में अर्थात् साधना के क्रम में दीक्षा विधा में किसी प्रकार की अवज्ञा घातक होती है; क्योंकि यह संसार से उद्धार करने वाली महत्त्वपूर्ण

'न चावज्ञा क्रियाकाले संसारोद्धरणं प्रति ।
मन्त्रदानव्रतादेशे शिष्यध्रुङ् नरकी भवेत्' ।। इति ।
मलतामिति, अपूर्णमन्यतारूपामख्यातिं शिवत्वं परशिवैक्यम् ।।३७७।।
उपसंहरति–

एवं ज्ञात्वा वरारोहे दीक्षा कार्या यथा पुरा ।

चतुर्थपटलोक्तक्रमेण । वक्ष्यति हि–
'नास्ति दीक्षासमो मोक्षः..............'। इति ।
तत्र च दीक्षायाम्–

शोधयेन्मुख्यपाशांश्च ये प्रोक्तास्ते मया पुरा ।।३७८।।

'मलकर्म निमित्तं तु नैमित्तिकमतः परम्' ।
इति तन्त्रान्तरे ।।३७८।।
अतश्च–

गुणभूतास्तु ये पाशास्तेऽपि शुध्यन्ति तद्वशात् ।

गुणभूताः मद[1]मोहादयः, तद्वशादिति आणव[2]कार्ममायीयशुद्धिवशात्; किन्तु गुणभूतमपीदम्–

चतुर्दशविधं चैव यदुक्तं तु मया पुरा ।।३७९।।

प्रक्रिया है । मन्त्रदान और व्रत के आदेश के पुण्य अवसर के मध्य को समझ कर इसको प्रश्रय देना चाहिये । इसका विरोधी नरक प्राप्त करता है' ।

अतः अपूर्णमन्यता रूप अख्याति रूप गलत का निराकरण कर परशिवैक्य को उपलब्ध होना ही जीवन का श्रेयःसाधक व्यापार है ।।३७५-३७७।।

भगवान् भैरव भट्टारक कह रहे हैं कि, इन उक्त बातों को जानकर साधक को चाहिये कि, वह दीक्षा ग्रहण करे । वस्तुतः 'दीक्षा ही मोक्ष है'। गुरु का यह कर्त्तव्य है कि, इसके लिये वह शिष्य के पाशों का सर्वप्रथम संशोधन करे ।।३७८।।

मुख्य पाशों के शुद्ध हो जाने पर जो अप्रधान अर्थात् गौण पाश हैं, वे भी शुद्ध हो जाते हैं । गौण पाश मद और मोह आदि माने जाते हैं । प्रधान पाश आणव, कार्म और मायीय माने जाते हैं । इसलिये प्रधान पाशों के शोधन के लिये पूरी शक्ति लगा देनी चाहिये । फिर भी यह ध्यान रखना चाहिये कि, गुणीभूत पाश भी साधारण नहीं हैं । इनसे भी सावधान रहना ही चाहिये ।।३७९।।

---

१. 'महामो' क. । २. 'वमायीय' क. ।

संसारमण्डलं देवि शोध्यं तदवनीतले ।

शोध्यमिति पृथगेवेत्यर्थः । अतश्च–

तद्वक्ष्यामि क्रमात्सर्वं यथा शोध्यं शिवाध्वरे ।।३८०।।

अदूर एव ॥३८०॥

यच्च–

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं प्राधान्येन विशोधयेत् ।

न त्वन्तर्भाविनेत्युक्तम् । तत् क्रमेण तावदुद्दिशति–

ब्राह्मं चैव तु प्राजेशं सोम्यमैन्द्रं तथैव च ।।३८१।।

गान्धर्वं चापरं याक्षं राक्षसं च तथापरम् ।

पैशाचं क्रमतः शोध्यं स्थावरं मानुषं तथा ।।३८२।।

स्थावरं पञ्चविधं [१]तिर्यग्योन्युपलक्षणम् । क्रमत इति संहार-क्रमेण ॥३८२॥

यदुक्तम्–

'संहारक्रमयोगेन ते च शोध्याः................'।

इति संहारक्रमेण शोधनं तत्तत्स्थावरादिजातीयमध्यगतप्रधानभूतैकैकक्रमेण प्रस्ताव-यति–

सप्तच्छदं स्थावराणां सर्पाणां वासुकिं तथा ।

पक्षिणां गरुडं चैव मृगाणां सिंहमेव च ।।३८३।।

पशूनां चैव गोयोनिं

अत्र च देवदत्तात्मने प्राक्कर्मार्जितस्थावरादिजातिप्रधानभूतं सप्तच्छदं शोधयामि स्वाहा इत्याद्यूहः कार्यः ।

भगवान् कहते हैं कि, देवि ! शोधन की इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम शोधन चतुर्दशविध संसार मण्डल का होना चाहिये । इसका पृथक् शोधन होना चाहिये । इसके अतिरिक्त दीक्षाक्रम में जिनका शोधन होना चाहिये, उनका निर्देश कर रहे हैं ॥३८०॥

प्राधान्यतः ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त शोधन करना चाहिये । संहारक्रम ही शोधन में अपनाना चाहिये । १.ब्राह्म, २.प्राजेश, ३.सौम्य, ४.ऐन्द्र, ५.गान्धर्व, ६.याक्ष, ७.राक्षस, ८.पैशाच क्रम से तथा ९.स्थावर, १०.मानुष्य, ११.सार्प, १२.पक्षिवर्ग, १३.मृग और १४.पशुयोनियों का शोधन इसी क्रम में होता है ।

---

१. 'तैर्यग्योनो' क. ।

एवं तैर्यग्योनं पञ्चप्रकारं प्रातिलोम्येन संशोध्य–

मनुष्यांश्च विशोधयेत् ।

तानपि प्रातिलोम्येन ।

अन्त्यजाञ् छूद्रविट्क्षत्रब्राह्मणांश्च विशोधयेत् ।।३८४।।

तदेतासु सर्वासु जातिषु–

पञ्च[1]भिर्ब्रह्मभिर्देवि त्वधिकारान् विशोधयेत् ।

अधिकारान् प्राक्कर्मवशसम्भाव्यमानतत्तज्जातिसम्बन्धात् ।

कथम् ?

दशाहुतिप्रयोगेण अन्त्यजान् ब्राह्मणावधि ।।३८५।।

'तिस्रः पञ्चदशैका वा...............'।

इति प्रागुक्तेरिहायमपवादः । तत्र स्थावरादिपश्वन्ते पञ्चके अन्त्यजादिब्राह्मणान्ते च पञ्चके प्रातिलोम्येन सद्योजातादय ईशानान्ताः प्रणवपूर्वका मन्त्रा मन्तव्या[2] ।।३८५।।

ब्राह्मणस्य षट्कर्माधिकारित्वात् तत्तच्छुद्धौ विशेषमाह–

ब्राह्मणस्याधिकाराष्टौ चत्वारिंशतमेव च ।

विशोधयेदित्येव । तान् क्रमेणाह–

इनका शोधन करते हुए अन्त में मानुष्य का शोधन होना चाहिये । इनका भी प्रातिलोम्य क्रम से शोधन होता है । जैसे पहले अन्त्यज, शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्म योनि का शोधन करना चाहिये ।।३८१-३८४।।

इन समस्त जातियों में प्राक्तन कर्मवश प्राप्त जातिसम्बन्ध से जो अधिकार प्राप्त हैं, उनका शोधन प्रञ्च ब्रह्ममन्त्रों से पञ्च ब्रह्मात्मक ओङ्कार लगाकर दश दश आहुतियाँ दी जानी चाहिये । पहले ३,१५, अथवा एक आहुति का आदेश यहाँ अपवाद रूप है । यहाँ दश दश आहुतियों का ही आदेश है । सद्योजात से ईशानान्त पाँच प्रकार के मन्त्रों का विशेष ऊहन कर शोधन किया जाता है ।।३८५।।

ब्राह्मण को छः कर्म करने का आदेश शास्त्र देता है । फिर भी ४८ संस्कार इसके अधिकार क्षेत्र में आते हैं । इन सभी संस्कारों का संशोधन होना चाहिये ।

फिर भी जिन संस्कारों से इसमें द्विजत्व आता है, उनका शोधन पहले

---

१. 'ब्रह्मभिर्ब्र' क. । २. 'ज्ञातव्याः' क. ।

गर्भः पुंसवनं चैव सीमन्तो जातकर्म च ।।३८६।।

नाम निष्क्रमणं चैव अन्नप्राशनचूडकम् ।

अनेनैव वरारोहे शोध्यास्त्वष्टौ प्रकीर्तिताः ।।३८७।।

सीमन्तोऽङ्गोपाङ्गविभागसम्पत्तिः, निष्क्रमणमादित्यदर्शनम्, चूडकं शिखा-क्लृप्तिः । अनेनैवेति, प्रोक्तक्रमायातविनियोगेनेशानभट्टारककारणकेन दशाहुति-प्रयोगेण ।।३८७।।

अतश्च–

एतैर्निर्वर्तितैर्देवि ततोऽसौ जायते द्विजः ।

अविप्लुताभ्यां ब्राह्मणाभ्यामेकं वैदिकैर्मन्त्रैः संस्कारैश्च द्वितीयं जन्म द्विजस्य यत्सिद्धं तदुभयमपीहत्यैरेव मन्त्रैः कृतमिति ।

एवमस्य द्विजस्य–

नवमो व्रतबन्धस्तु

संस्कारः ।

स चाङ्गी परिकीर्तितः ।।३८८।।

यतस्तेनास्य–

अङ्गानि सम्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।

तान्याह–

मेखला दन्तकाष्ठं च अजिनं त्र्यायुषं तथा ।।३८९।।

होना चाहिये । इनमें आठ मुख्य है–१.गर्भ, २.पुंसवन, ३.सीमन्तोनयन, ४.जातकर्म, ५.नामकरण, ६.निष्क्रमण, ७.अन्नप्राशन और ८.चूडाकर्म । अङ्गोपाङ्ग विभाग पूर्वक सीमन्त संस्कार होता है । आदित्यदर्शन के लिये निष्क्रमण होता है । शिखा कृत्य को चूडाकर्म कहते हैं । ईशान भट्टारक मन्त्रों से दश दश आहुतियाँ देकर इनका संस्कारों का शोधन करना चाहिये ।।३८६-३८७।।

इनके शोधन के उपरान्त ब्राह्मण धर्म भी परम्परा में रत का एक और वैदिक मन्त्रीय संस्कारों से दूसरा इस तरह यह द्विजन्मत्व या द्विजत्व सिद्ध होता है । ऐसे द्विज का नवम संस्कार ब्रतबन्ध माना जाता है । वह अङ्गी माना जाता है ।।३८८।।

इसके अङ्ग निम्नवत् हैं । १.मेखला, २.दन्तकाष्ठ, ३.अजिन, ४.त्रायुष, ५.सन्ध्या, ६.वह्नि की उपासना और ७.भिक्षा । इन अङ्गभूत कार्यों को ब्राह्मणों को सम्पन्न करना उनका उत्तरदायित्व है । दीक्षा में यह विशेष रूप से ध्यान देने

सन्ध्यां वह्नेरुपासां च भिक्षां वै सप्तमं विदुः ।

त्र्यायुषं भस्मत्रिपुण्ड्रकम् । एतानि च मेखलाव्रतानि सप्त, एतानि ब्रह्मचारी समाचरेत् ।

नियन्तॄणि च दृष्टानि दीक्षाकाले वरानने ।।३९०।।

दीक्षाकाले मण्डलोपलक्षितभाविगोदानसमयेऽनिष्पन्नानि सन्त्येतानि नियन्तॄणि प्रथमाश्रमावस्थितेर्लोपो मा भूदित्यवश्यानुष्ठेयानि ।।३९०।।

किञ्च,

भौतेशं पाशुपत्यं च गाणं गाणेश्वरं तथा ।
उन्मत्तकासिधारं च घृतेशं सप्तमं विदुः ।।३९१।।
सप्तैतानि तु दृष्टानि व्रतानि ब्रह्मचारिणाम् ।

दृष्टानीति परमेश्वरे शास्त्रे, वेदे तु [1]उच्छिन्नशाखापक्षे स्थितानि अद्यत्वेऽननुष्ठेयत्वात् । एतानि च–

चर्याव्रतानि बोध्यानि

व्रतसन्धावसरे चरणीयानि । एतानि च–

अङ्गत्वे कीर्तितानि तु ।।३९२।।

की बात है कि, ब्रह्मचर्य के व्रतानुष्ठान में गोदान आदि के अनिष्पन्न अनुष्ठान का दोष दीक्षा काल में न रह जाय, उस प्रथमावस्थिति का लोप न हो जाय, एतदर्थ उनके नियन्त्रक द्वारा ये अनुष्ठान अवश्य करा लेना चाहिये ।।३९०।।

'दृष्टानि' यह शब्द अपने भीतर तत्कालीन प्रचलित कर्मकाण्ड की पद्धतियों की याद दिला रहा है । उस समय ये कर्मकाण्ड देखे गये थे अर्थात् लोक प्रचलित थे । वे निम्नलिखित थे–

१.भौतेश, २.पाशुपत्य, ३.गण में अनुष्ठेय, ४.गणेश से सम्बन्धित, ५.उन्मत्तक, ६.असिधार, ७.घृतेश—ये सात सत्य के निर्णायक अनुष्ठान चलते थे, तान्त्रिक प्रक्रिया में सम्पन्न होते थे । वैदिक प्रक्रिया में इसकी समर्थक शाखायें उच्छिन्न हो गयी थीं । इसलिये स्वच्छन्दतन्त्र के प्रवर्त्तन के समय अनुष्ठेय नहीं थीं ।

उक्त ये व्रत चर्याव्रत थे अर्थात् आचार में प्रचलित थे । व्रतबन्ध संस्कार के ये अङ्ग थे । यह संस्कार फलवान् था । इसके कर लेने के बाद ही सारे

---

१. 'तच्छिन्न' क. पाठः ।

फलेन फलवतो[1] व्रतबन्धाख्यस्य संस्कारस्यैतानि अङ्गभूतानि व्रतान्तराणि ॥३९२॥

अतश्च–

एभिस्तु सहितं ह्येकं नवमं व्रतबन्धनम् ।

तस्यान्तर्भूतमेवैतत् कथितं व्रतसप्तकम् ॥३९३॥

तदेवं मेखलादीनि सप्त, भौतेशादीनि च सप्तेति कृत्वा–

चतुर्दश व्रतान्येवं होतव्यानि वरानने ।

पृथक् पृथग् न तु व्रतबन्धान्तर्भावमात्रेणेत्याशयः । अथ–

वेदव्रतानि चत्वारि होतव्यानि न संशयः ॥३९४॥

होमेन सम्पाद्यानि ॥३९४॥

तान्याह–

ऐष्टिकं पार्विकं चैव भौतिकं सौमिकं तथा ।

इष्टिपर्वभूतसोमयज्ञप्रतिपादकवैदिकग्रन्थपाठेन कालकार्याणि व्रतानि ऐष्टिकादिशब्दैः पारमेश्वरेषु ग्रन्थेषु उक्तानि । यज्ञसूत्रे तु–

'त्रैविद्यं च चतुर्होत्रं गोदानं स्नानमित्यपि ।

वेदव्रतानि चत्वारि.......................'॥

इत्येवमुक्तानि । इह तु गोदानं पृथगेव भविष्यति ।

सामाजिक अनुष्ठानों के करने कराने का फल मिलता था । इस फल के कारण अङ्ग भूत अन्य व्रत भी चर्या में स्वीकृत कर लिये गये थे ॥३९१-३९२॥

इनके साथ यह व्रतबन्ध (श्लोक ३८८) नवाँ संस्कार है । उक्त मेखलादि और भौतेशादि सातों इसी के अङ्ग हैं । ७+७=मिलाकर ये चौदह व्रत व्रतबन्ध के अङ्ग हैं पर उनके अन्तर्गत न ही आते हैं । फिर भीएक तरह से व्रतबन्ध में इनका अन्तर्भाव कर लेते हैं । व्रतबन्ध के साथ ही इनका हवन होता है । ये व्रत वेदव्रत हैं, जो पारमेश्वर शास्त्र में भी स्वीकृत हैं । होम इनमें आवश्यक है ॥३९३-३९४॥

कुछ अन्य व्रत भी ऐसे हैं, जो हैं तो वेद प्रक्रिया के, परन्तु इस सम्प्रदाय में स्वीकार्य हैं । जैसे–

१.ऐष्टिक–इष्टिपर्व सोमयज्ञ का ही एक अङ्ग है । यह विशेष अवसरों पर सम्पाद्यमान व्रत हैं ।

२.पार्विक–विशेष विशेष पर्वों पर करणीय व्रत ।

३.भौतिक–भूतादि प्राणियों पर आधारित व्रत और

---

१. 'फलतः' ख. ।

एते च वेदाध्ययनाधिकारदानेन व्रतान्तरापेक्षया प्राधान्यात्-

व्रतेश्वरास्तु चत्वारो ब्रह्मचारिनियामकाः ।।३९५।।

ब्रह्मचारिणां नियामकास्तथात्वसम्पादकाः ।।३९५।।

तदेतावत्पर्यन्तमेतान् संस्कारान्-

त्रयोदश विजानीयात्

एभिरनुष्ठितश्चायं वेदेष्वधिकृत इत्याह-

ततो वै वेदभाजनम् ।

किञ्च,

ततो भवति गोदानं तच्चतुर्दशकं प्रिये ।।३९६।।

वेदाध्ययनान्ते उपाध्यायाय गोमिथुनदानेनोपलक्षितमात्मनः केशादिवपनं गोदानम् ।।३९६।।

अथ गुरुभिर्गार्हस्थ्यायानुज्ञातः-

स्नात उद्वाहयेद्भार्यां ज्ञानसिद्धः कुमारिकाम् ।

वेदाध्ययनेन लब्धशुद्धिः स्नात उच्यते । अध्ययनान्ते हि स्नानमनेनैवाशयेनाम्नातम्, अत एवायं वेदार्थाधिगमात्मना ज्ञानेन सिद्धः सम्पूर्णः ।

४.सौमिक- सोम के प्रतिपद् अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा के आचरणीय सोमयाग सम्बन्धी व्रत ।

यज्ञसूत्र से सम्बन्धित १.त्रैविद्य, २.चतुर्होत्र, ३.गोदान और ४.स्नान विशिष्ट वेदव्रत माने जाते हैं । इसमें गोदान पृथक् व्रत के रूप में भी सम्पाद्यमान व्रत माना जाता है ।

उक्त ब्रह्मचर्य आश्रम के नियामक ये चार व्रत नहीं, व्रतेश्वर माने जाते हैं ।।३९५।।

अब तक बताये गये मुख्य १३ संस्कार जीवन को संस्कार सम्पन्न बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं । ये वेदभाजन भी हैं । वेद में भी ये स्वीकृत हैं । वेदाध्ययन के उपरान्त उपाध्याय के लिये गोमिथुन दान के उपलक्ष्य में क्षौरकर्मादि करने की सभी क्रियायें गोदान में ही आती हैं ।।३९६।।

इसके बाद गृहस्थधर्म निर्वाह के लिये गुरुदेव से आदेश लेना ब्रह्मचारी का कर्त्तव्य माना जाता है । उस समय ब्रह्मचारी जैसे शास्त्र में निष्णात होता है, उसी तरह व्यवहार जगत् में आने के समय तक वह 'स्नात' कहलाता है । अर्थात् गुरु से अभिषिक्त होता है ।

अथवा 'ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्' इति चोदितत्वात् शीघ्रमेव प्राव्राज्यमिच्छन्–

कृत्वा दर्भमयीं पत्नीं तया सह यजेत्क्रतून् ।।३९७।।

गृहस्थाश्रमचोदितनित्यनैमित्तिकरूपमित्थमुद्वाहात्मकसंस्कारसम्पादनरूपमेतत् कर्म–

तज्ज्ञेयं पञ्चदशमं

अनेनैव च–

'पितृदेवमनुष्याणां भूतानां तर्पणं तथा ।
ब्रह्मणोऽध्ययनं चेति महायज्ञास्तु पञ्च वै' ।।

इति यज्ञसूत्रप्रतिपादिता नित्ययज्ञाः सङ्गृहीताः । तदुक्तम्–

'पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
खण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यस्तु बाहयन् ।।
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महात्मभिः ।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ।।

ऐसा योग्य पुरुष ही जिसे हम ज्ञानी अर्थात् विश्वप्रसर विज्ञानवान् कह सकते हैं, वह ज्ञानसिद्ध माना जाता है । वेदों और शास्त्रों की प्रक्रिया का पारङ्गत ब्रह्मचारी विद्वान् कुमारी कन्या से विवाह सम्पन्न करे ।

इसके साथ जीवन का दूसरा विकल्प भी प्रस्तुत कर रहे हैं । इसके अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम से ही संन्यास दीक्षा लेकर प्रव्राजक बन जाय । शीघ्र ही प्रव्राजक धर्म अपनाने के लिये दर्भ की पत्नी से उद्वाह करे । संस्कार सम्पादन के समान ही कर्त्तव्य कर्म है । उक्त क्रम १५वें क्रम में आते हैं ।।३९७।।

'पितर, देव, मनुष्य, भूततर्पण और ब्रह्मरूप वेदों का स्वाध्याय ये पाँचों कर्म महायज्ञ के रूप में परिगणित हैं । यह यज्ञ सूत्र प्रतिपादित नित्य यज्ञ हैं । कहा भी गया है–

गृहस्थ के घर में पाँच 'सूना' के स्थान होते हैं । 'सूना' वे स्थान होते हैं, जहाँ हिंसा की सम्भावनायें होती हैं ।

१.चुल्ली– इसकी आग में बहुत से कीट आदि जीव जलकर मर जाते हैं ।

२.पेषणी–सिल– इस पर अनेक पदार्थ पीसे जाते हैं, जिससे जीव हिंसा की सम्भावना बनी रहती है ।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्' ॥
इत्येवमुद्वाहेनैवैते नित्ययज्ञाः सङ्गृहीता इत्याशयः ।

नैमित्तिकानाह–

ततः पाकमखाः क्रमात् ।
नैमित्तिकांश्च तानाहुः प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।।३९८।।
अष्टकाः पार्वणी श्राद्धं श्रावण्याग्रायणी तथा ।
चैत्री चाश्वयुजी चेति सप्त पाकमखाः क्रमात् ।।३९९।।

३.उपस्कर–मसाला और झाड़ू दोनों अर्थों में इसका प्रयोग होता है । इसमें हिंसा की सम्भावना रहती है ।

४.खण्डनी–लोढ़ा इसी के सदृश तोड़ने वाली कोई चीज

५.उदकुम्भ–इसके नीचे भी जीव दबकर मरते हैं ।

घड़ा पनघट से ढोकर लाया जाता है । यह रस्सी से बँधा भी होता है । यों उदकुम्भ कहीं भी रखें, चींटी आदि कीट वहाँ आते ही रहते हैं और मरते रहते हैं ।

इन पाँचों में होने वाले निष्कृति के लिए महात्मा पुरुषों ने पाँच महायज्ञों की परिकल्पना की है । इनसे नित्य होने वाले पापों का प्रायश्चित्त होता रहे । यह गृहस्थों के लिये आवश्यक यज्ञ है । ये पाँचों निम्नलिखित हैं और पाकमख कहलाते हैं–

१.अध्यापन–ब्रह्मयज्ञ कहलाता है । इसीलिये घर पर पढ़ाना ही पण्डित वर्ग अच्छा मानता था ।

२.तर्पण–करना पितृयज्ञ कहलाता है । इससे पितरों की तृप्ति होती है ।

३.होम–यह दैव कर्म है । देववर्ग इससे प्रसन्न होता है ।

४.बलि–यह भौतयज्ञ है । इससे विभिन्न प्रकार के भूत प्रसन्न होते हैं ।

५.अतिथिसत्कार–यह नृयज्ञ माना जाता है । महापुण्यप्रद कार्य माना जाता है ।

उद्वाह करने के अनन्तर गार्हस्थ्य धर्म में ही ये सभी संगृहीत हैं अर्थात् परिगणितं हैं ।

कुछ नैमित्तिक कार्य भी होते हैं, जिनका महत्त्व गृहस्थधर्म में है । ये पाकमख माने जाते हैं । उन्हें अनुपूर्वशः स्पष्ट कर रहे हैं–

पौषादिकृष्णपक्षगताः शाकाद्या अष्टकाः । पार्वणी सितासितपक्षाद्यदिने, तत्रत्यो यागस्तथोक्तः । श्राद्धं पित्र्यादिदिनोक्तो विधिः । श्रावण्यां यागः श्रावणी । आग्रायणी नवान्नयागः । एवं, [१]चैत्र्यादिरपि बोद्धव्यः । अन्ये तु आग्रायणीद्वयमिति पठित्वा शरद्वसन्तयोर्नवान्नयागद्वयं व्याचक्षते, ते च पार्वणं श्राद्धमेकमेव वर्णयन्ति । एते च पाकयज्ञा वेदे तु पुरोडाशादिभिः कार्या उक्ताः, वक्ष्यमाणास्तु हविर्यज्ञाः सक्त्वादिभिः । इह तु विशेषानभिधानात् प्रस्तुतैस्तिलैरेव कार्या इति ज्ञेयम् ॥३९९॥

तदेवम्–

एतैः सह विजानीयाद्द्वाविंशत्परिसंख्यया ।

एतैः सप्तभिः सह पूर्वोक्तान् पञ्चदश संस्कारान् । अथ

आग्नेयं चाग्निहोत्रं च दर्शं चैव ततः परम् ।।४००।।

१.अष्टका–पौष आदि कृष्ण पक्षगत अष्टमी तिथि में होने वाले श्राद्ध को अष्टका श्राद्ध कहते हैं । इसी तरह सप्तमी, अष्टमी और नवमी के तीन दिनों में पितरों का तर्पण भी करते हैं ।

२.पार्वणी–कृष्ण और शुक्ल पक्ष की पहली तिथि को होने वाले याग ही पार्वणी श्राद्ध हैं ।

३.श्राद्ध–पिता माता की मृत्यु के दिन पिण्डदान आदि कार्य नैमित्तिक कहलाते हैं ।

४.श्रावण–श्रावणी का ऋषिपूजन आदि कार्य श्रावणी हैं ।

५.आग्रहायणी–नवान्न भक्षण याग का पर्व है ।

६.चैत्री–चित्रा नक्षत्र की चैत्र पूर्णिमा का शास्त्रीय कार्य ।

७.आश्वयुजी–शारदीय कार्य । यह भी पूर्णिमा को होता है ।

ये सात गृहस्थ जीवन के पाकमख कहलाते हैं । इन्हें क्रमशः सम्पन्न करना चाहिये । ये पाकयज्ञ वेद की प्रक्रिया के अनुसार आदि से ही सम्पन्न करते हैं । तान्त्रिकी प्रक्रिया में तिल से पूरा करते हैं ॥३९९॥

उक्त १५ संस्कारों के साथ सात अन्य संस्कारों की चर्चा कर रहे हैं । उक्त दोनों को मिलाकर इनकी संख्या २२ हो जाती है । निम्नलिखित संस्कार मिलाकर २२+७=२९ हो जायेंगे ।

---

१. 'पैत्र्यादि' क. पाठः ।

पौर्णमासी तथा ज्ञेया चातुर्मास्यं तथैव च ।
पशुबन्धः समुद्दिष्टः सौत्रामणिरतः परम् ॥४०१॥
हविर्यज्ञाः समाख्याताः सप्तैते पावनाः प्रिये ।

आग्नेयमरणिक्रमेण अग्न्यानयनम् । अग्निहोत्रं सायंप्रातश्च होमः । दर्शो विपरीतलक्षणयाऽदृश्यमानचन्द्र आमावस्यो यागः । चातुर्मास्यं फाल्गुनात् चैत्राद्वा प्रभृति मासचतुष्टयान्ते पौर्णमासीभवो विशिष्टो यागः । पौर्णमासीशब्देन तु सर्वपौर्णमासीगतः सामान्ययाग उक्तः । पशुबन्धो यागविशेषो यत्र पशोर्मांसवसादि हूयते । सौत्रामणिः सुत्रामदेवताकः सुरायागः ।

एतानपि सङ्कलयति–

एभिः सह विजानीयात्संस्कारैकोनत्रिंशकम् ॥४०२॥

अथ–

अग्निष्टोमात्यग्निष्टोमौ उक्थ्यः षोडशिका तथा ।
वाजपेयोऽतिरात्रस्तु [1]आप्तोर्यामस्तु सप्तमः ॥४०३॥

१.आग्नेय–	अरणिक्रम से अग्निकृत आनयन ।
२.अग्निहोत्र–	सायं प्रातःकालीन होम ।
३.दर्श–	आमावस्य याग
४.पौर्णमासी–	पौर्णमास व्रत
५.चातुर्मास्य–	कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ से प्रारम्भ होने वाले व्रत ।
६.पशुबन्ध–	पाशवयाग । इसमें पशुमांस वसा आदि हवनीय हैं ।
७.सौत्रामणि–	सुत्राम इन्द्र देवता जिस यज्ञ के देव होते हैं, उसे सौत्रामणि कहते हैं । यह प्रायः सुराप्रधान याग है ।

ये सब हविर्यज्ञ हैं । और बड़े पवित्र होते हैं । इनकी संख्या २२+७=२९ एकोनत्रिंश होती है ॥४००-४०२॥

सात अन्य संस्कार–

इन्हें सोमयज्ञ की श्रेणी में परिगणित करते हैं । १.अग्निष्टोम, २.अत्यग्निष्टोम, ३.उक्थ्य, ४.षोडशिका, ५.वाजपेय, ६.अतिरात्र और ७.आप्तोर्याम ।

१.　'आप्तर्याम' क. पाठः ।

त एते यागविशेषाः–

सोमसंस्थाः समाख्याताः

ग्रह[1]करणकसोम[2]पानयुक्ता यज्ञरूपाः क्रियाः सोमसंस्थाः ।

एतावदन्तानेतान् संस्कारान्–

षट्त्रिंशत्परिसंख्यया ।

प्रोक्तमन्त्राहुतिक्रमेण कुर्यादिति शेषः । अथ–

हिरण्यपादः प्रथमस्तथा गुह्यहिरण्यधृत् ।।४०४।।
हिरण्यमेढ्रो हिरण्यनाभिर्हिरण्यगर्भ एव च ।
हिरण्यश्रोत्रो हिरण्यत्वग्घिरण्याक्षस्तथैव च ।।४०५।।
हिरण्यजिह्वस्तच्छृङ्गो दश यज्ञाः प्रकीर्तिताः ।

गर्भो हृदयम् । एते पक्ष्याद्याकारा अग्निचित्याविशेषा येषां पादादिस्थानेषु हिरण्यं दीयते ।

येषां तत्तत्पक्ष्याद्याकृतिभेदात्–

शतेन तु घृतं चात्र एकैकं तु विजायते[3] ।।४०६।।

एतत्सम्पत्त्यर्थं होमे विशेषमाह–

एते सर्वे सहस्रेण शुद्ध्यन्ते

स एव सहस्रहोमसम्पाद्यो हिरण्यपादादिश्चित्ययज्ञः ।

सप्तत्रिंशकः ।

किञ्च,

अश्वमेधं ततः पश्चाज्जुहुयात्तु यथाक्रमम् ।।४०७।।

ग्रहकरणक सोमपान रूप याग ही सोमसंस्थारूप याग होते हैं । इनको मिलाकर ३६ संस्कार हो जाते हैं । इनके साथ दश ऐसे यज्ञ होते हैं, जिनमें पक्षियों आदि के चरणों में सोना जड़ते या लगाते हैं । इसीलिये हिरण्य शब्द के साथ इनकी संज्ञायें बनती हैं । जैसे-

१.हिरण्यपाद, २.गुह्यहिरण्यधृत्, ३.हिरण्यमेढ्र, ४.हिरण्यनाभि, ५.हिरण्य-गर्भ (गर्भ अर्थात् हृदय में स्वर्ण), ६.हिरण्यश्रोत्र, ७.हिरण्यत्वक्, ८.हिरण्याक्ष, ९.हिरण्यजिह्व, १०.हिरण्यशृङ्ग । इस याग में इन दशों के लिये १००-१००० घी की आहुतियाँ देनी चाहिये ।।४०३-४०६।।

इस तरह एक हजार आहुतियाँ हो जाती हैं । सारा बाह्याभ्यन्तर इन आहुतियों के माध्यम से शुद्ध हो जाता है । यह चित्य यज्ञ कहलाता है ।

---

१. 'ग्रहण' क० । २. 'महोम' क. पाठः । ३. 'विजानते' क. ।

ब्राह्मणस्यापि कर्मवशप्राप्तसार्वभौमभूपतित्वस्य अयमश्वमेधः कार्य एव ॥४०७॥

एवं विवाहात् प्रभृति एतावदन्तैः–

एवं कृतैस्तु तैः सर्वैस्ततश्चैव गृही भवेत् ।

द्वितीयाश्रमस्थः ।

अष्टात्रिंशत्तमं तं तु

अश्वमेधाख्यं संस्कारं जानीयादित्यर्थः ।

वानप्रस्थं ततो भवेत् ॥४०८॥

पारिव्राज्यं ततोऽन्तेष्टिमेवं ब्राह्मण्यमाप्नुयात् ।

वानप्रस्थं पारिव्राज्यं चाश्रमद्वयरूपं संस्कारद्वयम् । अन्तेष्टिर्विहिताननुष्ठान-सम्भाव्यमानप्रायश्चित्तशुद्ध्यर्थं गार्हस्थ्यावस्थितस्य कार्या, न तु वानप्रस्थस्याश्रित-पारिव्राज्यस्य वा तेनासौ पृथङ् न गण्यते । एवमिति पारमेश्वरमन्त्रहोमक्रमेण, पाशवे तु विधौ सत्यपि बीजाहारादिदोषसद्भावाद् न सम्यग्ब्राह्मण्यं भवति । इदं तु पारिव्राज्यलक्षणं चत्वारिंशत्तमसंस्कारमेतैः सह विजानते, एतैः सह गणितमिति यावत् ।

दश भेदभिन्न होने पर भी यह एक माना जाता है और संस्कारों की कुल संख्या सैंतीस हो जाती है । इसके बाद अश्वमेघ यज्ञ शेष रहता है । सर्वकरणीय यह यज्ञ है ॥४०७॥

इन संस्कारों को गृहस्थ धर्म में दीक्षित व्यक्ति अवश्य पूर्ण करता है । तभी गृही कहलाने का अधिकारी माना जा सकता है । यह अश्वमेध संस्कार ३८वाँ संस्कार माना जाता है ।

इस गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ आता है । यह तीसरा आश्रम है ॥४०८॥

इस संस्कार के बाद पारिव्राज्य संस्कार होता है । इन दोनों को मिलाकर ४० संस्कार होते हैं । अन्तेष्टि की पृथक् गणना नहीं की जाती । यह गार्ह्य जीवनगत आश्रमियों के लिये है । इसलिये किया जाता है कि, विहित कर्म के न करने पर सम्भव है कि, कोई प्रायश्चित्त रह गया हो, उसी की शुद्धि के लिये इसे करते हैं । वानप्रस्थ और पारिव्राज्य में अन्तेष्टि नहीं होती ।

पारमेश्वर शास्त्र में इसी मन्त्रहोम क्रम से ब्राह्मण्य की उपलब्धि होती है । पाशव प्रक्रिया में विधि के सम्पन्न होने पर भी बीज और आहारादि शेष रह जाते हैं । इसलिये सम्यक् ब्राह्मण्य नहीं हो पाता । वानप्रस्थ और पारिव्राज्य

अत आत्मगुणानष्टौ कथयामि समासतः ।।४०९।।
दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्तिश्चाप्यनसूयता ।
शौचं चैवमनायासो मङ्गलं चाप्यतः परम् ।।४१०।।
अकार्पण्यं चास्पृहा चेत्यष्टावात्मगुणाः स्मृताः ।

दया परानुकम्पा, क्षान्तिरपकारिषु शक्तत्वेऽप्यप्रतिक्रिया, परगुणसहत्वमनसूयता, चित्तवाक्शरीरशुद्धिः शौचम्, अक्लेशावहकर्मकारित्वमनायासः, **मङ्गल्यद्रव्याणां दर्शनस्पर्शनचिन्तनानि मङ्गलम्,** यथाशक्ति दातृत्वमकार्पण्यम्, अस्पृहा सन्तोषः, इत्येते आत्मन आत्मसन्निकृष्टस्यान्तःकरणवागादेर्गुणाः, न तु आत्मनस्तस्य चिदेकरूपत्वात् । तत्र च दीक्ष्यात्मनो ब्राह्मण्याय गर्भाधानं करोमि स्वाहा, इत्यनेन सप्रणवेशानोच्चारपूर्वेण मन्त्रेणादौ पञ्चकृत्वो हुत्वा पुनर्गर्भाधानं सम्पन्नमस्तु, इत्यन्तेन पञ्चकृत्वो जुहुयात् । इत्थमेव चत्वारिंशदन्तान् संस्कारान् निधाय वक्ष्यमाण-

---

आश्रम संस्कारों को इसी क्रम के साथ जानना अपेक्षित है । ब्राह्मण्य के आधार पर मनुष्य में आठ दैवी गुण आते हैं । वे निम्नलिखित हैं ।।४०९।।

१.दया–दूसरों के ऊपर अनुकम्पा ही दया होती है ।

२.क्षान्ति–सामर्थ्य रहने पर भी अपकारियों पर कोई प्रतिक्रिया न करना क्षान्ति है ।

३.अनसूयता–दूसरों के गुणों पर प्रसन्न होना । सह लेना ही अनसूयता है ।

४.शौच–चित्त, वाणी और शरीर की शुद्धि को शौच कहते हैं ।

५.अनायास–विना क्लेश के कर्म का सम्पादन ।

६.मङ्गल–जिस तरह सबका हित हो, वही सोचना मङ्गल गुण माना जाता है ।

७.अकार्पण्य–यथाशक्ति दान करने की तत्परता ही अकार्पण्य है ।

८.अस्पृहा–किसी प्रकार की चाह का न होना ही अस्पृहा गुण है ।

ये आठों आत्मगुण माने जाते हैं । आत्म गुण का तात्पर्य यह है कि, आत्मसन्निकृष्ट अन्तःकरण और वाणी में तथा आचार में घटित होने वाले व्यक्तित्व में ये गुण निविष्ट हो जाते हैं । आत्मा चिदेकरूप होता है । अतः ये केवल गुण नहीं कहे जा सकते ।

प्रयोग के रूप में इसे 'दीक्ष्यस्य ब्राह्मण्याय गर्भाधानं करोमि स्वाहा' इस वाक्य के पहले ॐ हौं का प्रयोग कर पाँच बार हवन करना चाहिये । चालिस संस्कारों के साथ यह प्रयोग कर और इन आठों गुणों को उत्थापित करने पर ही

मन्त्रक्रमेण गुणाष्टकोत्थापनपूर्वं ब्राह्मण्यमस्यापाद्य ईशानेनैवाधिकारभोगादिपूर्वं ब्राह्मण्यमस्य शोध्यम् ।

इत्थमेव–

चत्वारिंशदथाष्टौ तु संस्काराश्च समासतः ।।४११।।

एतैः शुद्धैस्तु शुद्ध्यन्ति असंख्या येऽपि सुव्रते ।

चत्वारिंशद्देहविषयाः, अष्टौ तु पुर्यष्टकनिष्ठाः । असंख्या इति आचाराध्यायोक्तविविधाचाररूपाः ।

यत एते आत्मगुणाश्चत्वारिंशद्देहसंस्कारानन्तरमुक्ताः

अतोऽन्तेष्टिं[1] तु हुत्वा वै गुणानापादयेच्छिशोः ।।४१२।।

अत्रापि ब्राह्मण्यशुद्धौ सामान्योक्त्येशानमन्त्रस्य विनियोगे प्राप्ते विश्लेषमाह–

पञ्च पञ्चाहुतीर्हुत्वा ब्रह्मभिश्चाप्यनुक्रमात् ।

चशब्द एवार्थे, ब्रह्मभिरेव, अपिशब्दात्समुचितोहयुक्तैः । अनुक्रमशब्दस्यायमर्थः–[2]प्रागुक्तक्रमेण सद्य आदिचतुष्टयेन दयाक्षान्त्यनसूयाशौचाख्यं चतुष्टयं प्राक्तयुक्त्या पञ्चधा पञ्चधा हुत्वा, ईशानेनानायासमङ्गलाकार्पण्यास्पृहाख्यं चतुष्टयं तथैवाहुतिभिः सम्पादयेदिति ।

ब्राह्मण्य का आपादन होता है । ईशान मन्त्र से ही ब्राह्मण्य के अधिकार भोगादि पूर्वक शोधन कार्य सम्पन्न होते हैं । ये ४८ संस्कार हैं ।।४११।।

इन अड़तालिस संस्कारों में चालिस संस्कार तो देह से सम्बन्धित हैं । अवशिष्ट आठ पुर्यष्टक के संस्कार हैं, जिन्हें आत्मगुण के रूप में कहा गया है । इन संस्कारों से संस्कृत व्यक्तित्व वाले शिष्यों, आचार्यों आदि के आचाराध्याय में सम्प्रोक्त अनन्त आचार व्यवहार भी विशुद्ध हो जाते हैं । इसलिये दीक्ष्य के अन्दर अनन्त गुणों के आपादान के लिये अन्त में अन्तेष्टि हवन भी कर देना चाहिये ।।४१२।।

पाँच पाँच आहुतियाँ अर्पित कर पञ्चब्रह्म के बीजमन्त्रों से ही क्रमशः सद्योजात आदि के मन्त्रों से दया, क्षान्ति, अनसूया और शौच इन गुणों को शुद्ध करे । पुनः ईशान बीजमन्त्र से अनायास, मङ्गल, अकार्पण्य और अस्पृहा के लिये पाँच आहुतियाँ अर्पित करनी चाहिये ।

हवनीय द्रव्य के विषय में कह रहे हैं कि, तिलों से आज्य से अथवा दोनों के मिश्रण से हवन करना चाहिये । तिल स्नेहमय बीजात्मकता के और

---

१. 'न्त्येष्टिं' क. पाठः । २. 'प्राप्त' क. पाठः ।

आहुतिषु करणमाह–

तिलैर्घृतेन वा तांश्च

हुत्वेति सम्बन्धः । तिलाः स्नेहमयबीजात्मकाः, आज्यं [1]मूर्तः स्नेह इति । संस्कारबीजानां संस्काराभिलाषस्नेहस्य चैतत्प्र(ति)कृतिरूपं वासनास्नेह-दाहात्मके दीक्षाकर्मणि होतव्यम् ।

एवं कृत्वा–

ऊर्ध्वे तु विनियोजयेत् ।।४१३।।

किमूर्ध्वमित्याह–

ऊर्ध्वशब्देन चाशुद्धं यत्कर्म परिकीर्तितम् ।

मनुष्यजातिप्रदस्य कर्मणो भूर्लोके शोधितत्वात् तदुपरिवर्तिदेवयोनिप्रदं कर्म यत्तदूर्ध्वमुच्यते ।

तच्छुद्धये च दीक्ष्यस्य–

तस्मिन् संयोजनं कार्यं

न तु तं त्यक्त्वान्यत्रेत्याह–

न चान्यत्र विधीयते ।।४१४।।

आज्य साक्षात् स्नेह के ही प्रतीक द्रव्य हैं । सबकी इच्छा यही होती है कि, मानव में जो संस्कार बीजरूप में अवस्थित हैं, उनमें बैठी वासना को भी स्नेहदाह ही मिले । दीक्षा में यही सोचकर इन द्रव्यों को स्वीकार किया गया है । इतनी प्रक्रिया पूरी कर दीक्ष्य को ऊर्ध्व की ओर विनियुक्त कर देना चाहिये । ऊर्ध्वता का निश्चय गुरु देव करते हैं ।।४१३।।

यों यहाँ ऊर्ध्वशब्द की परिभाषा का भी स्पष्टीकरण कर रहे हैं । भूलोक में जो मनुष्य जाति मिली है, इसके कारण भी कर्म ही हैं । इनका शोधन हो जाने पर इसके ऊपर देवयोनि में जन्म मिले, ऐसे कर्मों के शोधन में लगाना ही ऊर्ध्व योजन माना जा सकता है ।

उनकी शुद्धि के लिये उसी पूर्व स्थिति में रहकर ही ऊर्ध्व में संयोजन गुरुदेव करते हैं । कहीं अन्यत्र से यह विधान पूरा नहीं किया जा सकता । शुयेद्धि मानुष्यप्रद के आधार बनते हैं । यहीं से ऊर्ध्व में शुद्धि के उद्देश्य से ही विनियोजन होता है ।।४१४।।

---

१. 'मूर्तेः' ख. पाठः ।

एतत्स्फुटयति–

तस्मान्नोद्धरणं कार्यं न चापि नयनं क्वचित् ।
यत्तत्र परिपाट्या तु कर्म तत्र नियोजयेत् ।।४१५।।

उद्धरणमुल्लङ्घनम्, नयनमस्य स्थानेऽन्यस्य शोधनं नियोजयेद् इति दीक्ष्यम् ।।४१५।।

एवं स्थावरादिक्रमेण मनुष्यजातिभेदान् संशोध्य देवयोनीः शोधयितुमाह–

ततोऽणिमादिरापाद्यो ब्रह्मभिश्चाप्यनुक्रमात् ।
पञ्चाहुतिप्रयोगेण भोगार्थं चैवमात्मनः ।।४१६।।

प्राग्वत्संहारक्रमेण प्रणवसद्योजातोच्चारपूर्वं देवदत्तस्य पैशाचाणिमादिमापादयामि स्वाहेत्याहुतीः पञ्च हुत्वा तद्भोगप्राप्तिमस्य सञ्चिन्त्य तेनैव मन्त्रेण पैशाचभोगमस्य शोधयामि स्वाहेति पञ्चाहुतीर्दद्यात् । अनेन क्रमेण वामदेवाघोरतत्पुरुषैः राक्षसयाक्षगान्धर्वान् संशोध्य ऐन्द्रादिब्रह्मान्तचतुष्टयं सत्त्वप्रधानमीशानभट्टारकेणैव शोधयेत् ।।४१६।।

इसी को और भी स्पष्ट करते हुए कह रहे हैं कि, न तो यहाँ उल्लङ्घन रूपी उद्धरण की प्रक्रिया अपनायी जाती है और न ही कहीं से कहीं ले जाया जाता है । जहाँ हैं, वहीं पर अपने में आतिशय्य लाकर शास्त्र की परिपाटी के अनुसार ही दीक्ष्य को नियोजनार्थ तत्पर रहना चाहिये । तभी गुरुदेव की प्रक्रिया शीघ्र सम्पन्न होगी ।।४१५।।

जाति प्रकरण में उक्त मनुष्य से नीचे की स्थावर योनियों को शुद्धकर लिया गया है । फिर मनुष्य कर्म शुद्ध किये गये हैं । अब उक्त ब्रह्मक्रम के ही अनुसार उसी प्रकार के ऊह मन्त्र बनाकर पैशाचादि सूक्ष्म योनियों का आपादान पञ्चाहुति प्रयोगपूर्वक करें ।

पाँच आहुतियाँ देने के बाद ऊह मन्त्र का संस्कृत में प्रयोग करना चाहिये । उस मन्त्र का भाव यह होता है कि, दीक्ष्य शिष्य के लिये उस योनि के भोग का चिन्तन कर इस मन्त्र से मैं गुरुदेव इसके पैशाच भोग का शोधन कर रहा हूँ । फिर तुरत पाँच आहुतियाँ अग्नि में दे ।

इसी क्रम में वामदेव से राक्षस, अघोरमन्त्र से याक्ष और तत्पुरुष मन्त्र से गन्धर्व भोगों का शोधन करे । इसके बाद केवल ईशान मन्त्र से ऐन्द्र, सौम्य, प्राजेश और ब्राह्म भोगों का शोधन करना चाहिये ।।४१६।।

न च मानुष्यादनन्तरं देवयोनीरूर्ध्वस्थाः 'शोध्याः' इति मत्वा बुद्धितत्त्ववर्तिनीस्ताः शोधयेत्; अपि तु–

ऊर्ध्वशब्देन तज्ज्ञेयं यद्भूर्लोकं समाश्रितम् ।
तस्मिन् युक्तस्य कर्तव्यं न चान्यस्मिन् कदाचन ।।४१७।।

भूर्लोकमाश्रितं भूर्लोके देवयोन्युपपत्तिदं यत्कर्म, तदत्रोर्ध्वं ज्ञातव्यम् । तत्र युक्तस्य भोगार्थं योजितस्य मन्त्रैः कर्तव्यं शोधनमित्यर्थात्, न तु बुद्धितत्त्वे तत्र सुनन्दकरालादिनामविशेषोच्चारणेन शोधनस्य वक्ष्यमाणत्वात् ।।४१७।।

युक्तं चैतत्, अन्यथा क्रमप्राप्तात् शोध्यस्थानाद् दीक्ष्यात्मनि–

अनुद्धृते कथं योगः

न च ततस्तावदुद्धरणं युज्यते–

यावत् कर्म न भुज्यते ।

दीक्ष्येण दीक्षाप्रभावादिति शेषः ।

यतश्चायं कर्मफलमवश्यं भोजयितव्यः, ततो योजनमस्य तत्तत्कर्मवासनैकतानतामयमाचार्येण भावनया क्रियत इत्याह–

तस्मात्तु योगशब्देन तत्तत्कर्मैकचिन्तना[1] ।।४१८।।

मानुष्य के अनन्तर ऊर्ध्वस्थ देवयोनियाँ ही शोध्य हैं । यह सोचकर बुद्धितत्त्ववर्त्तिनी उन योनियों का ही नहीं, अपितु ऊर्ध्व शब्द से भूलोक में देवयोन्युपपत्तिक जो कर्म हैं, वह भी शोध्य हैं, यह समझना चाहिये । उस प्रक्रिया में युक्त और देवयोन्युपपत्तिक कर्म भोगार्थ योजित मन्त्रों से उनका शोधन करना चाहिये । बुद्धितत्त्व में यह शोधन नहीं होता । वहाँ की प्रक्रिया आगे के ग्रन्थ में निर्दिष्ट है । उसमें सुनन्द और कराल आदि उनके नागों के विशेष उच्चारण के साथ इसकी चर्चा है ।।४१७।।

और यह तथ्य पर आधारित सत्य है । अन्यथा क्रमप्राप्त शोध्य स्थान के दीक्ष्य में अनुद्धृत रहने के कारण योग होता ही नहीं । वही कह रहे हैं कि, अनुद्धृत स्थिति में योग असम्भव है; क्योंकि जब तक दीक्षा के प्रभाव से वहाँ का कर्म भुक्त नहीं होता, तब तक ऊर्ध्व योग नहीं हो सकता । इसलिये योग शब्द अपने अन्तर में एक प्रक्रियार्थ का समावेश लिये हुए प्रयुक्त है । उन उन कर्म भोगों को दीक्षा के प्रभाव से चिन्तन करते हुए प्रक्रिया में लगना चाहिये । कर्म भोग की पूरी प्रक्रिया का निश्चय होने पर ही आचार्य द्वारा आगे की कार्यवाही होनी चाहिये ।।४१८।।

---

१. 'चित्तता' क. पाठः ।

निवर्त्यते[१] महादेवि

अथ–

निष्कृतिं जुहुयात्ततः ।

शिवेनाष्टशताहुत्या

शिवेनेति निष्कलेन । एतच्चतुर्थपटल एव निर्णीतं तथा वक्ष्यमाणमपि । यदाह–

ततस्तु भुवनाधिपान् ।।४१९।।

भुवनान्तर्निवासांश्च भुवनानां यथाक्रमम् ।

होमेनैव तु संशोध्य विश्लेषं छेदनं तथा ।।४२०।।

पूर्णां चैव समुद्धारं तत्स्थत्वं चाप्यनुक्रमात् ।

कुर्यादिति शेषः । भुवनानां शोधने प्रस्तुते भुवनेशान् कालाग्न्यादीन्-प्रधानभूतान् भुवानान्तर्वासिनश्च अन्यानपि तदङ्गभूतानाहूय आहुतिभिः स्मर्तव्य-श्रावणादिपूर्वं विसर्जयेदिति । तेषां शोधनं कृत्वा भुक्तेभ्यो भोगेभ्यो दीक्ष्यस्य विश्लेषो वियोजनम्, छेदनं तु सूत्रस्य भुवनात्मनः पाशस्य, समुद्धारं ततो भुवनात्, तत्स्थत्वं शिष्यहृन्निवेशमित्यादि पूर्वमेव निर्णीतम् । यथाक्रममिति-

---

भगवान् कहते हैं कि, देवि ! भोग की भुक्ति से ही निवृत्ति की बात हो सकती है । भोग के बाद निष्कृति होम करना चाहिये । यह होम निष्कल मन्त्र से होता है । हवन १०८ बार करना चाहिये । इसे चतुर्थ पटल में कहा भी गया है । यहाँ कह रहे है कि, इसके बाद भुवनेश्वरों का शोधन करना चाहिये ।।४१९।।

भुवनान्तरों में अधिकारियों और निवासियों के भुवनक्रम के अनुसार ही शोधन करना चाहिये । भुवनों के शोधन में भुवनेश्वरों जैसे कालाग्नि आदि प्रधान भुवनाधिपों और वहाँ के निवासियों को जो उनके अङ्ग रूप हैं, उनका आवाहन करना चाहिये । उनकी पूजा, उनके कर्मों के भोग के बाद हवनकर्म भी संस्मरणपूर्वक आहुतियाँ देनी चाहिये । आचार का श्रवण-श्रावण और विसर्जन करना चाहिये । इसी तथ्य को भगवान् ने कहा है कि, होम से संशोधन करके विश्लेषण और भुवनपाशों का छेदन करना चाहिये ।।४२०।।

सारी ऊपर की प्रक्रिया पूरी करने के बाद ही उस भुवन से समुद्धार करते हैं । शिष्य के हृदय में निवेदन आदि इसी क्रम में किया जाता है । समुद्धार के

---

१. र्न्विर्त्यते क. पाठः ।

वदन्नुद्धारादनन्तरमात्मस्थीकरणम्, ततस्तत्स्थीकरणम्, ततो भुवनेशाह्वानमिति प्रागुक्त-मेव स्मारयति भूर्लोकेशाधिपतिर्भगवान् शर्व इत्यग्रे भविष्यति ।

किञ्च,

प्रायश्चित्तं ततो हुत्वा न्यूनाधिकनिमित्ततः ।।४२१।।

उत्तरं कर्म कार्यमिति शेषः ।।४२१।।

एतत्सर्वं भूर्लोकोक्तं भुवनान्तरशुद्धावप्यतिदिशति–

एवमादिक्रमेणैव धामान्तं च विशोधयेत् ।

धाम समनावधिकशिवतत्त्वरूपं तदन्तम् । यदुक्तम्–

'समनान्तं वरारोहे पाशजालमनन्तकम्' । इति । (स्व ४/४१०)

एवमादिक्रमेणेति, प्रोक्षणादिपूर्वं शिष्यात्मनस्तत्र प्रागुक्तसंस्कारान्तरो-पस्कृतान् जन्माधिकारभोग[१]लयनिष्कृतिविश्लेषपाशच्छेदपूर्णाहुत्युच्चारात्मस्थतत्स्थत्व-संस्कारान् कृत्वा भुवनेशाह्वानतर्पण[२]श्रावणाविसर्जनादियुक्त्येत्यर्थः ।

तदेतत् प्रासङ्गिकमुक्त्वा प्रकृतमनुबध्नाति–

भूर्लोकस्तु समाख्यातो भुवो[३]लोकं निबोध मे ।।४२२।।

बाद आचार्य द्वारा आत्मस्थीकरण, तत्स्थीकरण, भुवनेशाह्वान इत्यादि क्रम को पहले ही पूरा कर लिया जाता है । यही इसका अनुक्रम है । इस कार्य में न्यूनाधिक निमित्तक प्रायश्चित्त होम भी करना चाहिये ।।४२१।।

भुवनान्तर शुद्धि की उक्त बातों के बाद भगवान् कह रहे हैं कि, भू-लोकोक्त में समनान्त अनन्त पाशजाल का धामपर्यन्त अर्थात् समनापर्यन्त का शोधन धाम मन्त्र से ही करना चाहिये । इस शोधन क्रम में शिष्य के संस्कारों से उपस्कृत जन्म, अधिकार, भोग, लय, निष्कृति, विश्लेष, पाशछेदन, पूर्णा-हुति, उच्चार, आत्मस्थीकरण, तत्स्थीकरण आदि संस्कारों को सम्पन्न करने के बाद ही भुवनेशों का आवाहन, तर्पण, श्रावण, विसर्जन आदि प्रक्रिया अवश्य पूरी करनी होती है । इस तरह भूलोक की शुद्धि सम्पन्न हो जाती है । इसके बाद ही भुर्वलोक का क्रम आता है । उसे भी मैं यहाँ कह रहा हूँ ।।४२२।।

---

१. भोगाल० क. पाठः । २. तर्पणाश्रव० क. पाठः ।
३. भुवर्लोकं क. पाठः ।

भूपृष्ठाद्यावदादित्यं लक्षमेकं प्रमाणतः ।

तत्र च–

दश वायुपथा मध्ये त्वयुतायुतसंख्यया ।।४२३।।

अयुतं दश सहस्राणि, अयुतायुतमन्तरमिति पाठे तेषामयुतायुतमन्तर्निवास-स्थानमिति व्याख्येयम् ।।४२३।।

तत्र–

आद्ये वायुपथे मेघान् कथयामि यथास्थितान् ।

परमेश्वरेच्छानियमितवायुविततविहरणोपभोगभूमयो वायुपथाः ।

तत्र–

पञ्चाशद्योजनादूर्ध्वमृतर्द्धिर्नाम मारुतः ।।४२४।।

यो विवर्धयते पुष्टिमोषधीनां बलं तथा ।

बृंहयेच्च महीं सर्वामाप्याययति चाव्ययः ।।४२५।।

अव्यय इति सदा आप्यायादि कुर्वन्नपि न क्षीयते ।।४२५।।

किञ्च,

दिवा हंसः स वै वायुर्मनुजानां सुखावहः ।

स एव–

यतो गृद्ध्रान् धारयति तेन गृद्ध्रधरः स्मृतः ।।४२६।।

भूपृष्ठ से आदित्य की किरण की ऊपरी सतह तक भुवर्लोक का क्षेत्र माना जाता है । यह एक लाख योजन है । इस वायु के दश पथ हैं । वे दश दश हजार योजन के माने जाते हैं ।।४२३।।

इनका प्रथम वायुपथ गृद्धधर नाम का है । इसमें परमेश्वर की इच्छा से नियमित वायु का व्यापक विहार और उनका उपभोग होता है । इसी आधार पर इन्हें वायुपथ कहते हैं । पचास योजन ऊपर तक जिस वायु का विहार इसमें है, उसका नाम ऋतर्द्धि है ।।४२४।।

यह ओषधि की वृद्धि का कारण है । उन्हें यह बल प्रदान करता है, तथा पुष्टि प्रदान करता है । साथ ही पृथ्वी को बृंहित करता है । पृथ्वी को आप्यायित करता है और आप्यायन करते हुए स्वयम् 'अव्यय' बना रहता है ।।४२५।।

दिन में स्वयं 'हंस' रूप परमेश्वर की प्राणसत्ता का प्रतीक और रात होम की माधुरी का प्रतीक बनकर विराजमान है । मनुष्यों की प्राणना के व्यापार का आधार है । जीवन का सुख देता है । इसीलिये इसे सुखावह कहते हैं । यद्यपि

एक एवायं नानासंज्ञो नानाव्यापारश्चेत्यर्थः ॥४२६॥

तदुपरि–

प्राचेतसो नाम वायुः प्रचेतोभिविनिर्मितः ।

स वै नाशयते वृक्षान् कदाचित्सम्प्रवर्तयेत् ॥४२७॥

प्रचेतसा वरुणेनाभिविनिर्मित उत्पादितः । नाशयते दहति । प्रवर्तयति उद्भिन्नाङ्कुरान् सम्पादयति ॥४२७॥

वायोः कथः दाहकत्वमित्याह–

अग्निप्राचेतसो नाम तेनैव सह तिष्ठति ।

तत्साहित्यादसौ–

यदा दहति वेश्मानि तदासौ समुदाहृतः ॥४२८॥

एतन्नामैवेत्यर्थः ॥४२८॥

अयं चाग्निर्वडवात्मेत्याह–

सुखी समुद्रे वसति

अयत्नोपनतनानानीरपानाशनः । वसंश्चात्र–

स जलान्नोपशाम्यति ।

प्रत्युत ज्वलति ।

अथ–

योजनानां शतादूर्ध्वं सेनानीर्वायुरुच्यते ॥४२९॥

वायु एक ही है, पर इस पथ पर यह ऋतर्द्धि नाम से बहता है । इसकी संज्ञा गृद्ध्र पक्षी को धारण करने के कारण 'गृद्ध्रधर' भी रखी गयी है ॥४२६॥

२–इसके ऊपर 'प्राचेतस' नामक वायु है । प्रचेतस वरुण को कहते हैं । वरुण ने इसे इस पथ को प्रवाहमय बनाया था । उन्हीं के नाम पर इसे प्राचेतस कहते हैं । यह जब तेज बहता है, तो पेड़ों को तोड़कर रख देता है । सामान्य स्थिति में अङ्कुरों को उद्भिन्न करता है ॥४२७॥

इसका एक काम बड़ा विचित्र है । यह प्राचेतस अग्नि का मित्र है । परिणामतः कभी कभी उसका काम करने लग जाता है । अतः घरों में कभी कभी आग भी लगा देता है ॥४२८॥

प्राचेतस अग्नि ही बडवा है । बडवानल समुद्र में निवास करता है । वहीं सुखी रहता है । भीतर समुद्र में गर्म जल की धारायें बहती हैं और पृथ्वी के वातावरण को भी प्रभावित करती हैं । यह इनका अयत्नोपनत व्यापार है । वहाँ रहकर भी यह बुझती नहीं ।

'नीचवायुरिति स्मृतः' इति केचित्पठन्ति । शतादूर्ध्वमित्यत्रायमाशयः- भूपृष्ठात्पञ्चाशद्योजनोर्ध्वं योजनपञ्चाशति ऋतर्द्धिः, प्रचेताश्च पञ्चाशति[1] ॥४२९॥

विद्युद्वन्तो मूकमेघा वसन्त्यस्मिंश्च मारुते ।

चो ह्यर्थे ।

ते भुवः क्रोशमात्रेण तिष्ठन्तोऽपसृजन्त्यपः ॥४३०॥

योजनानां शतादूर्ध्वं मेघाः सत्त्ववहाः स्मृताः ।

मत्स्यमण्डूककूर्मांश्च वर्षन्त्येते च दुर्दिने ॥४३१॥

यत ईदृशास्ततः सत्त्ववहा इत्यर्थः ॥४३१॥

एतस्मात् सत्त्ववहव्याप्तात्-

[2]योजनानां शतादूर्ध्वं वायुरोधः[3] प्रकीर्तितः ।

तस्मिंस्तु रोगदा मेघा वर्षन्ति च विषोदकम् ॥४३२॥

३-इस तीसरे वायु पथ को सेनानी कहते हैं। ५० योजन ऋतर्द्धि और ५० योजन प्राचेतस मिलाकर १०० योजन के ऊपर यह बहता है ॥४२९॥

इस सेनानी नामक वायुपथ में विद्युत् वाले मूक मेघ रहते हैं । वे पृथ्वी के नजदीक तक उतर आते हैं और क्रोशमात्र ऊपर से ही पानी की वर्षा करने लगते हैं । इसी समय इनको पयोमुच् कहते हैं ॥४३०॥

४-इसके ऊपर सत्त्ववह मेघ रहते हैं । नाम के अनुरूप ये सत्त्व की वर्षा करते हैं । सत्त्व प्राणियों को भी कहते हैं । तदनुरूप कभी कभी बादलों से मेढक आदि जीव भी बरसात में आ जाते हैं । मछलियाँ और कछुवे भी ऊपर से गिरते हैं । वह दिन मेघाच्छन्न दुर्दिन कहलाता है ॥४३१॥

५-इसके ऊपर सौ योजन पर वायुरोध प्रवर्त्तित होता है । इसमें रोगप्रदता का दुर्गुण भरा होता है । कभी ऐसी वर्षा होती है, जिसमें विष भरे कीटाणु होते है । इससे वर्षा जहरीली वर्षा हो जाती है ॥४३२॥

---

१. शदिति क. पाठः ।

२. 'पञ्चाशद्योजनादूर्ध्वं' पुस्तकान्तरे दृष्टः पाठः ।

३. रोगः ख. पाठः ।

तेनोपसर्गा जायन्ते

चो ह्यर्थे । तैश्चोपसर्गैः पीडादिभिः

मारकाः सर्वदेहिनाम् ।

प्रवर्तन्ते । अथ–

तस्मादूर्ध्वं तु तावद्भ्यो देव्यमोघः स्थितो मरुत् ।।४३३।।

तस्मिंस्ते मारका मेघा अमोघे[1] सम्प्रतिष्ठिताः ।

तावद्भ्यः पञ्चाशत इत्यर्थः । तावच्छब्दो व्यवहितपञ्चाशद्योजना-मशर्कः ।

अथ–

वज्राङ्गो नाम वै वायुः पञ्चाशद्योजनस्थितः ।।४३४।।

तस्मिंस्तूपलका नाम मेघास्तूपलवर्षिणः ।

तदुपरि–

तावद्भिर्योजनैरेव ततो वै वैद्युतोऽनिलः ।।४३५।।

मेघाश्च वैद्युतास्तस्मिं[2]न्निवसन्ति तु वैद्युते ।

तावद्भिः पञ्चाशता ।

वैद्युतत्वमेतेषां विद्युत्कारणत्वेनेत्याह–

अशनिर्वायुसङ्क्षोभात्तेष्वसौ जायते महान् ।।४३६।।

अशनिर्विद्युत् । तेषु मेघेषु ।।४३६।।

परिणामस्वरूप नाना प्रकार के उपसर्गों की वर्षा हो जाती है । ये बड़ी पीड़ा पहुँचाने वाले पानी बरसाते हैं । सभी प्राणियों के ये मारक माने जाते हैं । इसके ऊपर 'अमोघ' नामक वायुपथ है ।।४३३।।

ये मारक मेघ अमोघ वायुपथ में ही होते हैं । इसके ऊपर 'वज्राङ्ग' नामक वायुपथ है । यह अमोघ के पचास योजन ऊपर है ।।४३४।।

उसमें 'उपलक' मेघ रहते हैं । और उपलों की वर्षा करते हैं । इसके पचास योजन ऊपर वैद्युत् नामक वायुपथ है । इसके मेघों का नाम भी वैद्युत् ही है ।।४३५।।

विद्युत् वर्षा का इसका स्वभाव होता है । यही बिजली गिराकर भीषण उत्पात करते हैं । इनकी मारक क्षमता में बिजली बसती है ।।४३६।।

---

१. अमेघे ख. पाठः । २. अनलः क. पाठः ।

तदूर्ध्वं योजनानां च पञ्चाशद्रैवतः स्मृतः ।
तस्मिन् पुष्टिवहो नाम पुष्टिं वर्षति देहिनाम् ।।४३७।।

रैवत इति तदाख्यः । पुष्टिवहाख्यो मेघः ।।४३७।।

तदुपरि स्थिते–

संवर्ते रोगदा मेघास्ते रोगोदकवर्षिणः ।
पञ्चाशद्योजने ते वै तस्मिंस्तिष्ठन्ति तोयदाः ।।४३८।।

ततोऽपि–

विषावर्तो नाम वायुः पञ्चाशदुपरि स्थितः ।
तस्मिन् क्रोधोदका नाम मेघा वै सम्प्रतिष्ठिताः ।।४३९।।
ते क्रोधरागबहुलं सङ्ग्रामबहुलं तथा ।
राज्ञां क्षयकरं चैव प्रजानां क्षयदं तथा ।।४४०।।
वर्षं चैवात्र कुर्वन्ति यदा वर्षन्ति ते घनाः ।

के घनाः संवर्ताश्रयस्य पञ्चाशत उपरि पञ्चाशदुपरि । विषावर्तस्य तु मानमग्रे वक्ष्यति । क्रोधसहितो रागः क्रोधरागस्तेन बहुलं पूर्णं तत्सम्पादकमिति यावत् ।

ओघादीन् सप्त वायून् धर्मसाम्येन विशनष्टि–

ओघोऽप्यमेघो[1] वज्राङ्गो वैद्युतो रैवतस्तथा ।।४४१।।

रैवत नामक वायुपथ में इसके उतने ही ऊपर पुष्टिवह नामक मेघ पुष्टि की वर्षा करते हैं । इनसे प्राणियों के शरीर में पुष्टि की प्रक्रिया का प्रभाव बढ़ जाता है ।।४३७।।

संवर्त्त वायुपथ में रोगप्रद मेघ रहते हैं । ये रोगप्रद जल बरसाते हैं । इसके पचास योजन ऊपर 'तोयद' मेघ होते हैं ।।४३८।।

'विषावर्त्त' नामक वायुपथ भी पचास योजन ऊपर है । इसमें क्रोधोदक नामक मेघ क्रोध की वर्षा करते हैं । उस समय लोगों में क्रोध का उद्वेग बढ़ जाता है ।।४३९।।

उसी क्रोध की बहुलता के कारण देशों में लड़ाइयाँ छिड़ जाती हैं । यह मेघ राजाआ और प्रजावर्ग दोनों के लिये भीषण और विनाशकारक होते हैं ।।४४०।।

संवर्त्त और विषावर्त्त मेघ—ये दोनों महाविनाशकारी हैं । इनकी वर्षा में मात्र विनाश की ही वर्षा होती है । उस समय सावधानीपूर्वक अपनी रक्षा करनी

---

१. मोघो क. पाठः ।

संवर्तश्च विषावर्तो वायवो घोरवेगिनः ।

घोरवेगिन इति, घोरो वेगो भूम्ना विद्यते येषाम् ।

एतत्सप्तकं येषामास्पदं तान् क्रमेणाह—

ओघे वसन्ति वै दिव्याः पिशाचाः स्कन्ददेहजाः ।।४४२।।

त्रिंशत्कोटिसहस्राणि स्कन्दस्यानुचराः स्मृताः ।

ते वै दिव्यैश्च कुसुमैरर्चयन्ति हरात्मजम् ।।४४३।।

तदूर्ध्वस्थे-

अमोघे विनायका घोरा महादेवसमुद्भवाः ।

त्रिंशत्कोटिसहस्राणि तस्मिन् वायौ प्रतिष्ठिताः ।।४४४।।

ये हरन्ति कृतं कर्म नराणामकृतात्मनाम् ।

अकृतात्मनामसंयमवताम् ।

वज्राङ्गेऽपि तथा वायौ मातङ्गाः क्रूरकर्मिणः ।।४४५।।

चाहिये । यों यह ध्यान देने की बात है कि, ओघ, अमोघ, वज्राङ्ग, वैद्युत और रैवत, विषावर्त्त और संवर्त्त सभी घोर वेग वाले वायु माने जाते हैं ।।४४१।।

इनमें वसने वालों के विषय में भी जानना चाहिये । इसका क्रम इस प्रकार है–

१.ओघ– इसमें दिव्य, पिशाच और स्कन्द के शरीर से उत्पन्न होने वाले स्कान्द लोग रहते हैं ।।४४२।।

इसमें तीस करोड़ हजार की असंख्य आबादी स्कन्द के अनुचरों की ही रहती है । वे दिव्य कुसुमों से स्कन्द की पूजा करते हैं ।।४४३।।

अमोघ में महादेव समुद्भव विनायक लोग निवास करते हैं । विनायकों को महादेवसमुद्भव विशेषण स्वच्छन्दतन्त्र दे रहा है । जबकि इसी शब्दार्थ का प्रयोग श्री तन्त्रालोक ८/१२७ में 'महादेवजन्मानः' के रूप में किया गया है । इनकी संख्या भी स्कन्द के अनुचरों के समान ही लिखी गयी है । ये अकृतात्मा मनुष्यों के कर्मों का ही हरण कर लेते हैं (श्री० त० ८/१२७) ।।४४४।।

वज्राङ्ग में क्रूरकर्मा मातङ्ग निवास करते हैं । ये घोर काले कलूटे होते हैं । बड़े घोर और 'तापन' नाम से प्रसिद्ध हैं ।।४४५।।

भिन्नाञ्जननिभा घोरास्तापना नाम विश्रुताः ।

तदारोहिणश्च–

विद्याधराणामधमा मनःपवनगामिनः ।।४४६।।

मनःपवनवन्मातङ्गारोहादेव गच्छन्ति तच्छीलाः, अत एवाधमाः । उत्तमास्तु विद्यादिप्रभावेणैव तत्तद्देशप्राप्तिमन्तः ।।४४६।।

किञ्च,

ये विद्यापौरुषे ये च वेतालादीन् श्मशानतः ।
साधयित्वा ततः सिद्धास्तेऽस्मिन् वायौ प्रतिष्ठिताः ।।४४७।।

विद्यापौरुषे शास्त्रविद्यादिस्पर्धायां तथा वेतालादीन् साधयित्वा ये प्रसिद्धा मृता इत्यर्थः ।।४४७।।

वैद्युतेऽप्सरसस्तस्मिन् वासवेन प्रयोजिताः ।
तिष्ठन्ति सर्वदा तत्र पृथिवीपुरपालने ।।४४८।।

पृथिवीपुरपालनं चैतत् तासां यत् तन्निवासिसदाचारजनपदस्य विमानैः स्वभूमिप्रापणम् ।।४४८।।

तदाह–

भृगौ वह्नौ जले वापि सङ्ग्रामेष्वनिवर्तकाः[१] ।
गोग्रहे बन्दिमोक्षे वा म्रियन्ते पुरुषोत्तमाः ।।४४९।।

मन और पवन की तरह मातङ्ग पर आरोह करने वाले अधम विद्याधर होते हैं । उत्तम विद्याधर श्रेणी के लोग विद्या आदि के प्रभाव से मन और पवन की तरह ऐसे देशों में स्वतः यथेच्छ यात्रा के अधिकारी होते हैं ।।४४६।।

जिन्होंने विद्या में अर्थात् शास्त्र की स्पर्धाओं में अपनी उत्तमता की सिद्धि प्राप्त कर ली है और जिन्होंने पुरुषार्थों को वशीभूत कर लिया है, जिन्होंने श्मशानसिद्धि के द्वारा महान् यश अर्जित किया है, ऐसे लोग ही इस वायुपथ में रहने के अधिकारी हो सकते हैं ।।४४७।।

वैद्युत में वही लोग रहते हैं, जो वासव अर्थात् इन्द्र द्वारा रहने को प्रेरित किये जाते हैं । साथ ही इन्द्र प्रेरित अप्सरायें भी वहाँ रहती हैं । यहाँ के सदाचारनिष्ठ निवासी पृथिवी के पुरों के पालन में सदैव तत्पर रहते हैं और विमानों से आते भी रहते हैं ।।४४८।।

---

१. मेध्ल० क. पाठः ।

ते व्रजन्ति ततस्तूर्ध्वं विमानैर्मणिचिह्नितैः ।
पताकादीर्घिकाकीर्णैर्दिव्यघण्टानिनादितैः ॥४५०॥

न निवर्तन्त इत्यनिवर्तकाः, सम्मुखं ये म्रियन्त इत्यर्थः । गवां ग्रहः सिंहादिभिराक्रमणम् । बन्द्यो बलाद्गृहीता हठम्रियमाणाः परयोषितः । एते च सङ्ग्रामादौ मृताः[1] सदाचारत्वात् पुरुषोत्तमाः, न तु पूर्वे-

'असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो नराः' ॥ (ईशा० ३)

इति श्रुतौ तेषामनुत्तमत्वेनोक्तत्वात् । तत इति स्वभूमेः ॥४५०॥

कथं व्रजन्तीत्याह-

स्त्रीसहस्रपरीवारैर्विमानैस्तान्नयन्ति ताः ।

[2]यत इति शेषः । ता इत्यप्सरसः ।

रैवते तु महात्मानः सिद्धा वै सम्प्रतिष्ठिताः ॥४५१॥
गोरोचनाञ्जने भस्मपादुके अजिनादि च ।
साधयित्वा महात्मानः सिद्धास्ते कामरूपिणः ॥४५२॥

सिद्धाः सम्पन्नाः ॥४५२॥

भृगुमृत, प्रपात में मृत अग्निमृत अर्थात् यज्ञ की दृष्टि से यज्ञ में प्राण-त्याग के निश्चयी जलसमाधि के द्वारा मृत और संग्रामों में सामने शस्त्रों से मृत लोग तत्काल मुक्त हो जाते हैं । ये लोग विमानों से स्वर्ग की यात्रा करते हैं । गोग्रह अथवा बन्दी स्थिति में मरना भी उत्तम है । ऐसे उत्तम लोग इस वैद्युत वायुपथ में रहते हैं और मणियों से सँवरे विमान में पताका और दीर्घिकाओं से युक्त, घण्टाध्वनि के साथ उत्तम वैद्युत में आते हैं । ये सभी पुरुषोत्तम माने जाते हैं ॥४४९-४५०॥

ईशावास्य श्रुति के अनुसार असूर्य लोकों में आत्मघाती लोग जाते हैं । वे अधम होते हैं । यहाँ वैसे लोग नहीं आ सकते । वरन् उत्तमकोटि के लोगों को इन्द्र प्रेरित अप्सरायें ही यहाँ ले आती हैं । रैवत में सिद्ध और संप्रतिष्ठित लोग ही आते हैं ॥४५१॥

रैवत में वे लोग ही रहने के अधिकारी हैं, जो गोरोचन, अञ्जन, भस्म और पादुका तथा मृगचर्म के साधनों से सिद्ध महात्मा की पदवी प्राप्त कर चुके हैं और यच्थेच्छ रूप धारण कर सकते हैं ॥४५२॥

---

१. तत्त्वात् क. पाठः । २. यः क. पाठः ।

ततश्चात्र–

ते वसन्ति महात्मानो दिव्यां सिद्धिमवस्थिताः ।

वज्राङ्गस्थत्वेन तद्रूपत्वाद् विद्याधराधमा उक्ताः ।

संवर्तेऽपि महावायौ विद्याधरगणाः स्मृताः ।।४५३।।

दश त्रिंशच्च कोट्यस्ते दिव्याभरणभूषिताः ।

दिव्यगन्धानुलिप्तास्ते दिव्यस्त्रग्धामभूषिताः ।।४५४।।

दश ये गणाः सङ्क्षेपतस्त एव विस्तरतस्त्रिंशत्कोटय इत्यत्रार्थः । एते च विद्याधरा देवयोनिभेदा एव, न तु मनुष्याः सन्तः खड्गादिसिद्ध्या सिद्धाः । अथैतदुपरि

आग्नेया धूमजा मेघाः शीतदुर्दिनदाः स्मृताः ।

विषावर्तं नावमिव ते वायुं यान्ति मिश्रिताः[1] ।।४५५।।

तत्र गान्धर्वकुशला गन्धर्वसहधर्मिणः ।

वंशवीणाविधिज्ञाश्च पक्षिणः कामरूपिणः ।।४५६।।

गन्धर्वसहधर्मिता गान्धर्वेण महेश्वराराधकत्वम् ।।४५६।।

ब्रह्मजा नाम वै मेघा ब्रह्मनिःश्वाससम्भवाः ।

उपरिष्टाद्योजनशताद्दुर्जयस्योपरि स्थिताः ।।४५७।।

विषावर्ताख्यवायुव्याप्तयोजनशतोपरिष्टाद् यो दुर्जयो नाम वायुः, तस्योपरि ब्रह्मजा मेघाः स्थिता इति सङ्गतिः ।।४५७।।

दिव्यसिद्धि प्राप्त करने वाले लोग ही यहाँ रहते हैं । संवर्त्त वायुपथ में भी विद्याधरों में उत्तम लोग ही निवास करने के अधिकारी हैं ।।४५३।।

इसके ऊपर विषावर्त्त है । इसमें दिव्यगन्धी ४० करोड़ लोग रहते हैं । इसके ऊपर विषावर्त है । इसमें आग्नेय धूमज मेघ, शीत और दुर्दिन लाने वाले बादल तैरते रहते हैं । इसमें वायु में नाव की तरह यात्रा हवा में तैर कर ही कर लेते हैं ।।४५४-४५५।।

इसमें गान्धर्व विद्या में कुशल गन्धर्वों के सहधर्मी लोग मुरलीवादन और वीणावादन में निपुण और सप्तस्वरविधि विशेषज्ञ होते हैं । ये भी इच्छा रूप धारी होते हैं ।।४५६।।

ब्रह्मा के निःश्वास से उत्पन्न ब्रह्मज नामक मेघ दुर्जय नामक वायुपथ से सौ योजन ऊपर रहते हैं ।।४५७।।

---

१. संश्रिता इति पुस्तकान्तरपाठः ।

किञ्च,

तत्र वै दुर्जया नाम इन्द्रस्य परिरक्षकाः ।

पुरावहाभिधं वायुं ते समाश्रित्य संस्थिताः ।।४५८।।

महावीर्यबलोपेता दश कोट्यः प्रकीर्तिताः ।

तत्रेति दुर्जयसमीपे परावहाभिधं वायुं समाश्रित्येति सङ्गतिः ।

अतोऽप्यूर्ध्वम्–

पुष्करावर्तका नाम मेघा वै पद्मजोद्भवाः ।।४५९।।

तथा–

शक्रेण पक्षा ये च्छिन्नाः पर्वतानां महात्मनाम् ।

परावहस्तान् वहति मनुजानिव वारणः ।।४६०।।

तानिति पुष्करावर्तकान् पर्वतपक्षांश्च परावहाख्यो वायुर्वहति ।।४६०।।

किञ्च,

तस्मिन् वायुगमा नाम गन्धर्वा गगनालयाः ।

एकादश तु वै कोट्यस्तेषां तु समुदाहृताः ।।४६१।।

तथा–

जीमूता नाम ये मेघा देवेभ्यो जीवसम्भवाः ।

द्वितीयमावहं वायुं मेघास्ते च समाश्रिताः ।।४६२।।

दुर्जय में इसी नाम के इन्द्र के परिरक्षक रहते हैं । वहाँ आवह और परावह वायुपथ में वे रहते हैं ।।४५८।।

वे बड़े बलशाली और संख्या में दश करोड़ हैं । इससे ऊपर पुष्करा-वर्त्तक मेघ हैं । ये भी ब्रह्मा से ही उत्पन्न हैं ।।४५९।।

जिन पर्वतों की पाँखें काट डाली गयी थीं, वे परावह में उसी तरह चलते हैं, जैसे हाथी पर मनुष्य चलते हैं ।।४६०।।

उसमें वायुपथ नामक गन्धर्व रहते हैं । वे गगनविहारी होते हैं । इनकी संख्या ११ करोड़ है ।।४६१।।

जीमूत नामक ऐसे मेघ जिनको देवों से ही जीवन मिलता है । यहाँ परावह के बाद आवह की गणना की गयी है । ये जीमूत मेघ आवह में ही रहते हैं ।।४६२।।

तस्मिञ्जीमूतका नाम विद्याधरगणा दश ।

जीवसमुद्भवा इति जीवः श्वासः, तत उद्भवाः । द्वितीयमावहमिति पुष्करावर्तकाश्रयं परावहमित्यर्थः, न तु प्रथमं दुर्जयानामाधारम् ।

अथ–

आवहस्तु[1] ततो वायुर्यत्र द्रोणाः समाश्रिताः ॥४६३॥

तस्मिन् द्रोणाः समाख्याता मेघानां परिरक्षकाः ।

द्रोणा नाम मेघविशेषा अधोवर्तिमेघानामयथाकारित्वं रक्षन्ते ।

यतः–

हितार्थं तु प्रजानां वै निर्मितास्ते मया पुरा ॥४६४॥

मयेति कैलासस्थेन—इति तत्र प्रवक्तुरुक्तिः ।

हितमधोवर्तिमेघेभ्य उपद्रवपरिरक्षा ॥४६४॥

अथैषाम्–

उपरिष्टात्कपालोत्थाः संवर्ता नाम वै घनाः ।

महापरिवहो नाम वायुस्तेषां समाश्रयः ॥४६५॥

कपालोत्था इति ममैवेत्यर्थात् ॥४६५॥

उपसंहरति–

आद्ये वायुपथे ह्येवं मेघा वै वायुभिः सह ।

सिद्धाश्च पतयश्चैव कथिता मेघचारिणः ॥४६६॥

दशसहस्रोन्मानो योऽयमाद्यो वायुपथस्तस्य भुव ऊर्ध्वं शून्यं पञ्चाशद्योजनानि, तदूर्ध्वमृतर्द्धिः, प्राचेतसः, सेनानीः, सत्त्ववहः, ओघः, अमोघः, वज्राङ्गः,

---

इसी नाम के विद्याधर भी इसी में रहते हैं । इसके बाद का वायुपथ भी आवह नहीं महावह है । इसमें द्रोण रहते हैं । ये मेघों के परिरक्षक माने जाते हैं ॥४६३॥

ये द्रोण भी एक प्रकार के मेघों के रक्षक मेघ ही हैं । ये प्रजाओं की रक्षा के लिये पहले ही भगवान् द्वारा ही बनाये गये थे ॥४६४॥

आद्य वायुपथ में इन मारुतों के साथ मेघ रहते हैं । इसी वायुपथ में जो दश हजार योजन मान वाला भूमि के ऊर्ध्व में शून्य पचास योजन, उसके ऊपर ऋतर्द्धि, प्राचेतस, सेनानी, सत्त्ववह, ओघ, अमोघ, वज्राङ्ग, वैद्युत, रैवत, संवर्त्त और विषावर्त्त ये सभी ग्यारह वायुपथ गिनाये गये हैं । इनमें सेनानी और

---

१. महावहस्त इति पुस्तकान्तरपाठः ।

वैद्युतः, रैवतः, संवर्तः, विषावर्त इति । एत एकादश ये वायवस्तेषां मध्यात्सेनानीः सत्त्ववहश्च शते शते योजनानां स्थितः, शेषाः प्रत्येकं पञ्चाशद्योजनावस्थितय इति कलनया भूपृष्ठाद्विषावर्तान्ते योजनसप्तशती । तदुपरि सहस्रनवके शतत्रये च दुर्जयपरावहद्वयावहामहावहपरिवहाख्याः पञ्च वायवः स्थिता इति ॥४६६॥

आद्यं वायुपथं वितत्योक्त्वा, अन्यान् सङ्क्षेपेण विभजते–

द्वितीये वायुपथे ज्ञेया अग्निकन्याश्च मातरः ।
ता वसन्ति गुणोपेता रुद्रशक्त्या त्वधिष्ठिताः ॥४६७॥

मातरोऽपरेण रूपेण ब्राह्म्याद्याः । गुणेन सर्वज्ञत्वादिनोपेता यतो रुद्रशक्त्यधिष्ठिताः ॥४६७॥

अथ–

तृतीये वायुपथे चैव वसन्ते सिद्धचारणाः ।
स्वकर्मभोगसंसिद्धाः सर्वसिद्धैरधिष्ठिताः ॥४६८॥

स्वं प्राक्तनं शुभं कर्म, भोगस्तत्तत्पदोचितसुखात्मकः, तद्वशेन संसिद्धाः प्राप्ततत्पदाः । सर्वसिद्धैरप्यन्यैरपि तत्तत्पदोचितयोगसिद्धैरधिष्ठिता आसादिताः ॥४६८॥

तदुपरि–

चतुर्थे पथि चैवात्र वसन्त्यायुधदेवताः ।
नाराचचक्रचापर्ष्टिशूलशक्तीषुमुद्गराः ॥४६९॥

सत्त्ववह सौ सौ योजन पर अवस्थित हैं । शेष सभी पचास पचास योजन पर स्थित हैं । इस दृष्टि से भूपृष्ठ से विषावर्त्त पर्यन्त ७०० सौ योजन मान हो जाता है । इसके ऊपर नौ हजार तीन सौ योजन पर दुर्जय और परावह, आवह, महावह और परिवह ये पाँच वायुपथ अवस्थित हैं । ये सभी आद्य वायुपथ के वायु हैं ॥४६५-४६६॥

दूसरे वायुपथ में अग्निकन्यायें और मातृशक्तियाँ रहती हैं । ये रुद्रशक्ति से अधिष्ठित और अन्यन्त गुणवती होती हैं ॥४६७॥

तीसरे वायुपथ में सिद्ध और चारण लोग रहते हैं । ये अपने कर्मभोगों को सिद्ध कर यहाँ पहुँचे हैं । सभी सिद्धों से अधिष्ठित होते हैं । स्वयम् अपने प्राक्तन कर्मों के भोगों को भोग कर ही यहाँ तक पहुँच पाये हैं ॥४६८॥

चतुर्थ वायुपथ में शस्त्रों के देवता निवास करते हैं । इनमें नाराच, चक्र, चाप, ऋष्टि, शूल, शक्ति और मुद्गरों के अधिष्ठातादेव हैं ।

ऋष्टिरायुधविशेषः । एते च खड्गखट्वाङ्गदीनपि उपलक्षयन्ति । आयुधानामेव च तद्देवतानाम ॥४६९॥

अथ–

पञ्चमे पथि देवेशि वसन्त्यैरावतादयः ।
ऐरावतोऽञ्जनश्चैव वामनश्च महागजः ॥४७०॥
सुप्रतीको गजेन्द्रश्च पुष्पदन्तस्तथैव च ।
कुमुदः पुण्डरीकश्च सार्वभौमोऽपि चाष्टमः ॥४७१॥

वामनस्य विशेषणं महागज इति । तथा सुप्रतीकस्य करीन्द्र इति ॥४७१॥

त एते–

दिग्गजा इति विख्याताः स्वासु दिक्षु व्यवस्थिताः ।

व्यवस्थिता इति पूर्वादिक्रमेण नभस्येव । ततोऽपि

षष्ठे वायुपथे देवि पक्षिराजो महाबलः ॥४७२॥
गरुत्मानिति विख्यातो दुर्जयोऽतीव वीर्यमान् ।
सप्तमे व्योमगङ्गा तु नानाजलचरानुगा ॥४७३॥
दिव्यामृतजला पुण्या त्रिधा सा परिकीर्तिता ।

दिव्यममृततुल्यं जलं यस्याः सा । त्रिधेति सत्यलोकस्वर्लोकभुवर्लोकस्थित्या ।

सा भ्रान्ता नभसो मध्ये समन्तात्परिमण्डला ॥४७४॥

इनके अतिरिक्त सभी अस्त्र-शस्त्रों के देवता भी रहते हैं । उक्त नाम तो उपलक्षणमात्र हैं । इन आयुधों पर ही देवों के नाम जानने चाहिये ॥४६९॥

पाँचवें वायुपथ में ऐरावत आदि गजेन्द्र ही रहते हैं । इनमें ऐरावत, अञ्जन, वामन नामक महागजेन्द्र, सुप्रतीक, पुष्पदन्त, कुमुद, पुण्डरीक और सार्वभौम ये आठ गजेन्द्र मुख्य हैं ॥४७०-४७१॥

यही दिग्गज कहलाते हैं । अपनी अपनी दिशाओं की रक्षा में संलग्न रहते हैं । इसी क्रम में छठा वायुपथ भी आता है । इसमें महाबलशाली पक्षिराज गरुड रहते हैं ॥४७२॥

उन्हें गरुत्मान् भी कहते हैं । ये बड़े विख्यात, दुर्जय और प्रतापवान् हैं।

सातवें वायुपथ में आकाशगङ्गा रहती हैं । इसमें नाना प्रकार के जलचरों की कल्पना की गयी है ॥४७३॥

ये आकाशगङ्गायें दिव्य अमृतमय जल से परिपूर्ण हैं । बड़ी पवित्र हैं और सत्य, स्वर् और भुवर्लोकों में अवस्थित हैं । यह व्योमगङ्गा आकाश के मध्य में

आकाशगङ्गा प्रथिता देवानां सततोत्सवा ।
पुष्पमालेव सा भाति नभसः शिरसि स्थिता ।।४७५।।
तत्र सिद्धैर्महाभागैर्विद्याधरगणैस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च साध्यैर्विश्वैर्मरुद्गणैः ।।४७६।।
रुद्रैर्वसुभिरादित्यैः पितृदेवमहर्षिभिः ।
रक्षोभिर्गुह्यकैश्चैव दिव्यस्तुतिपरायणैः ।।४७७।।
स्तुवद्भिश्च जपद्भिश्च गायद्भिश्च महात्मभिः ।
नृत्यद्भिर्वल्गमानैश्च दिव्यदुन्दुभिनिःस्वनैः ।।४७८।।
भेरीमृदङ्गवाद्यैश्च वल्लकीनां च निःस्वनैः ।
वंशवादित्रनादैश्च मनोवायुसमीरितैः ।।४७९।।

तत्र सिद्धैरिति सिद्धादिभिरुपलक्षिता । रुद्रादीनां त्रयाणां विशेषणं पितृदेवैरिति । स्तुवद्भिश्चेत्यादिभिर्विशेषणैः पूर्वे यथायोगं विशेष्याः । दिव्यदुन्दुभिनिःस्वनैरित्याद्या नृत्तं वल्गनं च प्रति हेतुतृतीयाः । मनोऽधिष्ठितेन वायुनेति प्राणेन समीरितैः पूरितैरिति योज्यम् ।।४७९।।

अवस्थित अपनी परिमण्डलीय धाराओं के पथ पर ही प्रवाहित हैं ।।४७४।।

आकाश गङ्गा के विषय में आज के वैज्ञानिक कुछ भी सोचते हों । उस समय के खगोलविदों का यह विचार था कि, ये देवताओं के सतत उत्सवों से शोभमान रहती हैं । ये आकाश के शिरो भाग पर लिपटी मालाओं की तरह लालित्यपूर्ण लगती हैं ।।४७५।।

वहाँ सिद्ध, विद्याधर, महाभाग्यशाली आत्माओं की मण्डली, गन्धर्वों, साध्यों, विश्वव्यापक मरुद्गणों और अप्सराओं से सुशोभित हैं ।।४७६।।

रुद्र, वसु और आदित्य रूप पितृदेवों से ये अधिष्ठित हैं । महर्षिगण, राक्षस, गुह्यकों से समन्वित हैं । ये सभी परमेश्वर की स्तुति में लगे रहते हैं ।।४७७।।

स्तुति, जप, गायन में लगे रहने वाले भक्त महात्माओं से ये समन्वित हैं । यहाँ नृत्याङ्गनाओं और नर्त्तकों के दल निवास करते हैं । दिव्य दुन्दुभियाँ यहाँ नित्य बजती हैं । सारा वातावरण मनोरम है ।।४७८।।

भेरी मृदङ्गादि वाद्यों की ध्वनि यहाँ सदा सुनायी पड़ती हैं । वल्लकी की ध्वनि से आकाश गुंजित रहता है । बांसुरी की प्यारी ध्वनि मन मोह लेती है और हवा में तैरती रहती है ।।४७९।।

किञ्च,

वैदूर्यनालैः कमलैर्हेमपत्रैः सुगन्धिभिः ।
केसरैः पद्मरागैश्च महाचक्रप्रमाणकैः ।।४८०।।
नृत्यन्तीव सरिच्छ्रेष्ठा विमानशतमण्डिता ।
मण्डिता च वनैर्दिव्यैर्धर्माधारा महानदी ।।४८१।।

केसरैः पद्मरागैरिति पद्मरागात्मककेसरयुक्तैः पद्मैरित्यर्थः । धर्म आ समन्ताद्धार्यते दर्शनस्पर्शनादिना सम्पाद्यते यया ।।४८१।।

युक्तं चैतद् यतः–

मम नेत्राद्विनिष्क्रान्ता क्रियाशक्तिः परा हि सा ।

एतत्पूर्वमेव निर्णीतम् । सैषा–

महामन्दाकिनी देवी त्रिदशैः पर्युपासिता ।।४८२।।
महाविमानकोटीभिर्निरन्तरमवस्थितैः ।
शोभितासौ भगवती नित्यमास्ते नभस्तले ।।४८३।।

महत्त्वं प्रभावातिशयादस्याः । अवस्थितैरिति त्रिदशविशेषणम् ।।४८३।।

उनमें सुगन्धित कमल खिलते हैं । उनके नाल वैदूर्यमय हैं, उनके पत्र सोने से बने होते हैं । उनमें सुन्दर केसर हैं । पराग में पद्मराग की शोभा रहती है । उनके आकार महचक्रवत् आँखों को आकृष्ट करते हैं ।।४८०।।

प्रतीत होता है–कलकल प्रवाहमयी यह व्योमगङ्गा नर्त्तन में निरत है । देववर्ग अपने शत-शत विमानों से इसे मण्डित करता है । इसका पूरा क्षेत्र अन्तरिक्ष उद्भूत वनों-उपवनों से रमणीय है । यह व्योमगङ्गा की आकाशीय शुभ्र सरिता सभी संपाद्यमान धर्मों का आधार है ।।४८१।।

भगवान् कह रहे हैं कि, यह मेरे नेत्रों से विनिःसृत देवसरित् मेरी क्रिया शक्ति का प्रतिरूप है । इसे महामन्दाकिनी की संज्ञा से विभूषित करते हैं । इसकी उपासना देववर्ग भी करता है ।।४८२।।

इसके तटीय भागों पर देवों के करोड़ों विमान हवा में कलाबाजियाँ दिखलाते हैं । ऐसी यह ऐश्वर्यशालिनी महादेवी आकाश में शाश्वत भाव से प्रवहमान है ।।४८३।।

तत्रैषा मेरुशिरसि मम वै मस्तकाच्च्युता ।

पपात धरणीपृष्ठे लोकानां हितकाम्यया ।।४८४।।

एषा गङ्गा पूर्ववर्णितयुक्त्या देवैरभ्यर्थितेन मया मर्त्यलोकपावनाय समाहूय विसृष्टा सती मेरुशिरःस्थितस्य मम मस्तकं प्राप्य, ततश्च्युता मेरुशिरसि स्थिता, पश्चाद् धरणीपृष्ठे पपातेति सङ्गतिः । उक्तं च प्राक्–

'आगत्य मम मूर्धानं मेरुमूर्ध्नि पुनर्गता ।

तस्मान्निर्गत्य देवेशि चतुर्दिक्षूदधिं गता' ॥ (१०/१८१)

इति ॥४८४॥

किञ्च, मदीयनियतिशक्तिनियन्त्रणतः–

अक्षोभ्या साप्यसौ गङ्गा तिष्ठत्यनिलधारिता ।

अन्यथा कथमनिलेन न क्षोभ्येत कथं वाह्येत ?

योजनानां शतं पूर्वं विस्तारोऽस्याः प्रकीर्तितः ।।४८५।।

परिणाहस्ततः कोट्यः

तत इति तस्मिन्नाकाशे । कोट्य इति बह्व्यः कोटय इत्यर्थः ।

एषा चात्र

महावेगवती शुभा ।

सा भ्रमन्तीव सन्तिष्ठेत्समन्तात्परिमण्डला ।।४८६।।

परिमण्डलेति ब्रह्माण्डान्तराकाशस्य तथात्वात् ॥४८६॥

यह महादेवी मेरे मस्तक भाग से मेरु पर्वत के शिखर पर गिरकर वहाँ से पृथ्वीतल पर प्रवाहित हो सकी । १०/१८१ में भी इसका वर्णन है । वहीं द्रष्टव्य है । इसका एक मात्र उद्देश्य लोकमङ्गल की लालसा है ॥४८४॥

यह अक्षोभ्य नदी मेरी नियति शक्ति से नियन्त्रित है । वायु से विक्षुब्ध नहीं । यह स्वयम् अनिलधारिता है । इसका सौ योजन का विस्तार शास्त्रों में वर्णित है ॥४८५॥

इसका परिणाह करोड़ों योजन में कल्पित है । यह अत्यन्त शुभ कल्याणकारिणी नदी गतिशील भी है और स्थित भी प्रतीत होती है । अपनी आकाशीय परिमण्डलीय आकृति में यह नित्य वर्त्तमान है ॥४८६॥

ध्रुवमापूर्य सा देवी त्वत्यद्भुतमवस्थिता ।

ध्रुवमिति तन्त्राभिनिबद्धभचक्रमित्यर्थः । देवी द्योतमाना । अत्यद्भुतं कृत्वा-वस्थिता ।

किञ्च,

दिव्यामृतवहा पुण्या सर्वपापप्रणाशिनी ।।४८७।।

दिवि भवं दिव्यं लोकोत्तरममृतं जलं वहति ॥४८७॥

अथ–

अष्टमे वृषराजस्तु सपत्नीकः सनन्दनः ।
वसति त्वप्रतीघातः प्रत्यक्षो धर्म एव सः ।।४८८।।

वृषराज इति महेश्वरस्य वाहनम् । अप्रतीघातः स्वेच्छाविहारी । धर्म इति–

'वृषो धर्मः स देवस्य गुणो ज्ञानक्रियात्मकः ।
धत्ते स चिदचिद्यस्माद्धर्मस्तेनोच्यते बुधैः' ॥

इति श्रीमन्मयसङ्ग्रहोक्तसतत्त्वः ॥४८८॥

नवमे पथि चात्रास्ते दक्षो नाम प्रजापतिः ।
ब्रह्मैव साक्षाद्वसति ब्रह्मशक्त्या त्वधिष्ठितः ।।४८९।।

ब्रह्मणः शक्तिर्निर्मातृरूपा ॥४८९॥

अपने नाभिकेन्द्र में नक्षत्रचक्रीय ध्रुव को धारण करती हुई यह दिव्य नदी हे देवि ! तुम्हारी शक्ति के विश्व प्रसर में ही विराजमान है । इस तरह यह अत्यन्त अद्भुत है । यह जल नहीं दिव्य अमृत की प्रवाह वाली है । पवित्र है और समस्त पापों का प्रणाश करने में यह सर्वथा समर्थ है ॥४८७॥

अष्टम वायुपथ में मेरा वाहन वृषराज नन्दी निवास करता है । अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ वहीं विहार करने वाला मेरा वाहन साक्षात् धर्म का ही स्व-रूप है । वह निर्विघ्न वहाँ रहता है । स्वेच्छा विहार में समर्थ है ।

इस विषय में श्रीमन्मयसङ्ग्रह की एक उक्ति द्रष्टव्य है–उसके अनुसार वृष प्रत्यक्ष धर्म है । यह देव महेश्वर का ज्ञान क्रियात्मक गुण है । वह चित् और अचित् सबका धारक है । इसी आधार पर सुबुद्ध लोग उसे धर्म कहते हैं ॥४८८॥

नवम वायुपथ में दक्ष प्रजापति रहते हैं । वे साक्षात् ब्रह्मा ही हैं और ब्रह्मशक्ति से अधिष्ठित हैं ॥४८९॥

दशमे वायुपथे देवि वसुरुद्रदिवाकराः ।

एते च पूर्वं गङ्गासेवार्थमितोऽवतीर्णा वर्णिताः ।

तत्र प्राधान्यादादौ रुद्रान्नामतो दर्शयति–

अत्र चाङ्गारकः सर्पिनैर्ऋतः सदसत्पतिः ।।४९०।।
बुधश्च धूमकेतुश्च विख्यातश्च ज्वरस्तथा ।
अजश्च भुवनेशश्च मृत्युः कापालिकस्तथा ।।४९१।।
एकादश स्मृता रुद्राः सर्वकामफलोदयाः ।

सदसत्पतिरिति यः क्वचिदुक्तः । ज्वरो विख्यातः त्रिजगत्प्रसिद्धः । सर्वेषां कामफलानामुदयो येभ्य इति समासः । तदित्थम्–

धाता ध्रुवश्च सोमश्च वरुणश्चानिलोऽनलः ।।४९२।।
प्रत्यूषश्च प्रदोषश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।

तदित्थम्–

वसवः कथिता ह्येते आदित्यांश्च निबोध मे ।।४९३।।
अर्यमा इन्द्रवरुणौ पूषा विष्णुर्गभस्तिमान् ।
मित्रश्चैव समाख्यातस्त्वजघन्यो जघन्यकः ।।४९४।।

दशवें वायुपथ में वसु, रुद्र और दिवाकर गङ्गा की सेवा के लिये ही रहते हैं ।

रुद्रों में अङ्गारक, सर्पि, नैर्ऋत और सदसत्पति भी वहीं रहते हैं ।।४९०।।

इनके अतिरिक्त बुध, धूमकेतु, विख्यात, ज्वर, अज, भुवनेश, मृत्यु, कापालिक, रुद्र भी इसी में रहते हैं ।।४९१।।

ये संख्या में ग्यारह हैं । इन रुद्रों से सबकी इच्छाओं की पूर्त्ति होती है । ज्वर क्रूर है और जगत्प्रसिद्ध है ।

इसमें वसु भी रहते हैं । ये आठ होते हैं । इनमें धाता, ध्रुव, सोम, वरुण, अनिल और अनल विशेष प्रसिद्ध हैं ।।४९२।।

इनके अतिरिक्त प्रत्यूष, प्रदोष भी वसु नामधेय ही हैं ।

इस प्रकार आठ वसुओं की गणना और उल्लेख के बाद यहाँ आदित्यों का भी उल्लेख कर रहे हैं ।।४९३।।

१.अर्यमा, २.इन्द्र, ३.वरुण, ४.पूषा, ५.विष्णु, ६.गभस्तिमान्, ७.मित्र, ८.अजघन्य और नवें जघन्यक ।।४९४।।

विवस्वांश्चैव पर्जन्यो धाता वै द्वादशः स्मृतः ।
काश्यपेयान् विदुस्त्वेतान्

कश्यपस्यामी काश्यपेयाः कश्यपापत्यानीत्यर्थः ।

तेषां तेजोनिधेरथ ।।४९५।।

अमृतोद्भवो रथो दिव्यः सर्वदेवसमन्वितः ।

तेषां वसुरुद्रादित्यानां मध्यात् तेजोनिधेरादित्यस्य क्षीरोदोद्भवो रथस्तस्यैव तदारूढस्य जगत्प्रकाशाय नियुक्तत्वात् । तेजोनिधेश्चिदर्कस्य परशक्त्यमृतोत्थितः पूर्वोक्तदृशा सर्वदेवमयः प्राणरूपो रथ इत्यपि सूचितम् ।

अनेन यदुक्तं सर्वदेवमय इति, तद्विभजते–

यज्ञश्चक्रं रथे तस्मिन् सर्वज्ञानमयी च धूः ।।४९६।।
सप्ताश्वाश्च स्वराः सप्त वेदहूङ्कारनिःस्वनाः ।
नागा योक्त्राणि तेषां वै अरुणश्चैव सारथिः ।।४९७।।
सत्यं च मञ्चकं तस्य वायुर्वेगो रथस्य तु ।

इनके अतिरिक्त १०.विवस्वान्, ११.पर्जन्य और १२.धाता ये १२ आदित्य हैं ।

यह कश्यप के अपत्य काश्यपेय ही हैं । सभी रुद्र, वसु और आदित्य कश्यप के ही हृदयांश हैं । इनमें तेज का कोष तो आदित्य ही है ।।४९५।।

उस आदित्य का रथ क्षीरसमुद्र से निकला है । इसी पर आदित्य चलते हैं । जगत्प्रकाश के लिये आदित्य ही नियुक्त हैं । तेजोनिधि कहने का यह तात्पर्य भी है कि, चित् शक्ति के प्रतीक हैं । पराशक्ति रूप संवित् से समुत्थित हैं । सर्वदेवमय होने का तात्पर्य प्राणरूप होना भी है ।

उक्त रथ के विषय में कल्पना कर रहे हैं कि, जिस पर सूर्य चलते हैं, उस रथ का चक्र गीता के अनुसार सर्वयज्ञमय ब्रह्म है और वह यज्ञ में ही प्रतिष्ठित है । इस तरह सूर्य के रथ का चक्र स्वयं यज्ञ है । इसीलिए इस रथ में एक ही चक्र होता है । उस रथ की धुरा भी सर्वज्ञानमयी वागीश्वरी शक्ति ही है ।।४९६।।

वाग्देवी के सात स्वर ही रथ के अश्व हैं । ये अश्व ह्रेषा करते हैं, हिन-हिनाते हैं । यह इनका वेद का हूंकार रूप निःस्वन है । वही सात सरगम के स्वर हैं ।

यज्ञः क्रियाशक्त्यात्मा देवता अस्य रथस्य चक्रं तद्वशादूर्ध्वाधरस्थसर्व-लोकयात्रासम्पत्तेः । यदुक्तं गीतासु–

'तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्' । इति । (भ०गी०)

विश्वान्य[1]जतीत्याम्नातत्वात् सर्वशास्त्रज्ञानमयी वागीश्वरी अस्य धूः, यत्र लग्ना अश्वा वहन्ति । ते च समस्तवाचकात्मकवेदप्रधानभूतहूङ्काररूपहेषाशब्द-व्यञ्जकाः षड्जाद्याः सप्त स्वराः । एवं च नदन्नादा[2]मर्शोत्थिततत्वं[3] ज्ञानक्रियादेवता-काण्डरूपत्वात्परापरतदुभयसिद्धिमयत्वं च ऊर्ध्वाधरशक्तिसम्बन्धेन वेदानां प्रतिमन्त्र-मुद्रास्थानीयत्वेन दर्शयति । **योक्त्राणि बन्धनरज्जवः ।** नागा अनन्ताद्याः । तेषां षड्जादीनाम् । न अगाः सततगतिशीलाः सङ्कल्पा नियोक्तारः । अरुणोऽनूरुर्दीप्तोऽहङ्कारश्च । सत्यं च ऋतम् । मञ्चकमासनम् । प्रतिप्रकाशमाने विश्वेऽत्र साध्वाधारतया स्थितं सत्त्वात्मकं बुद्धितत्त्वम् । रथस्य वेगो वाय्वाख्या देवता । प्राणनात्मन आन्तरस्य च रथस्य प्राणापानादिरूपो वाय्वात्मैव वेगः । तदेव-मीदृग्रथारूढस्य–

नवयोजनसाहस्रो विग्रहो भास्करस्य तु ।।४९८।।

इस कथन से वेदों के नादात्मक आमर्श से सूर्य का अभ्युत्थान, ज्ञानकाण्ड, क्रियाकाण्ड और देवता काण्ड रूप परा, परापरा और अपरा शक्तियों का सिद्धिमयत्व तथा मुद्राओं के रूप प्रतिमन्त्र जो ऊर्ध्व अधर हस्त प्रदर्शन है, उसका स्वरूप सब सूर्य शक्ति के प्रभाव के रूप में ही प्रदर्शित प्रतीत हो रहा है ।

इसके योक्त्र अर्थात् बन्धन के मोटे रस्से नाग है । अनन्त आदि नाग भी प्रसिद्ध हैं । न+अग का अर्थ सतत गतिशील संकल्प भी होता है । अतः संकल्प ही नियोक्ता हैं–यह अर्थ भी होता है । साथ ही उन स्वर रूप अश्वों का सामर्थ्य भी अरुण अहंभाव है । इस दृष्टि से सूर्य और सूर्य रथ की मर्मज्ञता पर सबका ध्यान जाना चाहिये ।।४९७।।

उस रथ का मञ्च जिस पर सूर्य आसीन होते हैं–वह सत्य है । सत्य दो प्रकार का होता है–१.सत्य और २.ऋत । ये दोनों सूर्य के आसन के गद्दे हैं । रथ का वेग वायु देव हैं । वायु प्राणापानवाहमय होता है । इसमें भी वेद है । वह वायु का ही वेग हैं । ऐसे रथ पर सवार भास्कर का नौ हजार योजन का शरीर है ।।४९८।।

---

१. यजेत्या० क. पाठः । २. नर्मा० क. पाठः ।

३. स्थिततत्त्वं क. पाठः ।

त्रिगुणं मण्डलं तस्य त्रैलोक्ये भाति भास्वरम् ।

जीवादित्यस्यापि नवतालो विग्रहः । मण्डलं च प्रकाशात्मकं त्रिभिः सत्त्वादिभिर्गुणैरुपेतम् ।

स चायमसामान्य इत्याह–

ज्ञानशक्तिः पर ह्येषा तपत्यादित्यविग्रहा ।।४९९।।

सर्वशक्तेर्महेश्वरस्य विश्वप्रकाशिका ज्ञानशक्तिर्जीवादित्यबाह्यादित्यरूपतया स्थितेत्यर्थः । इत्थं पारमेशज्ञानशक्त्यात्मका **द्वादशादित्याः–**

मासवारप्रयोगेण सञ्चरन्ति शिवेच्छया ।

मासेन वारः, स एव प्रयोगो नियोगः । जीवादित्यस्य मासादिविभागः प्रागेव निर्णीतः । द्वादशधात्वं चास्य बुद्धिभेदात् । शिवेच्छयेति नात्रान्यस्येच्छा प्रभवतीत्यर्थः । अतश्च–

अहोरात्रं भ्रमन्त्येते भुवर्लोकं[1] समन्ततः ।।५००।।

एतच्च[2]–

'उदयो योऽमरावत्या.....................'।

उसका मण्डल इनके शरीर से तिगुना है । अर्थात् २७ हजार योजन का है । सत्त्व, रज, तम तीन गुणों से अन्वित मण्डल का अर्थ भी लिखा जा सकता है ।

सूर्य के सम्बन्ध में भगवान् भैरव कह रहे हैं कि, यह पराज्ञान का शक्तिमन्त स्वरूप है । आदित्य के शरीर में यह तप रहने वाला प्रत्यक्ष ब्रह्म है । इसका तप भी ब्रह्मयज्ञ ही है । सर्व शक्तिमान् महेश्वर की विश्व प्रकाशिका ज्ञान शक्ति ही वाह्य आदित्य और जीवादित्य के रूप में प्रतिष्ठित है । यही आदित्य विग्रह का मर्म है ।।४९९।।

ये द्वादश आदित्य १२ मासों और वारों के रूप में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं । शिवेच्छा ही इसकी गतिशीलता की मूल भित्ति है । यह अहर्निश भुवर्लोक में भ्रमणशील हैं ।

राजानक भुल्लक की व्याख्या को आचार्य क्षेमराज महत्त्व नहीं देते । उसे उपेक्ष्य मानते हैं । उनके अनुसार सूर्य की व्याप्ति सम्पूर्ण भुवनों में नहीं है ।

---

१. 'भुवोलो०' क. पाठः । २. 'अतश्च' क. पाठः ।

इति प्रोक्तानुसारेण योज्यम् । यत्तु–बृहट्टीकाकारराजानकभुल्लकेन यावदशेषभुवन-प्रकाशनव्याप्तिः सूर्यस्य नास्ति, तावत्सूर्यसंयमाद् भुवनज्ञानं कथं पतञ्जलिनोक्तम्, अत आ पातालात् सत्यलोकान्तं सूर्यस्य प्रकाशकत्वमिति स्वरुच्या व्याख्यातम्, तदसारत्वादुपेक्ष्यम् ॥५००॥

अथ सूर्योपरि चन्द्रादीनां स्थितिविभागमाह–

ततः सोमस्तु लक्षेण आदित्योपरि संस्थितः ।
आप्याययञ्जगत्सर्वं सुधाधाराप्रवर्षणैः ॥५०१॥

इत्थं च–

चन्द्ररूपेण तपति क्रियाशक्तिः शिवस्य तु ।
इन्दूर्ध्वे लक्षमात्रेण स्थितं नक्षत्रमण्डलम् ॥५०२॥

नक्षत्रमण्डलं ताराचक्रम् ॥५०२॥

लक्षद्वयेन तस्योर्ध्वे संस्थितो भूमिनन्दनः ।
लक्षद्वयेन तस्योर्ध्वे संस्थितः सोमनन्दनः ॥५०३॥

ऐसी अवस्था में सूर्य समय से भुवनज्ञान की बात पतञ्जलि ने क्यों कहीं ? यह प्रश्न भी विचारणीय है । सूर्य की गति पाताल से सत्यलोक पर्यन्त है । इस विषय पर वैज्ञानिक विवेचन होना चाहिये ॥५००॥

सूर्य की महत्त्वपूर्ण रहस्यमयता का उद्घाटन करने के बाद चन्द्र की स्थिति का वर्णन कर रहे हैं । यह चन्द्र जो पृथ्वी का एक उपग्रह है । यह पृथ्वी की परिक्रमा करता है । सूर्यमण्डल का ग्रह नहीं है । फिर भी ग्रह मण्डल में पृथ्वी को चान्द्र प्रकाश देने तथा दिन में अपने श्वैत्य का सूर्य को अर्पण करने के कारण इसका भी महत्त्व है ।

जिस चन्द्र का यहाँ वर्णन कर रहे हैं, यह सूर्य के ऊर्ध्व में अवस्थित है । यही स्पष्ट करते हुए कह रहे हैं कि, सोम एक लाख योजन सूर्य की अपनी कक्षा से ऊपर का ग्रह है । यह सारे जगत् को आप्यायित करता है । इसकी सुधामयी अमृतधारा विश्व को अमृत पिलाकर कृतार्थ करती है ॥५०१॥

यह परमेश्वर की क्रियाशक्ति का प्रतीक है । यह चन्द्र रूप से ही शीतातप प्रदान करता है । इस इन्दु के एक लाख योजन ऊपर नक्षत्र पड़ता है । आज के वैज्ञानिकों ने क्या दूरी बतायी है–यह भी इस सन्दर्भ में विचारणीय है ॥५०२॥

चन्द्र के ऊपर लक्ष योजन पर भौम और इससे भी सौ योजन ऊपर सोमनन्दन बुध का अवस्थान है ॥५०३॥

सुराचार्योऽपि तस्योर्ध्वे द्विलक्षेणैव संस्थितः ।
तस्योर्ध्वेऽपि द्विलक्षेण तिष्ठते भृगुनन्दनः ।।५०४।।
तस्योपरि द्विलक्षेण सौरिः सर्पति लीलया ।

सर्पति राशिषु सञ्चरति । लीलयेति मन्द-मन्दं यतोऽयं शनैश्चरः । तस्योपरि

लक्षमात्रेण तु ऋषीन् कथयामि समासतः ।।५०५।।

तान्यथावस्थिति क्रमेणाह–

अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृग्वङ्गिरा मरीचिश्च

भृग्वङ्गिरा गोत्रनामक्रमाभ्यामेक एव । एते सप्त–

ऋषयः सम्प्रकीर्तिताः ।।५०६।।
यमनियमतो ह्येते शापानुग्रहकारकाः ।

अहिंसाद्या यमाः । शौचाद्या नियमाः ।।५०६।।

किञ्च,

भीताश्च परपीडायाः

प्रत्यवायिनामपि निग्रहं न कुर्वन्ति दयापरतन्त्रत्वात् । तथा–

शूराः शास्त्रविचारणे ।।५०७।।

शूरास्तीक्ष्णधियः ।।५०७।।

इसके दो लाख योजन ऊपर सुराचार्य बृहस्पति हैं । इस गुरुदेव के ऊपर दो लाख योजन पर शुक्राचार्य अवस्थित हैं ।।५०४।।

इनके ऊपर दो लाख योजन पर शनि ग्रह अवस्थित है । वह लीलापूर्वक शनैः शनैः प्रसर्पण करता है । अतः इसे शनैश्चर कहते हैं । इसके भी एक लाख योजन ऊपर सप्तर्षिमण्डल है ।।५०५।।

सप्तर्षियों में अत्रि, वशिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, अङ्गिरा और मरीचि अवस्थित हैं । इन्हें ही सप्तर्षि मण्डल के रूप में जाना जाता है ।।५०६।।

ये सातों यम और नियम की साधना में सर्वाग्र हैं । उपासना के बल पर ये शाप और अनुग्रह दोनों दृष्टियों से महनीय हैं । परपीड़ा पहुँचाने से ये डरते हैं । दया के ही परतन्त्र हैं । शास्त्रविचार की दृष्टि में इनसे बढ़कर कोई नहीं ।।५०७।।

अत एवानुग्राह्याणाम्–

ज्ञानखड्गोद्यताः सर्वे त्वज्ञानपटलापहाः ।

अज्ञानमेव चित्प्रकाशावरकत्वात् पटलस्तमपघ्नन्ति ।

तदर्थमेव च–

मन्त्रयोगक्रियाचर्यासन्नद्धा दुरतिक्रमाः ।।४०८।।

योगैश्वर्यगुणोपेताः शिवाराधनतत्पराः ।

मननसारा मन्त्राः, योगो ध्यानधारणादिः, क्रिया नित्यनैमित्तिकानुष्ठानम्, चर्या व्रतादिरूपा, एतैर्मन्त्रादिभिः सन्नद्धाः परिष्कृताः । अत एव दुरतिक्रमा अज्ञानेन न कदाचिदभिभूयन्ते । अतश्च योगैश्वर्यगुणैरणिमादिसिद्धिभिरुपेताः । तथापि शिवाराधनप्रधानकर्मणि तत्परा नित्यासक्ताः । अथ

तेभ्यो लक्षाद्ध्रुवो देवि तारकाः स चतुर्दश ।।५०९।।

एक एव सन् ।।५०९।।

अतश्चतुर्दशभिस्तारकाभिः–

शरीरं घटितं ताभिर्ध्रुवस्य वरवर्णिनि ।

तथा च–

'उत्तानपान्मखहनुः शुचिधर्ममूर्धा
नारायणाश्विवरुणार्यमहृत्पदोरुः[1] ।
संवत्सरप्रजननो जघनस्थमित्रो
वह्नीन्द्रकश्यपमरीच्यभयाख्यपुच्छः' ।।

ज्ञान की तलवार लेकर ये अज्ञान पर टूट पड़ते हैं । अज्ञानपटल को खण्डित करने में दक्ष ये लोग अखण्ड ज्ञान के प्रकाशस्तम्भ हैं । अज्ञान चित् प्रकाश का आवारक होता है । ऋषिगण उसी आवरण का निराकरण करते हैं ।

ये मन्त्र, योग, क्रिया और चर्या इन चारों के आचार्य हैं । इसको कभी ये अतिक्रान्त नहीं करते हैं, अर्थात् अज्ञान से कभी अभिभूत नहीं होते ।।५०८।।

योग और ऐश्वर्य के गुणों से समन्वित हैं । शिवाराधना में अनवरत संलग्न रहते हैं ।

इन ऋषियों के लाख योजन ऊपर ध्रुव का क्षेत्र है और ध्रुव से भी ऊपर तारकमण्डल अर्थात् ताराओं का चक्र है । यह ध्रुव के चौदह तारक हैं । इन्हीं १४ तारकों से ध्रुव का शरीर निर्मित है । कहा भी गया है—

---

१. 'पदोनः' क. पाठः ।

इति ज्योति:शास्त्रे हनुशिर:प्रभृतिगात्रारम्भोऽस्य यज्ञधर्मादिदेवताभिरुक्त: । एष च–

ब्रह्मैवापररूपेण ब्रह्मस्थाने नियोजित: ।।५१०।।

सत्यलोकस्थो ब्रह्माण्डेनापररूपेण भुवर्लोकमध्ये नियुक्त: ।।५१०।।

इत्थं मध्ये चक्रनाभिवदवस्थितस्य–

तस्य ज्योतिर्गणो देवि निबद्धो भ्रमते सदा ।

निश्चल: स तु विज्ञेय: शिवशक्त्या त्वधिष्ठित: ।।५११।।

शिवशक्त्यैवेत्थं व्यवस्थापित इत्यर्थ: । एष चान्तरस्थित्या अविचलश्चिदात्मैव समध्यवाहत्रयोदशेन्द्रियताराचक्रपरिवृत: कालाधिकारोक्तस्थि[१]त्याशेषग्रहर्क्षाद्याश्रयणप्राणापानसूर्यसोमसञ्चारप्रवर्तक इति बोद्धव्यम् । अत एवात्मप्रतिनिधिरूपध्रुवस्य–

'यदह्ना कुरुते पापं दृष्ट्वा तन्निशि मुच्यते ।

अधिकं च भवत्यायुर्ध्रुवान्तानां समा: समा:' ।।

इत्यस्य ज्योति:शास्त्रादौ श्रूयते । यत्तु तत्र ध्रुवनाभिनिबद्धस्य ग्रहनक्षत्रचक्रस्य बहिर्भूगोलं यन्निवर्तनम्, सूर्यादीनां भूम्यादेश्च अन्यथावस्थानपरिमाणादि श्रूयते, तत्–

उत्तानपाद मुख और हनु शुचिता और धर्म यह मूर्धा है । नारायण अश्विनी कुमार, वरुण, अर्यमा, हृदय, पद और जङ्घे हैं । संवत्सर ही प्रजनन हैं । जघनों में मित्र हैं, अग्नि, इन्द्र, कश्यप, मरीचि और अभय पुच्छ भाग में अवस्थित हैं' ।

यह अपर ब्रह्म रूप ही हैं । यह सदा ब्रह्मस्थान में नियोजित हैं ।।५१०।।

ध्रुव एक तरह से नाभिचक्र है । उसी से निबद्ध होकर ज्योतिश्चक्र अपनी नियत गति से गतिशील है । ध्रुव ही वह नाभि है, जो शिवशक्ति से अधिष्ठित है और निश्चल है । अर्थात् शिवशक्ति या मल प्रभाव द्वारा ही वहाँ व्यवस्थापित है । एक तरह इसका यह चिदात्मक रूप है और समस्त ग्रहमण्डल, नक्षत्रचक्र से परिवृत है और उनका आधार भी है ।

यह प्राणापानवाह रूप सूर्य सोमात्मक शरीर के श्वास प्रवाह का भी सञ्चालक है । यह स्वात्म का सच्चा प्रतिनिधि है । कहा गया है—

दिन भर किये गये पापों का प्रायाश्चित उसे शाम को देख कर पूरा हो जाता है । रात में दिन के पाप दर्शन से ही नष्ट हो जाते हैं । ऐसे लोग जो ध्रुवान्त हैं,

'यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम् ।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव' ॥

(सू० जा० १/३)

इति तदुक्तप्रक्रिययैव पूर्वकर्मानुसारितेजोगोलकाधि[२]ष्ठातृसूर्यादिरूपदेवतापेक्षया कर्मार्जनस्थानस्थभूम्यपेक्षया च तथा, इदं तु तेजोगोलकाद्यधिष्ठातृसूर्यादिरूप-देवतापेक्षया यथोक्तप्रक्रिययैव सूर्यादीनामवस्थानसन्निवेशभ्रमणादि पातालभूम्यादि-परिमाणादि वास्तवम् । सर्वसर्वज्ञमहेश्वरपरिदृष्टमेतदेवेति न तेन सह संवाद-विसंवादादिचर्चा कार्या । अत एव–

उनकी आयु भी बढ़ जाती है । ध्रुवान्त शब्द विचारणीय है । रात को ध्रुव का दर्शन कर अपने दैनिक कार्यों की अन्तिम समाप्ति करने वाले नियमित लोग भी ध्रुवान्त ही कहलाते हैं । यह मान्यता ज्योतिष आदि कई शास्त्रों में उपलब्ध है ।

पहले यह कहा गया है कि, ध्रुव की नाभि में ही निबद्ध ग्रहनक्षत्र चक्र हैं । इस बाह्य भूगोल का निवर्त्तन ध्रुव के माध्यम से ही होता है । सूर्य आदि और भूमि आदि भी उसी से सम्बद्ध हैं । इनके अन्यथा परिणामादि भी सुने जाते हैं, वे भी भिन्न-भिन्न जन्मों के कर्म परिणामादि के अनुसार ही हैं । सू० जा० १/३ में यह कहा गया है—

'जो कुछ भी इस जन्म में उपचित है, अर्थात् वृद्धि को प्राप्त है, इस शुभ और अशुभ का परिणाम अन्य जन्मकृत शुभाशुभ कर्म का ही परिणाम है । इस सिद्धान्त की सत्यता को केवल यही शास्त्र व्यक्त करता है । उसी तरह जैसे अन्धकार में पड़े द्रव्यों को दीपक व्यक्त कर देता है' ।

पूर्व कर्मानुसारी तेजोगोलक के अधिष्ठाता सूर्यादि रूप देवों की अपेक्षा अथवा कर्म से अर्जित जन्मस्थान और भूमि की अपेक्षा सभी फल मिलते हैं । इस शास्त्र में व्यक्त ध्रुवादि तथ्यों के अनुसार यह जो तेजोगोलकादि अवस्थान हैं, सन्निवेश और इन ग्रहों के भ्रमण की कक्षायें हैं, ये सभी ध्रुव पर ही निर्भर हैं । वस्तुतः सर्व सर्वज्ञ महेश्वर परम शिव से ही परिदृष्ट यह समग्र विश्वात्मक प्रसर व्यक्त है । इसके विषय में संवादविसंवाद चर्चा अनावश्यक है । इसलिये

---

१. 'नीत्या' क. पाठः । २. कामिमात्ररूपसूर्याद्य० क. पाठः ।

'शास्त्रान्तरैर्न यद्दृष्टं तद्दृष्टं पारमेश्वरे ।
नियत्यादि शिवान्तं वाक् [1]क्वान्यत्र परिदृश्यते' ॥

इतीयमेव प्रक्रिया साध्वी ॥५११॥

दश पञ्च च लक्षाणि ध्रुवान्तं भूमिमण्डलात् ।

भुवः सूर्येन्दुभचक्राणि प्रत्येकं लक्षान्तरितानि, प्रत्येकं लक्षद्वयेन भौमाद्याः पञ्च, लक्षेण सप्तर्षयः, लक्षेण ध्रुव इति पञ्चदशलक्षमेव ध्रुवान्तं भवति ।

किञ्च,

वायुस्कन्धान् स्थितांस्त्वत्र कथयामि समासतः ॥५१२॥

अत्रेति पञ्चदशयोजनलक्षोन्मानभुवःस्वर्लोकद्वये । ईश्वरशक्तिनियमितवायुसन्निविष्टभुवनादिरूपान् वायुस्कन्धान् कथयामि ॥५१२॥

तेषां कक्ष्याभेदमाह–

आ मेघाद्भास्करात्सोमान्नक्षत्राद्ग्रहमण्डलात् ।
ऋषिसप्तकनिर्देशादाध्रुवान्तं च सप्तमः ॥५१३॥

आ मेघादिति प्रोक्तवायुपथगतेभ्यो मेघेभ्यः प्रभृति ध्रुवान्तं सप्तसु कक्ष्यासु सप्त वायुस्कन्धाः स्थिताः । यदुक्तं पुराणेषु–

'अन्य शास्त्रों से जो दृष्ट नहीं होता, वह पारमेश्वर शास्त्र के स्वाध्याय से परिदृष्ट हो जाता है । नियति रूपकला से शिवसद्भाव पर्यन्त यह परावाक् का वरदान अन्यत्र अप्राप्त है' । इसलिये इस साध्वी प्रक्रिया में जो दृष्ट है, वह हमारे लिये प्रमाण है ॥५११॥

भूमण्डल से ध्रुव का परिमाण १५ लाख योजन है । भूमण्डल से सूर्य सोम आदि का प्रत्येक का माप एक एक लाख योजन का है । भौम आदि तो दो दो लाख, सप्तर्षि १ लाख, १लक्ष ध्रुव कुल मिलाकर १५ लाख योजन ही होता है ।

इस महान् अन्तराल में जो कुछ जैसे भी है, जहाँ भी अवस्थित है, ईश्वर शक्ति के द्वारा नियमित वायुपथों में सन्निविष्ट भुवनों और वायु स्कन्धों के रूप में परिदृश्यमान है, उस सम्बन्ध में यहाँ स्पष्ट करने जा रहे हैं ॥५१२॥

मेघों, सूर्य, सोम, नक्षत्र और ग्रहमण्डलपर्यन्त और सप्तर्षि मण्डल और ध्रुव पर्यन्त से सभी सात ही हैं । ये सात कक्ष्यायें हैं । इनमें सात ही वायु स्कन्ध है । इसे पुराणों में इस प्रकार कहा गया है ।

---

१. क्वान्यत्र परिदर्शितम् क. पाठः ।

'पृथिव्यां प्रथमः स्कन्ध आ मेघेभ्यो आवहः ।
द्वितीयश्चापि मेघेभ्य आ सूर्यात्प्रवहस्तु यः ॥
सूर्यादूर्ध्वं तथा सोमादुद्वहो यस्तु वै स्मृतः ।
सोमादूर्ध्वं तथर्क्षेभ्यश्चतुर्थः संवहस्तु यः ॥
ऋक्षोर्ध्वं ग्रहपर्यन्तं पञ्चमो विवहस्तु यः ।
ऊर्ध्वं ग्रहादृषिभ्यस्तु षष्ठो योऽसौ परावहः ॥
सप्तर्षिभ्यस्तथैवोर्ध्वमा ध्रुवात्सप्तमः स्मृतः ।
वातस्कन्धः परिवहः............................'॥ इति ।

तत्रैव च प्रत्येकं शुक्रज्योतिःसत्यज्योतिश्चित्रज्योतिर्ज्योतिष्मानित्यादिसंज्ञाः सप्त सप्तावान्तरभेदा उक्ताः ॥५१३॥

तदयम्-

आदित्यादिध्रुवान्तश्च स्वर्लोकः परिकीर्तितः ।
अत्र राजा महेन्द्रो वै तिष्ठते सूरपूजितः ॥५१४॥
ऋषिदेवैः सगन्धर्वैर्वृतश्चाप्सरसां गणैः ।

१-पृथ्वी में प्रथम वायुस्कन्ध मेघों तक 'आवह' है ।

२-दूसरा मेघों से सूर्यपर्यन्त 'प्रवह' है ।

३-सूर्य से सोम पर्यन्त 'उद्वह' है ।

४-सोम से ऊपर नक्षत्रपर्यन्त 'संवह' है ।

५-नक्षत्रों के ऊपर ग्रहपर्यन्त 'विवह' है ।

६-ग्रहों से सप्तर्षिपर्यन्त छठा 'परावह' है ।

७-सप्तर्षिमण्डल से ध्रुवपर्यन्त 'परिवह' है ।

इस तरह सात वायुस्कन्ध विद्यमान हैं । वे सभी शुक्रज्योतिः, सत्यज्योति, चित्रज्योति और ज्योतिष्मान् इत्यादि संज्ञाओं से भी जाने जाते हैं । ये अवान्तर भेद के रूप में शास्त्रप्रसिद्ध हैं ॥५१३॥

आदित्य से ध्रुवपर्यन्त स्वर्लोक माना जाता है । इसके अधिपति 'इन्द्र' कहलाते हैं । ये सभी देवों में पूज्य 'महेन्द्र' हैं ॥५१४॥

ऋषियों, देवों, गन्धर्वों और अप्सराओं से ये घिरे रहते हैं । भूपृष्ठ से आदित्यपर्यन्त भुवर्लोक है । १ लाख योजन । इसके ऊपर ध्रुवान्त १४ लाख

भूपृष्ठादादित्यान्तो भुवर्लोको[1] योजनानां लक्षमेकम् । ततो ध्रुवान्तः स्वर्गलोकश्चतुर्दश लक्षाणि । ईदृशं चामुम्–

अग्निहोत्रं क्रतून् वापि कृत्वा ज्ञानविवर्जिताः ।।५१५।।
स्वर्लोकं तु नरा यान्ति पुनरायान्ति मानुषम् ।

अग्निहोत्रं नित्याग्निनिष्ठो होमः, क्रतवस्तु ज्योतिष्टोमादयः । ज्ञानविवर्जितत्वाद् देहान्ते स्वर्लोकं यान्ति । तत्र स्वकर्मोपचितफलं भुक्त्वा पुनर्मानुषादिकमायान्ति । ज्ञानिनस्तु यज्ञादि कुर्वन्तोऽपि निष्कामत्वाद् मुच्यन्त इत्याशयः । इत्थमेवंविधस्य–

स्वर्लोकस्योपरिष्टात्तु द्वे कोटि योजनानि तु ।।५१६।।
पञ्चाशीतिश्च लक्षाणि महर्लोको[2] वरानने ।

एवमिहत्यप्रक्रियया सूर्यान्तो भूवर्लोकः, ध्रुवान्तः स्वर्लोकः, तदर्ध्वे[3] सपञ्चाशीतिलक्षं कोटिद्वयं महर्लोकः । श्रीपरामृगेन्द्रादौ तु ध्रुवान्तो भुवर्लोकः, तदूर्ध्वम्–

'पञ्चाशीतिमितैर्लक्षैः स्वर्लोकः स्वर्गसंश्रयः ।
कोटिद्वयं महर्लोको महान्तो यत्र संस्थिताः' ॥ इति ।
'तिथिल[4]क्षैर्भुवर्लोको ध्रुवप्रान्तो महीतलात् ।
तदूनकोटिः स्वर्लोक..........................'॥

इति प्रक्रियाभेदो दृश्यते, स तद्ग्रन्थसङ्ग्रहकर्तृभिस्तथानिबद्धत्वात् । इदं तु साक्षात्परमेश्वरेणोक्तम्–

योजन है । अग्निहोत्र, ज्योतिष्टोमादि क्रतु सम्पादित करने वाले लोग अज्ञानावस्था में मरने के कारण स्वर्लोकों में ही जाते हैं ॥५१५॥

स्वर्ग लोकों में जाकर पुण्य समाप्त होने पर पुनः भूर्लोक अवस्थित मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं । जो ज्ञानवान् होते हैं, वे सभी कर्मों को करते हुए भी निष्काम बने रहते हैं । वे मुक्त हो जाते हैं । इस स्वर्लोक के ऊपर दो करोड़ पचासी लाख योजन ऊपर महर्लोक है ।

श्रीपराशास्त्र श्रीमृगेन्द्रतन्त्र में इस मान्यता के विपरीत ध्रुवान्त भुवर्लोक मानते हैं । उसके ऊपर पचासी लाख योजन पर स्वर्लोक अवस्थित है ।

---

१. भुवोलोको ख. पाठः । २. महोलोक ख. पाठः ।
३. र्ध्वं प० क. पाठः । ४. क्षे क. पाठः ।

'भूर्भुवःस्वर्ध्रुवान्तं स्याल्लक्षाणि...........।

..................महान् कोटिद्वयं भवेत्' ॥

इति किरणादिग्रन्थेन भगवदुक्तेन च ससंवादमित्ययमेव क्रमो युक्तः ।

अत्र महर्लोके–

ऋषयश्चैव सिद्धाश्च मार्कण्डाद्या वसन्ति वै ॥५१७॥

अथ–

कोट्यष्टकं महादेवि योजनानां वरानने ।
महर्लोकोपरिष्टात्तु जन[1]लोको व्यवस्थितः ॥५१८॥

किञ्च,

एकपादोऽथ जह्नुश्च कपिलश्चासुरिस्तथा ।
भौतिको वाड्वलिश्चैव जन[2]लोकनिवासिनः ॥५१९॥

अथ–

द्वादशैव तथा कोट्यो जनलोकोर्ध्वतः प्रिये ।
तपोलोकः समाख्यात ऋषियोगेश्वराकुलः ॥५२०॥

इसके ऊपर दो करोड़ योजन पर महर्लोक अवस्थित है । तिथिलक्ष अर्थात् १५ लाख भुवर्लोक महीतल से ध्रुवप्रान्त पर्यन्त है । इस प्रकार का दृष्टिभेद है । यह गणना केवल साधनात्मक अन्तर्दृष्टि पर ही आश्रित है । इसमें प्रक्रिया भेद नहीं, मात्र अनुभूतिभेद है । यह भेद उन ग्रन्थकारों पर निर्भर है, जहाँ तक स्वच्छन्द-तन्त्र की बात है, यह साक्षात् परमेश्वरोक्त होने के कारण प्रामाणिक है । किरणादि शास्त्रों से और इसकी मान्यता में कोई विसंवाद नहीं है । अतः यही क्रम मान्य है ।

महर्लोक में ऋषि, सिद्ध और मृकण्डु ऋषि के सन्तान रहते हैं ॥५१७॥

जहाँ तक जनलोक का प्रश्न है, यह महर्लोक से आठ करोड़ योजन ऊपर है ॥५१८॥

इसमें एकपाद, जह्नु, कपिल और आसुरि भौतिकवाड (वरुण बीज के साधक) तथा बलि रहते हैं ॥५१९॥

जनलोक से १२ करोड़ योजन उपर तपोलोक वर्त्तमान है । यह तपोनिष्ठ ऋषियों और योगेश्वरों से भरा हुआ लोक है ॥५२०॥

---

१. नोलो० ख. पाठः ।　　२. नोलो० ख. पाठः ।

तानाह–

सनकश्च सनन्दश्च सनत्कुमारः सनन्दनः ।
शङ्कुश्चैव त्रिशङ्कुश्च तपोलोकनिवासिनः ।।५२१।।

अथ प्रसङ्गाद्भूर्लोकात् सत्यलोकान्तं भुवनसंख्यामाह–

पद्माः षट्पञ्चपञ्चाशत्कोट्यो लक्षाणि विंशतिः ।
भूर्लोकान्तं समारभ्य यावत्सत्यं वरानने ।।५२२।।
इयं संख्या समाख्याता भुवनानां वरानने ।

परमेश्वरेण बृहत्तन्त्र इति शेषः । पद्मसंख्या एकादशपटले वक्ष्यमाणा । प्रकृतमाह–

कोट्यः षोडश मानेन तपोलोकोर्ध्वतः प्रिये ।।५२३।।
सत्यलोकः समाख्यातो यत्र ब्रह्मा स्वयं[1] स्थितः ।
क्रीडते भगवान् देवो वृत आत्मसमैर्द्विजैः ।।५२४।।

यतस्ते तत्र–

कर्मज्ञानेन संसिद्धा अद्वैतपरिनिष्ठिताः ।
आनन्दपदसम्प्राप्ता आनन्दपदमागताः ।।५२५।।

कर्मणा नित्यनैमित्तिकानुष्ठानेन ज्ञानेन च वेदान्तोक्तेन समुच्चितेन सम्यक् सिद्धाः, अत एव 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्युक्ताद्वैतपदे परिनिष्ठिता रूढभावनाः,

---

सनक, सनन्द, सनत्कुमार और सनन्दन ये ब्रह्मपुत्र वहीं रहते हैं । इनके अतिरिक्त शङ्कु और त्रिशङ्कु भी इसी लोक के निवासी हैं ।।५२१।।

भूलोक से लेकर सत्यलोक पर्यन्त छः पद्म ५५ करोड़ २० लाख भुवन हैं । बृहत्तन्त्र में यह परिणाम कहा गया है । तपलोक से भी ऊपर १६ करोड़ योजन पर एक लोक है ।५२३।।

इस लोक को सत्यलोक कहते हैं । स्वयं ब्रह्मा ही इसी लोक में रहते हैं । देवाधिदेव भगवान् यहाँ अपने समान ब्रह्मविद्यानिष्णात आत्माओं के साथ विहार करते हैं ।।५२४।।

कर्म (नित्य नैमित्तिकानुष्ठान) और ज्ञान (संवित्प्रकाश) इन दोनों के प्रभाव से परासिद्धि प्राप्त करने वाले संसिद्धजन नित्य अद्वयतादात्म्य में शाश्वत परिनिष्ठित चिदानन्दपदवीक स्वातन्त्र्यरूप शक्ति से सम्पन्न महायोगेश्वर सत्य-

---

१. व्यव० क. पाठः ।

अतश्च सत्यलोकाख्यमिदमानन्दपदं महाभोगस्थानं सम्प्राप्ता अधिरूढाः, अत्रापि चानन्दपदमागताः स्वात्मारामा एवेत्यर्थः ॥५२५॥

किञ्च,

ऋग्वेदो मूर्तिमांस्तस्मिन्निन्द्रनीलसमद्युतिः ।
दिव्यगन्धविलिप्ताङ्गो दिव्याभरणभूषितः ॥५२६॥
संस्थितः पूर्वतस्तस्य दीप्यमानः स्वतेजसा ।
उत्तरेण यजुर्वेदः शुद्धस्फटिकसन्निभः ॥५२७॥
दिव्यकुण्डलधारी च महाकायो महाभुजः ।
स्थितः पश्चिमदिग्भागे सामवेदः सनातनः ॥५२८॥
रक्ताम्बरधरः श्रीमान् पद्मरागसमप्रभः ।
स्रग्दामधारकश्चित्रमाला[1]भूषणभूषितः ॥५२९॥
अथर्वाञ्जनवच्छ्यामः स्थितो दक्षिणतस्तथा ।
पिङ्गाक्षो लोहितग्रीवो हरिकेशो महातनुः ॥५३०॥

लोक में निवास के अधिकारी हैं । सत्य स्वयम् आनन्द है । इसमें आत्माराम पुरुष भगवान् के विनोद के आधार हैं ।५२५॥

सत्यलोक में साक्षात् 'ऋग्वेद' प्रतिष्ठित है । इन्द्रनीलमणि के समान ये रमणीय हैं । अनेक देव विग्रहों के अस्तित्व की उसमें दिव्यता है । दिव्यज्ञान की गन्ध ही उनके अङ्ग में विलिप्त हैं । दिव्य आभरणों से वे भूषित हैं ॥५२६॥

ये सत्यलोक के पूर्वभाग में अवस्थित हैं । अपने ही तेज से ये शाश्वत दीप्तिमान् हैं ।

सत्यलोक के उत्तराञ्चल में यजुर्वेद वर्त्तमान है । इनका वर्ण शुद्ध स्फटिक के समान परम शोभायमान है ॥५२७॥

सत्यलोक के पश्चिम दिग्विभाग में दिव्य कुण्डलों को धारण करने वाले महाकाय चित्रमाला विभूषित अलङ्कृत और प्रलम्बमान महाभुजा वाले आजानु-बाहु सनातन 'सत्य के प्रतीक रक्ताम्बरधारी पद्मराग वर्ण वाले सामवेद अवस्थित हैं ॥५२८-५२९॥

जहाँ तक अथर्ववेद का प्रश्न है । ये अञ्जन के समान श्यामवर्ण वाले हैं । ये सत्यलोक के दक्षिण भाग में अवस्थित हैं । पिङ्गल लोचन, लोहित

---

१. लम्ब० क. पाठः ।

ऋचां कर्मदेवतास्तुतिमात्रपरायणानामनुष्ठानास्फुटतया श्यामता । यजुषां तु तत्स्फुटतया सितत्वम् । साम्नां गीतिप्राधान्येन रञ्जकत्वाद्रक्तत्वम् । अथर्वण अभिचाराद्यैहिककर्मपरतया कृष्णत्वं शबलता च ॥५३०॥

किञ्चात्र

षडङ्गानीतिहासाश्च पुराणान्यखिलानि तु ।
वेदोपनिषदश्चैव मीमांसारण्यकं तथा ॥५३१॥
स्वाहाकारवषट्कारौ रहस्यानि तथैव च ।
गायत्री च स्थिता तत्र यत्र देवश्चतुर्मुखः ॥५३२॥

अङ्गानीति वेदस्य शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तच्छन्दोज्योतत:शास्त्राणि । इतिहासा भारतादीनि । व्यासाद्युक्तानि शास्त्राणि पुराणानि । वेदोपनिषदो वेदान्ताः । वेदविचारशास्त्रं मीमांसा । आरण्यकं बृहदारण्यकं वेदान्तेऽपि पृथगुक्तमरण्येऽनूद्यमानत्वात् । दीप्त्याप्यायविषयौ मन्त्रौ स्वाहाकारवषट्कारौ ।

ग्रीव, हरिकेश और महान् विग्रहवान् अथर्ववेद भी लोकविश्रुत वहीं विद्यमान हैं । इस तरह चारों का अवस्थान सत्यलोक है, यह भगवद्वाक्यों द्वारा ही प्रमाणित है । इन चारों वेदों में ऋचायें श्याम, यजुष् सित साम रञ्जकता के कारण रक्त और अथर्व कृष्ण और शबल हैं ॥५३०॥

सत्यलोक में ही षडङ्ग वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः ज्योति:शास्त्र, इतिहास, अखिल पुराण, वेदोषनिबद् वेदान्त, मीमांसा, आरण्यक, स्वाहाकार, वषट्कार, रहस्यविद्यायें, गायत्री और स्वयं ब्रह्मा भी अवस्थित हैं । श्लोक में शब्द विशेषत: विचारणीय हैं–

१.इतिहास– महाभारत आदि हैं ।

२.पुराण– व्यास रचित १८ पुराण प्रसिद्ध हैं ।

३.मीमांसा– इसमें वेदार्थ की मीमांसा की जाती है ।

४.आरण्यक– वेद के भाग, बृहदारण्यक आदि उपनिषद् इसी श्रेणी में आते हैं ।

५.स्वाहाकार– मन्त्र दीप्तिकारक मन्त्र

६.वषट्कार– मन्त्र शुष्क जीवन को आप्यायित करते हैं ।

७.रहस्य– शास्त्र तन्त्रशास्त्र माना जाता है । आचार्य ने तैत्तिरीयादि वेदान्त लिखा है । यह उनका मत है ।

८.गायत्री– वेद की माता और ब्रह्मविद्या कहलाती है । इसमें वेद का विज्ञान भरा हुआ है ।

रहस्यानि तैत्तिरीयादिवेदान्तविशेषा रहस्यत्वादेव पृथगुक्तानि । गायत्री वेदमाता । सर्वा एता आकृतिमत्यो देवताः ॥५३२॥

सोऽयं सत्यलोकः—

भोगस्थानं ब्रह्मणः स्यात्

स तत्र निर्वर्तिताधिकारः-

परं ब्रह्म ततो व्रजेत् ।

अनाकृतिविज्ञानमानन्दं ब्रह्मेति यदुक्तम्, तदित्यर्थः । अथ-

कोटियोजनमानेन सत्यलोकोर्ध्वतः प्रिये ॥५३३॥
ब्रह्मासनमिति ख्यातं जपासिन्दूरसप्रभम् ।

आस्यतेऽस्मिन्नित्यासनं भुवनं सत्यलोकस्योर्ध्वम् । तत्रासौ-

रक्तेन्दीवरमध्यस्थः पद्मरागसमप्रभः ॥५३४॥
चतुर्मुखश्चतुर्वेदश्चतुर्युगवशानुगः ।
ब्रह्मविद्भिः समाकीर्णो ब्रह्मा मुनिनिषेवितः ॥५३५॥

९.चतुर्मुख- चतुरानन ब्रह्मा ।

सत्यलोक में ये सब व्यवस्थित रूप से विद्यमान हैं ॥५३२॥

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि, यह लोक ब्रह्मा का भोग-स्थान है । इस भोग-स्थान से निवृत्त होने पर यहाँ के भोगाधिकार पूर्ण हो जाते हैं । ऐसे निवर्त्तिताधिकार सिद्ध पुरुष ब्रह्मतादात्म्य प्राप्त करते हैं । ब्रह्म की कोई आकृति नहीं होती । वह निराकार, विज्ञानानन्द स्वरूप होता है । सत्य-लोक के ऊपर भी एक करोड़ योजन पर एक महान् पावन अप्रकल्प्य अवस्थान है ॥५३३॥

उस स्थान को 'ब्रह्मासन' कहते हैं । वह जपापुष्प और सिन्दूर के समान सुन्दर है । आसन का अर्थ भी 'आस्यतेऽस्मिन्' इस विग्रह के कारण भुवन ही होता है । सत्यलोक यह ऊपर लाल कमलों के समान आकर्षक पद्मरागमणि के समान रमणीय है ॥५३४॥

चतुर्मुख, चतुर्वेद और चारों युगों के अधिपति, ब्रह्मवेत्ताओं से समाकीर्ण, मुनियों से निषेवित ब्रह्मा वहीं विराजमान हैं ॥५३५॥

ऐश्वर्याष्टकसंयुक्तः षड्विधसृष्टिकारकः ।
धर्मादिफलसम्बन्धप्रदाता च युगे युगे ।।५३६।।
तिर्यङ्नारकिसत्त्वानां दिव्यानां मनुजैः सह ।
स्त्रष्टा च सर्वभूतानां सदेवासुरमानुषे ।।५३७।।

चत्वारो युगा वशा अनुगा यस्येति पूर्वनिपातव्यत्ययः । ऐश्वर्याष्टकमणिमादि । षड्विधेति नारकिस्थावरसरीसृपादिपश्वन्ता त्रिविधा तामसी, रजस्तमोमयी मानुषी, रजःसत्त्वरूपा मौनी, सात्त्विकी दैवी चेत्येकादशे भविष्यति । युगे युग इति धर्मादिफलप्रदः । तिर्यगादीनां सर्वेषां भूतानां चतुर्दशसंख्यानां सदेवासुरमानुषे जगति स्त्रष्टा ।।५३७।।

अथ–

कोटिद्वयं तदूर्ध्वे तु योजनानां वरानने ।
नीलेन्दीवरसङ्काशा इन्द्रनीलसमप्रभा ।।५३८।।
ब्रह्मलोकात्परत्वेन विष्णोश्चैव पुरी स्मृता ।
सर्वकामसमोपेता सर्वरत्नसमुज्ज्वला ।।५३९।।
मरकतस्तम्भसोपाना नीलध्वजसमाकुला ।
घण्टावितानविस्तीर्णा चारुचामरशोभिता ।।५४०।।

अणिमादि आठ ऐश्वर्यों से समन्वित, नारक, स्थावर, सरीसृपादि, त्रिविधा तामसी, रज और तमोगुणी मानुषी, रजसत्त्वरूपा मौनी, सात्त्विकी दैवी, इन छः प्रकार की सृष्टियों के सर्जक, धर्माधर्म फल प्रदाता, प्रत्येक युग के प्रवर्त्तक ब्रह्मा का यह महत्त्वपूर्ण निवास है ।।५३६।।

तिर्यक्, नारकीय, सात्त्विक, दिव्य और मानुष्य योनियों के स्त्रष्टा, सभी प्राणियों के पितामह, देवों, असुरों और मनुष्यों के सर्जन में संलग्न रहते हैं ।।५३७।।

इसके ऊपर, दो करोड़ योजन पर भगवान् कह रहे हैं कि, प्रिये ! नील कमल के समान आभा से आभासित, ब्रह्मलोकोर्ध्व में विष्णु की पुरी अवस्थित है । यह पुरी समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली, है । सभी रत्नों से नितान्त समुज्ज्वल है ।।५३८-५३९।।

मरकत से बने स्तम्भों और सोपानों से सुशोभित है । यहाँ के भवनों पर नीलपताकायें फहराती हैं ! घण्टा और वितानों से विस्तीर्ण है । सुन्दर चामर यहाँ की शोभा बढ़ाते हैं ।।५४०।।

नीलोत्पलदलप्रख्यैः कन्यावृन्दैः समावृता ।
कामकार्मुकनिर्घोषवित्रस्तमृगलोचनैः ।।५४१।।
नूपुरारावमुखरैः स्खलद्भिर्मृदुविभ्रमैः ।
मनोभवशरायासनिपातशतजर्जरैः ।।५४२।।
सुघूर्णितमदायासविलोलधवलेक्षणैः ।
संसेव्यते स भगवान् विष्णुः कमललोचनः ।।५४३।।
इन्द्रनीलसमाकारो नीलोत्पलदलप्रभः ।
चतुर्भुजो महाकायः पीनवक्षा गदाधरः ।।५४४।।
किरीटी कुण्डली शङ्खी प्रजापालनतत्परः ।
संसेव्यते स भगवान्निकायैरात्मविक्रमैः ।।५४५।।

किरीटं मौलिः । गदाशङ्खौ चक्रशार्ङ्गे अप्युपलक्षयतः । आत्मविक्रमैरिति आत्मन इव विक्रमो येषां तैः, निकायैरनुचरसमूहैः संसेव्यते ॥५४५॥

किञ्च,

विष्णुभक्ताश्च ये नित्यं ध्यानपूजाजपे रताः ।
ते तु गच्छन्ति तत्स्थानं विष्णोरमितविक्रमाः ।।५४६।।

विष्णुभक्ता इति तदाकारोपासनापराः ॥५४६॥

नीलकमल के समान आकर्षक श्यामता से रमणीय कुमारिकाओं से समावृत रहने वाली यह पुरी बड़ी सुन्दर है । काम की धनुष से निष्पन्न अन्तर्निनाद को सुनकर वहाँ की मृगलोचनी अप्सरायें निरन्तर त्रस्त रहती हैं ॥५४१॥

नूपुरों के झंकार से झंकृत, मृदु विभ्रमों से स्खलित, काम के वशीभूत होकर कामुक आयासों से चञ्चल धवल नेत्र वाली अप्सराओं से कमललोचन भगवान् विष्णु नित्य संसेवित हैं ॥५४३॥

भगवान् गदापद्मधारी विष्णु इन्द्रनीलमणि के समान रमणीय हैं । नील-कमल की आभा प्रभा से भास्वर हैं । चतुर्भुज हैं । महाकमनीय काया से कलित हैं और पीन वक्ष के वैलक्षण्य से विभूषित हैं ॥५४४॥

किरीट धारण करते हैं । कुण्डलों से कानों की शोभा से भव्य लगते हैं । शङ्ख धारण करते हैं । प्रजापालक हैं । स्वात्म सदृश सेवकों से संसेवित हैं ॥५४५॥

ऐसे विष्णुभक्त, जो नित्य उनके ध्यान, साधना और उपासना में संलग्न रहते हैं । वे ही उस वैष्णवधाम में जाने के अधिकारी हैं । ऐसे लोग पराक्रमी (पराशक्ति) भाग्यशाली होते हैं ॥५४६॥

अथ–

सप्तकोट्यस्तदूर्ध्वं वै रुद्रलोको व्यवस्थितः ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशश्चत्वरोद्यानमण्डितः ॥५४७॥
सहस्रभूमिकाभिश्च हर्म्यमालाभिरूर्जितः ।
विमानैः पुष्पकैर्युक्तो हंसकुन्देन्दुनिर्मलैः ॥५४८॥
वनोपवनषण्डैश्च सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः ।

सोपानवदुपर्युपरिवर्तिचारुदारु.........भूमयो भूमिकाः । पुष्पकैरिति सङ्कल्पमात्रसञ्चारिभिः । श्रीपरायां तु–

'तद् ब्रह्मोर्ध्वं भवेद्विष्णुः स च कोटिचतुष्टयात् ।
षड्भिः स कोटिभिर्देवः शङ्करः संस्थितो हरः' ॥ इति ।

किरणायां तु–

'दशषट्कोटयः सत्य............................'।

इत्युक्त्वा–

'तस्मादूर्ध्वं भवेद्ब्रह्मा कोटित्रयमितः खग ।
त्रिभिस्तु कोटिभिर्विष्णुश्चतुर्भिस्तु हरः स्थितः' ॥

इनसे सात करोड़ योजन ऊपर रुद्रलोक व्यवस्थित है। यह शुद्ध स्फटिक के समान पारदर्शी धातुओं से भरा हुआ है । स्थान स्थान पर इसमें चत्त्वर उद्यान निर्मित हैं ॥५४७॥

सहस्र सहस्र भूमिकाओं (स्थण्डिलवत् उँची वेदिकायें जिन पर हर्म्य निर्मित किये जाते हैं) आचार्य के अनुसार दारुनिर्मित सोपानवत् ऊर्ध्व ऊर्ध्व र्निमित मालिकायें भी भूमिकायें कहलाती हैं ।

राजमहलों को हर्म्य कहते हैं । राजप्रसाद भी हर्म्य कहलाते हैं । इनसे सुशोभित रुद्रलोक है । यह अनेकानेक पुष्पक विमानों से समन्वित है । ये विमान हंस और कुन्द के समान श्वेत और निर्मल हैं ॥५४८॥

अनेकानेक वनों उपवनों से रुद्रलोक की भूमि सुशोभित है ।

श्रीपराशास्त्र में लिखा है कि, 'ब्रह्मा के ऊर्ध्व में विष्णु चार करोड़ योजन पर हैं और छः करोड़ ऊपर देवाधिदेव शङ्कर अवस्थित हैं' ।

श्रीकिरणा कहती है कि, सोलह करोड़ ऊर्ध्व सत्यलोक अवस्थित है । इस कथन के बाद यह भी लिखा है—

इति प्रकियाभेदो न अवस्थितस्यास्य देवतात्रयस्य सङ्कलय्य दशकोटिदेशत्वान-पायाद्विरुद्धः । अत्र च–

मारुताः सुखसंस्पर्शा वर्तिकर्पूरगन्धयः ।।५४९।।

एष च–

नदीनदह्लदाकीर्णः पद्मिनीषण्डमण्डितः ।

तथा च–

वरेण्या वरदा चैव वरिष्ठा वरवर्णिनी ।।५५०।।
वसिष्ठा च वराहा च वरारोहा च सप्तमी ।
गङ्गा ह्येताः समाख्याता रुद्रलोकवहाः सदा ।।५५१।।

एताश्च–

लक्षपत्रदलाढ्यैश्च सितपद्मैर्विभूषिताः ।
इन्द्रनीलनिभैर्नालैर्योजनायतगन्धिभिः ।।५५२।।

दलानि प्रधानपत्राणि, प्रत्येकं लक्षपत्राणीत्यर्थः, उपलक्षितै-रित्यर्थः ।।५५२।।

हे गरुड़ ! उसके ऊपर ब्रह्मा ३ करोड़ मिति पर है । तीन करोड़ योजन पर विष्णु और चार करोड़ योजन पर भगवान् शङ्कर हैं । यह सब प्रक्रियाभेद के आधार पर लिखी हुई बातें हैं । इन तीनों देवताओं की दूरी कुल मिलाकर दश करोड़ की दूरी ही होती है । इसमें कोई हानि नहीं । अतः किसी प्रकार के विरोध की भी कोई आवश्यकता यहाँ नहीं । यहाँ की हवायें सुखद संस्पर्श प्रदान करती हैं । दीपक में कपूर की गन्ध वाली बाती से जो सुगन्ध निकलती है, वह वहाँ की हवाओं में भरी हुई है ।।५४९।।

नदी, नदों, ह्लदों और झीलों से वहाँ की भूमि भरी हुई है । पद्मिनी खण्ड से माण्डित उनकी शोभा अवर्णनीय है । रुद्रलोक में बहने वाली सात बड़ी प्रसिद्ध नदियाँ है । इनके नाम इस प्रकार हैं । १.वरेण्या, २.वरदा, ३.वरिष्ठा, ४.वरवर्णिनी, ५.वशिष्ठा, ६.वराहा और ७.वरारोहा । इनको गङ्गा भी कहते हैं । ये सदा प्रवाहमयी नदियाँ हैं ।।५५०-५५१।।

इनमें ऐसे कमल खिले हैं, जिनमें शत या सहस्र या अयुत नहीं, वरन् एक लाख पत्र होते हैं । ये श्वेत लक्षदल कमल बड़े ही विचित्र होते हैं । इनके नाल इन्द्रनील मणियों के समान होते हैं । इनसे निकलने वाली गन्ध एक योजन तक के लोगों को सुरभि से विभोर कर देती है ।।५५२।।

किञ्चात्र रुद्रलोके-

स्त्रीसहस्रकदम्बाढ्याः पुष्पप्रकरधूसराः ।
शरदिन्दुनिभा नार्यो नवनीतसुकोमलाः ।।५५३।।
सुभ्रूललाटवदनाः कृशोदर्यो मदालसाः ।
अलिपुञ्जनिभैः केशैर्मृगामोदसुगन्धिभिः ।।५५४।।
प्रलम्बश्रवणाधाराः पद्मपत्रायतेक्षणाः ।
दाडिमीपुष्पसङ्काशैरोष्ठैरुत्पलगन्धिभिः ।।५५५।।
रम्भानिभाभिर्जङ्घाभिर्बाहुभिर्बिसकोमलैः ।
अशोकपल्लवाकारैः पादैः पद्मदलोपमैः ।।५५६।।
नखैश्च केतकीप्रख्यैर्दशनैर्मौक्तिकोज्ज्वलैः ।
स्वभावसुसुगन्धाढ्यैः प्रस्रवद्भिरिवामृतम् ।।५५७।।
हारकेयूरकटकैः सीमन्तमणिजालकैः ।
काञ्चीडोरैः सुरक्तैश्च कुसुमैर्भूषिताः सदा ।।५५८।।

इस रुद्रलोक में रहने वाली सुन्दरियों के सम्बन्ध में क्या पूछना ? लगता है बिजली की कुसुमावली के ये कदम्ब हैं। एक, दो, पचास या सौ नहीं, हजार हजार की टोली में डोलती हैं। शारदीय चन्द्रिका में चमत्कार भरने वाली ये नारियाँ नर्म में निपुण हैं। नवनीत सी सुकोमल हैं। ये नारीरत्न हैं ।।५५३।।

उनके मुख की शोभा में भौंहें और ललाट चार चाँद लगाते हैं। कटि और उदर प्रदेश नारी शरीर के अनुकूल कृश है। यौवन के मद से अलस बनी रहती हैं। केश तो इतने काले हैं, मानों भौंरों की सारी कालिमा केशों में आ गयी हो। केशसज्जा में लगे कस्तूरी की सुगन्ध से वहाँ का वातावरण वासित रहता है ।।५५४।।

नारियों के श्रवण के शोभा के आधार आभूषण प्रलम्बमान हैं। उनके नेत्र कमलदलवत् रक्ताभ और आयत हैं। उनके ओठ दाडिम कुसुमों के समान मसृण हैं। उनके कमल की सुगन्धि मिलती है ।।५५५।।

उनकी जङ्घायें कदलीस्तम्भ की शोभा को भी अतिक्रान्त करती हैं। बिसतन्तुवत् सुकुमार उनके बाहु हैं। अनके पैर अशोक पल्लव के आकार के हैं। पद्म की लालिमा से ललित हैं ।।५५६।।

नार्यः स्त्रीसहस्रकदम्बकैः परिवाररूपेणाढ्याः । मृगामोदः कस्तूरिका । श्रवणाधारः कर्णपाली । अशोकपल्लवा लौहित्यस्य, पद्मदलानि तु सौकुमार्यस्य उपमाय । केतक्यो लोहितराजयः स्वच्छाश्च ॥५५८॥

किञ्च,

तारकुम्भनिभाकारैरुन्नतैश्च पयोधरैः ।
सुवृत्तैः पीनपार्श्वैश्च पीनकण्ठसमाश्रितैः ॥५५९॥
गुरुश्रोणीभराक्रान्ता मुक्तावलिविराजिताः ।
राजहंसगतिस्पर्धिमत्तमातङ्गविभ्रमाः ॥५६०॥
नूपुरारावमुखरप्रस्खलन्मृदुविक्रमाः ।
हास्यलास्यविलासाढ्यभ्रूभङ्गतरलेक्षणाः ॥५६१॥

केतकी के समान नख, मोती के समान दन्तपंक्ति, उनके सीमन्त में लगे मणियों की लड़ी से सुरभिनिःसृत हो रही है । लगता है, उनसे अमृत स्रवित हो रहा है । हार, केयूर और कटक से आभूषित उनके शरीर से शोभा विकीर्ण हो रही है । कटि काञ्ची से चारुतम लग रही है । ऐसी रमणियों की रमणीयता से रुद्रलोक बड़ा आकर्षक लगता है ॥५५७-५५८॥

ताल और कलश के समान गोल और उन्नत उनके पयोधर हैं । वे बड़े गोल हैं । उनका घेरा चारों ओर और उभय पार्श्व से पीन होते हैं । उनके कण्ठ तक उनकी पीनता झलकती है ॥५५९॥

गुरु श्रोणी के कारण उन्हें नितम्बिनी कहना उचित है । मुक्तावली से रमणीय है । राजहंस के समान उनकी गति है । वे हस्तिनी हैं । मदमस्त गयन्दों की गति के कारण उन्हें गजगामिनी कहना ही उचित है ॥५६०॥

नूपुर की रुनझुन से मुखर किन्तु गति में स्खलन से उनका डगमग भाव, हास्य, लास्य, विलास में वैचक्षण्य, भ्रूभङ्गिमा में दक्ष चञ्चल लोचनों वाली वे नारियाँ दर्शकों के हृदयों को आह्लादित करती हैं । रुद्रलोक निवासी ऐसे रमणी-रत्नों से अत्यन्त रमणीय हैं ।

ऊपर श्लोक ५५९ में तार शब्द का अर्थ रजत लिखा है । वस्तुतः स्तन के प्रकरण में रजत के कुम्भ का वर्णन कम मिलता है । ताल फल की उपमा दी जाती है । पाठकों को दोनों अर्थों पर ध्यान देना चाहिये । र ल में अक्षर भेद नहीं चलता है ।

लास्य सुकुमार नृत्य को कहते हैं ॥५६१॥

ह्लादयन्तीव गात्राणि रुद्राणां तन्निवासिनाम् ।

तारं रजतम् । पीने कण्ठे समाश्रितं समाश्रयणं येषां पयोधराणां तैः । लास्यं सुकुमारं नृत्तम्, विलासा लीलाः, हास्यादिभिराढ्याः भ्रूभङ्गतरलेक्षणाश्चेति विशेषण-समासः ।

किञ्च,

कामग्रहग्रहाविष्टा घूर्णन्त्यो मदविह्वलाः ।।५६२।।
परिष्वजनमात्रेण मोदयन्त्यो गणेश्वरान् ।

कामे सम्भोगे ग्रहोऽभिनिवेश एव ग्रहो भूतमिति योज्यम् ।

एवंविधरूपलावण्यशालिन्य एताः–

यद्यप्येवंविधा नार्यः

तथापि–

निजभर्तृभयातुराः ।।५६३।।

अस्वैरिण्य इत्यर्थः ।।५६३।।

अतश्च–

वित्रस्तमृगनेत्रास्तु भर्तुरुत्सङ्गमागताः ।

ईदृश्यश्च–

अवगूह्य च सर्वाङ्गैरापीय वदनैर्मुखम् ।।५६४।।

नवग्रह तो प्रसिद्ध हैं । जामाता को दसवाँ ग्रह भी कहा गया है । यहाँ ग्यारहवाँ काम ग्रह का उल्लेख किया गया है । इस ग्रह से पीड़ित लोग इसी की पूजा में लगे रहते हैं । यही हालत यहाँ की है । स्त्री पुरुष दोनों को घूर्मि रोग हो गया है और मद से विह्वल हैं ।।५६२।।

गणेश्वर प्राणों को कहते हैं । निरन्तर परिरम्भ कुम्भ की मदिरापान में निरत रहने मात्र से ही उनके प्राणों का संप्रीणन होता है । विशेष रूप से वहाँ की कामिनियों की यही दशा है । रूप और लावण्य की वारुणी से पूरी तरह प्रभावित हैं । एक विशेषता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कह रहे हैं कि, वे अप्सरायें अपने पतियों के अनुशासन को भयपूर्वक स्वीकार करती हैं ।।५६३।।

डरी हुई मृगलोचनियाँ अपने पतियों की गोद में आकर आनन्द का उत्सव मनाती हैं । वे भी सर्वाङ्ग का आगूहन (आलिङ्गन) करते हैं और उनके रूप का अमृत पीकर पुण्य अर्जित करते हैं ।।५६४।।

क्रीडन्ति रुद्रभवने रुद्रकन्याः सरुद्रकाः ।

किञ्चात्र–

रुद्राश्चैवंविधाकारा ज्ञानयोगबलोत्कटाः ।।५६५।।

कामनिष्ठा अपि ज्ञानयोगाभ्यां न परिहीयन्त इत्यर्थः ॥५६५॥

एते च–

मुकुटैः कुण्डलैश्चित्रैर्महारत्नसमुज्ज्वलैः ।

केयूरकटकैर्डोरैः पुष्पवस्त्रविभूषणैः ।।५६६।।

मुक्ताफलावलीहारैर्ब्रह्मसूत्रोत्तरीयकैः ।

उपलक्षिताः सन्तः ।

महाकाया महोरस्कास्त्रिनेत्राः शूलपाणयः ।।५६७।।

चन्द्रायुतप्रतीकाशाः कर्पूरक्षोददधूसराः ।

सुरसिद्धनुताः सर्वे सुप्रसन्ना वरप्रदाः ।।५६८।।

हरलब्धवरास्तृप्ता दशबाह्विन्दुमौलयः ।

तेषां च–

न तत्र मृत्युर्न जरा न शोकोऽस्ति वियोगजः ।।५६९।।

रुद्र के भवन या भुवन दोनों की यही दशा है । रुद्र की कन्यायें रुद्र से अलग रहने की बात भी नहीं सोच सकतीं । वहाँ के रुद्र ऐसे ही हैं । हाँ ज्ञान योग और बल दोनों दृष्टियों से वे उत्कट हैं ॥५६५॥

मुकुट, कुण्डल और अन्य प्रकार के महारत्नों से समुज्ज्वल रुद्र लोक के निवासी कटक से लटकते सूत्रों से और भी अच्छे लगते हैं । कुसुमस्रजों से शोभित, वस्त्रों से आवृत और आभूषणों से भूषित वे लोग धन्य हैं ॥५६६॥

मुक्तारत्नों की माला और अन्य हारावलियों से, ब्रह्मसूत्रों और उत्तरीय वस्त्रों से वे लोकोत्तर लगते हैं । इनके शरीर के डील-डौल से वे अखण्ड मण्डित हैं । महोरस्क लोगों के तीन नेत्र उनके रुद्र होने को प्रमाणित करते हैं । सबके हाथों में शूल है ॥५६७॥

हजारों चन्द्रों की शोभा से पुरस्कृत हैं । कर्पूर चूर्ण के समान धवल धूसर वे रुद्र देवों और सिद्धों से सदा नमस्कृत हैं । सदा स्वयं सुप्रसन्न रहते हुए दूसरों सुख को प्रदान करने में समर्थ हैं ॥५६८॥

भगवान् भव से उन्हें ऐसा वर प्राप्त है । वे नित्यतृप्त हैं । दश बाहु भूषित उन सभी के शिरोभाग पर चन्द्रमा सदा विराजमान रहता है । वहाँ मृत्यु का भय नहीं । जरा वहाँ नहीं जाती । कभी किसी को वियोगजन्य रोग शोक नहीं होते ॥५६९॥

अतश्चैते–

क्रीडन्ति सार्धं कन्याभिः

न तद्भोगप्रदकर्मक्षये पुनः संसरन्तीत्याह–

संसारभयवर्जिताः ।

केवलमेते–

अधिकारक्षये रुद्रा रुद्रकन्यासमावृताः ।।५७०।।
श्रीकण्ठस्येच्छया सर्वे शिवं यान्ति तनुक्षये ।
गत्वा भूयो न जायन्ते कल्पकोटिशतैरपि ।।५७१।।

इच्छा अत्र अनुजिघृक्षा, तां विनोर्ध्वं सृज्यन्त एवेत्यर्थः ॥५७१॥

तदित्थम्–

एवंविधैरसंख्यातैर्विमानरथगामिभिः ।
महावृषगजारूढैः सिंहवाजिसुवाहनैः ।।५७२।।
लक्षायुतसहस्रैस्तु रुद्रकोटिभिरावृतम् ।
तन्मध्ये सर्वतोभद्रं सिंहद्वारैः सुतोरणैः ।।५७३।।

वे निरन्तर कन्याओं के साथ क्रीडा करने में ही आनन्दमग्न रहते हैं । उन्हें आवागमन के चक्कर में नहीं पड़ना पड़ता । वे संसरण के भय से शाश्वत मुक्त हैं । अधिकार के क्षय हो जाने पर भी वे रुद्र कन्याओं से आवृत लोग इसकी परवाह नहीं कर मस्त रहते हैं ॥५७०॥

वे श्रीकण्ठ 'हर' की इच्छा पर निर्भर होते हैं । शरीर त्याग कर साक्षात् शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं । वे शैवतादात्म्य प्राप्त कर पुनः जन्म ग्रहण नहीं करते । करोड़ों कल्पों में भी उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥५७१॥

इस प्रकार असंख्य विमानों और रथों पर 'हर' की इच्छा से वे विभिन्न यात्रा विहारों में लगे रहते हैं । वहाँ के महावृष भी सवारी के लिये उपलब्ध हैं । हाथियों पर सवार होकर वे आनन्द लेते हैं । सिंह और अश्व दोनों उनके रथों को खींचते हैं ॥५७२॥

रुद्रपुर की शोभा तो अनन्त है । वहाँ दश खरब के लगभग विमान रथ और उनके वाहन हैं । करोड़ों रुद्र हैं । उनके बीच में यह सर्वतोभद्र नगर है । लाखों सिंहद्वारों और तोरणों से वह सुशोभित है ॥५७३॥

स्वच्छमौक्तिकसङ्काशप्राकारशिखरावृतम् ।
नन्दीश्वरमहाकालद्वारपालगणैर्वृतम् ।।५७४।।
किङ्किणीजालमुखरैः पताकाध्वजसङ्कुलैः ।
वितानच्छत्रषण्डैश्च मुक्ताहारप्रलम्बितैः ।।५७५।।
घण्टाचामरशोभाढ्यं दर्पणैश्चोपशोभितम् ।
कलशैर्द्वारन्यस्तैश्च रत्नपल्लवसंयुतैः ।।५७६।।
रचितैश्चित्रशास्त्रज्ञै रत्नचूर्णसमुज्वलैः ।
स्वस्तिकैः पत्रवल्ल्याढ्यैश्चित्रितं भुवनाजिरम् ।।५७७।।
शतसिंहासनाकीर्णं वेदिकारत्नभूषितम् ।
गोपुराट्टालरथकैर्वीथीभिश्च भ्रमान्त्रकैः ।।५७८।।
सर्वरत्नविचित्राढ्यैर्द्वारबद्धैः सुशोभनम् ।
निर्गमैः सुगवाक्षैश्च विटङ्कैः स्फटिकप्रभैः ।।५७९।।

वह निर्मल मौक्तिक सदृश प्राकार शिखरों से समावृत नगर नन्दीश्वर, महाकाल और उनके द्वारपालों से पालित हैं ।।५७४।।

किङ्किणियों के क्वणन से आकर्षण का केन्द्र, ध्वजों और पताकाओं से पूर्ण वितानों और छत्रों से छादित मुक्ताहारों की झालरों से शोभित हैं ।।५७५।।

घण्टा और चामरों से मन्दिर बाजार भरे पड़े हैं । बड़े बड़े दर्पणों से वह रमणीय है । दरवाजों पर रखे कलशों से कलित है । कलशों में रत्न और पल्लव प्रोत हैं ।।५७६।।

सुशिक्षित शिल्पकारों की कला की यह निदर्शन है । रत्न राशि के विकीर्ण चूर्णो से पूर्ण आकीर्ण है । स्वस्तिकों पत्रावलियों से आढ्य है । चित्रित यह भुवन का मानो अजिर भाग है या इसके भवन के अजिर हैं ।।५७७।।

सैकड़ों सिंहासनों से सज्जित है । वेदिकाओं पर सजाये रत्नों से राजित है । इसमें गोपुर हैं । अट्टालिकायें हैं, रथ हैं, वीथियाँ हैं और भ्रमान्त्रक अर्थात् जल को घुमाकर भीतरी अन्त्रनाली से ले जाने वाले पाइपों से युक्त हैं ।।५७८।।

सभी रत्नों की आभा से आभान्वित वे नगर विचित्र द्वारों से सुसज्जित हैं । वायु के निर्मल के साधन सुन्दर सुन्दर गवाक्षों, कंगूरों, पक्षिनिवासों और स्फटिक के समान पारदर्शी स्तम्भों से सुसज्जित हैं ।।५७९।।

स्तम्भैः सोपानबद्धैश्च वज्रवैडूर्यसप्रभैः ।
पूर्णचन्द्रनिभाकारैरण्डैः शिखरमण्डितैः ।।५८०।।
मुक्ताफलप्रभाभिश्च भूमिभिश्च सहस्रशः ।
नाट्यशालैः सुशोभाढ्यैर्नृत्तगीतरवाकुलैः ।।५८१।।
मंण्डपै रत्नचित्राढ्यैः सभामण्डलनिर्भरैः ।
आसीनै रुद्रवृन्दैश्च रुद्रकन्याकदम्बकैः ।।५८२।।
मत्तवारणकै रम्यैश्चन्द्रशालासुशोभनैः ।
धूपितं धूपवर्तीभिः कुङ्कुमोदकसेचितम् ।।५८३।।
चित्रपट्टैस्तु संछन्नं पुष्पप्रकरसङ्कुलम् ।
तूर्यशब्दजयध्वानकाहलाकूजितेन च ।।५८४।।
वंशवीणामृदङ्गैश्च गोमुखैर्मुखवादनैः ।
पणवैस्तालवाद्यैश्च शङ्खभेरीरवेण च ।।५८५।।

सीढ़ियों दर सीढ़ियों की एक परम्परा वहाँ घरों में बनी हुई है । वज्र और वैदूर्य से प्रभान्वित हैं । घरों के ऊपर पूर्णिमा के चन्द्र के समान चमकीले और अण्डाकार शिखरों से समन्वित हैं ॥५८०॥

मुक्ताफल की प्रभा से भास्वर, हजारों प्रकार की ऐसी जगहें हैं, जहाँ नाट्यशालायें बनी हुई हैं । उनके रंगकर्मी नृत्त-गीत प्रस्तुत कर रहे हैं । उनसे सुन्दर गीतों की ध्वनि विनिःसृत हो रही हैं ॥५८१॥

रत्नचित्रों से चमत्कार पूर्ण रत्नमण्डल पर निर्भर उन रुद्रों का समूह विराजमान हैं । उनके साथ रुद्रकन्यकायें भी नृत्य का आनन्द ले रहीं हैं ॥५८२॥

मत गजेन्द्रों, रम्य चन्द्रशालाओं से रुचिर, धूप से आधूपित और कुङ्कुम के रंग से बने जलों से सिञ्चित वे स्थान अत्यन्त रमणीय हैं ॥५८३॥

सुन्दर सुन्दर चित्रपट्ट हैं । ऐसे चित्रपटों से वह नगर व्याप्त है । चारों ओर फूल खिले हुए हैं । तुरही की जयध्वनियों से और कोकिलों के कूजन से या मुर्गों की कूङ्कार से पूरा नगर व्याप्त है ॥५८४॥

वंशी, वीणा और मृदङ्गों से, गोमुखों से, मुखवाद्यों से, पणवों से, ताल-वाद्यों से, शङ्खों और भेरी ध्वनियों से पूरा नगर निनादित है ॥५८५॥

दुन्दुभीनादशब्देन मुरजस्फालनेन च ।
करस्फोटमहाशब्दैः सिंहनादप्रगुञ्जितैः ।।५८६।।
गर्जद्भिर्गणवृन्दैश्च मेघस्तनितनिःस्वनैः ।
वन्दिनां स्तोत्रशब्देन सामवेदरवेण च ।।५८७।।
हुडुङ्काराट्टहासैश्च गेयझाङ्कारयोजितैः ।
वृषनन्दितशब्देन गजवाजिरवेण च ।।५८८।।
काञ्चीनूपुरशब्देन नदतीव महत्पुरम् ।

नन्दीश्वरमहाकालप्रधाना द्वारपालगणा इति समासः । किङ्किणीजालमुखरैरित्यादि वितानच्छत्रषण्डविशेषणम् । मुक्ताहारप्रलम्बितैरिति पूर्वनिपातव्यत्ययः । चित्रशास्त्रज्ञैः कर्तृभी रत्नचूर्णेन रचिता ये पत्रवल्ल्याढ्याः पत्रलतालङ्कृताः स्वस्तिकास्तैर्विचित्रम् । तत्र रुद्रभुवने भुवनाजिरं भुवनाङ्गनमिति योज्यम् । वेदिकाभिश्चतुरस्त्रभूमिकाभी रत्नैश्च प्राकारस्थैर्भूषितम् । गोपुराणि प्रधानद्वाराणि । अट्टालाः पुरप्राकाराः । रथका रचनाविशेषाः । वीथ्यो विमानसञ्चारभुवः । भ्रमान्त्रकैः जलप्रवाहप्रणालैः । सर्वरत्नविचित्रत्वाच्च आढ्यैः स्फीतैर्द्वारोपान्तगतैः शोभनम् । निर्गमाः मात्राः (?) । गवाक्षास्तदवलोकनजालकस्थानानि । विटङ्काः स्तम्भशीर्षकाः । अण्डा वर्तुलसंस्थानदेवगृहाः । रत्नरचनापरिष्कृतं यच्चित्रं तेनाढ्याः । तथा सभास्थानेषु यानि रत्नचूर्णरचितानि मण्डलानि तैर्निर्भरा ये मण्डपास्तैर्युक्तम् । काहलास्तु त्रिखण्डाः । गोमुखा तट्टरी । पणवोऽन्तस्तन्त्रीवलयझाङ्कारिणी ढक्का । तालवाद्यं वाद्यशब्दः । दुन्दुभिः कांस्यशब्दः । फनत्कारिणी ढक्का भेरी । गर्जनं सर्वप्राणबलोत्थो नादः । भक्तिवैवश्येनोच्चरन्नान्तरः शब्दो **हुडुङ्कारः** । वृषस्य परमेश्वरवाहनाभिमानप्रहर्षोत्थितो नादो नन्दितशब्दस्तेन । काञ्चीनूपुरशब्दो नृत्यद्रुद्रकन्यासम्बन्धी । एवमीदृशैः शब्दैः पुरमेव साक्षान्नदतीति ज्ञायते । तदित्थम्–

दुन्दुभियों के निनाद से मुरज के आस्फालन से हाथ की तालियों से और सिंह नाद से पूरा नगर आपूरित है ॥५८६॥

गणवृन्दों की गर्जना से, मेघों की गड़गड़ाहट से, वन्दियों के स्तोत्रगान से, सामवेद के सामस्वरों से शब्दायमान यह नगर नितान्त सुन्दर है ॥५८७॥

हुडुङ्कार के हुङ्कार से झंकृत है । उसके साथ गायन ध्वनियों की गुंजार है । वृषों का निनदन है, घोड़ों की हिनहिनाहट है । हाथियों की चिग्घाड़ है ॥५८८॥

नायिकाओं के नूपुरों का शिञ्जन है । इस तरह यह कहा जा सकता है कि, सारा शहर ही शब्दायमान होकर आनन्द का आवाहन कर रहा है । यह कहा

सर्वसम्पत्करं श्रीमच्छङ्करस्य तु मन्दिरम् ।।५८९।।

तन्निवासिनामित्यर्थात् ।।५८९।।

अत्रासौ भगवान् रुद्रो ब्रह्मविष्णिवन्द्रपूजितः ।
गङ्गया स्नपितो नित्यं दिव्यवस्त्राम्बरच्छदः ।।५९०।।
पृथिव्या गन्धलिप्ताङ्गः श्रिया पुष्पैः सुपूजितः ।
सप्तस्वरप्रमुख्यैश्च सरस्वत्या च संस्तुतः ।।५९१।।

पृथिवी गन्धगुणा । श्रीः पुष्पाश्रिता । एवं च गङ्गादिदेवता अस्य ब्रह्माण्डस्योपरि वक्ष्यमाणभुवनेभ्यः प्राकाम्यादवतीर्णाः स्वोचितं स्नानादि कुर्वत्योऽन्तरङ्गपरिवाररूपाः ।।५९१।।

अपि च अस्य देवस्य–

पूर्णेन्दुरातपत्रं च स्वयमेव व्यवस्थितः ।

तस्मिंस्तु–

गङ्गा तूत्तरिका च्छत्रे

गङ्गा तु उत्तरिकात्वं प्राकाम्येनाश्रित्य स्थिता । किञ्चास्य–

सर्वादित्याश्च दीपकाः ।।५९२।।

जा सकता है कि, समस्त सम्पत्तियों का आकार यह नगर भगवान् रुद्र की यह नगरी गूँज रही है ।।५८९।।

रुद्रपुर का यह वर्णनात्मक शब्दचित्र रुद्रपुर के उपयुक्त नहीं हैं । पौराणिकता से प्रभावित किसी बन्दी कवि का यह प्रक्षिप्त अंश है । वर्णन में क्षेपकों की भरमार स्वाध्यायशील पुरुषों की भावना के विपरीत है । रुद्रों और रुद्र-कन्याओं का उन्मुक्त विहार किसी दृष्टि से औचित्य की सीमा का स्पर्श नहीं करता । यह भगवद्वाक्य नहीं है । किसी शब्दशिल्पी की शब्दकला का स्थूल वर्णन है । यदि रुद्रपुर के रुद्र भी कामकला के नैपुण्य प्रदर्शन के ही प्रतीक हैं, तो वे कौन सा आदर्श समाज को दे सकते हैं ? श्लोक ५४८ से श्लोक ५८८ तक के वर्णन को उपादेय नहीं कहा जा सकता ।

ऐसे सुन्दर नगर में ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र से अर्चनीय भगवान् रुद्र गङ्गा के पावन नीर से अभिषिक्त हैं । नित्य दिव्य वस्त्राम्बरों से वे विभूषित होते हैं । पृथिवी गन्धवती होती है । इसी के गन्ध से उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग विलिप्त किये जाते हैं । माँ लक्ष्मी पुष्पों से उनकी पूजा करती हैं । माँ सरस्वती वहाँ उपस्थित सप्तस्वरों की सरगम रागिनी सुनाती हैं ।।५९०-५९१।।

तथा–

पुष्पदन्तगणेशाद्यैरासनं तस्य संवृतम् ।

तस्मिंश्चासने–

कपिलः कर्कटश्चैव विमर्दः कङ्कटस्तथा ।।५९३।।

विक्रमश्च दृढश्चैव निष्कम्पो निष्कलस्तथा ।

अष्टौ ते हरयः प्रोक्तास्त्रिनेत्रा भूरिविक्रमाः ।।५९४।।

सिंहरूपाः सुतेजस्काः सटाविकटभास्वराः ।

एतादृशैः–

शक्तिरूपधरैर्मन्त्रैर्योगैश्वर्यसमन्वितैः ।।५९५।।

आसनं विवृतं तैस्तु महोत्साहैर्बलोत्कटैः ।

अस्य भगवतो ब्रह्माण्डान्तरावस्थितस्यापि [1]परमेव माहात्म्यमिति कृत्वा–

'शिवशक्तिमया मन्त्रा न्यस्तव्या वीरवन्दिते' । (२/६३)

इति पूर्वोक्तभैरवासनवच्छिवशक्तिपरमार्था एव सिंहाः ।

तत्र भद्रासने रुद्रः स्थितश्चन्द्रार्धशेखरः ।।५९६।।

पूर्णिमा का पूर्णचन्द्र भगवान् रुद्र के लिये छत्र का काम करते हैं । भगवती गङ्गा छत्र की उत्तरिका बन कर व्यवस्थित है । सारे आदित्य वहाँ दीपक का काम करते हैं ।।५९२।।

मन्त्रों का न्यास तो सिंहासन में होता ही है । योग के ऐश्वर्य भी वहाँ रहते हैं । पुष्पदन्त, गणेश आदि उसके आसनों के इर्द गिर्द घूते रहते हैं । कपिल, कर्कट, विमर्द, कङ्कट, विक्रम, दृढ, निष्कम्प, निष्कल ये आठ हरि रूप, अत्यन्त पराक्रमशाली सिंह तेजस्वी और सटा के विकट रूप से विचित्र लगते हैं । ऐसे शक्ति के रूप धारण करने वाले वहीं रुद्र सिंहासन के आधार रूप में रहते हैं ।।५९३-५९५।।

ये महान्उत्साह सम्पन्न और बलवान् हैं । ये शिव शक्ति के परमार्थ रूप हैं । इस रुद्र के भद्रासन के वे शृङ्गार हैं । ऐसे आसन पर चन्द्रशेखर भगवान् रुद्र विराजमान होते हैं ।।५९६।।

---

१. वर० क. पाठः ।

सर्वलक्षणसम्पूर्णः सर्वाभरणभूषितः ।
त्र्यक्षो दशभुजो देवो जटामुकुटमण्डितः ॥५९७॥
पीनवक्षःस्थलोरुश्च पीनस्कन्धो महाभुजः ।
बद्धपद्मासनासीनः कर्पूरक्षोदधूसरः ॥५९८॥
वरदाभयपाणिश्च सर्वायुधधरस्तथा ।

भद्रं प्रशस्तम् । वरदाभयौ पाणी मुख्यौ । सर्वायुधानि पूर्वोक्तानि खड्ग-खेटकादीनि ।

किञ्च,

शतपत्राङ्कितैश्चैव हस्तपादैः सुकोमलैः ॥५९९॥
चन्द्रबिम्बनखाभाभिरङ्गुलीभिरलङ्कृतैः ।
सुश्लिष्टजानुगुल्फैश्च पादैश्चैव समुन्नतैः ॥६००॥
पूजितैर्गणरुद्रैश्च ब्रह्मविष्ण्विन्द्रवन्दितैः ।

शतपत्रपद्मचिह्नितहस्तपादत्वादिना दिव्यलक्षणत्वमुक्तम् । पादैरिति जातौ बहुवचनम्, प्राकाम्यतो वा 'यो विश्वतस्पात्' इति स्थित्या बहुचरणतोऽपि अस्य । इत्थंभूतलक्षण एतास्तृतीयाः ।

भगवान् सर्वलक्षणसम्पन्न हैं । समस्त आभरणों से भूषित हैं । त्रिनेत्र हैं । दशभुजाओं से युक्त हैं । दिव्य जटा मुकुट से मण्डित हैं ॥५९७॥

पीनवक्षस्थल, पीनोरु, पीनस्कन्ध और महाबाहु हैं । पद्मासन पर भगवान् विराजमान रहते हैं । कर्पूरचूर्ण के कारण धूसर वर्ण के लगते हैं ॥५९८॥

वरद अभय मुद्रा में विश्व को अभय का वरदान प्रदान करते हैं । सारे अस्त्र-शस्त्र वे धारण करने वाले हैं । शतपत्राङ्कित सुकुमार चरण और हाथ सामुद्रिक शास्त्र के लक्षणों ये युक्त हैं ॥५९९॥

नखों में चन्द्रबिम्ब, अंगुलियों में अरबिन्द, जानु और गुल्फ की बनावट में विधाता की संश्लिष्ट कला और समुन्नत तेजपूर्ण तैजसी देवी से समन्वित पादपृष्ठ हैं ॥६००॥

ऐसे महामहनीय परमेश्वर रुद्रदेव गणरुद्रों से नित्य पूजित हैं । ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रदेव से अविरत वन्दित महादेव हैं । उनकी सेवा में चामर और व्यजन अनवरत आन्दोलित कर उन्हें सुखस्पर्शी वायु से आनन्द निमग्न रखा जाता है ।

किञ्च,

चामरव्यजनोत्क्षेपै रुद्रस्त्रीभिः समन्ततः ।।६०१।।
वीचितस्तु सदा श्रीमांश्चन्द्रकोटिसमप्रभः ।
ज्ञानामृतसुतृप्तात्मा योगैश्वर्यप्रदायकः ।।६०२।।
ध्यातो वै योगिभिर्नित्यं प्रसन्नवदनेक्षणः ।
प्रहसन् स इवाभाति निर्मलज्ञानरश्मिभिः ।।६०३।।
अज्ञानतिमिरं हत्वा दर्शयेत्परमं वपुः ।
सर्वसौख्यप्रदाता च रुद्रमातृगणावृतः ।।६०४।।

ध्यातः सन् परस्वरूपानुप्रवेशात् ज्ञानरश्मिभिः प्रहसन्निवाभाति । अतश्चाज्ञानं हत्वा परं स्वरूपं दर्शयत्येव ।।६०४।।

किञ्च,

तस्योत्सङ्गता देवी तप्तकाञ्चनसुप्रभा ।
पूजिता योगिनीवृन्दैः साधकैः सुरकिन्नरैः ।।६०५।।

चामरचारिणी और व्यजनवाहिकायें रुद्र स्त्रियाँ इस कार्य में सदा सावधान रहकर सेवा करती हैं ।।६०१।।

ज्ञान के अमृत से शाश्वत सुतृप्त भगवान् भक्तों को ज्ञान की प्रेरणा देते हैं । वे योगजन्य ऐश्वर्य को प्रदान करते हैं । सदा श्रीमान् भगवान् करोड़ों चन्द्रों की शोभाराशि की प्रभा को अतिक्रान्त कर भासित होते हैं ।।६०२।।

वे योगियों के द्वारा नित्य ध्यात हैं । उनके मुख और नेत्रों से प्रसन्नता का उत्स फूटता है । निर्मल ज्ञानरश्मियों के प्रभाव से प्रतीत होता है, मानों महादेव हंस रहे हैं ।।६०३।।

अज्ञान के अन्धकार का विध्वंस कर भगवान् अपने ज्ञान से प्रकाशमान परम विग्रह के करुणापूर्वक साक्षात्कार का अनुग्रह करते हैं । समग्र सौख्य राशि प्रदान करते हैं और रुद्रमातृकाओं से सदा आवृत रहते हैं । ध्यान करने पर परमात्म रूप में अनुप्रवेश प्राप्त साधक उन्हें सर्वदा प्रसन्न देखता है । अज्ञान का अवश्य विनाश कर अपने परम रूप का वे अवश्य दर्शन कराते हैं ।।६०४।।

भगवान् भैरव के उत्सङ्ग में बैठने वाली देवी उमा तपे हुए सोने की शुद्ध सुप्रभा से भूषित हैं । योगिनियों के वृन्द नित्य उनकी पूजा करता है अर्थात् उनसे नित्य पूजित हैं । देवों और किन्नरों तथा अन्य साधकों की आराध्य भगवती भैरवी नित्य पूज्य हैं ।।६०५।।

सर्वलक्षणसम्पूर्णा सर्वाभरणभूषिता ।

योगसिद्धिप्रदा नित्यं मोक्षाभ्युदयदायिका ।।६०६।।

देवस्याभिमुखी नित्यमुमा तु ललितेक्षणा ।

परावेशशक्तितद्वन्तावेतदपरं रूपं श्रित्वा ब्रह्माण्डान्तःसृष्टिसंहारौ कुर्वात इत्याह–

शक्तिश्चापररूपेण शक्तिमांश्च हरस्तथा ।।६०७।।

ब्रह्माण्डे सृष्टिसंहारौ करोति च शिवेच्छया ।

चकारावत्र तुल्ययोगे । तथेत्यपररूपेण । चकारः स्थितिविलयानुग्रहान् समुच्चिनोति । शिवोऽत्र परमः । किञ्चेदम्–

दीक्षाज्ञानविहीना ये लिङ्गाराधनतत्पराः ।।६०८।।

ते प्रयान्ति हरस्थानं सर्वैश्वर्यसुखावहम् ।

अनेनापि क्रमेणास्यानुग्राहकत्वमित्यर्थः ।

जरामरणनिर्मुक्ता व्याधिशोकविवर्जिताः ।।६०९।।

समस्त लक्षणों से वे समन्वित हैं । अङ्ग प्रत्यङ्ग में आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं । ये योगसिद्धि प्रदान करती हैं । इनकी आखों का लालित्य लोकोत्तर है ।।६०६।।

इससे यह स्पष्ट है कि, विश्वप्रसर की शक्ति की प्रतीक भगवती उमा ही अपर रूप से वहाँ प्रतिष्ठित हैं । इन्हीं उत्सङ्गगता अधीश्वरी के आधार पर रुद्र को शक्तिमान् कहते हैं । यही दोनों पर रूप से ब्रह्माण्ड में सृष्टि संहार की लीला करते हैं ।।६०७।।

इन रहस्य का उद्घाटन यहाँ हो जाता है कि, सृष्टि और संहार की लीला शिवेच्छा के अनुसार ही सम्पन्न होती है । शक्ति शक्तिमान् का यह लोक परम पावन माना जाता है । वहाँ वही लोग पहुँचते हैं, जो दीक्षा से अज्ञान का संहार कर चुके होते हैं ।।६०८।।

वह स्थान सभी ऐश्वर्यों सुखों को प्रदान करने वाला होता है । लिङ्ग रूप शिव की आराधना में तत्पर लोगों को भी वहाँ जाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है । वहाँ के लोग जरा और मरण दोनों से विमुक्त होते हैं । उन्हें कोई व्याधि नही होती और शोक से वे रहित होते हैं ।।६०९।।

ते च–

नाधो यान्ति पुनर्देवि संसारे दुःखसागरे ।

किन्तु–

शिवं यान्ति ततश्चोर्ध्वं श्रीकण्ठेन समीक्षिताः ।।६१०।।

तत इति हरस्थानात् । सम्यगीक्षिताः शक्तिपातेनानुगृहीताः । तदेवमस्य पुरस्य भगवदधिष्ठानादयं महिमा—यत्तत्प्राप्ता नाधो यान्ति; अपि तु श्रीकण्ठनाथेन सम्यगनुग्रहदृष्ट्येक्षिता मुच्यन्ते, अन्यथा तु ऊर्ध्वोर्ध्वमेव क्रमेण भोगाय सृज्यन्ते ।।६१०।।

इत्थम्–

रुद्रलोकः समाख्यातस्ततश्चोर्ध्वमुमे शृणु ।
उत्तरोत्तरवृद्ध्या च भुवनं भुवनं स्थितम् ।।६११।।

वृद्धिः प्रमाणविभवाभ्याम् । सा चाग्रे वक्ष्यते ।।६११।।

सम्प्रति तु–

ब्रह्माण्डस्याप्यधोभागे रुद्रलोकस्य चोर्ध्वतः ।
दण्डपाणेः पुरं ज्ञेयं नानारुद्रगणावृतम् ।।६१२।।

ऐसे सौभाग्यशाली समाराधक भी इस विश्व में हैं, जो इस हर स्थान को भी अतिक्रान्त कर इससे भी ऊर्ध्व लोकों में प्रस्थान करते हैं । ऐसे लोग भगवान् श्रीकण्ठ से सम्यग् रूप से दीक्षित अर्थात् शक्तिपात से अनुगृहीत होते हैं ।

इस पुर का यह अप्रमित महत्त्व है कि, इसे प्राप्त कर अधो लोकों में फिर नहीं जाते । श्रीकण्ठ के अनुग्रह का यह सुफल है ।।६१०।।

हे उमे ! सुनो, तुमको मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि, इससे ऊपर भी रुद्र लोक ही है । श्रीकण्ठ की कृपा से वहाँ जाने वाले लोग उत्तरोत्तर सम्मान और विभव वृद्धि से तुष्ट होकर ऊर्ध्व गमन करते हैं और नाना प्रकार के भागों का उपयोग करते हैं ।।६११।।

ब्रह्माण्ड के अधोभाग और रुद्रलोक के ऊर्ध्व भाग में भगवान् दण्ड-पाणि भैरव का भव्य नगर है । इस पुर में भी नाना समूहों में रुद्र लोग रहते हैं ।।६१२।।

दण्डपाणिस्तु भगवान् योगैश्वर्यबलान्वितः ।
दण्डः पाणितलेनैव धृतो येन शिवेच्छया ।।६१३।।

रुद्रभट्टारक एवानेन वपुषा स्थितः ॥६१३॥

विवृणोति च ब्रह्माण्डे मोक्षमार्गं सुदुर्भिदम् ।
विधिनाराधितश्चैव अनुध्यानाच्छिवेच्छया ।।६१४।।

अनुध्यानमास्थाय विधिनार्चाजपादिरूपेणाराधितः सन् ब्रह्माण्डे मोक्षमार्गं सुदुर्भिदं योगिभिर्महता प्रयत्नेन भेत्तुं शक्यं विवृणोति विगतावरणं करोति ब्रह्माण्डकर्परिकाविभेदनयुक्त्या प्रगुणीकरोति, न तु रुणद्धि । अथ च परचैतन्य-स्फारात्मा भगवान् रुद्रः स्वशक्तिगतसुस्पष्टीकृतप्राणदण्डप्रयोगेण शरीरगतहृत्प्रदेशा-श्रितस्वात्माख्यातिरूपहृद्ग्रन्थ्याख्ये ब्रह्माण्डे मोक्षमार्गं करोति–

'हृदये यः स्थितो ग्रन्थिरध ऊर्ध्वनियामकः' ।

इत्याम्नाताख्यातिग्रन्थिप्रशमनेन मध्यमार्गगतशक्तिभूमिम्–

'...............शैवी मुखमिहोच्यते' । (वि०भै० २२)

इत्याम्नायोक्तस्थित्या शिवताप्राप्तिहेतुं स्फुटयतीत्यान्तरोऽर्थः, न तु ब्रह्मबिलान्ता ब्रह्माण्डव्याप्तिरिति व्याख्यातव्यम् । एवं हि जलाद्यावरणव्याप्तिर्देहाश्रया न भवेत्,

---

भगवान् दण्डपाणि योगजन्य ऐश्वर्य के महाप्रभाव से विश्व को भावित करते हैं । परम शिव की इच्छा से अपने हाथों में दण्ड धारण करते हैं । इसलिये दण्डपाणि संज्ञा से विभूषित हैं ॥६१३॥

यह कहा जा सकता है कि, रुद्र भट्टारक ही इस रूप में अवस्थित हैं । इस ब्रह्माण्ड मण्डल में सुदुर्भिद मोक्षमार्ग के समस्त आवरणों का निराकरण करते हैं । विधिपूर्वक जपादि चर्या के आचरण से साधक उनकी अराधना करते हैं । उनका निरन्तर अनुध्यान करते हैं । इसी का परिणाम है कि, वे प्रसन्न होकर मोक्षमार्ग की सभी बाधायें दूर करते हैं । वह यह जानते हैं कि, जिस मार्ग से मोक्ष को उपलब्ध हुआ जाता है, उसका भेदन अत्यन्त दुष्कर है । इसीलिये उसे सुदुर्भिद कहते हैं । सुदुर्भिद के भेदन की युक्ति केवल उन्हीं भगवान् के पास है । परचैतन्य परात्मा भगवान् रुद्र स्वात्मशक्तिगत प्राणदण्ड के प्रयोग से साधकों के हृदय से अख्याति रूप अज्ञानावरण को दूर कर देते हैं । हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है । वह ग्रन्थि अधोगति और ऊर्ध्व दोनों शक्तियों की नियामिका है । इसके प्रशमन से शिवता की प्राप्ति सरल हो जाती है । मेरी दृष्टि में आचार्य

'नाड्याधारस्तु नादो वै भित्त्वा सर्वमिदं जगत् ।
अधःशक्त्या विनिर्गत्य यावद्ब्रह्माणमूर्ध्वतः ॥
नाड्या ब्रह्मबिले लीनस्त्वव्यक्तध्वनिरक्षरः ।
नदते सर्वभूतेषु शिवशक्त्या त्वधिष्ठितः' ॥ (स्व० १०/१२२३)

इत्यादिश्च भाविग्रन्थो भेदव्याप्तिहान्या निर्विषयः स्यात् । यत्तु–

'सौषुप्तेऽध्वन्यस्तमितो हित्वा ब्रह्माण्डगोचरम्' । (२/८)

इति श्रीस्पन्दे श्रीगुरुभिर्निबद्धम्, तद्ब्रह्मबिलाधिष्ठातृवक्ष्यमाणपञ्चब्रह्मोपलक्षितो यः शक्त्यण्डपर्यन्तोऽध्वा, तदभिप्रायेण स्थितमित्येतद्भ्रान्त्यापि न मुण्डान्ता ब्रह्माण्डव्याप्तिर्व्याख्येयेति यथाव्याकृतमेव भद्रम् ॥६१४॥

का यह शास्त्रार्थ केवल पाण्डित्य प्रदर्शन है । उक्त दण्डपाणि प्रकरण से यह मेल नहीं खा रहा है । इससे जलाद्यावरण व्याप्ति देहाश्रया नहीं रह जाती है । इस पटल में आगे (१०/१२३२-१२-३३) में कहा गया है—

मुख्य नाडी का आधार नाद इस सारे संसार का भेदन कर अधःशक्ति के कारण ब्रह्म तक पहुँचता है । जब नाडी ब्रह्मबिल में लीन हो जाती है, उस समय अव्यक्त ध्वनि अक्षर भाव से नदन करता है । यह नदन ही समस्त प्राणियों के प्राणस्पन्द के रूप में नित्य स्पन्दित हो रहा है' ।

इस ग्रन्थ के अंश के द्वारा स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि, उक्त अवस्था, भेदात्मकता की समाप्ति पर निर्विषयत्व की उपलब्धि की अवस्था के ही समान है ।

थोड़ी और गहराई से छान-बीन करने पर एक बात और सामने आती है । श्रीस्पन्द कारिका (२/८) कहती है कि, अध्ववर्ग अस्तमित तभी होता है, जब सौषुप्त स्थिति का उल्लास होता है । यह स्थिति ब्रह्माण्डगोचर नहीं है, यह सोचने की बात है । वस्तुतः ब्रह्मबिल के पाँचों ब्रह्म ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात हैं । ये पञ्च ब्रह्म कहलाते हैं । इनसे उपलक्षित अध्वा-वर्ग शक्त्यण्ड पर्यन्त व्याप्ति से पूर्ण हैं । शक्त्यण्ड चौथा अण्ड है । पहला अण्ड पृथ्व्यण्ड, २.प्रकृत्यण्ड, ३.मायाण्ड और चौथा शक्त्यण्ड । यहाँ तक केवल पञ्च ब्रह्म भाव की सीमा मानी जाती है ।

इस तथ्य को सामने रखकर सबका समन्वय बैठा कर कोई व्याख्या करनी चाहिये । कहीं व्याख्या में दोष न आ जाय, इसके प्रति सावधान रहना चाहिये ॥६१४॥

एवं दण्डपाण्यन्ते रुद्रलोके मूर्तिद्वयेनावस्थितो विश्वाधिपतित्वाद् मूर्तीशमध्ये पशुपतिर्यः, स रुद्राधिष्ठाता । ये तु अन्ये शर्वादयः सप्त मूर्तीश्वरास्ते भूरादि-सत्यान्तेषु सप्तसु लोकेष्वधिपतय इत्यादिशति–

सप्तलोकेषु ये रुद्रा

अधिपतयः । तान्–

कथयामि समासतः ।

तानाह–

शर्वो रुद्रस्तथा भीमो भव उग्रस्तथैव च ।।६१५।।

महादेवस्तथेशानो रुद्रलोकाधिपास्त्वमी ।

लोकानां भूरादीनां यथासंख्यमधिपाः । अनेनैवाशयेन–

निवृत्त्यभ्यन्तरे पृथ्वी शतकोटिप्रविस्तरा ।

तस्यां च भुवनानां च शतमष्टोत्तरावधि ।। (स्व० ४/१०२)

इत्येतद्व्याख्याने कालाग्निः कृष्माण्डो हाटक इति ब्रह्माण्डान्तरधोभागे त्रयः, भूर्लोके शर्वः, सत्यलोकान्ते ब्रह्मा, विष्णुरुद्रौ स्वलोकयोरित्यन्तः, सप्त, बही रुद्रशतम्, तदुपरि सर्वाधिष्ठाता वीरभद्र इति व्याख्यातम् ।

दण्डपाणि पुर पर्यन्त अवस्थित इस रुद्रलोक में, दो मूर्त्ति रूपों में अवस्थित विश्व के अधिपतित्व से भी विभूषित हैं । इन मूर्त्तियों के बीच जो पशुपति (हर) हैं, यही रुद्रों के अधिष्ठाता हैं । जो शर्व आदि रुद्र हैं और मूर्त्तीश्वर भी हैं, इनकी संख्या सात है । वे भू से लेकर सत्य पर्यन्त सातों लोकों के अधिपति हैं । यही कह रहे हैं–

देवि उमे ! सातों लोकों के अधिपति जो रुद्र हैं, उन्हें तुमसे संक्षेप में ही बता रहा हूँ । वें हैं–१.शर्व, २.रुद्र, ३.भीम, ४.भव, ५.उग्र, ६.महादेव और ७.ईशान । इन्हे रुद्र लोकों का अधिपति कहते हैं । यहाँ रुद्रलोकाधिप कहा गया है । इन्हें ही भूर्लोक से सत्यलोक पर्यन्त लोकों के अधिष्ठाता के रूप में भी स्वीकार किया गया है । यथासंख्य रूप से इन्हें अधिकारी मानना चाहिये । इसी आशय से यह (श्लो० ७/१०२ में) कहा गया है कि, निवृत्ति कला में ही पृथ्वी सौ करोड़ योजन में विस्तारमयी वृत्त में अपनी कक्षा में घूम रही है । इसमें इसके १०८ भुवन बतलाये गये हैं । इसी क्रम में कालाग्नि, कूष्माण्ड और हाटक ये तीनों ब्रह्माण्ड के अधोभाग में, भूलोक में शर्व, सत्य लोकान्त में ब्रह्मा, विष्णु व रुद्र अपने अपने लोकों में विराजमान हैं । ये ब्रह्माण्ड के अन्तःभाग में शिवेच्छा से नियत हैं । इसके बाहर शतरुद्र हैं । इन सबके ऊपर सर्वाधिष्ठाता वीरभद्र हैं । यह सब व्याख्या में पहले ही आ चुका है ।

यदि भूर्लोकतः सत्यलोकान्तमेते रुद्राः पृथग्भुवनदीक्षायां सप्त शोध्याः, तदूर्ध्वे का तर्हि स्थितिरित्याह–

ब्रह्मलोके स्थितो ब्रह्मा विष्णुर्वै वैष्णवे पुरे ।।६१६।।

ब्रह्मलोको यः प्राग्वद् ब्रह्मासनमित्युक्तः । तथैतदुपरि–

रुद्रलोके स्थितोः रुद्रः सर्वेषां नायकः स्मृतः ।

कालाग्न्यादित्रयस्य शर्वादिसप्तकस्य ब्रह्मविष्ण्वोश्चेत्यर्थः । अयं विश्वाधिपतित्वाद् मूर्तीश्वरमध्ये पशुपतिरित्याख्ययोक्तः । एवं च–

'अनन्तं चैव कालाग्निं नरकांश्च यथाक्रमम् ।

पातालानि ततश्चोर्ध्वं शोधयेदनुपूर्वशः' ।। (१०/३४७)

इत्युक्तक्रमेण संशोध्य भूरादिसत्यान्तलोकसप्तकशुद्धौ शर्वादीनीशानान्तान् सप्त क्रमेण संशोधयेत् । ततो ब्रह्मविष्णुभुवनशुद्धौ ब्रह्मविष्णू संशोध्याविति भुवनदीक्षायामस्यां भुवनेशशुद्धिविभागो ग्रन्थोपारूढ एव स्थितः । तेन यत् श्रीभुल्लकः

यदि भूलोक सत्यलोक पर्यन्त ये रुद्र अपने अपने पदों पर अधिष्ठित हैं । इनमें भुवनदीक्षा में अन्तःप्रतिष्ठित उक्त सात रुद्र ही शोध्य माने जाते हैं । इन सातों के अतिरिक्त ब्रह्मलोक में ब्रह्मा और वैष्णव पुर में विष्णु की स्थिति शास्त्र द्वारा प्रमाणित है ।।६१६।।

ब्रह्मलोक को ही ब्रह्मासन भी कहा गया है । इसके ऊपर रुद्रलोक में रुद्र अवस्थित है । यही सबके अधिनायक माने जाते हैं ।

कालाग्नि, कूष्माण्ड और हाटक, इन तीनों के शर्वरुद्र, भीम, भव, उग्र, महादेव और ईशान इन सातों के और ब्रह्मा तथा विष्णु इन दोनों के कुल मिलाकर ३+७+२=१२ रुद्रों के ये नायक हैं । ये विश्वाधिपति हैं । इसलिये मूर्त्तीश्वरों में ये पशुपति नाम से विभूषित हैं ।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि, भुवन दीक्षा में अनन्त, कालाग्नि, सारे यथाक्रम नरक पाताल और इसके ऊपर के लोकों का शोधन होना चाहिये । इसमें भू से सत्यलोक पर्यन्त के सात लोक प्राथमिक रूप से शोध्य हैं । इसके बाद ब्रह्मासन और विष्णुलोक दोनों शोध्य हैं । इस शोधन में भुवनेशों का शोधन भी परिपूर्ण होता है ।

इस विषय में राजानक भुल्लक की दूसरी ही दृष्टि हैं । वे उसके अनुसार अनन्त भुवन से समस्त द्वीप समुद्र भूलोकान्त शर्व, भूर्भुवः और स्वः के रुद्र, भीम और भव, जन, तप और सत्य इन तीनों में उग्र, विष्णुलोक में महादेव, और रुद्रलोक में ईशान का, इस क्रम से ही शोधन का समर्थन करते हैं ।

अनन्तभुवनात्प्रभृति समस्तद्वीपसमुद्रभूर्लोकान्तं शर्वः, भूर्भुवःस्वर्महःसु रुद्रभीम-भवाः, जनस्तपःसत्येषु त्रिषुग्रः, महादेवो विष्णुलोके, रुद्रलोकेऽधिपश्चेशानः शोध्य इति स्वकल्पनयाभिहितवान्, तदुपेक्ष्यमेव । तदेतत्सङ्कलयितुमाह–

कालाग्नेर्दण्डपाण्यन्तमष्टानवतिकोटयः ।।६१७।।
योजनानां वरारोहे त्वध्वायमुपवर्णितः ।
कटाहस्तु अधश्चोर्ध्वं ब्रह्माण्डस्य वरानने ।।६१८।।
कोटियोजनमानेन घनाकारेण संस्थितः ।
पञ्चाशत्कोटयश्चोर्ध्वं भूपृष्ठात्तु वरानने ।।६१९।।
पञ्चाशच्च अधो ज्ञेया योजनानां समन्ततः ।
एवं कोटिशतं ज्ञेयं पार्थिवं तत्त्वमुच्यते ।।६२०।।

अधःकटाहाद्यथा भूपृष्ठान्तं पञ्चाशत्, तथा दर्शितम् । भूपृष्ठात्तु ध्रुवान्तं पञ्चदश लक्षाणि, तदूर्ध्वं महर्लोकः पञ्चाशीतिर्लक्षाणि कोटिद्वयं च, जनोलोकः कोट्यष्टकम्, तपोलोकः कोटयो द्वादशः, सत्यलोकः षोडश, ब्रह्मभुवनं कोटिः,

---

इसे श्रीक्षेमराज नहीं मानते । आचार्य कहते हैं कि, यह सब राजानक भुल्लक ने अपने मन से लिखे हैं । यह शास्त्रीय क्रम नहीं है । इस स्थिति से शास्त्र में ही इसे संकलित किया गया है । जैसे–

कालाग्नि से लेकर दण्डपाणि पर्यन्त ९८ करोड़ विस्तार में समस्त अध्वावर्ग का विस्तार है । इसका वर्णन भी शास्त्रों में है । भगवान् कह रहे हैं कि, देवि उमे ! ब्रह्माण्ड के कटाह भी अधः और ऊर्ध्व एक करोड़ योजन मान में फैला हुआ है । यह बड़ा घना है । भूपृष्ठ से इसकी ऊर्ध्वता पचास करोड़ योजन है ।।६१७-६१९।।

इसी तरह पचास करोड़ योजन इससे नीचे का मान भी समझना चाहिये । इस प्रकार पार्थिव तत्त्व ऊपर और नीचे दोनों को मिलाकर सौ करोड़ का मान निर्धारित है ।

अतः कटाह से भूपृष्ठ पर्यन्त पचास करोड़, भूपृष्ठ से ध्रुव पर्यन्त १५ लाख योजन, इसके ऊपर महः लोक दो करोड़ ८५ लाख योजन, जनःलोक आठ करोड़ योजन, तपोलोक बारह करोड़ योजन, विष्णु भुवन दो करोड़, रुद्र भुवन सात करोड़ ऊर्ध्व कटाह एक करोड़, इस तरह ऊर्ध्व मान भी पचास करोड़ योजन का सिद्ध होता है ।

विष्णुलोकः कोटिद्वयम्, रुद्रलोकः कोटयः सप्त, ऊर्ध्वकटाहः कोटिरित्यूर्ध्वमपि पञ्चाशत्कोटयः पार्थिवं तत्त्वमिति तत्र यः स्थूल आभोगः, न तु तत्त्वस्यैतावत्येव व्याप्तिरुद्घातदीक्षायां बिन्द्वन्तमपि सूक्ष्मदृशा तद्व्याप्तेर्दर्शितत्वात् । ज्ञेयमुच्यत इति दीक्षाधारणादौ ज्ञातव्यमाचार्यसाधकादिभिरित्यभिधीयते भगवतेत्यर्थः ॥६२०॥

तदेतत्–

शतरुद्रावधि ज्ञेयं सौवर्णं परिवर्तुलम् ।
वज्रसाराधिक[1]सारं दुर्भेद्यं त्रिदशैरपि ।।६२१।।

वज्रसारादधिकं सारं यस्य ॥६२१॥

एतच्च मन्त्रनादास्त्रप्रयोगेण दीक्ष्यस्य भेदनीयमित्याह–

हुंफट्कारप्रयोगेण भेदयेत्तु वरानने ।

इस तरह ऊर्ध्व और अधः दोनों के पार्थिव तत्त्व का मान ५०+५०=सौ करोड़ योजन का सिद्ध होता है । वस्तुतः इसमें स्थूल आभोग अर्थात् व्यापक क्षेत्र वाला वृत्त या विस्तार भी सम्मिलित है, वरन् इसकी प्रधानता भी है । स्थूल के आधार पर ही यह मान निर्धारित है ।

तत्त्व की यह व्याप्ति अभी इतनी ही नहीं है । इससे भी सूक्ष्म स्तर के आभोग के भर्ग की गणना यहाँ भगवान् भैरव भट्टारक द्वारा व्यक्त है । दीक्षा के उपक्रम में उद्घातदीक्षा के अन्तर्गत नाद बिन्द्वात्म व्याप्ति की परासूक्ष्मता में निहित तत्त्व व्याप्ति की बात की गयी है[2] । भैरव भट्टारक द्वारा कही गयी ये सारी बातें विद्वद्वर्ग द्वारा अनिवार्यतः ज्ञेय हैं । ये दीक्षा के अवसर पर बतायी जाती हैं । इनको धारण करना दीक्ष्य का कर्त्तव्य है । आचार्य और साधक दोनों के द्वारा समान रूप से धारण करने योग्य हैं ॥६२०॥

शतरुद्र की परिधि पर्यन्त एक सौवर्ण वर्त्तुल का अस्तित्व भी सृजन के उपक्रम में स्रष्टा द्वारा निर्मित है । यह वज्रसार से भी कठोर हैं । इसका भेदन देववर्ग भी नहीं कर सकता ॥६२१॥

दीक्षा के सन्दर्भ में इसका केवल शोधन ही नहीं होता, वरन् मन्त्र के नाद के अस्त्र से दीक्ष्य इसका भेदन भी कर देता है । इस मन्त्रकनादास्त्र का उल्लेख भगवान् कर रहे हैं ।

---

१. कं सारं क. पाठः ।
२. स्व० त० पटल १०/१२६४ ।

एवं मान्त्रतेजःस्फारनुप्रवेशेनैव पादाङ्गुष्ठाग्रगतादनन्तभुवनादारभ्य हृदन्तमवस्थितं ब्रह्माण्डं चेद्विदीर्णम्, तद्बाह्यमपि तदनुषक्तं दलितमेव भगवतोक्तं भवति ।

शतरुद्रावधीति यदुक्तम्, तद्विभक्तुमाह—

शतरुद्रानतो वक्ष्ये समासेन कृशोदरि ।।६२२।।

शतरुद्राभिधेत्थमेषामित्याह—

दश दश क्रमेणैव दशदिक्षु समन्ततः ।

पूर्वादिक्रमयोगेन

यतः स्थितास्तत एते शतरुद्रा उच्यन्त इति शेषः । तांश्च-

कथयाम्यनुपूर्वशः ।।६२३।।

मान्त्रतेज के स्फार का प्रयोग आचार्य के आदेश के अनुसार शिष्य करता है । शिष्य को इस क्षेत्र में अनुप्रवेश का अधिकार प्राप्त नहीं होता । गुरु शिष्य को इसके लिये तैयार करता है ।

वस्तुतः शरीर में एक ब्रह्माण्ड है । यह पैर के अङ्गुष्ठ से लेकर हृदय तक विस्तृत है । यह भूर्भुव क्षेत्र का ब्रह्माण्ड है । इसका भेदन शक्ति मूल मन्त्र के साथ 'हुं फट्' लगाने से जो तेज का स्फार होता है, वह इतना तीक्ष्ण होता है कि, हृदयस्थ ब्रह्माण्ड का भेदन कर स्वर्लोक की ओर प्रसार प्राप्त कर लेता है । इस आन्तर प्रकर्ष का परिणाम बाह्य पर पड़ना स्वाभाविक है । बाह्य ब्रह्माण्ड भी उस तेजस्फार से विदीर्ण होता है और शिष्य के ओजस् का प्रकर्ष देवत्व से दिव्य हो जाता है ।

यह ब्रह्माण्ड भेदन की एक साधारण विधा है । भगवान् ने इस रहस्य का उद्घाटन स्वयं कर दिया है । इस अवसर पर मैं यह चेतावनी देना चाहता हूँ कि, वाग् भी एक प्रकार का वज्र शूल है । इसका प्रयोग गुरुमुख से प्राप्त करने पर ही करना चाहिये । वह वाक्तत्त्व का पारखी होता है ।

तभी वज्रसार का भेदन हो सकता है । इसमें दक्षता प्राप्त करना शिष्य का उत्तरदायित्व है । इसी सन्दर्भ में भगवान् शतरुद्रों की स्थिति में बताने का उपक्रम भी कर रहे हैं ।।६२२।।

ये शतरुद्र दश दश के क्रम से दशों दिशाओं में रहते हैं । इनका क्रम पूर्वादिक् से प्रारब्ध होता है । इसीलिये १०×१०=१०० के गणित से वे शतरुद्र कहलाते हैं । भगवान् उन्हें नामशः कह रहे हैं ।।६२३।।

कपालीशो ह्यजो ब्रघ्नो वज्रदेहः प्रमर्दनः ।
विभूतिरव्ययः शास्ता पिनाकी त्रिदशाधिपः ।।६२४।।

एते च–

इन्द्रस्य बलमाक्रम्य प्रभुशक्तिसमन्विताः ।
विचरन्ति महादेवा इन्द्रेण च सुपूजिताः ।।६२५।।

आक्रम्येत्यधिष्ठाय, अत्र हेतुः प्रभोः परभैरवस्य शक्त्या स्वातन्त्र्यात्मनाधिष्ठिता ईदृशीमुन्मीलितदृक्क्रियाशक्तिमधिकारभूमिं ग्राहिताः, विचरन्ति सृष्ट्यादि कुर्वन्तः क्रीडन्ति । अत एवेन्द्रेण सुष्ठु भक्तिप्रकर्षेण पूज्यन्ते । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ।।६२५।।

अग्निरुद्रो हुताशी च पिङ्गलः खादको हरः ।
ज्वलनो दहनो बभ्रुर्भस्मान्तकक्षयान्तकौ ।।६२६।।
अग्नेर्बलं समाक्रम्य प्रभुशक्तिसमन्विताः ।
विचरन्ति महादेवा अग्निराजसुपूजिताः ।।६२७।।

अग्निराजः आग्नेयदिक्पतिः । एवमन्यत् ।।६२७।।

याम्यो मृत्युर्हरो धाता विधाता कर्तृसंज्ञकः ।
संयोक्ता च वियोक्ता च धर्मो धर्मपतिस्तथा ।।६२८।।
यमस्य बलमाक्रम्य प्रभुशक्तिसमन्विताः ।
विचरन्ति महादेवा यमराजसुपूजिताः ।।६२९।।

कपालीश, अज, ब्रघ्न, बज्रदेह, प्रमर्दन, विभूति, अव्यय, शास्ता, पिनाकी और त्रिदशाधिप ये दश रुद्र इन्द्र के बल को अधिष्ठित कर विराजमान हैं । ये सभी प्रभुशक्ति से समन्वित हैं । इन्द्र दिशा के स्वामी इन्द्रदेव द्वारा ये अच्छी तरह पूजित है । प्रभुशक्ति का तात्पर्य भगवान् भैरव की शक्ति से सभी सम्पन्न हैं, यही लिखा जाना चाहिये । भैरव शक्ति में स्वातन्त्र्य सर्वोत्तम शक्ति है । अर्थात् ये रुद्र भी स्वातन्त्र्य शक्तिसम्पन्न हैं । सृष्टि के भी कर्त्ता हैं और स्वतन्त्र क्रीडाशील हैं ।।६२४-६२५।।

अग्नि, रुद्र हुताशी, पिङ्गल, खादक, हर, ज्वलन, दहन, बभ्रु, भस्मान्तक, क्षयान्तक ये अग्नि का बल लेकर प्रभुशक्ति अर्थात् भैरव स्वातन्त्र्य सम्पन्न होकर विचरण करते हैं । ये भी महादेव हैं और अग्निदेव से पूजित हैं ।।६२६-६२७।।

याम्य, मृत्यु, हर, धाता, विधाता, कर्त्ता, संयोक्ता, वियोक्ता, धर्म और धर्मपति ये यम के बल से अधिष्ठित होकर भैरव स्वातन्त्र्य से सम्पन्न होकर विचरण करते हैं तथा यम के द्वारा सुपूजित हैं ।।६२८-६२९।।

नैर्ऋतो मरुतो हन्ता क्रूरदृष्टिर्भयानकः[१] ।
ऊर्ध्वकेशो विरूपाक्षो धूमलोहितदंष्ट्रकौ ।।६३०।।
नैर्ऋतं बलमाक्रम्य प्रभुशक्तिसमन्विताः ।
विचरन्ति महादेवा नैर्ऋतेन्द्रपूजिताः ।।६३१।।
बलो ह्यतिबलश्चैव पाशहस्तो महाबलः ।
श्वेतोऽथ जयभद्रश्च दीर्घबाहुर्जलान्तकः ।।६३२।।
मेघनादी सुनादी च समासात्परिकीर्तिताः ।
वारुणं बलमाक्रम्य प्रभुशक्तिसमन्विताः ।।६३३।।
विचरन्ति महादेवा वरुणेन्द्रसुपुजिताः ।
शीघ्रो लघुर्वायुवेगः सूक्ष्मस्तीक्ष्णो भयानकः ।।६३४।।
पञ्चान्तकः पञ्चशिखः कपर्दी मेघवाहनः ।
वायोस्तु बलमा[२]क्रम्य प्रभुशक्तिसमन्विताः ।।६३५।।
विचरन्ति महादेवा वायुराजसुपूजिताः ।
निधीशो रूपवान् धन्यः सौम्यदेहो जटाधरः ।।६३६।।
लक्ष्मी रत्नधरः कामी प्रसादश्च प्रभासकः ।
सोमस्य बलमाक्रम्य प्रभुशक्तिसमन्विताः ।।६३७।।

निकृति कोण के नैर्ऋत, मारुत, हन्ता, क्रूरदृष्टि, भयानक, ऊर्ध्वकेश, विरूपाक्ष, धूम, लोहितदंष्ट्रा ये नैर्ऋत बल विभूषित, प्रभुशक्ति समन्वित नैर्ऋतेन्द्र से सुपूजित होकर स्वतन्त्र विहार करते हैं ।।६३०-६३१।।

बल, अतिबल, पाशहस्त, महाबल, श्वेत, जयभद्र, दीर्घबाहु, जलान्तक, मेघनादी और सुनादी ये दश रुद्र वरुण के बल से अधिष्ठित और प्रभुशक्ति से समन्वित वरुणेन्द्र से सुपूजित होकर विचरण करते हैं । इन्हें भी महादेव कहते हैं ।।६३२-६३३½।।

शीघ्र, लव, वायुवेग, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, भयानक, पञ्चान्तक, पञ्चशिख, कपर्दी, मेघवाहन ये दश वायु के बल से अधिष्ठित होकर, भैरव भट्टारक की स्वातन्त्र्य शक्ति से समन्वित ये महादेव वायुराज से सुपूजित हैं ।।६३४-६३५½।।

---

१. भयान्तकः क. पाठः । २. श्रित्य क. पाठः ।

विचरन्ति महादेवाः सोमराजसुपूजिताः ।
विद्याधिपोऽथ सर्वज्ञो ज्ञानदृग्वेदपारगः ।।६३८।।
शर्वः सुरेशो ज्येष्ठश्च भूतपालो बलिः[1] प्रियः ।
ईशानानुमता देवाश्चेष्टन्ते सुरपूजिताः ।।६३९।।
विचरन्ति महादेवा ईशशक्त्या त्वधिष्ठिताः ।
वृषो वृषधरोऽनन्तः क्रोधनो मारुताह्वयः ।।६४०।।
ग्रसनो डम्बरेशौ च फणीन्द्रो वज्रदंष्ट्रकः ।
विष्णोस्तु बलमाक्रम्य प्रभुशक्तिसमन्विताः ।।६४१।।
विचरन्ति महादेवा अनन्तेन सुपूजिताः ।

ईशानो दिक्पतिरनुमतो दिक्पतित्वेनाभिमतो येषाम् । सुरैः सर्वैः पूजिताः सर्वसिद्धिप्रदत्वात् । विष्णोरित्यधोदिग्गतस्य । अनन्तेनेति सर्वाधोदिगधिष्ठात्रा ।

ऊर्ध्वदिशि तु–

शम्भुर्विभुर्गणाध्यक्षस्त्र्यक्षश्च त्रिदशेश्वरः ।।६४२।।
संवाहश्च विवाहश्च नलो लिप्सुस्त्रिलोचनः ।
ब्रह्मणो बलमाक्रम्य प्रभुशक्तिसमन्विताः ।।६४३।।

निधीश, रूपवान्, धन्य, सौम्यदेह, जटाधर, लक्ष्मी, रत्नधर, कामी, प्रसाद और प्रभासक ये सभी सोम के बल से अधिष्ठित हैं । प्रभुशक्ति से समन्वित हैं । महादेव हैं । सोमराज सुपूजित और स्वतन्त्र हैं ।।६३६-६३७½।।

विद्याधिप, सर्वज्ञ, ज्ञानदृक्, वेदपारग, शर्व, सुरेश, ज्येष्ठ, भूतपाल, बलि और प्रिय ये दश रुद्र ईशानराज के मित्र हैं । ये इसी दिशा में व्यापृत हैं । ईशान से पूज्य हैं । महादेव हैं और स्वतन्त्र हैं ।।६३८-६३९।।

वृष, वृषधर, अनन्त, क्रोधन, मारुत, ग्रसन, डम्बरेश, फणीन्द्र, बज्रदंष्ट्रक ये सभी विष्णु के बल से अधिष्ठित होते हैं । प्रभु शक्ति से समन्वित हैं । ये महादेव अनन्त देव से पूजित होकर इस अधोदिक् में विचरण करते हैं ।।६४०-६४१।।

ऊर्ध्व दिक् में, शम्भु, विभु, गणाध्यक्ष, त्र्यक्ष, त्रिदशेश्वर, संवाह, विवाह, नल, लिप्सु और त्रिलोचन ये दश रुद्र ब्रह्मा का अधिष्ठान प्राप्त कर बड़े प्रसन्न रहते हैं । इधर भैरव भट्टारक की विभुता उन्हें भी भैरव भाव से भव्य बना ही

---

१. लिप्रि० क. पाठः ।

विचरन्ति महादेवा ब्रह्मणैव सुपूजिताः ।

एषां सर्वेषां मध्यात्-

एकैकस्य सहस्रं तु परिवारोऽभिधीयते ।।६४४।।

बृहत्तन्त्रेषु ।।६४४।।

एते च-

शतरुद्रा इति ख्याता ब्रह्माण्डं व्याप्य संस्थिताः ।

व्याप्येति परिवृत्य । एते च

असंख्याताः सहस्राणि ये च ऊर्ध्वादिदिग्गताः ।।६४५।।

स्वच्छन्दा विश्वगा देवाः कल्पमन्वन्तरेष्वपि ।

सहस्रसंख्ययापि संख्यातुमशक्त्याः । प्रोक्तप्रभुशक्तिसमन्वितत्वात् स्वच्छन्दा अनुग्रहादौ स्वतन्त्राः । नियतशरीरत्वेऽपि विश्वगा व्यापकाः कल्पादिष्वपि च देवा द्योतमानाः ।

प्रतिदिशं चैते दशदिग्व्यवस्थायां सन्निविष्टा इत्याह-

पूर्वादिदशदिग्रुद्राः स्थिता दश दशैव तु ।।६४६।।

दशानां दशानाम्-

एकैकमधिपं चैव कथयामि वरानने ।

स्थितो वै पूर्वतोऽण्डस्य श्वेतो वै नाम नामतः ।।६४७।।

रही है । इस प्रकार के ये महादेव ब्रह्मा से आदर प्राप्त कर विचरण करते हैं । यह जानकर भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ! इन एक एक के भी हजार हजार परिवार हैं, इससे आप प्रसन्नता का अनुभव करेंगी ।।६४२-६४४।।

इन दशों दिशाओं में दशों दिगधिपतियों से पूजित ये अन्वर्थतः शतरुद्र रूप प्रभुशक्ति समन्वित शक्तिमान् ब्रह्माण्ड में व्यापक रूप से व्यवस्थित हैं, यह शास्त्र कहता है । एक एक के सहस्र सहस्र परिवार के कारण इनकी संख्या नहीं ज्ञात की जा सकती है । ये अप्रकल्प्य रूप से असंख्य हैं और सभी दशों दिशाओं में इनकी सत्ता की व्याप्ति है ।।६४५।।

ये स्वच्छन्द हैं अर्थात् भगवान् भैरव की तरह अनुग्रह-निग्रह दोनों में समर्थ हैं । ये नियत शरीर होने पर भी विश्वग हैं । इसी तरह कल्पादि क्रम में भी सर्वदा द्युतिमन्त महादेव माने जाते हैं । दशों दिशाओं में इनका समान प्रभाव है और सभी दिशाओं की व्यवस्था में सन्निविष्ट हैं ।।६४६।।

भगवान् देवी को सम्बोधित कर उन्हें इनके सम्बन्ध में विशिष्ट जानकारी दे रहे हैं । वे कह रहे है कि, देवि ! पूर्व अण्ड का सर्वाधिपति 'श्वेत' है ।।६४७।।

रुद्राणां तु शतैर्युक्तो महावीर्यपराक्रमः ।
दीप्तिमद्भिर्महातीव्रैर्मयूखैरिव भास्करः ।।६४८।।
आग्नेय्यामग्निसङ्काशो वैद्युतो नाम विश्रुतः ।
सोऽपि विद्युत्प्रभै रुद्रशतैस्तु परिवारितः ।।६४९।।
याम्येऽण्डस्य महाकालो युगान्तानलसन्निभः ।
शतरुद्रैर्वृतो देवि तिष्ठत्यमितविक्रमैः ।।६५०।।
नैर्ऋते विकटो नाम शतेन परिवारितः ।
सन्तिष्ठते महातेजा द्वितीय इव भास्करः ।।६५१।।

शतेनेति मुख्येन । एवमन्यत्र ।।६५१।।

पश्चिमेऽण्डस्य यो रुद्रो महावीर्य इति श्रुतः ।
शतरुद्रैर्वृतः सोऽपि तिष्ठत्यमितविक्रमः ।।६५२।।
वायव्यदिशि चाण्डस्य वायुवेगो महाबलः ।
शतेन च वृतः श्रीमांस्तिष्ठत्यत्र महाबलः ।।६५३।।

वह सैकड़ों हजारों रुद्रों का गणप है । महावीर्यवान् और पराक्रमशाली यह रुद्र उसी प्रकार भासमान है, मानों स्वयं भास्कर देव महातीव्र दीप्तिमन्त मरीचियों से रोचिष्माण हो ।।६४८।।

इसी तरह अग्निकोण मण्डल में आग्नेय रुद्र अग्नि के समान जाज्वल्यमान है । उसका नाम वैद्युत रुद्र है । इसी नाम से वह विख्यात है । बिजली के समान चमत्कारी विद्युतवत् द्योतमान सैकड़ों रुद्रों से घिरा हुआ अपने महाप्रभाव का विस्तारक है ।।६४९।।

याम्य अण्ड का सर्वाधिकारी रुद्र महाकाल है, यह युगान्तकारी कालानल का समानधर्मा शत शत पराक्रमी रुद्रों से समावृत रहता है ।।६५०।।

नैर्ऋत्य कोण क्षेत्र में 'विकट' नामक यथा नाम तथा गुण रुद्र सर्वाधिकार सम्पन्न है । महातेजस्वी यह रुद्र एक दूसरे से भासमान भास्कर की तरह ही अपने प्रभाव का विस्तार करता है ।।६५१।।

पश्चिम अण्ड का जो रुद्र है, उसे महावीर्य कहते हैं । इसी नाम से वह विख्यात है । शतरुद्रों से आवृत रहते हुए अत्यन्त प्रतापशाली यह अपनी संप्रभुता से विश्व को प्रभावित करता है ।।६५२।।

वायव्य अण्ड का अधिपति महाबलशाली रुद्र है । उसे वायुवेग कहते हैं । शतरुद्रों से समावृत श्रीमान् वायुवेग अपनी पूरी शक्ति से यहाँ रहते हैं ।।६५३।।

सुभद्रनामोत्तरतः शतेन परिवारितः ।
महावीर्यबलोपेतस्तिष्ठत्यत्र महाबलः ।।६५४।।
परिविष्टो मरीचिभिस्तत्र तिष्ठति वीर्यवान् ।
विद्याधरो नाम रुद्र ऐशान्यां वै प्रतिष्ठितः ।।६५५।।
शतरुद्रैर्वृतः सोऽपि परिविष्ट इवोडुराट् ।
महावीर्यबलोपेतस्तिष्ठतेऽनन्तविक्रमः ।।६५६।।

परिविष्टो मरीचिभिः परिवृतः ॥६५६॥

अधः कालाग्निरुद्रोऽन्यः स्थितस्त्वत्र द्वितीयकः ।
समावृतो रुद्रशतैः स्थितैस्त्वत्र वरानने ।।६५७।।

द्वितीयक इत्यन्तस्थात् कालाग्नेरन्यः ॥६५७॥

शतैः समावृतो रुद्रो मयूखैरिव भास्करः ।

उपरिष्टाद् रुद्र इत्येतदाख्ययाख्यातः । तदित्थम्–

वीरभद्रो वृतो रुद्रैरुपर्यण्डस्य संस्थितः ।।६५८।।
एकादशो महाकायै रुद्रक्रोधसमुद्भवैः ।

वृत इत्येतैः श्वेतादिभिरेव पूर्वादिदिग्गतशतरुद्राधिष्ठातृभिः । एवं मध्यवर्ती वीरभद्र एकादशः । एतैश्च समस्तरुग्द्रावणस्य भगवतो रुद्रस्य संसारवित्रासकारिणः क्रोधादुद्भूतैः । क्रोधसमुद्भव इति पाठो वीरभद्रैकविषयः । यतश्चैते श्वेतादयो वीरभद्रस्य परिवारभूतास्तत एव श्रीपूर्वशास्त्रे–

उत्तर के अधिपति का नाम सुभद्र है । यह भी शतरुद्रों से समावृत महाबलशाली रुद्राधिपति है । अपने प्रभाव का विस्तार करते हुए वे यहाँ रहते हैं ॥६५४॥

मरीचि-परिवेष्टित विद्याधर नामक रुद्राधिपति, ईशान कोण में व्यवस्थित हैं । यह भी शतरुद्रों से समावृत उसी प्रकार शोभायमान हैं, जैसे नक्षत्रों से आवृत चन्द्रमा आकाश में सुशोभित होता है । महावीर्यशाली बलवान् अनन्त विक्रम यह रुद्र अपनी सुन्दर व्यवस्था के लिये प्रसिद्ध है ॥६५६॥

इन शतरुद्रों के अधस्तात् एक अन्य कालाग्नि नामक रुद्र भी यहाँ रहता है । यह भी शतरुद्रों से समावृत अपनी व्यवस्था में संलग्न है ॥६५७॥

भास्कर सूर्य जिस तरह अपनी किरणों से आवृत रहता है और अपने प्रकाशपुञ्ज से विश्व को प्रभाभास्वर कर देता है, उसी तरह यह भी रुद्रों से आवृत रहता है और विश्व को अपने प्रताप से प्रभावित करता है ।

'अनन्तः प्रथमस्तेषां कपालीशस्तथापरः ।
अग्निरुद्रो यमश्चैव नैर्ऋतो बल एव च ॥
शीघ्रो निधीश्वरश्चैव सर्वविद्याधिपोऽपरः ।
शम्भुश्च................................'॥ (मा०वि० ५/१४)

इति प्रतिदिग्गतरुद्रदशकमध्यगमेकैकं रुद्रमुक्त्वा वीरभद्रश्च विधूमज्वलनप्रभ एकादश उक्तः, श्वेतादयस्तु तत्परिवारत्वान्न प्राधान्येन गणिताः ।

उपसंहरति–

एवं तेऽत्र महात्मान एकैकं तु शतेन च ॥६५९॥
दशैते वेष्टिता देवि शतरुद्रैश्च सुव्रते ।

प्रत्येकं शतेन परिवारभूतेन प्रोक्तैश्च कपालीशादिभिरन्तरङ्गैर्दशभिर्वेष्टितः । एवमस्यां विततायां भुवनदीक्षायां सर्व एवैते पार्थिवाण्डगता यथोक्तभुवनेश्वराः शोध्याः, न तु प्राक् सङ्क्षिप्तदीक्षोक्तमष्टोत्तरमेव शतमिति न तदाशयेनेदं विपर्यासितव्यं प्रतिपदोक्तस्य विधेः श्रुतिप्रमाणोत्कर्षेण बलवत्त्वादिति ।

इसके अतिरिक्त 'वीरभद्र' का लोक है । यह भी शत शत रुद्रों से समावृत रुद्र सेनाध्यक्ष और भगवान् भैरव का भावप्रिय सेवक है । यह मध्यवर्त्ती महारुद्र प्रतिदिग्गत दश दश रुद्रों के अतिरिक्त महारुद्र है । संख्या में यह ग्यारहवाँ है । यह भगवान् भैरव के भयानक क्रोधों के संस्कारों से समुद्भूत महाकाय रुद्रों में सर्व-श्रेष्ठ क्रोधमूर्त्ति, रुद्र है । क्रोधसमुद्भव प्रयोग वाला पाठ अकेले 'वीरभद्र' के लिये ही प्रयुक्त होता है । इसके परिवार का वर्णन श्रीपूर्व शास्त्र में इस प्रकार किया गया है (मा०वि० ५/१४) ।

उनमें पहला अनन्त, दूसरा कपालीश, अग्निरुद्र, यम, नैर्ऋत, बल, शीघ्र, निधीश्वर, सर्वविद्याधिप और शम्भु ये प्रत्येक दिशाओं के अधिपति रुद्र हैं । इनमें निर्धूम अग्नि ज्वाला के समान तेजस्वी रुद्र ही वीरभद्र है । यह ग्यारहवाँ है । श्वेत आदि इसके पारिवारिक सदस्य हैं । अतः पृथक् नहीं उल्लिखित है ।

भगवान् भैरव कह रहे हैं कि, देवि ! उमे ! उन ग्यारह रुद्रों का महत्त्वपूर्ण प्रताप दशों दिशाओं में व्याप्त है । ये सभी शत शत रुद्रों से समावृत रहते हैं । इनमें ग्यारहवाँ मध्यवर्त्ती महाकाय रुद्रवर्य वीरभद्र ही हैं । कपालीश आदि रूपों में इनका वर्णन पहले ही किया जा चुका है ॥६५९॥

यह भुवन दीक्षा का प्रकरण है । इसमें ये सभी भुवनेश्वर शोध्य हैं । पहले कही गयी संक्षिप्त दीक्षा के सन्दर्भ में १०८ रुद्रों के शोधन की बात यहाँ नहीं लगेगी ।

यत्तु श्रीभुल्लकेन अनन्तश्री ....दिभिर्द्वीपादिभिः सह सप्तनवतिः, बहिरेकादशेति कल्पितम्, तदसदेव ।

एते श्वेतादयो दश शतरुद्रपरिवृता अपि एकैकं शतेन परिवृता इति यदुक्तम्, तत्सङ्क्षेपाशयेन, विस्तरतस्तु

एषामपरिसंख्येयः परिवारो महात्मनाम् ।।६६०।।

अतश्चैते सर्वे–

आवृत्याण्डं स्थिता ह्येते मधु यद्वन्मधुव्रताः ।
कदम्बकुसुमं यद्वत्केसरैः परिवारितम् ।।६६१।।
परिवारितं तथा ह्यण्डं रुद्रैरमितविक्रमैः ।

मधुव्रता मधुकराः । तथा–

गृहैः सतोरणाट्टालैर्नानारत्नविचित्रितैः ।।६६२।।

अर्थात् भुवन दीक्षा में शतरुद्रों का ही शोधन होना चाहिये । संक्षिप्त दीक्षा और भुवन दीक्षा के सन्दर्भों में किसी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं करना चाहिये । यह सिद्धान्त की बात है कि, प्रतिपदोक्त विधि के श्रुतिप्रमाण प्रकर्ष के आधार पर इनकी बलवत्ता स्वयं सिद्ध हो जाती है ।

स्वच्छन्दतन्त्र के टीकाकार भुल्लक की प्रतिपादित उक्ति का खण्डन करते हुए आचार्य जी लिख रहे हैं कि, अनन्तश्री-----आदि द्वीपों के साथ ९७ और बाहर बाह्य आवरण में ग्यारह द्वीपों की स्थिति कही है । यह श्री भुल्लक की स्वयं की कल्पना है । अतः असत् है ।

इस प्रकार श्वेत आदि दश महारुद्र शतरुद्रों से सदा परिवृत रहते हैं–यह कहने के बाद भी श्लोक ६५९ में एकैकशतेन परिवृता लिखा है—यह संक्षिप्त रूप से कथन के उद्देश्य के लिये कही गयी उक्ति है । विस्तार की बात तो यह है कि, इन महात्माओं के परिवार असंख्य हैं, अर्थात् उनकी प्रकल्पना नहीं की जा सकती । सही भी है कि, वहाँ जनगणना का काम तो कभी भी किया नहीं गया है ।।६६०।।

इसलिये इस विषय में यही कहा जा सकता है कि, अण्ड को आवृत कर ये इस प्रकार स्थित हैं, जैसे मधुच्छत्र को घेर कर मधुकर ! अथवा यह भी उपमा ठीक ही है कि, कदम्ब कुसुमों पर केशर के समान वे परिवारित हैं ।।६६१।।

अमित विक्रम रुद्रों द्वारा ये अण्ड उसी तरह परिवारित हैं । इनके साथ भी मधुच्छत्र और मधुकर की बात कही जा सकती हैं । इनके घर भी अट्टवत् हैं । उनमें तोरण लगे हैं । नाना प्रकार के रत्नों से आच्छन्न और जटिल हैं । उनमें वैचित्र्य की चारुता है ।।६६२।।

जाम्बूनदमयैश्चित्रैः समन्तात्समलङ्कृतम् ।
दिव्यनारीभिराकीर्णं सर्वकामसमन्वितम् ।।६६३।।
ब्रह्माण्डमेतदाख्यातं पाशजालावतारितम् ।
जन्मव्याधिजरामृत्युमहोदधिपरिप्लुतम् ।।६६४।।
गुणत्रयमलच्छन्नं नानाजातिसमाकुलम् ।
पशुज्ञानपरिक्रान्तं गतित्रयसमाकुलम् ।।६६५।।

गृहा भुवनानि । आणवादिपाशजालेनावतारितमाच्छादितं जन्मादिपरिप्लुतं चेति तदाश्रयजनाभिप्रायेण । गुणत्रयं सत्त्वादि, तदेव मलम् । जातयश्चतुर्दशविधो भूतसर्गः । पशुज्ञानेन वेदसांख्यादिना परितः समन्तात् क्रान्तं तज्ज्ञानाश्वासबहुलमिति यावत् । गतित्रयं देवमनुष्यः तिर्यग्रूपम् ।।६६५।।

अत्र च–

अनित्या एव गतयः सर्वेषामेव वादिनाम् ।

गतयो देवमनुष्यतिर्यक्प्रवृत्तयः

'एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते' ।। (भ०गी० ९/२१) इति नीत्या अनित्याः परिमितकालाः । वादिनामिति वेदसांख्यपुराणेतिहासन्यायवैशेषिकसौगतार्हतादिनिष्ठानाम् ।

स्वर्णाभूषणों की चित्रशैली से चतुर्दिक् चमत्कार पूर्ण शोभा उन भवनों में विकीर्ण है । दिव्य नारियों की वहाँ अधिकता है । सभी कामनाओं की आपूर्त्ति भगवदिच्छा से ही अनायास होती रहती है ।।६६३।।

उक्त आनन्त्य में अवस्थित यह एक ब्रह्माण्ड है । यह पाशजाल से आच्छदित है । उसी के कारण यह अवतारित है, अर्थात् शिव को जीव भाव में विवशकर देने वाले पाशों की वहाँ पूरी तरह व्याप्ति है । यहाँ जन्म-जन्मान्तर का आवागमन चक्र है । व्याधियों की बाधायें हैं । जरा और मृत्यु की मरीचिका है । ये इन पाशों के महासागर हैं । ऐसे महासागर का यह लहराव है । उस अपरम्पार पारावार से यह परिलुप्त है ।।६६४।।

सत्त्व, रजस् और तमस् से यह त्रिधा विभक्त है । ये तीनों मल हैं । मल अज्ञान है । इस तरह यह ब्रह्माण्ड अज्ञान तिमिर से आच्छन्न है । यहाँ नाना प्रकार की जातियाँ हैं । जातियाँ अर्थात् चतुर्दशविध भूतसर्ग हैं । इससे यह समाकुल है । पशुज्ञान अर्थात् वह ज्ञान जिससे पाशबद्धता को बल मिलता है, उससे जीव अभेद अद्वय भाव के विपरीत भेदवाद में जीने को विवश हो जाता है ।

यत एते–

परापरविभागं तु नैव जानन्ति मोहिताः ।।६६६।।

भेदात्मकं पदमपरम्, अद्वैतं तु परमिति न जानन्ति मायया व्यामूढी-कृतत्वात्, अतो भेदपद एव सुरनरतिर्यक्पदानि परापरतया प्राप्याणि मन्यन्ते ।।६६६।।

अतश्च–

हेमाण्डं तु पुरा सृष्टं क्षयात्म भुवनाकृति ।
ईशमायासमा[१]विष्टस्यात्मवर्गस्य भूतये ।।६६७।।

यद्यपि समनान्तं क्षययोगि, तथापि यदस्य क्षयात्मत्वमुक्तं तदतिपरिमित-कालतया तुच्छताप्रतिपादनाशयेन । समाविष्टस्य क्रोडीकृतस्य । भूतये कर्मो-पभोगसिद्ध्यर्थम् ।।६६७।।

यही पशुज्ञान है । पाशव शास्त्र पढ़ने से पशुतामय ज्ञान होना स्वाभाविक है । आगम की यह मान्यता है कि, भैरवोक्त परावाक् की दिव्यता से भरे शिवोपदेश शास्त्रों के अतिरिक्त सांख्यादि सारे ज्ञान पाशवज्ञान हैं । इनसे यह संसार भरा हुआ है । इसी तरह इसमें देव, मनुष्य और तिर्यक् स्तरों की तीन गतियाँ ही प्राप्त हो पाती हैं ।।६६५।।

सभी वादप्रिय[२] व्यक्तियों की यही नियति है कि, वे भूर्भुवःस्वः की सीमा में ही जरा मृत्यु का वरण करने के लिये विवश हैं । यह ध्यान देने की बात है कि, ये सारी गतियाँ अनित्यता से ही प्रभावित हैं । गीता भी इस विषय में सावधान करती है कि, 'ये कामकामी पुरुष गतागत ही प्राप्त करते हैं'[३] । इसीलिये भगवान् कह रहे हैं कि ये सभी मोह-मुग्ध जीव हैं । ये भेदात्मक अपर भाव और अद्वय परभाव के निहितार्थ को जानते ही नहीं हैं । माया के पथ के व्यामूढ पथिक हैं ।।६६६।।

अन्त में नये प्रकरण के रूप में उदक सर्ग से शिवपर्यन्त के उपरि-वर्त्तमान तत्त्वों के सम्बन्ध की वास्तविक स्थिति की जानकारी दे रहे हैं । तत्कालीन मान का स्पष्टीकरण कर रहे हैं । उनके अनुसार उत्तरोत्तर योग की दृष्टि

---

१. कृ क. पाठः ।
२. वेद सांख्य पुराणेतिहासन्याय वैशेषिक सांख्यादि शास्त्रार्थी ।
३. गीता ९/२१ ।

गतमेतत्-

अथोपरिष्टात्तत्त्वानि उदकादिशिवान्तकम् ।

उच्यन्त इति शेषः । तत्र मानकलनया एतानि-

उत्तरोत्तरयोगेन दशधा संस्थितानि तु ।।६६८।।

शतकोटिविस्ताराद् ब्रह्माण्डाद् दशधा गुणितं जलतत्त्वम् । ततो दशगुणं तेजः । ततोऽपि वायुः । ततोऽपि व्योम । ततोऽपि गर्भीकृततन्मात्रेन्द्रिय एव गुणः ।।६६८।।

एवंकलितपरिमाणादहङ्कारात्-

अहङ्कारः तदूर्ध्वं तु बुद्धिस्तु शतधा स्थिता ।

ततोऽपि-

ऊर्ध्वं सहस्रधा ज्ञेयं प्रधानं वरवर्णिनि ।।६६९।।

गुणतत्त्वेन सह प्रकृतितत्त्वस्य तत् परिमाणमित्यर्थः ।।६६९।।

तदुपरि-

पौरुषं दशसाहस्रं

ततोऽपि-

नियतिर्लक्षधा स्मृता ।

तदूर्ध्वं दश लक्षाणि कला यावत्तु सुव्रते ।।६७०।।

तदेवंविधात् कलातत्त्वमानादपि-

माया तु कोटिधा व्याप्य स्थिता सर्वं चराचरम् ।

से देखा जाय, तो वे दश गुणित रूप से अवस्थित हैं । सौ करोड़ योजन विस्तृत ब्रह्माण्ड से दश गुणित अवस्थित जलतत्त्व है । जल से दशगुना तेज, तेज से दश गुना वायु, वायु से दस गुना आकाश और इससे इसी प्रकार दश गुने गुण तत्त्व । इनमें गर्भीकृत तन्मात्राओं और इन्द्रियों के आयाम भी हैं ।।६६८।।

इनके ऊपर अहङ्कार तक दशधात्व प्रचलित है । अहङ्कार के ऊपर बुद्धि सौगुने आयाम में उपस्थित है । इस प्रकार गुणतत्त्व से सहस्र गुने आयाम में प्रकृति का विस्तार है ।।६६९।।

इसके ऊपर दश हजार गुना पुरुष तत्त्व, इससे भी एक लाख गुना नियति तत्त्व, नियति से दश लाख गुना कला तत्त्व का विस्तार है ।।६७०।।

कला तत्त्व से करोड़ गुना माया व्याप्त है । इसकी इस व्याप्ति में सारा चराचर जगत् जिसे कलादि क्षित्यन्त सृष्टि कहते हैं, वह अवस्थित है । इस वर्णन

सर्वमिति कलादिक्षित्यन्तम् । एतच्चोपलक्षणपरं सर्वतत्त्वेषु, तेन पृथिव्यादि-तत्त्वान्युत्तरोत्तरं जलादितत्त्वैः व्याप्तानि । अतश्च शतकोटिविस्तीर्णाद् ब्रह्माण्डाद् दशगुणं यदप्तत्त्वमुच्यते, तत्तदन्तर्वर्तिना ब्रह्माण्डेन सह । तेन मध्ये ब्रह्माण्डं कोटिशतम्, अधोजललेखिका चत्वारि सर्वाणि कोटिशतानि, जलावरणस्य मानं मध्यवर्तिना व्याख्यातेन ब्रह्माण्डेन सह तु कोटिशतान्येव, सर्वतः पारिवार्तुल्य-मानब्रह्माण्डेन अन्तर्वर्तिना दशकोटिशतानि जलावरणमिति स्थित्या तेजस्तत्त्वा-दीन्यपि अन्तर्वर्तिजलादितत्त्वमानेन सह यथोत्तरं दशादिगुणितानि व्याख्यात-व्यानि ।

से यह स्पष्ट हो जाता है कि, पृथिव्यादि जितने तत्त्व हैं, ये उत्तरोत्तर जल, तेज और वायु आदि तत्त्वों से व्याप्त हैं । इस तरह शतकोटि विस्तीर्ण ब्रह्माण्ड से दश गुना अप्तत्त्व का जो विस्तार है, वह अन्तर्वर्त्ती ब्रह्माण्ड के साथ है । यह मानना चाहिये ।

यहाँ आचार्य जी गणना को एक नये रूप से देख रहे हैं । श्लोक ६६८ में यह घोषणा है कि, उत्तरोत्तर योग से दश गुणित विस्तार है । जैसे यदि कोटि शत ब्रह्माण्ड है, तो जल तत्त्व स्वयं दश कोटि शत विस्तार वाला है । किन्तु टीका के अनुसार सौ कोटि योजन ब्रह्माण्ड का विस्तार चूँकि अप् तत्त्व के अन्तर्गत है । अतः अप् तत्त्व का विस्तार शतकोटि ब्रह्माण्ड के साथ ही माना जायेगा । इस दृष्टि से आचार्य जी की अपनी ही टीका से विरोध हो रहा है । श्लोक ६६८ की टीका में वे लिखते हैं, 'शतकोटिविस्ताराद् ब्रह्माण्डात् दशधा गुणितं जलतत्त्वम्' । अर्थात् ब्रह्माण्ड मान से दश गुणा मान वाला जल तत्त्व है, यह निश्चय होता है ।

जल तत्त्व के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड को भी मान लेने पर जलतत्त्व का मान दश कोटिशत ही रहेगा । केवल जलावरण का यह मान नहीं है, वरन् ब्रह्माण्ड के साथ का मान है । इस तथ्य पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये । यही क्रम ऊपर मध्यवर्त्ती ऊपर के तत्त्वों को भी अन्तर्गत मानकर ही इसकी गणना का प्रकल्प स्थिर करना चाहिये ।

इसके अनुसार माया परिमाण से विद्या का परिमाण माया से दशकोटि गुना अधिक है । अर्थात् यह माया को व्याप्त कर ही व्यवस्थित है । इन सबको वर्त्तुल के अनुसार रखकर देखना चाहिये । जैसे—

तदेवंविधान्मायापरिमाणात्–

दशकोटिगुणा विद्या

सापि व्याख्यातदृष्ट्या ऊर्ध्वाधःकोटिनवकपरीमाणा मध्यस्थात्कलामानात्कोटिगुणितात् ।

मायां व्याप्य व्यवस्थिता ।।६७१।।

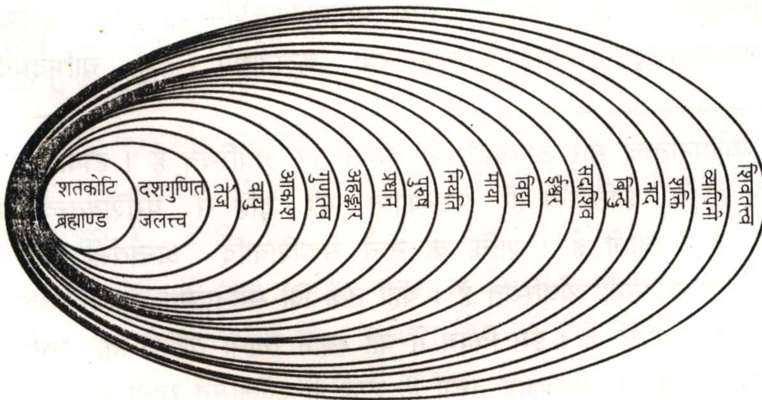
अथ ततोऽपि–

शतकोटिगुणेनैव व्याप्तासावीश्वरेण तु ।

ईश्वरेण ईश्वरतत्त्वेन ततोऽपि तद्व्याप्यैव स्थितम्–

सादाख्यं कोटिसाहस्रं बिन्दुनादं तदूर्ध्वतः ।।६७२।।

सादाख्यं यत् तत्त्वं कोटिसहस्रपरिमाणम्, तदेवोर्ध्वत इति तत्रैव अध्वनि ऊर्ध्वभागे परव्याप्त्या बिन्दुनादं वक्ष्यमाणबिन्दुनादात्मकावरणरूपतया स्थितं परं सादाख्यं रूपम् । बिन्दुना अर्धचन्द्रनिरोधिकावरणे, नादेन च नादान्तावरणमुपलक्षितम् । एतच्चाग्रे व्यक्तीभविष्यति ।।६७२।।



।।१९ वृत्त ।।६६७-६७४।।

विद्या भी ईश्वर तत्त्व के ही अन्तर्गत है । ईश्वर से हजार करो़ गुनित सदाशिवतत्त्व है । सदाशिव के ऊपर बिन्दु और नादतत्त्वों का आवरण है । बिन्दु तत्त्व में अर्धचन्द्र और निरोधिकायें अन्तर्भूत हैं । इसी तरह नाद में नादान्त भी अन्तर्भूत है ।।६७२।।

अतोऽप्यूर्ध्वे

योजनानां तु वृन्दं वै शक्तिर्व्याप्य व्यवस्थिता ।

वृन्दं शतकोटिसहस्राणि । शक्तिरिति शक्तितत्त्वम् ।

अत्रैव च शक्तिसम्बन्धिन्यूर्ध्वभागे-

व्यापिनी सर्वमध्वानं व्याप्य देवि व्यवस्थिता ।।६७३।।

शक्तिरेव परया व्याप्त्या परशिवतत्त्वात्मा व्यापिनीरूपा, सर्वमिति शक्ति-सदाशिवाद्यधस्तनं समनात्मकं चोर्ध्वमध्वानं व्याप्य स्थिता । एषां च सर्वेषां तत्त्वानां पूर्वमेव स्वरूपं व्याख्यातमिति मायान्तं तत्तत्पदोचितानां क्षेत्रज्ञानां विचित्राणाम्, विद्यादिव्यापिन्यन्तं तु मन्त्र-मन्त्रेश्वरमन्त्रमहेश्वराद्यावर्तेन भेदभिन्नानां रुद्राणामवस्थितिरिति तदपेक्षया तत्र तत्र तथोचितमेव भुवनभोगादिकम् । तदेतदग्रे व्यक्तीकरिष्यति भगवान् ।।६७३।।

एवमपरशिवतत्त्वान्तमध्वपरिमाणमुक्त्वा विश्वव्यापिनि परमशिवतत्त्वे न परिमाणमस्तीत्याह-

अप्रमेयं ततो ज्ञेयं शिवतत्त्वं वरानने ।

ततो व्यापिनीसमनान्तादध्वन ऊर्ध्वं यत् श्रेयोरूपं तत्त्वं पारमार्थिकं स्वतन्त्र-प्रकाशानन्दघनं परमशिवरूपम्, तदप्रमेयं परप्रमात्रेकरूपमित्येवं ज्ञेयं निश्चेतव्यम्, न तु इतरतत्त्ववदुत्तरोत्तरप्रमाणाधिक्यकलनया कलनीयम् । एवं चाभिदधदेव-

---

व्यापिनीतत्त्व सारे अध्ववर्ग को व्याप्त कर अवस्थित है । टीकाकार का यह मत है कि, शक्तितत्त्व ही पराव्याप्ति की दृष्टि से परशिवतत्त्वात्मिका व्यापिनी मानी जाती है । शक्ति के नीचे सदाशिवादि अन्तर्वर्त्ती तत्त्व को व्याप्तकर ही व्यापिनी व्यवस्थित है । यहाँ तक कि समनात्मक ऊर्ध्व अध्वा को भी यह व्याप्त करती है । इस विषय में यह ध्यान रखना चाहिये कि, सभी पदों के उपयुक्त क्षेत्रज्ञों की विचित्रता तत्त्वों के साथ ही उल्लसित रहती है । विद्या से व्यापिनी पर्यन्त मन्त्र, मन्त्रेश्वर, मन्त्र महेश्वर आदि के आवर्त्त हैं । इनसे अनन्त भेद भिन्न रुद्रों की अवस्थिति वहाँ है । इसके साथ ही उन भुवनों के भोगादि भी वहाँ हैं । इन विषयों पर शास्त्र सावधान है । यथावसर उसका वर्णन आगे के प्रकरणों में यथा सन्दर्भ प्रस्तुत किये जायेंगे ।।६७३।।

यह सारा का सारा अध्व परिमाण है । किन्तु यह अपर शिवतत्त्व में अध्व का परिमाण माना गया है । वस्तुतः परमशिवतत्त्व में किसी प्रकार के परिमाण का प्रकल्पन नहीं किया जा सकता । यही तथ्य इस कारिका के माध्यम से व्यक्त कर रहे हैं—

मादिशति यत्समनान्तं विश्वं यथोक्तप्रक्रियया प्रमेयीकुर्वन्नेव परप्रमात्रात्मनि स्वप्रकाश-चिदानन्दघने परमशिवपदे समाविशेदिति ।

एवं प्रसङ्गादुक्त्वा जलतत्त्वादौ भुवनस्थितिं प्रकटयितुमाह–

भुवनानि प्रवक्ष्यामि अप्तत्त्वादावनुक्रमात् ।।६७४।।

तथा–

आकारं विभवं चैव भुवनानेकविस्तरम् ।

आकारः संस्थानम् । विभवो विभूतिः । भुवनानेकस्य तत्तत्प्रधानभुवना-नुलग्नस्य भुवनसमूहस्य विस्तारो दशसंख्याकृतं वैतत्यम् ।

एतच्च पारमेश्वरव्यतिरेकेण नान्यत्र दृष्टमित्याह–

यन्न दृष्टं पशुज्ञानैः कुपथभ्रान्तदृष्टिभिः ।।६७५।।

स्वतन्त्रचिद्घनानन्दात्मकपरभैरवस्वस्वभावाख्यातिपाशपाशितत्वात् सङ्-कुचितदृक्शक्तीनां ज्ञानानि ज्ञायतेऽभिलषितं पशुभिः यैस्तैः पशुशास्त्रैः यन्न ज्ञातं

भगवान् भैरव भट्टारक देवी उमा को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि, सुमुखि देवि ! शिवतत्त्व शाश्वत अप्रमेय है, यह निश्चय जान लेना चाहिये अर्थात् इस विषय में सन्देह नहीं करना चाहिये । व्यापिनी समनान्त अध्वा से ऊर्ध्व में श्रेय है । समना तक प्रेय है । इससे ऊपर श्रेय है ।

श्रेय पारमार्थिक स्वतन्त्र प्रकाशानन्दघन परमशिव तत्त्व है । यह अप्रमेय तत्त्व है । पर प्रमाता तत्त्व ही अप्रमेय श्रेय है । यही ज्ञेय है । ज्ञातव्य तत्त्व दर्शन का निदर्शन है । इसका निश्चय कर लेना चाहिये ।

इतरतत्त्वों की तरह उत्तरोत्तर प्रमाण के आधिक्य की कलना वहाँ नहीं की जा सकती । तात्पर्य यह है कि, समनान्त विश्व की जो प्रमाण प्रक्रिया शास्त्र में वर्णित है, उसे प्रमेय रूप से साक्षी भाव से देखते हुए परप्रमाता स्वप्रकाशा-नन्दघन के चिद्रस में नहाकर परमशिवतत्त्व में अनुप्रवेश करे । तभी समावेश का रस मिलता है ।

अप्तत्त्व में भुवन स्थिति की जिज्ञासा को शान्त कर रहे हैं । भगवान् अप् तत्त्व के भुवनों के सबन्ध में क्रमिक रूप से वर्णन की प्रतिज्ञा करने के उपरान्त श्रोताओं को इस दिशा में दत्तावधान होने की प्रेरणा दे रहे हैं ।।६७४।।

अप् तत्त्वस्थ भुवनों के रूप, आकाश या संरचनात्मक विभव के विषय में सभी जानना चाहते हैं । इसमें भी भुवनों का अनन्त विस्तार है । कुछ प्रधान कुछ अप्रधान इन सभी का वैतत्य ही इसका मुख्य विषय है ।

तथा कुपथेन परिमितक्लेशमात्रप्रशमकारिणा, न तु परिपूर्णपदप्राप्तिप्रदेन उपायप्रदर्शनेन भ्रान्ता लब्धातात्त्विकप्रकाशा दृष्टिज्ञानं प्रतिपद्यमानं येषां तादृग्भिः ॥६७५॥

तान्येतानि पशुज्ञानानि लेशतो दर्शयितुमाह–

यन्न सांख्यैर्न योगैर्वा न चैव पाञ्चरात्रिकैः ।

प्रकृतिपुरुषयोरविवेकमात्रात् संसारो विवेकात्तु मुक्तिरितीदृग्ज्ञानैः सांख्यैः अत्रैव चित्तैकाग्र्यात्मयोगावेश[1]सम्प्राप्यद्रष्टृस्वरूपावस्थित्यात्ममुक्तिवादिभिर्योगशास्त्र-

---

यह वैतत्य पाशवशास्त्रों में प्राप्त नहीं है । शैवपथ के अतिरिक्त कुपथ प्रचारक शास्त्रों के स्वाध्यायी व्यक्तियों की दृष्टि भ्रान्त हो जाती है । ऐसे लोगों द्वारा इन विचित्र भुवनों की आकृति और विभव के वैचित्र्य का ज्ञान असम्भव प्राय ही है; क्योंकि, दृष्टि संकुचित हो जाती है । परिणामतः तात्त्विक प्रकाश के विमर्श से वे वञ्चित रह जाते हैं ॥६७५॥

३.सांख्य, योग और पाञ्चरात्रिक दृष्टि–

सांख्य शास्त्र अपनी परिसंख्या में ही सीमित है । योग अभी अपनी योजनिका क्रिया के आसूत्रण में ही समाप्त हो जाता है । पाञ्चरात्रिकों का विज्ञान भी पञ्चत्व से प्रेरित है । एक प्रकृति पुरुष के अविवेक और विवेक के चक्कर में समाप्त हो जाता है, तो दूसरा चित्त की एकाग्रता के योग के आवेश में द्रष्टृस्वरूप के अवस्थान मात्र के ज्ञान से मुक्ति की कामना करता है, तीसरा पाँच रात्रियों की बात करने वाला 'वासुदेव' नामक परप्रकृति के परिणाम में जगत् का विस्तार देखता है । ये सभी इस अचरज भरी जल समृद्धि का दर्शन कैसे कर पायेंगे ?

४.स्वभाववादी दृष्टि–

ऐसे ही कुछ स्वभाववादी विद्वान् हैं, जो स्वभाव की भावना के आवेश में रहते हैं । वे यह कहते हैं कि, ये पृथिवी आदि तत्त्व स्वभाव से ही जगत् और भुवनादि कार्यों में प्रवृत्त होते हैं । इसमें ईश्वर का कोई योगदान नहीं है । इन स्थूल दृष्टि से देखने वाले लोगों को अप् तत्त्व की गम्भीरता का पता नहीं चल सकता ।

कर्मप्रवादी दृष्टि–

कर्म ही विश्व का कारण है । इसमें अप् तत्त्व का कुछ योग नहीं है । ये कर्मवादी लोग मानते हैं ।

---

१. गवश क. पाठः ।

स्थैः षड्विंशतितत्त्वरूपमहाविभूत्यात्मकवासुंदेवाख्यपरप्रकृतिपरिणामात्मकप्रकृत्यादि-जगद्वादिभिः पाञ्चरात्रिकैर्यन्न दृष्टमिति सम्बन्धः ।

तथा-

स्वभाववादिभिर्नापि न च कर्मप्रवादिभिः ।।६७६।।
नापि संशयवादैश्च नग्नक्षपणकादिभिः ।

पृथिव्यादयः स्वभावेन तनुकरणभुवनादिकार्यार्थं प्रवर्तन्ते, न पुनरत्रेश्वरः प्रवर्तकोऽस्तीत्येवं वदद्भिः स्वभाववादिभिः, कर्मैव विश्वकारणं नान्यदित्याचक्षाणैः कर्मप्रवादिभिः, दैवं पुरुषकारो वा विश्वकारणमिति ब्रुवाणैः संशयवादिभिः-

'जीवाजीवास्त्रवाश्चैव संवरो विवरस्तथा ।
बन्धो मोक्षश्च सप्तैते सप्तभङ्गीविचित्रिताः' ।।

इति वचनव्यक्त्या अनादिसिद्धो बन्धो मोक्षश्च । त्रिविधो जीवः, अजीवस्तु

५.संशयवादी दृष्टि-

इनके अनुसार यह संशय की बात है कि, दैव वश यह विश्व बन गया या पुरुषार्थ योग से यह बना हुआ है । इनके मतानुसार १.जीव, २.अजीव, ३.आस्रव, ४.संवर, ५.विवर नामक विश्व वैचित्र्य का अद्भुत रूप से प्रादुर्भाव हो जाता है । इन्हें विशेष रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है-

१.जीव-तीन प्रकार के प्रसिद्ध हैं ।

२.अजीव-१.स्थावर, २.पुद्गल देह, ३.धर्म, ४.अधर्म, ५.लोकाकाश, ६.अलोकाकाश अधिकरण भुवनादिकों का यह छः प्रकार की शब्दादि विषया विकल्प वृत्ति है । यह सुख-दुःख आदि से संभिन्न होती है । यह विकल्प प्रकल्पिका तथा उसकी प्रशामिका भी होती है ।

३.आस्रव-आ अर्थात् चारों ओर से अनवरत प्रसरित एक प्रकार की मानसी वृत्ति, जिससे यम, नियम आदि नियमित इन्द्रिय वृत्तियाँ संचालित होती हैं । एक ध्यान, जिसमें पुद्गल के नैर्मल्य का आकलन किया जाता है ।

४.संवर-जीवों को सम्यक् रूप से आवृत करने वाले भाव को संवर कहते हैं । सम्यक् अर्थात् पूर्णतया सर्वात्मना अनुभव । जैसे केश के उल्लुञ्चन का भीषण कष्ट होता है । वह कष्ट स्वयं वही झेलता है और दुःख के कारण को सहता है । इसी तरह का शिलापतन व्यापार भी क्रूरता की एक मिसाल ही है । मल-धारण भी ऐसी ही कष्टप्रद अवस्था होती है ।

५.विवर-प्राक् संचित कर्मों में से जितने अशुभ हैं, उन्हें एक स्थान पर रखकर उनके ऊपर निर्झर प्रवाह की पावनता उडेलने वाला भाव ही विवर कहलाता है । यह अशुभत्व का विध्वंसक होता है ।

स्थावरम्, पुद्गलो देहः, धर्मोऽधर्मो भुवनाद्यधिकरणं लोकाकाशो मुक्तपुद्गलस्थानमलोकाकाशश्चेति षड्विधा शब्दादिविषया विकल्पवृत्तिः सुखदुःखादिसम्भिन्ना विकल्पकप्रकाशमनरूपा, आ समन्तात् स्रवति प्रसरत्यजस्रमित्यास्रवो यमनियमादिनियमितेन्द्रियवृत्तिपूर्वममलपुद्गलरूपध्यानम्, सम्यग्वृणीते जीवानिति संवरः केशोल्लुञ्चनतप्तशिलापतनमलधारणादिसमस्तदुःखानुभवः प्राक्संचिताशुभसञ्चयस्य निर्झर[1] इव विध्वंसको विवरः, लोभमोहशोकादिलोहपञ्जर इवालावुपात्राणां निमज्जकः पुद्गलानामावारको बन्धः, तदावरणव्यपगमे सुखसंविदात्मकपुद्गलोन्मज्जनमलोकाकाशो मोक्षश्चेति जीवाजीवादिपदार्थसप्तकवादिभिः १. स्यादस्ति, २. स्यान्नास्ति, ३. स्यादस्ति च स्यान्नास्ति च, ४. स्यादनिर्वाच्यम्, ५. स्यादस्ति च निर्वाच्यम्, ६. स्यान्नास्ति च निर्वाच्यम्, ७. स्यादस्ति च नास्ति चानिर्वाच्यं चेति सप्तभिरेव

६.बन्ध–लोक, मोह, शोक आदि का लौहपिञ्जर अलाबु सदृश हल्के फुलके पात्रों को डुबो देता है। ऐसा ही यह ऐसा पाश है, जो पुद्गलों को ले डूबता है।

७.मोक्ष–बन्ध के आवरण के भङ्ग हो जाने पर आनन्द सुख सम्पत्ति की अनुभूति के उपरान्त पुद्गल का उन्मज्जन मानो कष्ट के महासागर से हो जाता है। यह एक प्रकार का अलोकाकाश ही कहा जा सकता है।

ये उक्त पदार्थसप्तकवादी ही संशयवादी कहलाते हैं। इसका अन्वय श्लोक ६७५ के यन्त्र दृष्टं से किया जाना चाहिये। अर्थात् इन लोगों द्वारा शैव ज्ञान का साक्षात्कार नहीं हो सकता ॥६७६॥

६.नग्नक्षपणकदृष्टि–

यद्यपि ये भी सात प्रकार के ही 'स्यात्' मार्ग पर चलने वाले पथिक हैं। इनके उक्त सात बिन्दु इस प्रकार हैं–

१.स्यात् अस्ति– सम्भव है कि वह है।

२.स्यान्नास्ति– अस्तित्व के साथ अनस्तित्व का भी अनिश्चय।

३.स्यादस्ति च नास्ति च– हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है।

४.स्यादनिर्वाच्यम्– शायद अनिर्वाच्य होगा।

५.स्यादस्ति च अनिर्वाच्यम्– शायद है भी और अनिर्वाच्य भी।

६.स्थान्नास्ति च अनिर्वाच्यम्– शायद नहीं भी है वह अनिर्वाच्य।

---

१. विवर क. पाठः।

भङ्गीभिरनिश्चितमेव सर्वं वदद्भिः नग्नक्षपणकादिभिर्यन्न दृष्टमिति सम्बन्धः ।

तथा–

भूतवादिभिश्चैव

पृथिव्यप्तेजोवायुरिति भूतचतुष्टयमेव प्रत्यक्षदृष्टमस्तीति कथयद्भिश्चार्वाकैः ।

नापि स्याल्लोकिकैरपि ।।६७७।।

वार्तादण्डनीतिमात्रनिष्ठैः ।।६७७।।

न चात्मचिन्तकैर्वापि

'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्' ।। (ऋ० १०/९०) इत्यादि चिन्तयद्भिर्वैदिकैः–

न च तर्कप्रवादिभिः ।

७.स्यादस्ति च नास्ति च अनिर्वाच्यम्– शायद वह है भी या नहीं भी है अनिर्वाच्य ।

ये उपर्युक्त सात प्रकार की विचार भङ्गी में नग्नक्षपणक भी किसी निश्चय पर पहुँचने में असमर्थ हैं । नितान्त अनिश्चय की स्थिति में जीने वाले ये विचार सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकते ।

७.भूतवादी दृष्टि–

पृथिवी, अप्, तेजस्, वायु और आकाश ये पाँच तत्त्व पञ्चमहाभूत कहलाते हैं । किन्तु ये कहते हैं कि, आकाश कोई तत्त्व नहीं है । अतः चार तत्त्व प्रत्यक्ष दृष्ट हैं, इन्हीं को मानना चाहिये । इन्हीं चारों से सृष्टि बनती और बिगड़ती रहती है । ईश्वर आदि तत्त्व नितान्त अमान्य हैं । यह दृष्टि चार्वाक मत की भी है ।

८.लौकिक–

इनकी कुछ विशेषता वार्त्ता और दण्डनीति में विश्वास कर लोक-जीवन चलाने वाली बात है । लोकव्यवहार के प्राधान्य के आधार पर इन्हें लौकिक कहते हैं ।।६७७।।

९.आत्मचिन्तक–

ऋग्वेद १०/९० का मन्त्र पुरुष ही यह सब कुछ है । जो हुआ है और जो भविष्य में होने योग्य है, वह सब पुरुष ही है । ये वैदिक चिन्तक आत्म चिन्तक ही हैं ।

'अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः' ।

(न्या० सू० १/४०)

इत्यूहरूपेण तर्केण व्यवस्थां कुर्वद्भिः ।

न च वैशेषिकैर्वाऽपि षट्पदार्थपरायणैः ।।६७८।।

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाख्यपदार्थषट्कमेव तत्त्वमित्यभिदधद्भिः कणादशिष्यैः ।

न चापि न्यायवादैश्च

प्रमाणादिपदार्थषोडशकतत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमो भवतीति ब्रुवाणैर्नैयायिकैः ।

हेतुदृष्टान्तवादिभिः ।

न च यद्दृष्टमिति स्थितमेव ।

'तद्भावहेतुभावो हि दृष्टा[1]न्ते तदवेदिनः ।

ख्यातेऽर्थे विदुषो नान्यो हेतुरेव हि केवलः'।।

इत्यारटद्भिः सौगतैः ।

१०.तर्क प्रवादी–

न्याय सूत्र १/४० सूत्र के अनुसार अविज्ञान तत्त्व अर्थ में कारण की उपपत्ति से तत्त्वज्ञान का ऊहन ही तर्क है । इस ऊह से तत्त्वसाक्षात्कार असम्भव है ।

११.वैशेषिकमतवादी दृष्टि–

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय रूप छः पदार्थों में ही सारा तत्त्ववाद समाविष्ट है । इन कणाद-शिष्यों की विचार सरणी असीम की ओर जाने में बड़ी बाधायें लेकर प्रवर्त्तित है ।।६७८।।

१२.न्यायवादी दृष्टि–

ये १६ पदार्थवादी हैं । इन्हीं षोडश के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस की सिद्धि होती है । यही इनकी सीमा है ।

१३.हेतुदृष्टान्तवादी दृष्टि–

हेतु के दृष्टान्त से सत्य का साक्षात्कार कैसे हो सकता है ? दृष्टान्त और हेतुभाव से केवल तत्त्व की बात केवल बचकानी बात ही कही जा सकती है ।

---

१. न्तत० क. पाठः ।

नाप्येकजन्मवादैश्च

वर्तमानमेवेदमेकं जन्म, न तु जन्मान्तरमभूद् भावि वेत्युदितवद्भिः ।

न चाप्येकत्ववादिभिः ।।६७९।।

पारमेशशास्त्रप्रतिपादितस्वप्रकाशस्वतन्त्रचिदद्वयवादव्यतिरेकेण सत्ताद्यद्वय-वादिभिः ।।६७९।।

न धूर्तवादैर्लोकैर्वा सुपरिज्ञातमैश्वरम् ।

धूर्तविरचितम्लेच्छादिशास्त्रनिष्ठैः । ईश्वरेण शिवभट्टारकेण प्रोक्तमप्तत्त्वादि-भुवनानामाकारविभवविस्तारादिकं यत् सांख्यादिभिर्धूर्तलोकपर्यन्तैर्न कैश्चिदपि परि-ज्ञातम्, तत्ते वक्ष्यामीति प्रोक्तेनैव सङ्गतिः ।

न चेयन्त एव वादिनः; अपि तु–

इत्येवंवादिनां तेषां वादानां तु शतत्रयम् ।।६८०।।

१४.एकजन्मवादी दृष्टि–

यही जगत् और यही जन्म । 'बहुरि ना आवना या देश' की घोषणा । शरीर जल जाने पर पुनरागमन नहीं । ये विचार ऐसे लोगों के हैं, जिन्होंने सत्य का साक्षात्कार नहीं किया है ।

१५.एकत्ववादी दृष्टि–

परमेश्वर शास्त्र द्वारा प्रतिपादित स्वप्रकाश, स्वतन्त्र, चिद् और अद्वयवाद के व्यतिरिक्त सत्तादि की अद्वयता का भी ये लोग ख्यापन करते हैं । यह पक्ष भी मान्य नहीं हैं । अद्वय भाव के समावेश की गहराई में डूबना अत्यन्त आवश्यक है ।।६७९।।

इन पञ्चदशवादों के अतिरिक्त भी धूर्त्तवाद का प्रसार तो लोक में चलता ही है । इसका निश्चय बड़ा कठिन है । बहुत से शास्त्रकार भी वाक्पटुता के आधार पर असत् तत्त्व को भी सत् प्रतिपादित करने की चेष्टा करते हैं । वास्तविकता यह है कि, इस उक्त तत्त्व का साक्षात्कार किसी से नहीं हो सका है । भगवान् की यह बात सर्वथा सत्य है । विश्वास और श्रद्धा के योग्य है ।

भगवान् कुछ और लोगों की गणना कर रहे हैं–इनके अनुसार इन पन्द्रहों के अतिरिक्त इन विमतिवादियों की और इनके वादों की संख्या ३०० है ।।६८०।।

त्रिषष्टिरधिकाश्चान्ये वादिनां भ्रान्तचेतसाम् ।
अज्ञानतिमिरान्धानामुन्मीलनकृदुत्तमम् ॥६८१॥
संसारपङ्कमग्नानां नौरिवोत्तारणं परम् ।
महामोहतमोऽन्धानां तमोनुदमिदं परम् ॥६८२॥
परमेशमुखोद्भूतं यन्मया प्राप्तमद्भुतम् ।
ज्ञानामृतमिदं दिव्यं नानाभुवनविस्तरम् ॥६८३॥
शृणुष्वैकमना देवि विचित्राकारमद्भुतम् ।

इतिशब्दः प्रकारवाची । एवंप्रकारं वदतां वादिनां सम्बन्धिनो ये वादास्तेषां मध्ये जलादिशिवान्तगततत्तद्भुवनाद्यध्ववेद्यीकरणप्रतिपादनेन तावद्वेद्यवेदकपरभैरवात्मकमहाप्रमातृपदसमावेशप्रदमिदं ज्ञानामृतम् । अज्ञानतिमिरेण तत्त्वावेदनान्धकारेण अन्धा अनुन्मीलितदृक्शक्तयस्तत एव भ्रान्तचेतसस्तेषां शक्तिपाततः प्राप्तं सद् उन्मीलनकृत् स्वस्वभावोन्मेषकम् । तथा संसारकर्दमे मग्नानां नौरिवोत्तारणं परं पारप्रापकम् । महामोहो विषयेषु अलङ्कारवस्त्रस्त्र्यादिषु आत्माभिमानः, तमः पुर्यष्टके

केवल तीन सौ ही नहीं, तिरसठ अधिक अर्थात् तीन सौ तिरसठ ऐसे भ्रान्त चेतसवादी हैं, जो सत्य और प्रकाश के पथ से मुँह मोड़कर तिमिर की तैमिरिकता को अपनाने को आकुल हैं । ऐसे अज्ञान से अन्धतमस में पतित जीवों के उन्मीलन के लिये सक्रिय और नितान्त सावधानीपूर्वक उद्धारार्थ समुद्यत है । यही सर्वोत्तम शास्त्र है ॥६८१॥

संसार की उपमा पङ्क से दी गयी है । पङ्किल भूमि दलदली होती है । उसमें समूचा शरीर आचूल मूल समा जाता है । ऐसे मोहमय कीचड़ में फँसे लोगों के उद्धार के लिये नौका की आवश्यकता होती है । पारमेश्वर, शास्त्र इस पङ्किलता के तम से उद्धार करने में पूर्ण समर्थ हैं ॥६८२॥

स्वयं परमेश्वर के मुख से मकरन्द सुधा के समान इस अमृत को भाग्यवश मैंने प्राप्त किया । यह अत्यन्त अद्भुत है । यह ज्ञान की चेतना का चिद्रस है । अनेक भुवनों में इसका विस्तार है । भगवान् कहते हैं कि, देवि ! एकाग्रमन से तुम इसका श्रवण करो ॥६८३॥

निष्कर्ष यह कि, अप् तत्त्व से शिव पर्यन्त विविध अनन्त भुवन आदि ऐसे पदार्थ हैं, अध्वा हैं, जिनके वेद्यवेदक विज्ञान का आधार और प्रमातृपदवी में समावेश की विधि का एकमात्र प्रतिपादक यह शास्त्र है ।

आत्माभिमानः, आभ्यां मोहतामिस्रान्धतामिस्रा लक्ष्यन्ते । एवमेभिरन्धीकृतानां तमोनुदमित्यज्ञाननाशनम् । परमेशमुखोद्भूतमिति परभैरवादेव शक्तिसदाशिवादि-क्रमेणायातं सद् मया कैलासवासिना प्राप्तमिति श्रीश्रीकण्ठाल्लब्धदीक्षेणाधि-गतम् । अद्भुतं निभाल्यमानं सद्विस्मयमुद्रानुप्रवेशनेन परभैरवस्वरूपाभिव्यञ्जकम्, अत एव दिव्यम् । नानाभुवनानां प्रतिपाद्यमानानां विस्तारो विभवादिप्रपञ्चो यत्र तत्तादृशम् । ज्ञानामृतप्रतिपादकमिदं शास्त्रमेव ज्ञानामृतम् । एकाग्रमनाः शृण्वित्य-नेन परमोपादेयतां ध्वनति ।

अद्भुतत्वं भुवनानां स्पष्टयति–

अनन्तो भुवनव्रातस्त्वव्युच्छेदाद्व्यवस्थितः ।।६८४।।
मधुकोशजालकवत्तथा भूरिचयावृतिः ।

अज्ञान से ग्रस्त लोग तो अन्धे के समान होते हैं । उनकी दृक्क्रिया शक्ति निमीलित हो जाती है । होता यह है कि, उनका मन भ्रान्त हो जाता है । संसार के कीचड़ में भ्रान्ति के कारण ही गिर जाते हैं । उनके निकालने का अनुग्रह आवश्यक है ।

परभैरव से शक्ति और सदाशिव क्रम से आया हुआ यह ज्ञान श्रीकण्ठ से मैंने कैलास में प्राप्त किया । श्रीकण्ठ ने इस ज्ञान की दीक्षा मुझे दी थी । ज्ञानामृत प्रतिपादक यह शास्त्र स्वयं ही ज्ञानामृत है । भगवान् द्वारा इसे सुनने के लिये एकाग्रता का आदेश देने का ही यही तात्पर्य है कि, यह शास्त्र परम उपादेय शास्त्र है ।।६८१-६८३।।

इस शास्त्र के माध्यम से इस पटल में भुवनों का सारा विज्ञान विस्तार पूर्वक उद्घाटित किया गया है । इस भुवन नामक छठें अध्वा की जानकारी साक्षात् भगवद् विग्रह का ही स्थूल रूप है । इसमें जो कुछ भी है, जैसा भी है, अतीव आकर्षक है । अधिक क्या–भगवद्रूप ही है ।

सारे भुवन में जिनके आनन्त्य का बार बार उल्लेख किया गया है, ये सभी अव्युच्छेद रूप से व्यवस्थित हैं । अव्युच्छेद का अर्थ है—जिसमें व्युच्छेद अर्थात् टूटन या कटाव न हो, अर्थात् लगातार उनकी निरन्तरता में कोई रुकाव, रोध या बाधा नहीं हो । इस निरन्तरता का निरन्तर स्मारक भी यही है ।।६८४।।

मधुकोश में मधुमक्षियों की अवस्थिति से सभी परिचित हैं । उस मधुच्छत्र पर एक पर-एक वे व्यवस्थित हो जाती हैं और मधुकोश की आकृति में कोई विकृति नहीं आ पाती है । उसी तरह ये लोक भी एक एक को आवृत कर अवस्थित हैं ।

अव्युच्छेदान्नैरन्तर्येण । मधुकोशे मधुमक्षिकाणां गोलकाकृतावाश्रये यानि जालकानि उपर्युपरि वर्तुलाकृत्या स्थितानि । भूरिचयावृतिरिति विततया परस्पर-मावार्यवारकतयावस्थितः ।

किञ्च,

मीनशङ्खकुलायाभं दाडिमीबीजवत्स्थितम् ।।६८५।।
कदम्बकेसरनिभं पुराणां तु समूहकम् ।

कुलायमालयः । दाडिमीबीजवदिति अतिनिविडगर्भार्थस्थितम् ।

किञ्च,

महासेनावासकवद्वने तरुसमूहवत् ।।६८६।।
निरन्तरमनन्तानि भुवनानि वरानने ।
नानाकाराणि चित्राणि सर्वरत्नमयानि च ।।६८७।।

महती चासौ सेना च महासेना, तस्या आवासकः शिविरं, तद्वत् । आकारः संस्थानम् । विचित्राणि विविधशोभाभाञ्जि ।।६८७।।

तथा–

परिमण्डलानि दीर्घाण्यर्धचन्द्राकृतीनि च ।
पुरुषाकृतीनि चान्यानि नन्द्यावर्ताकृतीनि च ।।६८८।।

मीन, शंख और कुलाय की तरह उनके आश्रय हैं। दाडिम-बीज की तरह वे अवस्थित हैं ।।६८५।।

उन पुरों के समूह कदम्ब केशर की तरह अत्यन्त घने रूप में सुशोभित हैं। बहुत बड़ी सेना के शिविरों के समान घने हैं। वृक्षों के समूह की तरह घनता से युक्त हैं ।।६८६।।

उनमें निरन्तरता है। विरलता नहीं है। हे सुमुखि देवि ! इससे यह सिद्ध होता है कि, वे समूह के पक्षधर हैं। उनके विचित्र आकार हैं। उनके पुर सर्व रत्नमयता के कारण अतीव आकर्षक हैं ।।६८७।।

उनका माण्डलिक विस्तार देखने योग्य है । उनकी पहले बड़ी आकृति पुनः अर्धचन्द्र के समान चमत्कारमयी है ।

उनकी रचना पुरुष वर्ग की तरह विचित्र है। नगर नन्द्यावर्त्तमय शङ्ख के समान आकृति के समान आवर्त्त वाले हैं ।।६८८।।

पर्वताकृतिरूपाणि गजयूथाकृतीनि च ।
शरावाकृतीनि चान्यानि ज्वालारूपाकृतीनि च ।।६८९।।
महाविमानरूपाणि त्रिशूलाकृतिमन्ति च ।
मुरजाकृतीनि चान्यानि त्र्यश्राकृतिपुराणि च ।।६९०।।
महापुरुषरूपाणि शतशृङ्गाकृतीनि च ।
सहस्रशृङ्गावर्तानि तथान्यानि वरानने ।।६९१।।
कोटिशृङ्गाणि चान्यानि असंख्यशिखराणि च ।
वृत्तानि चतुरश्राणि त्रिकोणान्यपराणि च ।।६९२।।

परिमण्डलानि सन्ति दीर्घाणीति पश्चात्परिमण्डलानि अग्रे तु दीर्घाणि, अत एव वृत्तानीत्यनेन न पुनरुक्तता । नन्द्यावर्तः सन्निवेशविशेषम् । मुरजाकृतीनां भुवनानां त्र्यश्राकृतीनि पुराणि गृहा येषामिति विशेषणम्, तेन त्रिकोणानीत्यपुनरुक्तम् । महापुरुषः–

'पृथुवक्षा दीर्घबाहूरुश्च..................'।

इत्यादिरूपः । पुरुषाकृतीनीति तु सामान्योक्तिः ।।६९२।।

किञ्च,

दिव्यचित्रपताकानि दिव्यघण्टाध्वजानि च ।
भेरीनादस्वराढ्यानि दिव्यगीतध्वनीनि च ।।६९३।।

पर्वत के समान महान हाथियों के यूथ की तरह के कुछ शराव की आकृति के और कुछ ज्वाला की लपट के समान पिङ्गलवर्णी है ।।६८९।।

वहाँ के नगर और पुर बड़े विचित्र हैं । कुछ तो महाविमानों के आकार के, कुछ त्रिशूल के आकार के और कुछ मुरज के समान हैं । कुछ त्रिकोने नगर भी हैं ।।६९०।।

कोई महापुरुषों के समान उच्चपदस्थ समाधि लगाकर अवस्थित प्रतीत होते हैं । कुछ शतशृङ्ग की आकृति से युक्त हैं । कुछ हजार शृङ्गों का आवर्त्त रूप और कुछ इससे भी विचित्र हैं ।।६९१।।

कुछ नगर ऐसे हैं, जिनमें करोड़ों शिखरों की परम्परा दीख पड़ती है । कुछ असंख्य शिखर वाले नगर हैं । कुछ की रचना गोल वृत्ताकार कुछ की चतुष्कोण और कुछ की त्रिकोण संरचनायें हैं ।।६९२।।

कुछ दिव्य चित्रों से चित्त को चुराने वाले हैं । कुछ में ध्वज और पताकाओं की भरमार है । कहीं घण्टाध्वनि सी गूँज देवताओं का आवाहन करती सी प्रतीत होती है । कुछ भेरीनाद से निनदित है । कहीं दिव्य गीतों के सरगम राग वातावरण को पावन बना रहे हैं ।।६९३।।

दिव्यदुन्दुभिनादानि महावेणुस्वनानि च ।
नानावादित्रघोषाणि भुवनानि च सर्वदा ।।६९४।।

इत्थमेषां विभूतिमुक्त्वा वर्णमाह–

शुक्लानि स्फटिकाभानि पद्मरागाकृतीनि च ।
चन्द्रकान्तसवर्णानि मुक्तादामनिभानि च ।।६९५।।
लाक्षारससवर्णानि कानिचिद्बरवर्णिनि ।
इन्द्रगोपकवर्णानि इन्द्रनीलनिभानि च ।।६९६।।
नीलोत्पलसवर्णानि विद्युत्पुञ्जनिभानि च ।
बालादित्यसवर्णानि पद्मगर्भनिभानि च ।।६९७।।

कहीं दुन्दुभियाँ बज रही हैं । कहीं महावेणु की ध्वनि सुन पड़ती है । अनेक प्रकार के वाद्ययन्त्र बजाये जा रहे हैं । ऐसे ये रुद्र-भुवन और भवन हैं ।।६९४।।

यह नगरों और पुरों के वैभव का भरा-पूरा चित्र है । नगरों और पुरों की वर्णनात्मक शैली पुराणों के समान है । इनमें उबाऊ-पन है और क्षेपक है । बीच बीच में विद्वानों ने अपनी कवयित्री शक्ति को उसी में अनुप्रविष्ट कर दिया है ।

यहाँ वर्णों का वर्णन भी ऐसा ही है । जो प्रयोग में नहीं लाये जाते, ऐसे वर्णों की वर्णना भी नगरों के सन्दर्भ में है । कुछ अतिशयोक्तियाँ भी हैं, जिन्हें काव्य और साहित्य में देने से भी कवि बचते हैं । उनका भी उल्लेख है । जो हो स्वाध्यायशील विद्वान् पुरुष ही इसके साक्षी हैं ।

रंगीन नगरियों की रंगीन छटा कवि को प्रेरित करती है, शब्द चित्र से उन्हें चित्रित करने के लिये देवों की नगरियों की निर्मित कला दिव्य होनी ही चाहिये ।

इस तरह एक दम शुक्ल होने के कारण पारदर्शी स्फटिकों से जटित उसकी अट्टालिकायें पद्मराग मणियों से भी मण्डित हैं । चन्द्रकान्त मणियों और मुक्तामालाओं से वे सुशोभित हैं ।।६९५।।

लाख की लालित्यमयी कलायें अप्रकल्प्य हैं । कुछ इन्द्रगोपक (जुगनू या इन्द्रबधूटियों) के समान रंगीन हैं । इन्द्रनील मणियों के जड़ाव से सुन्दर, नील-कमल के समान नील, बिजली की चमक के समान पिङ्गल, उगते सूरज के समान सुकुमार सौन्दर्य समन्वित और पद्मगर्भ के समान मनोहर वे नगर रंगीन हैं ।।६९६-६९७।।

चन्द्रप्रभानि चान्यानि चन्द्रकोटिनिभानि च ।

मध्याह्नार्कसवर्णानि सूर्यकोटिनिभानि च ।।६९८।।

अशोकस्तवकाभानि हरितालनिभानि च ।

शक्रचापसवर्णानि गोक्षीरधवलानि च ।।६९९।।

सिन्दूरकुङ्कुमाभानि गोरोचननिभानि च ।

तप्तहेमसवर्णानि निर्धूमाग्निनिभानि च ।।७००।।

शङ्खपाण्डुरवर्णानि कानिचिद्भुवनानि च ।

नानावर्णानि चान्यानि नानारूपाकृतीनि च ।।७०१।।

इन्द्रगोपकः खद्योतकः । एतानि च जलतत्त्वादनाश्रितशिवतत्त्वान्तमीदृंशि उक्तानि ।

यतः-

एतेषां परतो देवि व्यापकं परमं पदम् ।

अप्रमेयमसंख्येयमगम्यं सर्ववादिनाम् ।।७०२।।

कुछ चन्द्रप्रभा युक्त भवन हैं, कुछ करोड़ों चन्द्रप्रभा से चमक रहे हैं । कुछ दोपहर के आदित्य की आभा विकीर्ण करते हैं । कुछ करोड़ों सूर्य की रश्मियों के समान हैं ।।६९८।।

अशोक के गुच्छक, हरिताल, इन्द्रधनुष, गाय के दूध की तरह दूधिया रंग के समान वर्णी हैं ।।६९९।।

कुछ सिन्दूरी हैं, कुछ कुङ्कुमवत्, कुछ गोरोचन रंगीन, कुछ तपाये सोने के समान और कुछ निर्धूम अङ्गार के समान चमकीले हैं ।।७००।।

कुछ शङ्ख के समान पाण्डुर वर्णी और कुछ भुवनों और भवनों के वर्ण अवर्णनीय और अद्भुत हैं । अनेकानेक वर्णों की रमणीयता अवर्ण्य है । उनके रूपों और आकृतियों का वर्णन नहीं किया जा सकता । ये सारे नगर और पुर जल तत्त्व से लेकर अनाश्रित शिव पर्यन्त अवस्थित हैं और शोभा के धाम हैं ।।७०१।।

इनके ऊपर व्यापक परम पद है । भगवान् कह रहे हैं कि, देवि, वह परम अप्रमेय है और असंख्येय है । उस पद को यह ऐसा या इस प्रकार का है,

अप्रमेयमिदन्तया[1] परिच्छेत्तुमशक्यं यतः संख्ययापि निर्देष्टुमशक्यम् । अतश्च शैवशास्त्रज्ञव्यतिरेकेण प्रागुक्तानां सर्ववादिनामगम्यप्राप्यम् ॥७०२॥

तदाह–

विना प्रसादादीशस्य ज्ञानमेतन्न लभ्यते ।
न चापि भावो भवति दीक्षामप्राप्य देहिनाम् ॥७०३॥

शक्तिपाततो लब्धमाहेश्वरदीक्षाणामेतज्ज्ञानं लब्धं सत् प्ररोहति नान्यथेत्यर्थः ॥७०३॥

एतदेव स्पष्टयति–

यदा तु कारणाच्छक्तिर्भवेन्निर्वाणकारिका ।
शिवेच्छया प्रपद्येत दीक्षां ज्ञानमयीं शुभाम् ॥७०४॥
मन्त्रयोगात्मिकां दिव्यां ततो मोक्षं व्रजेत्पशुः ।

तदेति मध्ये व्याकार्यम् । कारणात्परमशिवात् निर्वाणकारिका शक्तिर्भवेद् अनुग्राह्यस्योन्मज्जति तदा सोऽनुग्राह्यो दीक्षां प्रपद्येत । दीक्षां ज्ञानमयीमित्यनेन प्रोक्तवक्ष्यमाणसमस्ताध्वमेयीकरणलब्धपरप्रमातृपदानुप्रवेशाभिव्यक्तिदाम्, शुभां जीवन्मुक्तिरूपाम्, ज्ञानमयीमित्यनेन क्रियादीक्षयापि ज्ञानसारतैवेत्यादिशति ।

इस दृष्टि से परिच्छेदपूर्वक नहीं कहा जा सकता । उसकी संख्या का भी निर्देश नहीं किया जा सकता । शैव शास्त्र के अतिरिक्त पहले कहे गये वादलिप्त पुरुषों के लिये तो यह परम पद अगम्यप्राय ही है ॥७०२॥

परमेश्वर के अनुग्रह के विना, उनकी प्रसन्नता के अभाव में यह ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता । विना कृपा के इसको जानने के भाव भी हृदय में उत्पन्न नहीं हो सकते । शैव शक्तिपात और महेश्वर दीक्षा से ही इस अद्भुत ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है ॥७०३॥

इसी का स्पष्टीकरण कर रहे हैं । भगवान् का कथन है कि, सर्वकारणों के कारण परमशिव ही हैं । उन्हीं से शैवी दीक्षा का प्रवर्त्तन है । इसे निर्वाण कारिका दीक्षा कहते हैं । उसी से अनुग्राह्य में उन्मज्जन की शक्ति मिलती है और वही दीक्षा प्राप्त करता है । यह दीक्षा ज्ञानमयी होती है ।

ज्ञानमयी कहने का तात्पर्य है कि, जितना कुछ आराध्य के मुखारविन्द से मन्त्र रूप ज्ञानामृत का प्रवाह बह चुका है अथवा जितना अभी वक्ष्यमाण है, सबके द्वारा षडध्व को मेय रूप से जानकर प्रमाता पद में अनुप्रवेश की

---

१. यत्तया क० ।

मन्त्रेण मननत्राणधर्मिणा योग ऐक्यं यस्याम्, दीक्षायां हि मन्त्राराधनात् तत्तादात्म्यं भवति । दिव्यामिति वैष्णवादिदीक्षाभ्योऽधिकप्रभावाम् । इत्थं ज्ञानमयीं दीक्षामासाद्य जीवन्मुक्तिं लभते पशुरिति प्रागवस्थानुवादः ।

यदि तु इयद्विश्ववेद्यवेदनतः परां वेदकभुवं नारोहति, तदा न मुच्यत इत्याह–

नान्यथा मोक्षमायाति अपि ज्ञानशतैरपि ।।७०५।।

पूर्वनिर्दिष्टरूपैः ।।७०५।।

अतश्च–

यस्य प्रकाशितं सर्वं शिवेनानन्तरूपिणा ।

स एव मोक्षं व्रजति

प्रकाशितमित्यनेन भुवनाध्वज्ञानेनाभिव्यक्तिं नीतम् । अनन्तरूपिणा अशेषशरीरेण ।

का अस्य मोक्षप्राप्तिरित्याह–

शिवः सर्वमहेश्वरः ।।७०६।।

अभिव्यक्ति देने वाली शक्ति । वही ज्ञानमयी कही जा सकती है । यह जीवन्मुक्तिरूपा होती है । इसे ज्ञानमूला क्रिया दीक्षा भी कहते हैं । यही शुभा दीक्षा कही जाती है ।

मन्त्र मनन और त्राण धर्मा होते हैं । इन्हीं मन्त्रों के माध्यम से शिवैक्य भी उपलब्ध होता है । यह तथ्य है कि, दीक्षा में मन्त्राराधन की क्रिया सम्पन्न होती है । इसी से शैव तादात्म्य की उपलब्धि होती है । यह अत्यन्त दिव्य होती है । दिव्य कहने का तात्पर्य है कि, यह दीक्षा वैष्णवादि सम्प्रदायों की दीक्षाओं से प्रभावशालिनी होती है । इस तरह ज्ञानमयी दीक्षा प्राप्त कर पशु भी पशु-पतित्व की ओर अग्रसर और जीवन्मुक्त हो जाता है ।

यह महाभाव की अवस्था होती है । ज्ञान के प्रकाश में विमर्श रश्मियों से शैव साक्षात्कार हो जाता है । जिसे ज्ञान के प्रकाश की उपलब्धि नहीं हो सकी है, वह व्यक्ति कभी मोक्ष को उपलब्ध नहीं हो सकता । यह ज्ञान कुछ विलक्षण ही होता है । शिव ज्ञान के अतिरिक्त किन्हीं अन्य सैकड़ों प्रकार के ज्ञानों से भी जीवन्मुक्ति असम्भव है ।।७०४-७०५।।

जिस भाग्यशाली शिष्य को यह सब प्रकाशित हो गया है, भुवनाध्वा पर्यन्त सभी ज्ञानों का प्रकाश उसके अन्तः करण में उतर चुका है । अनन्तेश्वर सर्वाराध्य परमेश्वर की जिसके ऊपर कृपा हो चुकी है, वही मोक्ष को उपलब्ध हो

शिव इति प्राप्ताद्वयप्रकाशानन्दघनश्रेयो रूपः, तत एव ब्रह्माद्यनाश्रितान्ताधिष्ठातृत्वात् सर्वेषां महानीश्वरः ॥७०६॥

किञ्च,

तेनेदं ज्ञानमुख्यं तु पुरा प्रोक्तं मया तव ।

तेनेति सर्वमहेश्वरात्मकपरस्वरूपेण मया कैलासवासिना देव्याः परशक्तिरूपायाः पुरा प्रोक्तमित्यनेन परस्वरूपप्रत्यभिज्ञापनया देवीमुन्मिषत्स्वस्थानां कुर्वन्नेतद्बृंहयन् प्रोक्तज्ञानदीक्षातो मुक्तः परमेश्वर उमापतिश्चैकं तत्त्वमिति । अतश्च तन्त्रावतारपटलोक्तपरसम्बन्धसारतैव सर्वत्रेति दर्शितं भवति ।

एतच्च–

संसारार्णवमग्नानां नौरिवोत्तारणं परम् ॥७०७॥

यत एतत्–

महामायाञ्जनातीतं

मायोपरि महामाया सदाशिवादीनामपि समुचितसङ्कोचोत्थापिका शून्यातिशून्यरूपा शक्तिस्तत्कृतमञ्जनमावरणमप्यतीतम् ।

अत एव–

अज्ञातं पशुगोचरे ।

पशूनां मायाञ्जितत्वात् ।

सकता है । उसे यह निश्चय हो जाता है कि, अद्वयतादात्म्यप्रद प्रकाशानन्दघन परमेश्वर ही परम श्रेय सर्वस्व हैं । वह कारण देवों के भी कारण रूप परमहेश्वर शिव हैं । यह ज्ञान हो जाना ही जीवन्मुक्ति है ॥७०६॥

उसी परमेश्वर परमशिव रूप मेरे द्वारा यह ज्ञान तुम्हें पहले ही कैलास शिखर आसीन रहते हुए दिया है । तुम स्वयं पराशक्तिमयी देवी उमा हो । तन्त्रावतार प्रकरण में परस्वरूप का प्रत्यभिज्ञापन मेरे द्वारा किया गया था । यह ज्ञान संसार समुद्र में डूबने उतराने वाले लोगों के लिये नौका के समान परोद्धारक माना जाता है । इसीलिये इसे परज्ञान कहते हैं ॥७०७॥

माया से विजित जीवों के लिये यह अज्ञात है । यह अमन्त है अर्थात् देश, काल और रूप आदि से अनवच्छिन्न है । माया से पार जाने पर ही इसका साक्षात्कार होता है । यह अक्षोभ्य है । इसमें कभी क्षोभ नहीं होता । परमशान्तस्वरूप यह स्वतन्त्र चिद्घन रूप है । इसके क्षुब्ध होने का प्रश्न ही नहीं उठता । विश्व का उल्लास विलास और विलापन या विश्रान्ति रूप संहार निरन्तर

किञ्चेदम्–

अनन्तं पारमक्षोभ्यं सुबोधं परमेश्वरम् ।।७०८।।

अनन्तं देशकालाकारानवच्छिन्नम् । पारं च मायापर्यन्तात्मकम् । स्वतन्त्रचिदेकघनाकारत्वान्न केनचित् क्षोभणीयम्; अपि तु उल्लासनविलाप[१]नक्रमेण विश्वक्षोभकम् । सुबोधमिति–

'दिदृक्षयेव सर्वार्थान्यदा व्याप्यावतिष्ठते ।
तदा किं बहुनोक्तेन स्वमेवावभोत्स्यते' ।। (४/१३)

इति श्रीस्पन्दनिरूपितनीत्या विश्वप्रमेयीकरणेन सुखोपायप्राप्यं स्वप्रकाशस्वस्वरूपात्मकत्वात् । अथ चेदं पारमेश्वरं ज्ञानं शास्त्रं शतकोटिप्रविस्तीर्णत्वादनन्तपारं वाद्यन्तरैः क्षोभयितुमशक्यम् ।।७०८।।

तदीदृशम्–

परमेशमुखोद्गीर्णं यन्मया प्राप्तमद्भुतम् ।

तत्–

वक्ष्ये ज्ञानामृतमिदं शृणुष्वैकमनाः प्रिये ।।७०९।।

शृणुष्वेति पुनरपि सावधानत्वग्राहिकयोक्त्या देवीं प्ररोचनायाभिमुखीं कुर्वन्नस्य ज्ञानस्य परमोपादेयतामेव प्रथयति ।।७०९।।

हो रहा है । इस दृष्टि से उसे विश्व का क्षोभक तो कहा जा सकता है । इस अवस्था में भी वह अक्षोभ्य ही रहता है ।

वह सुबोध है । 'सभी पदार्थों की दिदृक्षा (देखने की इच्छा) के कारण ही वह सभी पदार्थों में व्याप्त कर व्यवस्थित है । वह जब स्वयं ही ऐसा करता है, तो इससे अधिक क्या कहा जा सकता है कि, वह स्वयं अवमुक्त हो रहा है या स्वयं बोध का विषय बन रहा है' । यह स्पन्दकारिका ४/१३ में कहती है ।

विश्व के प्रमेय मानने पर सुखोपाय प्राप्य हो जाता है; क्योंकि, प्रमेय में वह प्रमाता भाव बैठा हुआ है । अपने प्रकाश को स्वयं प्रकाशमान कर रहा है । यह पारमेश्वर ज्ञान शास्त्रों में सर्वप्रथित है । शतकोटि शास्त्रों के द्वारा वह प्रतिपादित है । कोई अवान्तर वादी इसे कैसे समझ सकते हैं ? ।।७०८।।

भगवान् कहते हैं कि, परमेश्वर के श्रीमुख से विनिःसृत अमृत वाक्य को मैंने सुना । वह अद्भुत ज्ञान था । उसे मैंने गुना । उसका आनन्द मैंने प्राप्त किया । अब परमोपादेय ज्ञान मैं तुम्हें सुनाने जा रहा हूँ । देवि ! एकाग्र मन से इसे सुनो । तुम्हारी प्रसन्नता के लिये ही यह प्रयास करने जा रहा हूँ ।।७०९।।

---

१. य० क. पाठः ।

तत्र–

ऊर्ध्वं वै ब्रह्मणोऽण्डस्य पुरैकादशकं स्थितम् ।
एकादशानां रुद्राणां युगान्ताग्निसमत्विषाम् ।।७१०।।

ऊर्ध्वमिति शतरुद्रपुराणि अतिक्रम्य, एकादशानामपि प्रागुक्तानां श्वेतादीनां वीरभद्रान्तानां युगान्ताग्निसमत्विषामेषामतिदीप्तत्वात् ॥७१०॥

एवं शतरुद्राधिपतेर्वीरभद्रस्य सपरिवारस्य भुवनानि उक्त्वा, तदुपरि श्री-भद्रकालीपुरमाह–

अथोर्ध्वे भुवनं देव्याः कथयामि वरानने ।
इन्द्रनीलमयं दिव्यं समन्तात्परिमण्डलम् ।।७११।।
तस्मिन् भगवती देवी भद्रकाली व्यवस्थिता ।

सा च तत्र–

वसतीन्दीवरश्यामा स्निग्धकङ्कुष्टसप्रभा ।।७१२।।
सूर्यमण्डलरूपाभ्यां कुण्डलाभ्यामलङ्कृता ।
पौर्णमास्यां यथा सन्ध्या चन्द्रार्काभ्यां विराजते ।।७१३।।

कङ्कुष्टं रञ्जनद्रव्यम् ॥७१३॥

ब्रह्माण्ड के ऊर्ध्व में ग्यारह पुर बड़े ही विख्यात हैं । वे ऊर्ध्व भाग में ही अवस्थित हैं । इनके अधिपति रुद्र इतने प्रतापी हैं कि, उनके प्रताप के अति-दीप्त होने के कारण युगान्तकारी कालाग्नि की ज्वाला भी फीकी पड़ जाती है । ये रुद्र 'श्वेत' से लेकर वीरभद्र पर्यन्त हैं और ब्रह्माण्ड के ऊर्ध्व में ही अवस्थित हैं ॥७१०॥

'वीरभद्र' शतरुद्राधिपति हैं । इन ग्यारह पुरों के ऊपर भद्रकाली पुर है । वही कह रहे हैं–

भगवान् कह रहे हैं कि, सुमुखि ! देवि ! इन शतरुद्रपुरों के ऊपर एक ऐसा परिमण्डल है, जो इन्द्रनीलमय है और बड़ा ही दिव्य है । उसमें भगवती भद्रकाली व्यवस्थित हैं ॥७११॥

भगवती भद्रकाली अपनी इसी दिव्य पुरी में निवास करती हैं । उनकी आभा इन्दीवर के समान श्यामवर्ण की है । अत्यन्त चिकने कङ्कुष्ट के समान प्रभा से वे समन्वित हैं ॥७१२॥

उनके कानों के कुण्डल बड़े ही चमकीले हैं । प्रतीत होता है कि, दोनों कानों में दो बाल सूर्य ही चमक रहे हैं । लगता है, पूर्णिमा की सन्ध्या सूरज और चाँद दोनों से सुशोभित हो रही है ॥७१३॥

अस्याश्च–

राजते च महाहारः स्तनाभ्यामन्तरे स्थितः ।

असिताञ्जनशैलाभ्यां मध्ये स्रोतोवहा यथा ।।७१४।।

स्तनाभ्यां शैलाभ्यां चेति सहार्थे तृतीये ।।७१४।।

किञ्च अस्याः–

चतुर्भिश्च धृतं पीठं सिंहैरमितविक्रमैः ।

पीठमासनम् । तत्र च–

सर्ववज्रमये दिव्ये दिव्यरत्नविभूषिते ।।७१५।।

आसने सुप्रभे देवी जात्यञ्जनसमप्रभा ।

शुक्ले हिमवतः शृङ्गे नीलमेघ इव स्थिता ।।७१६।।

किञ्च–

सर्वरत्नमयी दिव्या रशनास्या विराजते ।

इयं च देवी–

पीतमाल्यांशुकवती शर्वरीवारुणोदये ।।७१७।।

शर्वरी रात्रिः कृष्णा अरुणोदयसमये सन्ध्यारागरञ्जिता भवति ।।७१७।।

असित अर्थात् श्यामकृष्ण अञ्जन के दो शैलों के बीच जैसे एक स्रोतस्विनी सुशोभित होती है, उसी तरह भगवती भद्रकाली के उत्तुङ्ग स्तनों के बीच में पड़ा हुआ हार शोभा प्राप्त कर रहा है । स्तनों और शैलों में तृतीया विभक्ति सहार्थ में है ।।७१४।।

इसके पीठ रूप आसन को चार बलशाली सिंह धारण करते हैं । उस दिव्य रत्नों से विभूषित सर्वथा वज्रमय सिंहासन पर देवी विराजमान होती हैं । देवी के विराजमान होने से उसकी प्रभा और भी बढ़ जाती है । यों वह सिंहासन रत्न जटित है । अतएव शुक्ल प्रभा से भास्वर है । मानों हिमवान् का शृङ्ग हो । उस पर जैसे काले मेघ आकर्षक लगते हैं, सिंहासनासीन भगवती भद्रकाली भी उसी पर अवस्थित हैं ।।७१५-७१६।।

उसकी सर्वरत्नमयी रशना बड़ी ही मनोहारिणी है । मानो अरुणोदय के समय सन्ध्या राग से रंजित पीतमाल्याङ्कुशवती शर्वरी ही शोभा पा रही है ।।७१७।।

देव्या रुद्रशक्तित्वात्-

तृतीयं नयनं तस्या ललाटस्थं विराजते ।
उदयस्थ इवादित्यो रश्मिजालविभूषितः ।।७१८।।

किञ्च-

उच्छ्रितेनातपत्रेण सा श्वेतेन विराजते ।
कृष्णमेघोपरिस्थेन चन्द्रेणेव विभावरी ।।७१९।।

एषा च देवतारूपाणाम्-

कोटिक्रोटिसहस्रेण स्त्रीणां तु परिवारिता ।
आवृता चन्द्रलेखेव नक्षत्रैस्तु नभस्तले ।।७२०।।

एताश्च-

कुमुदोत्पलवर्णाश्च हेमश्यामाश्च योषितः ।
प्रियङ्गुकलिकाश्यामाश्चन्द्रगौर्यः सयौवनाः ।।७२१।।
पद्मावदातरूपिण्यः पीनश्रोणिपयोधराः ।
हावभावविधिज्ञास्तु नृत्तगीतविशारदाः ।।७२२।।

भगवती भद्रकाली के ललाट में विद्यमान तृतीय नेत्र उसी प्रकार शोभित हो रहा है, मानो उदयाचलस्थ आदित्य रश्मियों से राजित हो रहा है ।।७१८।।

सिंहासन पर श्वेत आतपत्र सुशोभित हो रहा है । मानो काले बादलों पर रात्रिकालीन चाँद खिला हुआ शोभायमान हो रहा है ।।७१९।।

करोड़ों कान्त कामिनियों से समावृता भगवती भद्रकाली उसी तरह शोभायमान है, जैसे आकाशमण्डल नक्षत्रों से परिवारित चन्द्रलेखा शोभित होती है ।।७२०।।

कामिनियों मानों कुमुदकोमला है । उत्पल सी ललित और लालित्यमयी हैं । काञ्चनकलिता श्यामा अर्थात् षोडशी है । चन्द्रवत् चार्वङ्गी हैं और यौवनोल्लास ललित हैं ।।७२१।।

कुछ सुन्दरियाँ पद्मावती हैं, पद्मसौन्दर्यशालिनी हैं । सारी सुन्दरियों का श्रोणिभाग और पयोधर सुडौल और पीन हैं । चारु चेष्टारुचिर हारों तथा सात्त्विक धर्म व्यापारमय भावों की समस्त विधियों में दक्ष हैं और मानपूर्वक नृत्य की वे विशारद हैं ।।७२२।।

वीणावेणुमृदङ्गाद्यैर्वंशवादित्रनिःस्वनैः ।

उपासीनास्तु तां देवीं रमन्ते तत्र योषितः ।।७२३।।

हावश्चेष्टा[१]लाञ्छनः, भावस्तु तत्तच्चेष्टाद्युदितः सात्त्विको धर्मः ।।७२३।।

तदेतद्देव्याः सम्बन्धि–

एवं विद्धि जयं नाम भुवनं तु वरानने ।

एषा च सा देवी–

या दुर्गेति स्मृता लोके ब्रह्माण्डोदरवर्तिनी ।।७२४।।

विष्णुना तपसा पूर्वमाराध्य परमेश्वरम् ।

अवतारिता वधार्थाय महिषस्य महात्मनः ।।७२५।।

महात्मनः महाशरीरस्य ।।७२५।।

महिषस्य माहात्म्यं प्रकटयति–

येन चैकेन शृङ्गेण भगवान् हिमवान् गिरिः ।

शुष्कपर्णमिव क्षिप्तः

भगवानिति देवतात्मा । सोऽयमीदृशो महिषासुरः–

भगवत्या विनाशितः ।।७२६।।

वीणा, वेणु, मृदङ्ग आदि और वंश निर्मित वादित्रों के निःस्वनों से वह आवास गूँज रहा है। रागरागिनीमयी कलायें भगवती की उपासना में संलग्न हैं। इस प्रकार भक्तिमयी रति में वे निरत हैं ।।७२३।।

माँ भगवती के इस भुवन का नाम ही 'जय' है। यही लोक में 'दुर्गा' के रूप में विख्यात हैं। ब्रह्माण्ड के उदर में विश्वव्यापारमयी यह वात्सल्यमयी माँ हैं ।।७२४।।

तपस्या में लीन भगवान् विष्णु ने पहले एक बार परमेश्वर की आराधना की थी। परमेश्वर कृपा से ही महाकाय महिष के संहार के उद्देश्य से श्री दुर्गा अवतरित हुई थीं ।।७२५।।

महिष इतना बलशाली था कि, देवतात्मा हिमालय पर्वत को एक शृङ्ग के माध्यम से सूखे पत्ते की तरह उठाकर फेंक दिया था। ऐसा बलशाली महिष इसी देवी के द्वारा मारा गया ।।७२६।।

---

१. विशेषः क. पाठः ।

कथमित्याह–

सा तं विनाशयेद्देवी तमः सूर्य इवोत्थितः ।

किञ्च–

सा देवी सर्वदेवीनां नामरूपैश्च तिष्ठति ।।७२७।।

योगमायाप्रतिच्छन्ना

योगात्परतत्त्वैक्यादुत्थिता या माया स्वरूपगोपना, तया प्रतिच्छन्ना स्थगित-परस्वरूपा । सर्वदेवीनां सम्बन्धिना नामरूपप्रपञ्चेन स्थितेत्यर्थः ।

किञ्चैषा ब्रह्माण्डमवतीर्णा सती–

कुमारी लोकभाविनी ।

भगवच्छक्तिरेषा परानुपभोग्यत्वात् कुमारीत्वमाश्रित्य स्थिता । तादृशी च असौ लोकान् भावयति अभीष्टफलेन सफलान् सम्पादयति ।

इत्थमाकृतियुक्ताप्येषा वस्तुचिन्तायाम्–

अचिन्त्या चाप्रमेया च अन्यत्र परिपठ्यते ।।७२८।।

अन्यत्रेति तात्त्विके तत्स्वरूपनिरूपणपरे तत्र तत्र शास्त्रे ।।७२८।।

किञ्चैषा–

विष्णुना सहिता देवी कल्पे कल्पे पुनः पुनः ।
भगिनीत्वेन चायाति नामरूपविपर्ययैः ।।७२९।।

भगवती दुर्गा ने सूर्योदय से जैसे अन्धकार का विध्वंस हो जाता है, उसी तरह अपने तेज से उसके अस्तित्व को समाप्त कर दिया था । वह विश्वविश्रुता देवी समस्त देवियों की तरह नाम और रूप के माध्यम से अपने पररूप का गोपन करती हुई 'दुर्गा' नाम से अवस्थित हैं ।।७२७।।

योगमाया परमात्मा की शक्ति का नाम है । योग परमतत्त्वैक्य भाव होता है । उससे ही माया का उल्लास हो जाता है । इससे 'स्व' रूप का गोपन हो जाता है । इसी शक्ति से अपने स्वरूप का गोपन कर लेती हैं ।

यह नित्य कुमारी शक्ति हैं । दूसरे द्वारा उपभोग योग्य न होने के कारण यह कुमारी भाव में रहती हैं । लोकभावन में समर्थ यह देवी अप्रमेय और अचिन्त्य हैं । उसके स्वरूप के निरूपण में परायण शास्त्रों में यह अचिन्त्य और अप्रमेय रूप में ही प्रतिपादित हैं ।।७२८।।

भगवान् विष्णु की बहन के रूपकल्पों में यह देवी नाम और रूपों के भेद से अवतरित होती हैं ।।७२९।।

मन्वन्तरे मन्वन्तरे तथा चैव युगे युगे ।
रक्षणार्थं हि लोकानां मातेव हितकारिणी ।।७३०।।

कल्पादिस्वरूपमेकादशे व्यक्तीभविष्यति । नामरूपविपर्ययैरिति नानानामरूपभोगैः ।।७३०।।

उपसंहरति–

इत्याख्यातं तु भुवनं जयं नाम वरानने ।

अतश्च–

तद्भक्तास्तत्र गच्छन्ति तस्या मण्डलदीक्षिताः ।।७३१।।

मण्डलशब्देन तदधिकरणं भुवनं तत्प्राप्त्यर्थम् ।।७३१।।

तदित्थं दीक्षापूर्वभक्तिक्रमलभ्यमेतत्, नान्यथेत्याह–

न चैतत्तपसा प्राप्यं न यज्ञैर्भूरिदक्षिणैः ।
न दानैर्विविधैश्चापि शक्यं प्राप्तुं वरानने ।।७३२।।

किन्तु–

प्रसादाद्देवदेवस्य शशाङ्काङ्कितमौलिनः ।
दीक्षां प्राप्य प्राप्नुवन्ति

जयमित्यनुवर्तते । न चैतज्ज्ञानप्राप्तिमेव दीक्षिताः, अपि तु–

मण्डलं चक्रवर्तिनाम् ।।७३३।।

मन्त्रमन्त्रेश्वरादीनामपि मण्डलमेतद्दीक्षातः प्राप्नुवन्ति । मण्डले इति सप्तमीपाठे प्राप्तिर्भवतीति योजना कार्या ।।७३३।।

प्रत्येक मन्वन्तर में प्रत्येक युग में लोकों की रक्षा के लिये और लोक-हित की दृष्टि से तत्पर यह वात्सल्यमयी माँ व्यक्त होती रहती हैं ।।७३०।।

भगवान् ने कहा कि, सुमुखि देवि ! इस प्रकार मैंने तुमसे जय नामक भुवन की चर्चा की । ऐसे भक्त जो उस माँ की उपासना में निरत रहते हैं और उसके लोकयात्रा की कामना से ही दीक्षा लेते हैं, वे ही उसके लोक में जा पाते हैं ।।७३१।।

यह 'जय' लोक केवल भक्तियोग से पाया जा सकता है, किसी प्रकार की तपस्या या भूरिदक्षिणा वाले यागों से भी नहीं पाया जा सकता । दान धर्म उत्तम-धर्म हैं । इससे भी वह लक्ष्य किसी तरह उपलब्ध नहीं हो सकता ।।७३२।।

किन्तु देवाधिदेव चन्द्रमौलि महादेव के प्रसादपूर्ण अनुग्रह से दीक्षा के अनन्तर यह लोक मिल सकता है । दीक्षा के द्वारा अधिकार प्राप्त भक्तियोग सम्पन्न भक्त अन्यान्य चक्रवर्त्तियों के मण्डल में भी प्रवेश प्राप्त कर लेते हैं ।।७३३।।

न च केवलं दीक्षितेभ्यो देवी स्वमण्डलप्राप्तिं विद्येशपदप्राप्तिं च ददाति, यावत्–

निर्बीजदीक्षया मोक्षं ददाति खलु देहिनाम् ।

निर्बीजदीक्षया मोक्षं ददाति, किमङ्ग सबीजया ।

यतः–

सा मुक्तिदीक्षा परमा विधिवत्परिकीर्तिता ।।७३४।।

विधिवदिति समयपाशशुद्ध्यन्तेन विधिनेत्यर्थः ।।७३४।।

किञ्च–

विद्येशावरणे दीक्षा यावती क्रियते नृणाम् ।
तावतीं गतिमाप्नोति भुवनेऽत्र वरानने ।।७३५।।

यावती यादृशभोगप्रापिका । आप्नोतीत्यर्थाद् दीक्षितः । यावतीं कुरुते इति तु स्पष्टः पाठः । अत्रेति श्रीभद्रकालीभुवने ।।७३५।।

अथैतद्भद्रकालीभुवनादूर्ध्वम्–

भुवनानि तदीशांश्च संस्थानानि यथाक्रमम् ।
कथयिष्यामि ते सर्वं शृणुष्वैकमनाः प्रिये ।।७३६।।

संस्थानानि भुवनसन्निवेशाः ।।७३६।।

भद्रकाल्याः परो देवो रुद्रक्रोधसमुद्भवः ।
कोटिमात्रेण देवेशि युगान्ताग्निसमप्रभः ।।७३७।।

देवी भगवती उमा इस निर्बीज दीक्षा के द्वारा प्राणिमात्र को मोक्ष प्रदान करती हैं । सबीजा दीक्षा की तो बात ही निराली है । निर्वाण दीक्षा परमा दीक्षा मानी जाती है । इसका कथन किया जा चुका है । इसमें समयपाशों की शुद्धि पर्यन्त विभिन्न प्रकार के शोधन किये जाते हैं ।।७३४।।

विद्येश-आवरण के अन्तर्गत जितने प्रकार की जितनी दीक्षा शिष्यों को दी जाती है, भगवान् कहते हैं कि, सुमुखि देवि ! उतनी ही दीक्षा इस भद्रकाली भुवन के लिये भी दी जाती है । वैसे ही भोगों की प्राप्ति यहाँ भी होती है ।।७३५।।

इस भद्रकाली भुवन के ऊपर भी बहुत सारे भुवन हैं । उनके अधीश्वर भी और उनके भुवन सन्निवेश रूप संस्थान भी विचित्र विचित्र हैं । देवि ! मैं क्रमिक रूप से उन्हें सुना रहा हूँ । ध्यानपूर्वक सुनो ।।७३६।।

भगवती भद्रकाली से 'पर' अर्थात् ऊर्ध्व भाग में अवस्थित देवतात्मा रुद्र रहते हैं । इन्हें रुद्र क्रोध से उत्पन्न माना जाता है, ये कोटि मात्र से युगान्त की

युगान्ताम्बुदवृन्दोत्थगर्जितध्वनिनिःस्वनः ।
शतबाहुर्महातेजा दिव्याभरणभूषितः ।।७३८।।
शिरसीन्दुधरः श्यामो नीलाञ्जनसमद्युतिः ।
शिखिकण्ठनिभः किञ्चित्किञ्चिदापाण्डुलोहितः ।।७३९।।
चाषजीमूतवर्णश्च अतसीपुष्पसन्निभः ।
इन्द्रनीलनिभः किञ्चित्किञ्चिद्भृङ्गनिभाकृतिः ।।७४०।।
जात्यञ्जननिभाकारो रुद्रैकादशिकान्वितः ।

रुद्रैकादशिका–

अत्र चाङ्गारकः सर्पिर्नैर्ऋतः................। (४९०)

इत्यादिना या पूर्वमुक्ता, सैवेह पररूपेण स्थिता ।

किञ्च–

युतं कोटिसहस्रेण रुद्राणां च महात्मनाम् ।।७४१।।

अग्नि के समान प्रभा से समन्वित प्रलयकालीन मेघों की गर्जना की ध्वनि समान घोष करने वाले शतबाहु महातेजस्वी रुद्र हैं । ये दिव्य आवरणों से नित्य भूषित रहते हैं ।।७३७-७३८।।

शिरोभाग पर चन्द्रमा को धारण करने वाले वे चन्द्रमौलि हैं । इनका वर्ण श्याम है, नील अञ्जन के समान द्युतिमन्त, मयूर की ग्रीवा में गहनघने रंग के समान रंग से रंगीन विग्रहवान् और कुछ कुछ पाण्डुरता लिये लोहित रंग वाले ये रुद्र हैं ।।७३९।।

चाष पक्षी और बरसाती बादलों के समान रूपवान् हैं । अतसी पुष्प के समान कान्तिमान् हैं । इन्द्रनील मणि के समान रमणीय हैं और भ्रमर की कृष्ण वर्णता का भी स्पर्श करते हैं ।।७४०।।

स्वाभाविक अञ्जन को जात्यञ्जन कहते हैं । उसके समान ये देवतात्मा रुद्र ग्यारह[1] उक्त रुद्रों से समन्वित हैं ।

यहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि, जिसके विषय में श्लोक ७३७ में परो देवः लिखा है, वह कौन परम देव हैं ? रुद्रैकादशिका से वह अन्वित हैं । रुद्रैका-दशिका के विषय में आचार्य ने यह लिखा है कि वे ग्यारहों रुद्र यहाँ पर रूप से अवस्थित हैं । इसका अर्थ यह भी लगाया जा सकता है कि, उस रुद्रलोक के लोग यहाँ आया जाया करते हैं । इसके बाद यह स्पष्ट किया है कि, उस महान् परम देव का भुवन भी हजारों करोड़ रुद्रों से समन्वित है ।।७४१।।

---

१. दशम पटल (४९०-४९१) ।

भुवनं तस्य देवस्य विजयं नाम विश्रुतम् ।
इन्द्रनीलनिभं दिव्यं सर्ववज्रनिभं महत् ।।७४२।।

वज्रनिभत्वं सारप्रकर्षात् ।।७४२।।

अत्र च–

दशकोटिसहस्राणि रुद्राणां वरवर्णिनि ।

मुख्यानि स्थितानि । एतच्च भुवनम्–

अन्तर्भुवनसङ्घातैरन्यैश्च परिवारितम् ।।७४३।।
नीलोत्पलदलश्यामैः शिखिकण्ठनिभैस्तथा ।

अन्यच्च–

रुद्रैर्दिव्यैर्महावीर्यैः समन्तात्परिवारितम् ।।७४४।।

प्रधानानामपि प्रधानभूतैरित्यर्थः ।।७४४।।

किञ्च–

स्तुतिभिर्मङ्गलैर्गीतैर्नृत्तवादित्रवादितैः ।
पणवैर्वेणुवीणाभिर्भेरीझल्लरिगोमुखैः ।।७४५।।
पटहैः काहलैश्चैव शङ्खदुन्दुभिपीलुकैः ।
मृद्दलैस्तट्टरीभिश्च तालकैर्मुरजैस्तथा ।।७४६।।
मौन्दकाहलटङ्कैश्च तमिलद्रघटादिभिः ।
वादित्रैर्वल्गितैस्तालै रोटनैर्मुखमृद्दलैः ।।७४७।।

उस भुवन का नाम 'विजय' है । यह अत्यन्त विश्रुत नगरी है । वह नगर भी इन्द्र नील के समान है और सभी वज्रों के समान बड़ी सुन्दर और सारगर्भित नगरियों में श्रेष्ठ है ।।७४२।।

यहां दश हजार करोड़ रुद्र रहते हैं । इसमें भुवनों के अन्तःसंघात भी हैं ।।७४३।।

वहाँ के रुद्र नील उत्पल-पत्रों के समान नीले रंग-रूप वाले हैं । शिखि कण्ठ के समान बहुतों की काली काली आकृतियाँ हैं । फिर भी बड़े दिव्य हैं । उनके पराक्रम का कोई अन्त नहीं । ऐसे रुद्रों से परिवारित हैं ।।७४४।।

माङ्गलिक गीतिकाओं के माध्यम से वहाँ स्तुतियाँ अर्पित की जाती हैं । गायनकला के साथ नृत्यकला का समन्वय कैसे होता है । इस कला से वहाँ के कलाकार परिचित हैं और अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं । अनेक प्रकार के वाद्ययन्त्रों का वे प्रयोग करते हैं । उनमें पणव, वीणा, भेरी, झल्लरी, गोमुख,

भूतैर्भूतगणै रुद्रैर्जल्पितैः पठितैस्तथा ।
ध्यायद्भिश्च जपद्भिश्च धावद्भिश्चेष्टितैस्तथा ।।७४८।।
मयूरकोकिलारावान्तुञ्चद्भिश्च तथापरैः ।
नानारुतविलासैश्च विकुर्वद्भिर्महात्मभिः ।।७४९।।
आवृतस्तैर्महातेजा मयूखैरिव भास्करः ।
गजवक्त्रैः सिंहवक्त्रैरश्ववक्त्रैः शुभाननैः ।।७५०।।
गोकर्णैर्गोमुखैश्चान्यैर्द्वीपिऋक्षमुखैस्तथा ।
व्याघ्रवानरवक्त्रैश्च भगवान् पर्युपास्यते ।।७५१।।
वीरभद्रो महातेजा युगान्ताग्निसमप्रभः ।

पीलुकमृद्दलकद्रघटादयो वाद्यविशेषा इह प्रसिद्धाः । तृतीयाश्चैता यथायोगमित्थंभूतलक्षणे कर्तरि करणे हेतौ च योज्याः ।

पटह, काहल, शङ्ख, दुन्दुभि, पीलुक, मृद्दल, तट्टरी, तालक, मुरज, मौन्दकाहल, टङ्क, तमिलद्र, घट आदि मुख्य वादित्रों का वे प्रयोग करते हैं । इन वादित्रों के अतिरिक्त वल्गित, ताल, रोटन और मुख से बजाने वाले मृद्दल प्रसिद्ध हैं ॥७४५-७४७॥

भूतों और भूतसमूहों तथा रुद्रों के जल्पित शब्दों, पठित वाक्यों से, उनकी ध्यान मुद्राओं से, जपों से, दौड़-धूप से तथा अन्य व्यापारों से वह व्यापृत है ।

मोरों, कोकिलों के काकल के कलकल से वह शब्दायमान है । इसके अतिरिक्त अनेकानेक निःस्वनों से वह गुंजित है । वहाँ के महात्मा रुद्र विभिन्न विशिष्ट व्यापारों से व्यापृत हैं ॥७४८-७४९॥

वह महातेजस्वी परम रुद्र इन सबसे आवृत हैं । उसी तरह जैसे रश्मियों से सूर्य समावृत रहता है । गजवक्त्र से लेकर नरवक्त्र पर्यन्त ये वक्त्रान्त शब्द इन मुखाकृतियों के रूप में वहाँ प्रचलित ऐसे यन्त्र हैं, जिनमें वाणी निकालने के यन्त्र लगे हुए हैं । इनसे नगर के स्थान-स्थान पर भगवान् वीरभद्र पर्युपासित हैं । यह भी सम्भव है, ऐसे मुखौटे लगाकर कलाकार ही उपासना करते हों । ऐसे महातेजस्वी प्रलयकालीन कालाग्नि की ज्वाला के समान तेज से प्रभा भास्वरित वीरभद्र सुशोभित हैं । श्लोक ७३७ के परम देव का नाम श्लोक ७५२

किञ्च–

आसनं तस्य देवस्य सर्ववज्रमयं महत् ।।७५२।।

दशयोजनविस्तीर्णं चतुरस्रानलप्रभम् ।

राजतेऽत्राष्टभिः सिंहैर्वृतं भीमपराक्रमैः ।।७५३।।

चतुरस्रानलप्रभमिति कर्मधारयः । अत्रेति विजयाख्ये पुरे ।।७५३।।

एतद्येषां यथोपपत्तिस्थानम्, तान् दर्शयति–

अत्र ते पुण्यकर्माणः

जायन्ते । के ?

ये स्मरन्ति महेश्वरम् ।

जले मरुत्स्वथाग्नौ वा शिरश्छेदेन वा मृताः ।।७५४।।

ते यान्ति चैश्वरं बोधं वीरभद्रं महाद्युतिम् ।

मरुत्सु महावात्यासु । मरुष्विति पाठे महापथेषु महेश्वरं स्मरन्ति, मृताश्च ये तथा भगवत्पादपूजार्थं शिरश्छेदेन, ये वा मृताः सङ्ग्रामे शिरश्छेदेन, महेश्वरं स्मरन्तो मृतास्त एतत्स्थानं लभन्ते । महेश्वरस्मरणं विना तु ये जलादौ मृतास्ते पूर्वोक्तं वैद्युतं वायुपथमिति विभागः ।

अथ–

भुवनस्यास्य देवेशि ह्युपर्यावरणं महत् ।।७५५।।

में प्रकाशित किया गया है । ऐसे भगवान् वीरभद्र का सिंहासन भी सर्व वज्रमय और परम दिव्य है ।।७५०-७५२।।

यह विजय नगर दश योजन लम्बा चौड़ा है । चातुष्कोण है और आग की ज्वाला के समान तेज से चमक रहा है । यह नगर भीम पराक्रमी आठ सिंहों से विराजमान है । ये यथास्थान नियोजित हैं ।।७५३।।

इसमें वे पुण्यकर्मा ही जा सकते हैं, जो सदा महेश्वर की भक्ति में रत रहते और उन्हीं का स्मरण करते हैं । इनके अतिरिक्त जल, मरुत्, (वात्या) अग्नि से मरने वाले भी वहाँ जाने के अधिकारी हैं । युद्ध में शिरच्छेद से जिनकी मृत्यु हो जाती है, ऐसे लोग भी वहाँ मरने के बाद जाते हैं ।।७५४।।

कहीं भी मरें, महेश्वर स्मरण की पहली शर्त्त है । वातचक्र और युद्ध आदि में भी यदि स्मृति बनी रहे, तो और अच्छा माना जाता है । इस भुवन के ऊपर भी हे देवेश्वरि ! एक बहुत बड़ा आवरण है ।।७५५।।

अम्मयं तु घनं चापि शक्रचापमिव स्थितम् ।
वितानमिव तद्भद्रमन्तरे समवस्थितम् ।।७५६।।

घनमतीव आश्यानम् । भद्रं रम्यम् । अन्तर इति जयविजयादिभुवनानां तेजस्तत्त्वस्य च ।

तत्र चास्ते महात्मासावङ्गुष्ठाग्रप्रमाणकः ।

भगवान् रुद्रो ध्यायिनां ध्यानाय सूक्ष्मरूपमाश्रित्य प्रभावातिशयशाली तत्र स्थित: ।

यथा च ब्रह्माण्डस्योर्ध्वकर्परिका कोटियोजना, तथा आप्यावरणकर्परिकापीत्याह–

तत्र योजनकोटिर्वै विष्कम्भादूर्ध्वमुच्यते ।।७५७।।

तत्रैदि आवरणकर्परिकाभागे । विष्कम्भाद्घनत्वादूर्ध्वमुच्यत इति आवरणकर्परिकेत्यर्थात् ।

अतश्च–

तिर्यक्त्रिगुणविस्तारमाप्यमावरणं प्रिये ।

शतकोटिविस्ताराद् ब्रह्माण्डाद्दशगुणं यदाप्यमावरणं सहस्रकोट्युन्मानमुक्तं 'तत्सर्वं त्रिगुणेनोह्य' इति नीत्या त्रिसहस्रकोटिपरिमाणमित्यर्थ:, न तु कर्परिकाघनतानुसारेण त्रिगुणविस्तारत्वं योज्यमासमञ्जस्यापत्ते: ।

कहीं तरल, कहीं घन, कहीं शक्रचाप के समान शोभन तथा आन्तर्वितान की तरह तने हुए आन्तरिक के अन्तराल में व्यवस्थित हैं ।।७५६।।

इस उपर्यावरण में भगवान् रुद्र का ध्यान करने वालों के ऊपर अनुग्रह करके सूक्ष्म रूप धारण कर मात्र अङ्गुष्ठ के अगले भाग की परिमितिमात्र रूप में अपने अतिशय प्रभाव से प्रभासित हैं ।

जैसे ब्रह्माण्ड के ऊपर ऊर्ध्व कर्परिका एक करोड़ योजन विस्तीर्ण है, उसी तरह आवरण की कर्परिका भी एक करोड़ योजन की है । आवरण कर्परिका के उस भाग में विष्कम्भ रूप घन भाग के ऊपर की यह परिमिति है ।।७५७।।

शतकोटि विस्तार युक्त ब्रह्माण्ड का पैमाना है । आप्य आवरण ब्रह्माण्ड से दशगुना बड़ा माना जाता है । दश गुणा करने पर इसे हजार करोड़ उन्मान वाला कहना चाहिये, किन्तु भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ! इसे त्रिगुणित ऊहन करना चाहिये । इस दृष्टि से तीन हजार करोड़ परिमाण मानना चाहिये ।

अतश्च–

आवृतं तेन तत्सर्वं महाम्भोधिविसारिणा ।।७५८।।

तेनेति आप्यावरणेन ।।७५८।।

किमावृतमित्याह–

रुद्राण्ड इति विख्यातं रुद्रलोक इति प्रिये ।

वीरभद्रादिवीराश्रयत्वाद् रुद्राण्ड इति रुद्रलोक इति च आगमेषु ख्यातं पुरजातमाप्यावरणेनावृतमित्यर्थः ।

एतदेव विभजति–

वीरभद्रनिकेतश्च भद्रकाल्यालयस्तथा ।।७५९।।
त्रयोदशभिरन्यैश्च भुवनैरुपशोभितम् ।

वीरभद्रनिकेतो भद्रकाल्यालय इत्यादिप्रागुक्तरुद्रभुवनैकादशकेन सह त्रयोदशभिः, अन्यैश्च धरित्र्यादिभिर्भुवनैर्वक्ष्यमाणैर्भ्राजमानम् ।

एतच्च–

नानारुद्रगणैर्दिव्यैर्निरन्तरमलङ्कृतम् ।।७६०।।
अण्डं वै वीरभद्रस्य ब्रह्माण्डसदृशं प्रिये ।

आचार्य का मत है कि, यह त्रिगुण विस्तार कर्परिका की घनता के अनुसार योजित नहीं किया जा सकता ।

इस तरह यह सारा विस्तार महान् आवरण महाम्भोधिरूप अतिविशाल आप्यावरण से आवृत मानना चाहिये ।।७५८।।

इस महाम्भोधि विस्तार वाले आप्यावरण से रुद्राण्ड नाम से विख्यात रुद्र लोक आवृत है । वीरभद्र आदि महान् रुद्रवीरों का आश्रय स्थान होने के कारण आगमों में यह रुद्राण्ड या रुद्रलोक नामों से ही जाना जाता है । यह नगरों का समूह भी इस आप्यावरण से आवृत है । इसमें वीरभद्र आवास भी है और भद्रकाली का आलय भी है ।।७५९।।

यह तेरह भुवनों से भी शोभित है । १.वीरभद्र भुवन और २.भद्रकाली भुवन और रुद्रैकादशिका के ग्यारह भुवन मिलकर ही तेरह भुवन होते हैं । इनके साथ ही कुछ अन्य भुवन भी हैं । इनके साथ नाना रुद्र गण भी हैं । उनसे भी यह अलङ्कृत है ।।७६०।।

इनमें वीरभद्र का भुवन ही प्रधान है । अतएव इसे वीरभद्राण्ड भी कहते

वीरभद्रस्याण्डमिति प्राधान्यात् । ब्रह्माण्डसदृशं चतुर्दशविधभूतसर्गाश्रय-नानाभुवनपरिष्कृतत्वात् ।

यदुक्तमन्यैश्च भुवनैरिति, तत्स्फुटयति–

अतः परं प्रवक्ष्यामि धरित्र्या भुवनं महत् ।।७६१।।

धात्री यस्मिन् भगवती धरालोके सनातनी ।

धत्ते सर्वमिति धात्री आकृतिमती भगवच्छक्तिः ।

एषा हि–

हैरण्यमतुलं प्राप्ता आधारं यत्र संस्थिता ।।७६२।।

आधारमिति भुवनम् ।।७६२।।

कीदृशम् ?

चक्रवर्तिविमानैश्च बहुभिः परिवारितम् ।

आवृतं भूतसङ्घातैराचार्यैस्तत्परायणैः ।।७६३।।

दिव्यगीतनिनादाढ्यैर्वादित्रशतनिःस्वनैः ।

अन्तर्भुवनसङ्घातै रुद्राणां परिवारितम् ।।७६४।।

चक्रवर्तिनोऽत्र महापुण्यभाजो गीर्वाणादयः । भूतसङ्घैरिति चतुर्दशभिः । आचार्यैस्तत्परायणैरिति पार्थिवधारणासिद्धैर्योगिरूपैरित्यर्थः । पारमेश्वरी मूर्तिरेषेति कृत्वा एतद्भुवनं रुद्रभुवनैः परिवृतम् ।।७६४।।

है । यह ब्रह्माण्ड के ही सदृश है । श्लोक ७६० में अन्य भुवन की चर्चा के आधार पर अन्य भुवनों में धरित्री भुवन की चर्चा कर रहे हैं ।।७६१।।

इस धरित्री भुवन में भगवती सनातनी धात्री का आवास है । यह धरा लोक माना जाता है । धरित्री कहने का तात्पर्य है कि, यह सब कुछ धारण करती हैं । यह आकृति को धारण करने वाली भगवान् भैरव की शक्ति है । यहाँ अनुपमेय हिरण्मय आधार प्राप्त करने वाली भगवती शक्ति ही संशोभित है ।।७६२।।

यह चक्रवर्त्ती विमानों से समन्वित है । अनन्त प्राणिवर्ग से आवृत है । उसकी सेवा में संलग्न महान् आचार्यों से उपसेवित है ।।७६३।।

दिव्यतम गीतों की ध्वनि से गुंजायमान है । यह अनेकानेक वादित्रों और वाद्ययन्त्रों के नाद से निनादित है । इसके अनेक अन्तर्भुवन हैं । रुद्रों के समूहों से यह परिवारित है ।।७६४।।

भुवनस्यास्य मध्ये तु उदयादित्यसन्निभः ।
रक्तोत्पलनिभो दिव्य अशोकस्तबकच्छविः ।।७६५।।
पद्मरागमयो दिव्यः प्रासादो बहुभूमिकः ।

प्रासादो देवगृहम् । बहुभूमिक इति शिखरवर्तनागतनानाभूमिकायुक्तः ।

तस्य मध्ये भगवती धरित्री लोकधारिणी ।।७६६।।
मालया रक्तपुष्पस्य लम्बया नित्यभूषिता ।
चन्द्रार्कमण्डलाकारकपोलतलभूषिता ।।७६७।।
पीतहेमांशुकवती महाहारविभूषिता ।
शतयोजनविस्तीर्णे कूर्मपृष्ठे व्यवस्थिता ।।७६८।।
चतुर्वक्त्रा चाष्टभुजा दिव्याभरणभूषिता ।

पीतहेम्ना कृतमंशुकं प्रशस्तवस्त्रं यस्याः ।

किञ्च–

रूपयौवनसम्पन्ना नृत्तगीतविशारदाः ।।७६९।।

इस भुवन के मध्य में उदयादित्य के सदृश लाल कमल के समान दिव्य अशोक पुष्पों के स्तबकों की छवि की निराली छटा है ।।७६५।।

पद्मराग से निर्मित दिव्य प्रासाद हैं, जिनमें बड़े बड़े भूखण्ड मण्डित हैं, इनके बीच में ही भगवती लोकधारिणी धरित्री शोभा प्राप्त कर रही हैं ।।७६६।।

लाल लाल फूलों की मालाओं से कलित ललित यह देवी लालित्य की लतिका सी प्रकाशित है । मालायें लम्बमान हैं । चाँद और सूरज के समान उन देवी की कपोल पालियाँ हैं ।।७६७।।

पीले स्वर्णवर्णी अंशुकों (प्रशस्त वस्त्रों) से विभ्राजित, महाहारधारिणी भगवती शतयोजन विस्तीर्ण कूर्म-पृष्ठ पर विराजमान रहती हैं ।।७६८।।

इसके चार वदन (मुख) हैं । आठ भुजाओं से भूषित है । दिव्य आभरण धारण करने के कारण अनिन्द्य सौन्दर्य से समन्वित है । रूप और यौवन दोनों दृष्टियों से यह पुष्करविष्टरा पुष्टि का ही पोषण करती हैं । सदा उसके समक्ष नृत्त और गीतमयी रागिनी की रसधार बहती है । वह स्वयं इनकी विशारद है ।।७६९।। .

परिवार्योपासते तां दिव्या वै मानसाः स्त्रियः ।

तस्यास्ता मनस उद्भूताः । काः कियत्यश्चेत्याह–

त्रिंशत्कोट्यस्तु तासां वै दिव्याभरणभूषिताः ।।७७०।।

उत्पादितास्तु शर्वेण तदर्थं हितमिच्छता ।

शर्वेण धरामूर्तीश्वरेण स्वस्या मूर्तेर्धरित्र्या हितार्थं विनोदायैता मनसा निर्मिता इत्यर्थः ।

किञ्चैताः–

तप्तजाम्बूनदनिभा दिव्याभरणशोभिताः ।।७७१।।

उच्छ्रितेनातपत्रेण ध्रियमाणेन शोभिताः ।

किञ्च–

पुरःस्थितो महातेजा योऽसौ मेरुर्महागिरिः ।।७७२।।

उपासीनस्तु तां देवीं तत्रास्ते स नगाधिपः ।

शिरःपाण्याद्याकृतिमानित्यर्थः । तथा–

नीलोत्पलदलश्यामो नीलजीमूतसन्निभः ।।७७३।।

दिव्य मानसी रमणियाँ अनवरत उसकी उपासना में संलग्न रहती हैं । उसको आवृत कर सेवा परायण रहती हैं । उनमें से एक दो नहीं, पूरी तीस करोड़ हैं । जो नित्य सेविकायें हैं । ये सभी दिव्य आभरणों से भूषित हैं ॥७७०॥

ये सभी धरामूर्त्ति के अधिपति शर्व द्वारा धरित्री के सुख के उद्देश्य से ही मानस द्वारा उत्पादित हैं । अर्थात् मानसी हैं । तपे तपाये सोने के समान आकर्षक सौन्दर्य वाली हैं तथा दिव्य आभूषणों को धारण करती हैं ॥७७१॥

ऊँचे आतपत्र को धारण कर वे रमणी रत्न वहीं सुशोभित रहती हैं । इससे धरा की शोभा और बढ़ जाती है । उसके सामने ही महामेरु पर्वत दीख पड़ता है । महामेरु की तैजसिक आभा वहाँ आभा का विस्तार करती हैं ॥७७२॥

मानो महान् मेरु पर्वत उसकी उपासना में वहीं शाश्वत उपस्थित है । नगों का अधीश्वर ही उपासक बनकर आसीन है । यह एक गौरव की बात है । यह नील कमलवत् श्याम है । नील गभुआरे मेघों के समूह के समान नील है ॥७७३॥

नीलो नाम महाशैलः पीतवासा महाद्युतिः ।
अतिकान्तेन रूपेण कैटभारिरिवापरः ।।७७४।।
उपास्यमानो दिव्याभिर्नगरीभिर्नगाधिपः ।
तस्योत्तरे चन्द्रनिभो नानालङ्कारभूषितः ।।७७५।।
श्वेतातपत्री तेजस्वी श्वेतो नाम महागिरिः ।
तस्योत्तरेण सूर्याभो मुकुटादिविभूषितः ।।७७६।।
पीताम्बरधरः श्रीमान् शृङ्गवानिति विश्रुतः ।
अतिकान्तेन रूपेण कुसुमास्त्र इवापरः ।।७७७।।

आद्यस्तस्योत्तर इति शब्दः काकाक्षिवद् मेरोरुत्तरे नीलः, तस्यापि उत्तरे श्वेत इति योज्यः ।

किञ्च अस्य मेरोः–

दक्षिणेनापि वक्ष्यामि शृणुष्वावहिता प्रिये ।

आकृतिमतः पर्वतान् स्थितानिति शेषः ।

तान् क्रमेणाह–

चन्द्रावदातदीप्तौजा दिव्याभरणभूषितः ।।७७८।।

नील नामक दूसरा महान् पर्वतराज पीले वस्त्रधारी उपासक की तरह शोभित है । अत्यन्त कान्त है । मानो कैटभारि भगवान् पीताम्बर रूप में यहाँ स्वयं प्रतिष्ठित हैं ।।७७४।।

यह नील नगाधिप अनेकानेक अधित्यकाओं में बसी नगरियों से घिरा हुआ है । इसके उत्तर भाग में चन्द्रमा के समान चमक से चमकीले और अलङ्कारों से अलङ्कृत श्वेत पर्वत है ।।७७५।।

श्वेत आतपत्रों से आच्छादित होने के कारण यह श्वेत नामधेय है । यह बड़ा तेजस्वी है । महान् है । उसके भी उत्तर में सूर्य के समान और मुकुटादि से मण्डित शृङ्गवान् पर्वत है ।।७७६।।

शृङ्ग ही पर्वतों की शोभा के आधार होते हैं । शृङ्गों के कारण यह शृङ्ग-वान् है । इसी नाम से विश्रुत है । इसका रूप बड़ा आकर्षक है । प्रतीत होता है, यह काम का छठा अस्त्र ही है ।।७७७।।

मेरु पर्वत के उत्तर में अवस्थित इन पर्वतों के बाद भगवान् दक्षिणी ओर अव-स्थित पर्वतों की बात करते हुए कह रहे हैं कि, प्रिये ! चन्द्रवदात आभा से भासित तेज और ओज से समन्वित दिव्य आभरणों से भूषित एक पर्वत है ।।७७८।।

शुक्लाम्बरधरः श्रीमान् निषधो नाम विश्रुतः ।
तप्तहेमप्रतीकाशो दिव्याभरणभूषितः ।।७७९।।
अतिशुभ्रेण देहेन पितामह इवापरः ।
पीताम्बरधरः श्रीमान् पीतमाल्यानुलेपनः ।।७८०।।
हेमकूटो महातेजास्तेजसामिव सङ्ग्रहः ।
राजते भगवान् शैलः सन्ध्यावृत इवांशुमान् ।।७८१।।
पाण्डुराभ्रप्रतीकाशः शङ्खगोक्षीरसन्निभः ।
शुक्लाम्बरधरः श्रीमान् दिव्यकुण्डलभूषितः ।।७८२।।
आतपत्रेण महता ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
हिमवानिति विख्यातो द्वितीय इव भास्करः ।।७८३।।

किञ्च–

इन्द्रगोपकसङ्काशः पश्चिमे गन्धमादनः ।
रक्ताम्बरधरः श्रीमानस्ताद्रिस्थ इवांशुमान् ।।७८४।।

इस पर्वताधिप का नाम निषध है । यह शुक्लाम्बर विभूषित है । श्रीमान् है और इसी नाम से विख्यात है । तप्त दिव्य काञ्चन कान्तिमान् यह पर्वतराज दिव्य आभरणों से भूषित है ।।७७९।।

इसका अतिशुभ्र शरीर यह सिद्ध करता है कि, यह दूसरा पितामह है । पीताम्बरधारी श्रीमान् यह पर्वतराज पीली मालाओं और लेपों से उपलिप्त हैं ।।७८०।।

इसके आगे अन्य पर्वतराजों का भी मानवीकरण करते हुए भगवान् भैरव कह रहे हैं कि, 'हेमकूट' नामक महातेजस्वी, मानो समस्त विश्व तैजस राशि का एकत्र संग्रह रूप ही यह पर्वत हो, यह शैलराज सुशोभित है । यह संध्या से समावृत सूर्य के समान तेजवन्त है ।।७८१।।

प्रकाशमयी पाण्डुरता से पावन पयोद की सुन्दरता से शुभ्र, शङ्ख, गोदुग्ध और स्वाभाविक श्वैत्य से सुशोभित, शुक्ल अम्बर (आकाश और श्वेत वस्त्र) धारण करने वाले श्रीमान् दिव्य कुण्डलों से भूषित, महान् सागरमाथा शिखर पर आकाश का आतपत्र धारण करने वाला, हिमालय नामक पर्वतराज दूसरे सूर्य के समान विश्व में विख्यात हैं ।।७८२-७८३।।

पश्चिम में गन्धमादन पर्वत अपने अस्तित्व से विश्व को स्थैर्य प्रदान करने का महान् उत्तरदायित्व निभा रहा है । यह रक्त वस्त्र धारण करता है । यह अस्ताचल में विद्यमान अंशुमाली भासमान सूर्य की तरह दीख पड़ता है ।।७८४।।

शुद्धस्फटिकसङ्काशः शुक्लाम्बरधरः शुभः ।
किरीटी कुण्डली श्रीमान् माल्यवान्नाम पर्वतः ।।७८५।।
इत्येवमादिभिश्चान्यैः पर्वतैः परिवारिता ।
लोकालोकावसानैश्च तथान्यैः कुलपर्वतैः ।।७८६।।
दिव्यरूपधरा देवी तनुर्वै पारमेश्वरी ।

भूलोके ये मेर्वादयस्तदधिष्ठातृरूपा एवेत्यर्थः । पारमेश्वरीत्यनेन–

'स्थूलसूक्ष्मप्रभेदेन तदेकं संव्यवस्थितम् । (४/२९५)

इति पूर्वोक्तं प्रमाणीकृतम् ।

यत एवमतः–

धारणा गन्धतन्मात्रे प्राणांस्त्यक्त्वा तु योगिनः ।।७८७।।
ते यान्ति तादृशीं मूर्तिं धरित्र्याः परमां तनुम् ।

गन्धतन्मात्रे धारणां कृत्वा योगिनस्तामिमां धरित्र्याः परमां मूर्तिमाकृतिमतीं देवीं सायुज्यसामीप्यसालोक्यभेदेन प्राप्नुवन्ति, अतश्च आचार्यैरुपास्यमानामिति यत्पूर्वमुक्तम्, तत् स्फुटीकृतम् ।

अतः परतरं देवि सामुद्रं भुवनं महत् ।।७८८।।

शुद्ध स्फटिक के सदृश पश्चिम में अवस्थित माल्यवान् पर्वत रक्ताम्बर धारण करता है । यह शुभ अर्थात् कल्याणकारी है । किरीट और कुण्डल धारण करता है । नामानुरूप इनके गुण भी हैं ।।७८५।।

इन मुख्य पर्वतों और इनके अतिरिक्त अन्य छोटे-मोटे पर्वतों से परि-वारित, लोकालोक पर्यन्त अन्य कुल पर्वतों से परिवृत पारमेश्वरी शरीर धारिणी दिव्य रूप धारण करने वाली तथा सभी मेरु आदि पर्वतों की अधिष्ठात्री यह शक्तितत्त्वरूपा देवी व्यवस्थित हैं ।।७८६।।

इस पारमेश्वरी तनु के विषय में पटल ४ के श्लोक २९५ द्वारा यह प्रतिपादित है कि, 'वही स्थूल सूक्ष्म प्रभेद से वह एक शक्तितत्त्व ही संव्यवस्थित है' ।

बहुत से योगी लोग गन्धतन्मात्र में धारण करने के उपरान्त प्राण त्याग देते हैं ।।७८७।।

वे लोग उसी गन्धवती देवी की पृथ्वी मूर्त्ति की परमातनु में सायुज्यादि द्वारा उसी शरीर को प्राप्त करते हैं । इन पर्वतों के रूप में भी उसी देवी शरीर की छायात्मक व्याप्ति है । इसके साथ ही सामुद्र भुवन की चर्चा करेंगे ।।७८८।।

सर्ववज्रमयं दिव्यं नानाश्चर्यशतान्वितम् ।

सामुद्रमिति समुद्राधिष्ठातृदेवताश्रयम् ।

तच्च–

नीलोत्पलसमच्छायं सर्वतः परिमण्डलम् ।।७८९।।

मध्ये तु भुवनस्यास्य मण्डलं चन्द्रसन्निभम् ।

शतयोजनसाहस्रं समन्तात्परिमण्डलम् ।।७९०।।

तस्य मध्ये तु पुरुषो रुक्मवर्णो महाद्युतिः ।

किरीटी कुण्डली स्रग्वी दिव्याभरणभूषितः ।।७९१।।

अपां निधेर्भगवतो वरुणस्य परा तनुः ।

पुरुष इति समुद्रदेवतात्मा ।

तं तु देवं महात्मानं परिवार्य समन्ततः ।।७९२।।

रूपयौवनसम्पन्नाः सततं पर्युपासते ।

देव्यः । तासां मध्ये तु–

शुक्लाम्बरधरा देवी शुक्लगन्धानुलेपना ।।७९३।।

अनेकानेक और शताधिक आश्चर्यों से भरे हुए स्वभाव से वज्रशरीर धारी दिव्य समुद्र के अधिष्ठाता देवता के आश्रय रूप, नील उत्पल के समान श्याम और समुद्र में ही परिमण्डलित हैं ॥७८९॥

इस भुवन के मध्य में ही चन्द्र के सदृश एक मण्डल है। इसकी सौ हजार योजन विस्तार वाली लम्बाई-चौड़ाई है ॥७९०॥

इसके मध्य में स्वर्णवर्णी एक पुरुष है। उसकी आभा सबसे अधिक है, वह किरीट, कुण्डल और सुन्दर सुन्दर हारों से सुशोभित दिव्य आभरणों से द्युतिमन्त है ॥७९१॥

वह और कोई दूसरा नहीं, समुद्र के अधिपति वरुण देव की वह परातनु मात्र है। ऐसे इस महात्मा वरुण को परिवृत कर बहुत देवियाँ इनकी उपासना करती है ॥७९२॥

इन देवियों के मध्य में रूपयौवन सम्पन्न एक महिमामयी देवी हैं। अनवरत वरुण उपासना में निरत रहती हैं। शुक्ल अम्बर परिधान में वह बड़ी आकर्षक लगती हैं। उसका गन्धानुलेपन भी बड़ा मोहक है ॥७९३॥

शुक्लयज्ञोपवीता च शुक्लहारोपशोभिता ।
शुक्लेनैवातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।।७९४।।
गङ्गा ह्युत्तरतस्तस्य स्थिता वै परमा तनुः ।
नीलाम्बरधरा देवी नीलगन्धानुलेपना ।।७९५।।
नीलस्त्रग्दामकण्ठा च यमुना तस्य दक्षिणे ।
एवमाद्या महानद्यः परिवार्य महाद्युतिम् ।।७९६।।
समुद्राष्टकं च देवेशि स्वनदीभिः समावृतम् ।
उपासते सदा भक्त्या वारुणीं परमां तनुम् ।।७९७।।

परमां तनुमित्यधिष्ठातृदेवतारूपाम् ।।७९७।।

अत्र चाकृतिमन्त्येव–

नानासरांसि तीर्थानि

तथा–

तद्भक्ताश्चापि संस्थिताः ।
रसतन्मात्र अत्रैव कृत्वा सम्यक् तु धारणाम् ।।७९८।।

वह शुक्ल यज्ञोपवीत धारण करने वाली देवी शुक्ल हारों से भी समन्वित हैं। उसका आतपत्र भी श्वेत वर्ण का ही है। ऐसी यह देवी कोई और नहीं वरन् वह भगवती गङ्गा ही हैं। यह गङ्गा का सूक्ष्म शरीर है। यह वरुण देव के उत्तर में अवस्थित है। गङ्गा के अतिरिक्त अपनी परमतनुता में विराजती वहाँ एक और सरिद्वरा है ।।७९४-७९५।।

यह नील वस्त्र धारण करने वाली नीलगन्धानुलेपना नील स्त्रग्दामकण्ठा इस देवी का नाम यमुना है। यह वरुण के दक्षिण भाग में अवस्थित हैं। अन्य बहुत सी महानदियाँ महाद्युतिमन्त वरुण को आवृत कर वहाँ विराजमान हैं ।।७९६।।

इसी तरह आठ समुद्र अपनी अपनी नदियों से समावृत होकर वरुण देव की परमा वारुणी शरीर को समावृत कर अवस्थित हैं ।।७९७।।

नाना प्रकार के सरोवर, विभिन्न तीर्थ और उनके भक्त भी उनको आवृत कर अवस्थित हैं। इसकी धारणा रसतन्मात्र की धारणा मानी जाती है ।।७८९।।

अपां योनिं परां प्राप्ताः

इमामेव । यस्मादेषाम्–

वारुणी सा परा तनुः ।

अष्टमूर्तेर्महेशितुरियं द्वितीया मूर्तिर्जलाधिष्ठातृदेवतारूपा । धारणास्वरूपं प्राग्धारणादीक्षावसरे दर्शितम् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि भुवनं वरवर्णिनि ।।७९९।।
श्रीनिकेत इति ख्यातं पद्मगर्भ इति श्रुतम् ।

एतन्नामभ्यां प्रतीतमागमेष्वित्यर्थः । तच्च–

विमानशतसङ्घातैर्निरन्तरमवस्थितैः ।।८००।।
शोभितं भुवनेशैश्च रुद्रै रुद्रगणैस्तथा ।
सरोभिर्मानसैर्दिव्यैर्दीर्घिकाभिश्च शोभितम् ।।८०१।।
रथचक्रप्रमाणैश्च मणिकाञ्चनमण्डितैः ।
वैदूर्यनालैः कमलैर्दिव्यगन्धसुगन्धिभिः ।।८०२।।

वरुण देव की यह परमा तनु जल का रूप धारण कर लहरा रही है । आठ मूर्त्तियों वाले महेश्वर की यह दूसरी मूर्त्ति है । यह जल की अधिष्ठात्री देवता के रूप में अवस्थित है । इसकी धारणा का स्वरूप भी अनेकानेक शास्त्रों में वर्णित है । इसके बाद देवि मैं भुवनों का वर्णन करने जा रहा हूँ ।।७९९।।

श्रीनिकेत इस नाम से प्रसिद्ध तथा पद्मगर्भ इस नाम से विभिन्न शास्त्रों में वर्णित यह भुवन महान् भुवन है । इसमें शताधिक विमानों की आकाश विहार लीला भी शास्त्रों में वर्णित है । इन दिव्य विमानों से वह भुवन निरन्तर शोभायमान है ।।८००।।

भुवनों के अधीश्वरों, भुवनेश्वर रुद्रों और रुद्रसमूहों से सुशोभित यह भुवन मानसर सदृश प्राकृतिक जलाशयों, दीर्घिकाओं और दिव्यसरोवरों से शोभायमान है ।।८०१।।

रथचक्रों के प्रमाणों से यह मण्डित है । रथों के चक्र अर्थात् समूह इस तथ्य के प्रमाण हैं कि, यह भुवन अप्रकल्प्य समृद्धि का आधार है । ये रथ सामान्य नहीं हैं, अपितु मणियों और स्वर्णयन्त्रों से स्वर्ण पत्रों से जटित होने के कारण सुशोभित हैं । जिनके नाल वैदूर्य निर्मित हैं, ऐसे कमलों के चित्रों से ये रथचक्र मण्डित हैं । अथवा वैदूर्य नाल वाले, दिव्य सुगन्धियों से भरपूर इन भुवनों की दीर्घिकायें और सरोवर हैं । उन सरोवरों में चलने वाली नौकायें भी रथ चक्रवत् चलती हैं ।।८०२।।

मृदुभिः कान्तिमद्भिश्च चन्द्रमण्डलसन्निभैः ।
संशोभितं विचित्रैस्तैर्विकचैर्वज्रकेसरैः ॥८०३॥
उद्यानैर्विविधैश्चापि नानाविहगकूजितैः ।
नानाकामप्रदैर्वृक्षैः समन्तात्समलङ्कृतम् ॥८०४॥
नानामणिमयैर्दिव्यैः क्रीडाशैलैश्च मानसैः ।
मानसीभिश्च नारीभिर्दिव्ययौवनकान्तिभिः ॥८०५॥
हावभावविलासाढ्यदिव्यस्त्रीभिरलङ्कृतम् ।
विचित्रैर्मणिपद्मैश्च सितपत्रैश्च सुव्रते ॥८०६॥
विभूषितं गजेन्द्रस्थैः स्तुतिमङ्गलवादिभिः ।
गायद्भिश्चाथ नृत्यद्भिर्दिव्यस्त्रैणैः समाकुलम् ॥८०७॥

मानसैरिति सङ्कल्पमात्रसिद्धैः । स्वभावत एव पद्मानां मणिकाञ्चनमण्डिततत्वं वैदूर्यनालता च । चन्द्रमण्डलसन्निभैरित्यनेन पद्मानां श्वेतता उक्ता । वज्रं हेरकम् । नानाकामप्रदैर्वृक्षैः कल्पवृक्षैरित्यर्थः । मानसीभिर्मनोनुकूलाभिः । स्त्रीणां समूहः स्त्रैणम् ॥८०७॥

अत्यन्त मृदुल ये कमल कोमलता के प्रतीक हैं । क्रान्तिमान् हैं । चन्द्र मण्डल के सदृश आकर्षक हैं । ऐसे विचित्र कमल जिनमें वज्रकेशरों की पेशलता की पावनता है, बड़े आकर्षक रूप से विकसित हैं ॥८०३॥

इस भुवन के उद्यानों की बात ही निराली है । उनमें आकाशविहारी विहगों की दिव्यता है । उनके कूजन की काकली के कलकल के कलहंसी प्रकर्ष हैं । कामप्रद वृक्षों की कतार है और चतुर्दिक् समलङ्कृत वातावरण के वातायन से वे वृक्ष झाँक से रहे होते हैं ॥८०४॥

मानस और मानसी नर-नारियों के मणिमण्डित क्रीडाशैल वहाँ शोभित हैं । नरनारियों के यौवन में नवल उल्लास देखने योग्य है ॥८०५॥

उन दिव्य मानसी नारियों की हाव-भावमयी विलास लीला में लालित्य की ललक है । इनसे दिव्यता भी अलङ्कृत है । चित्रविचित्र मणिरमणीय कमलों के श्वेतपत्रों में शोभा की सादगी है ॥८०६॥

सजे सजाये गजराजों पर गायकमण्डली सजी हुई है । वही गाजे-बाजे बज रहे हैं । स्तुतियाँ और मङ्गल गीत गाते जा रहे हैं । कुछ वहीं अलग गा रहे हैं, नाच रहे हैं । वहीं दिव्य नारियों का जमघट है । दिव्य आनन्द का उल्लास है । ऐसा यह दिव्य भुवन है ॥८०७॥

तदीदृशे–

तस्मिंस्तु भुवने दिव्ये पद्मगर्भसमप्रभे ।

शरदिन्दुनिभं दिव्यं मण्डलं रश्मिसङ्कुलम् ।।८०८।।

मण्डलं प्रधानभुवनम् ।।८०८।।

तस्य मध्ये भगवती श्रीः स्वयं लोकभाविनी ।

चन्द्रकोटिसहस्राणां या कान्तिमतिवर्तते ।।८०९।।

लोकान् भावयति प्रोद्भूतविभूतिकान् सम्पादयति ।।८०९।।

सा च–

एकत्र युगपत्तेजस्तेजसां तु विराजते ।

सर्वतेजसां सम्बन्धि तेज एकत्र राशीभूतमिव भवति ।

एवमपि च सौम्याकृतित्वात्–

निर्वाणमिव या शान्ता सर्वानन्दमनोहरा ।।८१०।।

रूपिणी

आकृतिमती ।

वस्तुतस्तु–

परमा देवी मूर्तिरव्यभिचारिणी ।

ऐसे इस दिव्य भुवन में रश्मिसङ्कुल मण्डल का मण्डित वितान पद्मगर्भ की तरह सुकुमार शोभा से भरा हुआ है । शरत्कालीन चन्द्रमा की चाँदनी का चमत्कार सबको चमत्कृत कर रहा है ।।८०८।।

श्रीनिकेत इस भुवन के मध्य में भगवती महालक्ष्मी लोकमंगल की प्रत्यक्ष प्रतिमूर्त्ति विद्यमान हैं । उनकी कान्ति हजारों हजार करोड़ कलाधरों की कान्ति को अतिक्रान्त करने वाली है । श्री लोकसमृद्धि की उद्भावयित्री महादेवी मानी जाती है ।।८०९।।

लक्ष्मी जहाँ विराजमान हैं, वह स्थान विश्वतैजसिकता के तेजोमय उत्स के समान सुशोभित है । वह वशीभूत तेज समस्त तेजों का तेज प्रतीत हो रहा है । परम निर्वाणमयी शान्ति की वह शान्ता राशि के ही समान अनुभूत हो रही है और सर्वानन्द मनोहरा वह दिव्यता की साक्षात् विग्रह बनी हुई है ।।८१०।।

वह आनन्द की प्रतिमूर्त्ति है । वह निर्विकार कला की कलित आकलना है । परामूर्त्ति यह देवी पारमेश्वरी शोभा की भावपूर्ण भव्यता है । वह शतयोजन

परैव द्योतमाना पारमेश्वरी मूर्तिरियमित्थं गृहीताकृतिरित्यर्थः । अनयैव मोक्षश्रिया नित्यसम्बद्धया परमेश्वरः श्रीकण्ठ उच्यते ।

एषा च–

शतयोजनविस्तीर्णे उदितादित्यसप्रभे ।।८११।।
चन्द्रकान्तमये पद्मे वज्रकेसरकर्णिके ।
कोटिपत्रे महादिव्ये गन्धपुष्पगुणान्विते ।।८१२।।
पद्मासने भगवती पद्मगर्भसमप्रभा ।
उपविष्टात्र सा नित्यं विभूत्या परया युता ।।८१३।।
महारत्नैश्च स्रग्धाम प्रलम्बमुरसा शुभम् ।
वहन्ती सा तु शुशुभे ज्योत्स्नेव त्रिपथापथम् ।।८१४।।

त्रिपथापथमाकाशं गङ्गाप्रवाहात् ।।८१४।।

अपि च–

स्फुरन्मयूखचलने कपोलतलमण्डले ।
सूर्यमण्डलसङ्काशे धारयन्ती च कुण्डले ।।८१५।।

विस्तीर्ण पद्मासन पर राजित है । वह आसन उदित होने वाले आदित्य की तरह उद्योतमय है ।।८११।।

चन्द्रकान्त मणियों से निर्मित पद्म की कर्णिका में वज्रकेशर कुसुमों के रेशों का सौन्दर्य आकर्षण का केन्द्र है । उस पद्म के सौ नहीं, पूरे एक करोड़ पत्र हैं । दिव्यता का वह प्रतीक है । गन्ध और पुष्प के सभी गुणों से वह समन्वित है ।।८१२।।

पद्मगर्भ के सौकुमार्य पूर्ण प्रभा के समान भास्वर भगवती पद्मासन पर विराजमान हैं । परा विभूति से भूषित देवी भगवती नित्य अवस्थित हैं ।।८१३।।

श्रेष्ठ रत्नों की रमणीयता से रम्य स्रग्दाम उनके हृदय देश पर लम्बमान है । समस्त शुभों की कारण भूमि रूपिणी रमणीय मालिका को धारण करने वाली माँ उसी तरह शोभा प्राप्त कर रही हैं, जैसे चाँदनी से नहायी आकाश गङ्गा । त्रिपथा गङ्गा का पथ आकाश गङ्गा के पथ को कहते हैं । चाँदनी से नहाया आकाश और उसमें विराजमान आकाश गङ्गा । इस परिकल्पना में माँ के सौन्दर्य की व्यापकता का महाभास भव्यता के साथ आभासित है ।।८१४।।

माँ की कपोल पालियों के पास ही कानों की लरों में कुण्डल लटक रहे हैं । उनके गोलकों की किरणावली के कारण उसमें सूर्य मण्डल की उत्प्रेक्षा करने वाले कवि की कल्पना में कुण्डल की स्फुरणशील रश्मियों की विमर्शमयी

किञ्च–

स्फुरन्मयूखसङ्घातां रशनां सा तु बिभ्रती ।

हेमाभा पीतवसना महाहारविभूषिता ।।८१६।।

चन्द्राभेनातपत्रेण ध्रियमाणेन राजिता ।

उपगीता च गन्धर्वैर्मानसै रुद्रसम्भवैः ।।८१७।।

परिवारिता भगवती सा तनुः पारमेश्वरी ।

मानसै रुद्रसम्भवैरिति रुद्रेणैव भगवता तदाराधनार्थमेव सृष्टैः ।

किञ्च–

या प्राप्ता तपसाराध्य विष्णुना प्रभविष्णुना ।।८१८।।

आराधनादेव च अस्मै–

दत्ता प्रीतेन रुद्रेण विष्णोरुरसि वाहिनी ।

न च सार्वात्म्येन; अपि तु–

अर्धेन सा भगवती विष्णोरङ्के प्रतिष्ठिता ।।८१९।।

महास्फुरता की चञ्चलता का आभास कितना मङ्गलमय है । माँ की आँखों की छाया में प्रकाश की पराकाष्ठा का साक्षात्कार हो रहा है ।।८१५।।

चतुर्दिक चमक बिखेरने वाली करधनी को धारण करने वाली माँ की कञ्चनकाया पर पीला परिधान और ऊपर से सतरंगी महाहारावली सौन्दर्य की सर्वातिशयिनी शोभा का विस्तार कर रही हैं ।।८१६।।

उसके श्वेत आतपत्र को देखकर उसमें चाँद की शोभा का आभास होने लगता है । छत्रधारिणी से ध्रियमाण आतपत्र से आकर्षण की केन्द्र सी वात्सल्यमयी माँ गन्धर्वों द्वारा उपगीत हैं । रुद्रों के मन से समुद्भूत वे गन्धर्व गायन कला के प्रतीक हैं ।।८१७।।

माँ भगवती की पारमेश्वरी काया का वहाँ साक्षात्कार हो रहा है । सेवा में संलग्न मानस रुद्रपुत्रों से वह परिवारित है । विश्व को महाप्रभाव से पूरी तरह प्रभावित करने वाले, सर्वव्यापक विष्णु ने तपस्या कर उन्हें प्राप्त किया था ।।८१८।।

प्रसन्न होकर महारुद्र भैरव ने उन्हें उनकी हृदयेश्वरी के रूप में उन्हें प्रदान किया था । वही माँ भगवती अपने अर्ध भाग से विष्णु के अङ्ग के रूप में प्रतिष्ठित रहती हैं अर्थात् अर्धाङ्गिनी रूप से विराजमान हैं ।।८१९।।

पादेनेन्द्रस्य देवस्य पादार्धेन दिवि स्थिता ।
तदर्धेन पुनर्देवि पार्थिवेषु व्यवस्थिता ।।८२०।।
तदर्धेन मनुष्येषु

दिवि तन्निवासिदेववक्त्रे इत्यर्थः । पार्थिवेष्विति सर्वेषु चक्रवर्तिष्वंशांशिका-योगात् । मनुष्येषु अमात्यादिषु, सर्वेषु इत्थं सा विष्णोरंशांशिकया श्रीः स्थिता, साकल्येन तु भगवति श्रीकण्ठ एवेत्युक्तं भवति ।

इत्थमेषा सर्वमेव जगत्–

या स्थिता व्याप्य मूर्तिभिः ।
स्वरूपा कामरूपा च द्विधा सा परिकीर्तिता ।।८२१।।

मूर्तिभिर्निजैरंशांशिकावतारैः । स्वं पारमार्थिकं परिपूर्णं रूपं यस्याः । कामेन इच्छामात्रेण तत्तद्विष्ण्विन्द्रादिमाहात्म्यप्रदं रूपं यस्याः सा कामरूपा ॥८२१॥

तत्र स्वरूपात्मा–

अचला सा तनुः सूक्ष्मा अक्षोभ्या तत्र तिष्ठति ।

सूक्ष्मा सर्वनिजावतारव्यापिका । अक्षोभ्या निरतिशया । तत्रैति प्रोक्ते स्व-पुरे अचला तिष्ठति ।

यथा एतच्छ्रीपुरमाप्स्यति, तथादिशति–

रुद्रक्रीडावतारेषु प्रयागादिषु सुव्रते ।।८२२।।

वह सर्वात्मना वहाँ नहीं रहती है । चौथाई अंश से वह इन्द्र के पास, अष्टमांश से वह द्युलोकाधिपति के पास, षोडशांश से वह चक्रवर्त्ती सम्राटों में और इसके अर्ध भाग में ही मनुष्यों में अर्थात् मन्त्रियों में निवास करती हैं । इस तरह विष्णु की अर्धाङ्गिनी लक्ष्मी अंशांशिक रूप से विश्व में उल्लासित हैं ॥८२०॥

सम्पूर्ण रूप से वह भगवान् श्रीकण्ठ में ही वर्त्तमान हैं । जगत् में तो वह अंशांशिक रूप से वर्त्तमान है । वह ऐसे लोगों के पास ही रहती हैं, जो अधि-कार से अवतरित होते हैं । इसको मुख्यरूप से दो रूपों में देखा जाता है । १.स्वरूपा और २.कामरूपा । यही इनके दो रूप हैं ॥८२१॥

स्वरूपा भाव में यह अचला होती हैं । अत्यन्त सूक्ष्मरूपा अर्थात् सबमें अवतरित है और अपने पारमार्थिक 'स्व' रूप में प्रतिष्ठित और अक्षुब्ध रहती हैं । कामरूपा दृष्टि से वह अपनी इच्छा से इन्द्र से मनुष्य पर्यन्त व्यापक रूप से जहाँ चाहे वहाँ रहती हैं । इसी क्रम में देवदारुवन रूप रुद्र के अवतारों में, प्रयागादि तीर्थ स्थलों में और............॥८२२॥

श्रीगिरौ च विशेषेण मृनस्तद्भुवनं व्रजेत् ।

रुद्रस्य क्रीडया न तु अनुजिघृक्षया अवतारो येषु ते देवदारुवनप्रभृतयो रुद्रक्रीडावताराः । अतश्च–

सत्स्वन्येष्वपि भोगेषु त्वियं सा गदिता गतिः ।।८२३।।

बुभुक्षूणां प्राप्यत्वेनेति शेषः ॥८२३॥

यस्माद् बुभुक्षवः श्रीगिर्यादौ मरणादेतदाराधनाद्वा–

प्राप्य तामीदृशीं देवीमैश्वर्यमणिमादिकम् ।

लभन्त इति शेषः, प्राप्य तामिति तद्भुवनमित्यर्थात् ।

न केवलमेतत्, यावत्–

भूत्वा तु साष्टधा दिव्या देवेष्वपि च तिष्ठति ।।८२४।।

अष्टधेति अणिमादिरूपतया ॥८२४॥

तथा जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिभिः–

सिद्धेष्वपि च सा देवी उत्तमा सिद्धिरुच्यते ।

अपि च–

यदर्थं तारकाद्यैश्च सङ्ग्रामस्त्रिदशेश्वरैः ।।८२५।।

सह–

कृतो घोरस्त्वसंख्येयः

विशेष रूप से श्रीपर्वत पर शरीर त्याग करने वालों के भुवनों में यह जाकर उनका वरण करती हैं । अन्य भोगों की अवस्थिति में लक्ष्मी की यही गति भगवान् की ओर से निर्धारित है ॥८२३॥

बुभुक्षु रूप भोगवादी साधक वृन्द इसकी आराधना से या पुण्य मरण के फलस्वरूप इसकी कृपा प्राप्तकर तपस्या के अनुरूप ऐश्वर्य और अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं । यह देवों में भी सिद्धियों की संख्या के अनुरूप ही आठ प्रकार से निवास करती हैं ॥८२४॥

सिद्धों में वह उत्तम सिद्धि रूप से निवास करती हैं । इसी देवी के लिये तारक आदि असुर सम्राटों से देवताओं के युद्ध हुआ करते हैं । अर्थात् देव-दानव संग्रामों के मूल में यही देवी हैं ॥८२५॥

असंख्य संग्राम छिड़े, भीषण युद्धों से विश्व ने विनाश का वरण किया, वह भी किस लिये ? इसी अंशांशिक रूप से वर्त्तमान इस लक्ष्मी को पाने की

तथोक्तांशांशिकारूपाम्–

तां श्रियं प्राप्तुमिच्छुभिः ।

असंख्येयाश्च सङ्ग्रामाः कृता वै चक्रवर्तिभिः ।।८२६।।

तदित्थमुक्तैषा–

सा बन्ध एवमुक्तानामबुधानां परा स्मृता ।

एवमुक्तानां तारकादीनामबुधानां विनश्वरभोगाभिलाषेण सङ्ग्रामादि कुर्वतामेषा श्रीर्बन्ध एव, अथ च मुक्तानां प्रत्यभिज्ञातस्वरूपाणां जीवन्मुक्तिभाजां सा बन्ध एव, न ते तदर्थं प्रयतन्ते; अपि तु प्राप्तां तामर्थिभ्यो वितरन्ति । ये तु अबुधास्तेषामेव सा परा प्राप्यत्वेनाभिलषितेति आवृत्त्या अकारप्रश्लेषेण व्याख्येयमेतत् ।

तदेतत्–

श्रीपुरं तु समाख्यातं यथावच्च वरानने ।।८२७।।

अथ–

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भुवनं च निबोध मे ।

सारस्वतमिति ख्यातं गान्धर्वमिति च स्मृतम् ।।८२८।।

झूठी इच्छा के वशीभूत होकर चक्रवर्त्ती राजाओं की चाह ने विनाश की ताण्डव लीला की और खून की होली खेली ॥८२६॥

ऐसी अंशांशिका रूप से ही विश्व में विराजमान यह लक्ष्मी उक्त तारक सदृश मूर्खों के लिये बन्ध है । विनश्वर भोगों के अभिलाष से युद्ध करने वाले मूर्खों के लिय बन्धनप्रदा है ।

वहीं वह मुक्त अर्थात् जिन्होंने 'स्व' को प्रत्यभिज्ञात कर लिये हैं, उनके लिये यह बन्ध रूप युद्ध की विरोधी ही है । अर्थात् वे इसे क्षुद्र भोगप्रदा मात्र मानकर इसके लिये प्रयत्न नहीं करते, अपितु प्राप्त अर्थ का भी लोकहित में अर्थियों को वितरित भी कर देते हैं ।

जो अबुध हैं, बुद्धिहीन हैं, उनके लिये ही परम रूप से प्राप्य है । इस तरह की, श्रीपुर और श्री के प्राप्याप्राप्यत्व पर यहाँ तक चर्चा की गयी ॥७२७॥

देवि ! भुवनों का यहीं अन्त नहीं, इसके ऊपर भी भुवन हैं । उनके विषय में मैं तुम्हें अभी बताने जा रहा हूँ । देवि ! इस भुवन को दो नामों से जानते हैं । कुछ इसे सारस्वत पुर कहते हैं और कुछ गान्धर्व नगर कहते हैं ।

ऊर्ध्वमिति उपरिस्थितम् । सरस्वत्या इदं सारस्वतम् । सरस्वती च सर्व-शास्त्रस्फाररूपा गान्धर्वविद्यारूपा चेति गान्धर्वमित्यस्य पुरस्य नाम ॥८२८॥

तदेतत्–

पद्मगर्भपुरं चापि कोटिमात्रेण सुव्रते ।

योजनानां समाख्यातं प्रमाणेन समन्ततः ॥८२९॥

पद्मगर्भाकारं सुकुमारोज्ज्वलमित्यर्थः । किञ्च–

सर्वरत्नमयं दिव्यं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ।

विमानैर्विविधाकारैर्नानारत्नमयैः शुभैः ॥८३०॥

गान्धर्वैर्मानसैश्चापि गायद्भिश्चाप्यनेकधा ।

नृत्यद्भिश्च तथान्यैश्च गणैः पार्श्वगतैस्तथा ॥८३१॥

स्त्रीभिः सुरूपिणीभिश्च गन्धर्वैश्च समाकुलम् ।

गन्धर्वाणाममी गान्धर्वा विमानास्तैः । मानसैः सङ्कल्पमात्रसिद्धैः । गणैः परमेश्वरानुचरैः । तदीदृशस्य–

तस्य मध्ये तु देवेशि शरच्चन्द्रनिभं शुभम् ॥८३२॥

सरस्वती का होने के नाते यह सारस्वत नगर है तथा सभी शास्त्रों की स्फार सार रूपा और रागमयी होने के कारण गान्धर्व विद्या के आधार पर गान्धर्व पुर कहते हैं ॥८२८॥

पद्मगर्भ के समान सुकुमार सौन्दर्यसमन्वित यह सारस्वत भुवन का करोड़ योजन मान शास्त्रों में कहा गया है । यह उसका चतुर्दिक् मान है ॥८२९॥

सभी प्रकार के रत्नों से यह भरा हुआ पुर बड़ा ही दिव्य है । सभी ऐश्वर्यों से यह समन्वित है । अनेक आकारों के विमानों से, जिनमें रत्न जटित हैं, यह मण्डित है । वे अत्यन्त शुभप्रद हैं ॥८३०॥

गान्धर्व कला, मानस गन्धर्वों की राग-रागिनियाँ, वहाँ नित्य सुनाई देती हैं । वे नित्य गायनरत रहते हैं । बहुत से नृत्यकला प्रवीण नाच रहे हैं और कुछ पार्श्वगान भी करते हैं ॥८३१॥

सुन्दर नारियों के समूहों और गन्धर्वों से वह नगर भरा हुआ है । विमान भी गन्धर्वों के ही हैं । वे परमेश्वर के अनुचर हैं । इसलिये उनके समृद्ध होने का प्रमाण है कि, वे विमान गन्धर्वों के ही हैं । इस पुर के मध्य भाग में शरच्चन्द्र के समान शुभ्र एक मण्डल है ॥८३२॥

रश्मिमालाकुलं दिव्यं मण्डलं परिमण्डलम् ।
तस्य मध्ये भगवती स्थिता साक्षात्सरस्वती ।।८३३।।
शरच्चन्द्रसहस्रस्य या कान्तिमतिवर्तते ।
पीताम्बरधरा देवी पद्मपत्रायतेक्षणा ।।८३४।।
नीलोत्पलदलश्यामा दिव्याभरणभूषिता ।
हेमपट्टपरीधाना दिव्यकुण्डलधारिणी ।।८३५।।
उरसा तु महाहारमुद्वहन्ती शशिप्रभम् ।
स्फुरन्मयूखसङ्घातकुण्डलद्वयमण्डिता ।।८३६।।

मण्डलं प्रधानभुवनम् । कान्तिर्दीप्तिः, श्यामत्वं तु वर्णः । अम्बरमान्तरं वस्त्रम्, परीधानं तु बाह्यम् ।।८३६।।

समग्रगान्धर्वमयी अस्या मूर्तिरित्याह–

ग्रामत्रयवलीमध्या सप्तस्वरतनुः शुभा ।
तानमूर्धरुहा देवी मूर्च्छनाङ्गरुहोद्वहा ।।८३७।।

रश्मिमाला से दिव्य रूप से परिमण्डलित प्रधान मण्डल है । उसी मण्डल के मध्य भाग में साक्षात् भगवती सरस्वती विद्यमान हैं ।।८३३।।

हजारों हजार शरत्कालीन चन्द्रों की सम्मिलित कान्ति को भी अतिक्रान्त करने वाली माँ सरस्वती की शोभा अवर्णनीय है । वह पीले माङ्गलिक आन्तर परिधान में है । इसके लोचन पूर्ण विकसित कमल के रक्ताभपत्रों के ही समान मनोहर हैं ।।८३४।।

नील उत्पलदल की कान्ति के समान वे कान्त हैं । दिव्य आभरणों से वे भूषित हैं । स्वर्ण पट्ट परिधान में वे और भी सुन्दर लग रही हैं । उनके कुण्डल भी बड़े दिव्य हैं ।।८३५।।

वक्ष पर उनके महाहार सुशोभित हो रहा है । उस हार की शोभा शशि की शोभा से बढ़ चढ़कर भा रही है । दोनों कानों में परम सुन्दर कमनीय कुण्डल हैं । उनसे किरणों का सम्मिलित प्रकाश वातावरण को प्राकाशमान बना रहे हैं ।।८३६।।

सरस्वती का वह साक्षात् विग्रह गान्धर्व विद्या का ही प्रतीक है । जैसे सङ्गीत में तीन ग्राम होते हैं । वही उसकी त्रिबली है । सात स्वर होते हैं । इसका शरीर भी सात स्वर वरेण्य है । जिनसे मूर्च्छनाओं का तनन होता है । ऐसी स्वरगुम्फनमयी तानमयी माँ की मूर्धा की केश सज्जा है ।।८३७।।

पदासना तालपादा गीतवर्णप्रभावती ।

षड्जमध्यमगान्धाराख्यं ग्रामत्रयमेव त्रिवलिलेखाशोभि मध्यं यस्याः सा । षड्जादिसप्तस्वरशरीरा, तथा तन्यन्ते विस्तार्यन्ते स्वरगुम्फनामय्यो मूर्च्छना यैस्ते ताना मूर्धरुहाः केशा यस्याः । मूर्च्छना एव अङ्गरुहान् रोमाञ्चान् उद्वहति । पदानि छन्दोनिबद्धानि गीतकानि आसनं यस्याः । चञ्चुपुटोदयस्ताला एव प्रसरणहेतुत्वात् पादौ चरणौ यस्याः । द्वित्रिश्रुत्यात्मकस्वरगीयमानाः पदैकदेशा गीतवर्णास्तैः प्रभा दीप्तिर्यस्याः ।

किञ्च अस्याः-

अङ्गुल्यः सन्धयश्चैव लक्षणानि वरानने ।।८३८।।

सन्धयो मर्माणि । लक्षणानि-

'अलङ्कारगुणैश्चैव बहुभिः समलङ्कृतम् ।
भूषणैरिव चित्रार्थैस्तद्भूषणमिति स्मृतम्' ।।

इत्यादिलक्षणेन भरतमुनिना लक्षितानि भूषणाक्षरसङ्घातादीनि षट्त्रिंशत् । तदियमेवं भूत्वा स्वराद्याबद्धशरीरा सरस्वती इह पररूपेणाधिष्ठात्री देवतोक्ता, पूर्वं तु मेरुगतगान्धर्वपुर्याम्-

---

छन्दबद्ध गीत पद कहलाते हैं । ऐसे पद दीक्षा के आसन है । उन्हीं पद पर आसन की व्यवस्था है । सङ्गीत में चञ्चुपुट आदि तालों का महत्त्व होता है । उनके प्रसारण से संगीत की रसवत्ता का प्रसार होता है । ऐसे ताल ही उस माँ के चरण हैं । जिनसे सारस्वत-प्रसार सरलता से होता है । गीतों का गायक वर्ण श्रुति का प्रयोग करता है । उसी प्रकार प्रभा का शास्त्रों में उल्लेख है । उसी प्रकार की वर्ण प्रभा से भासित माँ सरस्वती की आराधना वहाँ की जाती है ।

इसकी अङ्गुलियाँ सन्धियाँ हैं । ये उक्त सभी सारस्वत लक्षण सरस्वती में हैं । श्री भैरव भट्टारक ने भगवती उमा को सम्बोधित करते हुए, सरस्वती के गान्धर्व विद्या रूप सारस्वत स्वरूप का चित्रण इस प्रकार किया ।

सङ्गीत शास्त्र में मर्म को सन्धि कहते हैं । लक्षणों के विषय में भी भरत मुनि ने स्पष्ट लिखा है कि,

बहुत सारे अलङ्कारों और गुणों से समलङ्कृत भूषणाक्षर समूह, जिनकी संख्या ३६ बतायी जाती है, यही भूषण है । यह चित्र-विचित्र वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य अर्थों से साहित्य को सार्थक करते हैं ।

'आस्ते भगवती साक्षात्सप्तस्वरविभूषिता ।

ग्रामत्रयपरीधाना..........................'॥ (१०/१५२)

इत्याद्युक्त्या स्वराद्यलङ्कृतवाण्यात्मिकापररूपेणैतद्देवताधिष्ठेयरूपेति विशेषः ॥८३८॥

तदेषात्र–

आसने परमे दिव्ये वृता भूतगणेश्वरैः ।

स्थिता स्थितिरिवाभाति सर्वस्य जगतः शुभा ॥८३९॥

'वाच्यार्था निहिताः सर्वे वाङ्मूला वाङ्निबन्धनाः ।

इति नीत्या जगद्व्यवस्थाहेतुरियमेव हि देवी ।

किञ्च–

मानसीभिश्च नारीभिर्गन्धर्वैर्मानसैर्वृता ।

तथा च–

हाहा हूहूश्चित्ररथस्तुम्बुरुर्नारदस्तथा ॥८४०॥

इन समस्त भूषणाक्षरों के माध्यम से साक्षात् प्रत्यक्ष दीख पड़ने वाली सरस्वती स्वरादि लक्षणों से लक्षित हो रही है । यह परमातनु रूपा सर्व-स्वाधिष्ठात्री देवता है । इसी पटल के श्लोक १३२ में भी यह सप्त स्वर विभूषित और षड्ज, मध्यम तथा गान्धार रूप तीन ग्रामों से गौरवास्पदा के रूप में वर्णित की गयी है । वह वाग्देवी है । यह स्वरव्यञ्जनात्मिका साहित्य की अधिष्ठात्री देवी हैं । इस सारस्वत पुर की भी यही सर्वाध्यक्षा सर्व प्रेरिका गान्धर्व विद्यामयी मूर्त्ति है ॥८३८॥

भूत समूहों के स्वामियों से नित्य परिवृत, संसार की कल्याण कारिणी देवी सरस्वती अपने दिव्य सिंहासन पर शोभायमान होती हैं । प्रतीत होता है– यह माँ विश्वसत्ता को अपनी स्थिरा स्थिति से ही नियन्त्रित कर रही हैं । स्थिति के विषय में आचार्य क्षेमराज उद्योत के माध्यम से यह व्यक्त कर रहे है कि, सरस्वती वाङ्मूला है । वाक्तत्त्व का निबन्धन करने वाली हैं और वाक्तत्त्व ही विश्व की स्थिति का भी कारण है । अतः जगत् की व्यवस्था की आदि कारण हैं ॥८३९॥

उनके चारों ओर सेवा में संलग्न वे बालायें हैं, जिन्हें मानसी वृत्ति द्वारा उत्पन्न किया गया है । मानसगन्धर्व भी सेवा के लिये सदा तत्पर रहते हैं । इनमें हाहा, हूहू, चित्ररथ, तुम्बुरु और नारद मुख्य हैं ॥८४०॥

विश्वावसुर्विश्वरथः

त एते-

दिव्यगीतविचक्षणः ।

संयोज्य मनसात्मानं त्वक्त्वा कर्मफलस्पृहाम् ।।८४१।।

ते वै सारस्वतं स्थानं प्राप्ता वै सुरपूजिते ।

स्वरवैखरीभूम्यवस्थितिक्रमेण मध्यमापश्यन्तीपदप्रतिष्ठैकाग्रमनस्का इमामेव देवीमुपासीना एते गन्धर्वमुख्या एतत्पुरं प्राप्ताः ।

न केवलमेते पुरमिदं प्राप्ताः, यावत्

ये च वाग्धारणां ध्यात्वा प्राणान् मुञ्चन्ति देहिनः ।।८४२।।

ते वै सारस्वतं लोकं प्राप्नुवन्ति नरोत्तमाः ।

वाग्धारणा तत्त्वसिद्धिपटले द्वादशे वक्ष्यते । युक्तं चैतत्, यस्मात्-

एषा सरस्वती देवी मूर्तिर्वै पारमेश्वरी ।।८४३।।

इनके अतिरिक्त विश्वावसु, विश्वरथ भी नित्य सेवारत रहते हैं । ये सभी दिव्य गीतों के विलक्षण गन्धर्व माने जाते हैं । ये समस्त गन्धर्व मानसिक रूप से देवी से जुड़े हुए हैं । इनके हृदय में अपने कर्मों के फल की लालसा नहीं है ॥८४१॥

इन्होंने भाग्यवश ही सारस्वत स्थान को प्राप्त किया है । भगवान् भैरव देवी को सम्बोधित करते हुए यह कह रहे हैं कि, देववन्द्ये ! इन गन्धर्वों ने एक मात्र देवी की उपासना का व्रत ले लिया है । वे स्वरों की साधना में बैखरी के क्रम से मध्यमा, पश्यन्ती भूमिकाओं की पराकाष्ठा को पारकर माँ सरस्वती की पर रूप की सेवा में ही एकाग्रमनस्क भाव से प्रतिष्ठा प्राप्त कर यहाँ पहुँच सके हैं ।

इस वास्तविकता के साथ यह भी ध्यान देने की बात है कि, जो भक्त वाग्धारणा में ध्यानस्थ होकर उसी में रमते हुए प्राणों का त्याग करते हैं, वे भी धन्य हैं ॥८४२॥

वे सभी सारस्वत लोकों में पहुँचते हैं । सच ही यह कहा जा सकता है । वाग्धारणा के विषय में तत्त्वसिद्धिनामक द्वादश पटल में चर्चा की गयी है । सारस्वत लोक में प्रतिष्ठित यह सरस्वती की साक्षात् पारमेश्वरी मूर्त्ति ही है ॥८४३॥

या स्थितापरभावेन ब्रह्माण्डोदरवर्तिनाम् ।

कथमित्याह–

ब्रह्मलोके च सा देवी पादेनैकेन तिष्ठति ।।८४४।।

शाक्रे चापि तदर्धेन

शक्रलोकेऽष्टमांशेन ।

गन्धर्वेषु तदर्धतः ।

षोडशांशेन–

सिद्धेषु च तदर्धेन

द्वात्रिंशांशेन ।

किन्नरेषु तदर्धतः ।।८४५।।

चतु:षष्ट्यंशेन ॥८४५॥

तदर्धेन च नागेषु

अष्टाविंशत्यधिकशततमेनांशेन ।

यक्षेष्वर्धेन वै पुनः ।

षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमांशेन ।

पिशाचेषु तदर्धेन

द्वादशाधिकपञ्चशततमांशेन तदित्थम्–

सा वै तिष्ठति भागशः ।।८४६।।

ब्रह्माण्ड के अन्तराल में जिन रूपों में परमेश्वर की यह परा शक्ति जैसी और जिस अंश में विराजमान है, उसको व्यक्त करने के सन्दर्भ में पहले सरस्वती से समुल्लसित भैरव देव ने यह स्पष्ट कर दिया है कि, यह देवी सारस्वत लोक में पर भाव में ही अवस्थित है । ऐसी यह देवी ब्रह्मलोक में केवल एक पाद से ही अर्थात् अंश से ही अवस्थित है ॥८४४॥

इन्द्रलोक में वह $^{१}/_{८}$ अंश में और गन्धर्व लोक इस इससे $^{१}/_{१६}$ अंश में विराजमान है । सिद्धों में यह इससे भी आधे अंश में अर्थात् बत्तीसवें अंश में अवस्थित हैं और किन्नरों में $^{१}/_{६४}$ वें अंश में रहती हैं ॥८४५॥

नागों में इनके भी अर्द्धांश में, यक्षों में इससे भी अर्द्धांश में अर्थात् दौ सौ छप्पनवें अंश में, पिशाचों में पाँच सौ बारहवें अंश में, इसी क्रम में भागशः प्रतिष्ठित हैं ॥८४६॥

किञ्च–

पिशाचेभ्यः सहस्रांशान् मानुषेषु च तिष्ठति ।

न चैवमंशांशिकया एषावतीर्णा देवी; अपि तु–

तैस्तु तप्त्वा तपो घोरमाराध्य च पिनाकिनम् ।।८४७।।

अवतारिता तु सा देवी रूपिणी स्वरभूषिता ।

रुपिणी आकृतिमती ।

तदेवं तपसा समाराधितस्य पिनाकिनस्तदादेशादेव प्रथमम्–

स्वरांस्तु स्मरतस्तस्य कल्पादौ ब्रह्मणः पुरा ।।८४८।।

स्वरेभ्यस्तु विनिष्क्रान्ता तेन सा तु सरस्वती ।

स्वरप्रत्यवमर्शवशोन्मिषन्नादामर्शानुप्रवेशाद् ब्रह्मणः स्वरेभ्य एव उद्भूता अभिव्यक्तिमागता यस्मात्, अत एषा अक्षरसारूप्यात् सरस्वतीत्युच्यते । यदा तु 'ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः' इति पाठः, तदा अव्यक्ताद् वक्ष्यमाणात् प्रकृतितत्त्वात् जन्म यस्य बुद्धितत्त्वगतस्य परस्य ब्रह्मणः पिनाकिप्रसादाद् व्यक्तिं गतेति व्याख्येयम् ।

पिशाचों से हजारवें अंश में मनुष्यों में अवस्थित हैं । यह इसके अंशाशिका रूप से अवस्थान का क्रम है । मूल तथ्य यह है कि, सर्वप्रथम ब्रह्मादि देवताओं द्वारा भगवान् शङ्कर की घोर आराधना और तपस्या की गयी थी । इससे पिनाकी बड़े प्रसन्न हुए थे ।।८४७।।

भगवान् पिनाकी के आदेश से ही यह स्वरों से भूषिता आकृतिमती देवी सरस्वती अवतरित हुई । कला के आदि में ब्रह्मा ने स्वरों का स्मरण किया । भगवान् पिनाकी ब्रह्मा की स्मृति से प्रसन्न हुए ।।८४८।।

भगवान् शङ्कर के आदेशानुसार ही स्वरों से यह निष्क्रान्त की गयी । ब्रह्मा ने स्वरों का प्रत्यवर्श किया था । इस प्रत्यवमर्श सें नादपरामर्श उन्मिषित हुआ । इस नादामर्श में भी ब्रह्मा ने प्रवेश प्राप्त कर लिया । भगवान् भैरव इसके साक्षी थे । उन्होंने इसके स्वरों से अभिव्यक्त होने की आज्ञा दी । स्वरों से सरकती सी साक्षात् आकृतिमती रूप ग्रहण कर प्रत्यक्ष हो गयी । स्वरों और व्यञ्जनों के सारूप्य के कारण इसकी सरस्वती यह सार्थक संज्ञा प्रसिद्ध हो गयी ।

श्लोक ८४८ की निचली अर्धाली का पाठ भेद भी प्रसिद्ध है । वह है– 'स्वरांस्तु स्मरतस्तस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः' । इस पाठ भेद के अनुसार 'अव्यक्त प्रकृतितत्त्व बुद्धितत्त्व से प्रादुर्भूत परब्रह्म से भगवान् शङ्कर की कृपा से प्रत्यक्ष हुई'–यह अर्थ लगाया जा सकता है ।

तदित्थमवतीर्णैषा–

सा स्थिता सर्वशास्त्रेषु कवीनां काव्यमास्थिता ।।८४९।।

अधिष्ठाय स्थितेत्यर्थः ।।८४९।।

किञ्च–

या वाल्मीकौ स्थिता देवी व्यासे चैव निरन्तरम् ।
ऋषीणां चैव सर्वेषां मेधाबुद्धिविवर्धिनी ।।८५०।।

मेधा निर्विकल्पप्रतिभा, बुद्धिरध्यवसायिनी धीः ।।८५०।।

एषा हि–

सर्वज्ञानधरी सा तु सर्वज्ञा देवपूजिता ।

ब्रह्माण्डान्तरवतीर्णायाश्च क्रमेण–

मेरोर्वायव्यदिग्भागे पुरं तस्याः प्रकीर्तितम् ।।८५१।।

अपरम्–

इदं तु परमं देव्या मया ते परिकीर्तितम् ।

एतदुपसंहरति–

सारस्वतं तु भुवनं कीर्तितं परमा तनुः ।।८५२।।

यत्र सरस्वती भगवती देवी परमेश्वरसम्बन्धिनी परमा मूर्तिः स्थितेत्यर्थः ।

ऐसी यह साहित्य सर्वस्वरूपा सरस्वती सभी शास्त्रों में प्रतिष्ठित है । यह कवियों के काव्य में आ समन्तात् स्थिता भवति अर्थात् पूर्ण रूप से रस गुण अहङ्कारादि तत्त्वों के साथ अधिष्ठित हैं और उल्लसित होती हैं ।।८४९।।

सर्व प्रथम इसने वाल्मीकि की रचनाओं के माध्यम से अपनी सर्वोच्च चामत्कारिकता की चारुता को चरितार्थ किया था । उसके बाद व्यास ने न भूतो न भविष्यति की उक्ति को प्रमाणित किया था । तत्पश्चात् मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के मन्त्रदर्शन के सन्दर्भ में यह व्यक्त हुई थी । इसी देवी की कृपा से मेधाशक्ति और बुद्धिवैभव का संवर्धन होता है ।।८५०।।

समस्त ज्ञान विज्ञान को धारण करने वाली यह देवी सर्वज्ञता से विभूषित है । सभी देवताओं द्वारा पूजिता यही देवी ब्रह्माण्ड में अवतीर्ण है । इसका पुर मेरु के वायव्य कोण पर अवस्थित है ।।८५१।।

भगवान् भैरव कहते हैं कि, देवि ! इस परा देवी का शब्द-चित्र मैंने तुम्हारे सामने प्रस्तुत किया है । इस मण्डल को सारस्वत भुवन की संज्ञा से विभूषित किया जाता है । यहीं भगवती सरस्वती की यह पारमेश्वरी मूर्त्ति विद्यमान है ।।८५२।।

अधुना–

अत्रैव त्वाप्यतत्त्वे त्वं शृणु वै भुवनोत्तमम् ।

प्रोक्तेभ्योऽपि भुवनेभ्य उत्तमं वक्ष्यमाणदृशा भुवनाष्टकं शृणु ।

तच्च भुवनेशद्वारेण दर्शयति–

अमरेशं प्रभासं च पुष्करं नैमिषं तथा ।।८५३।।

आषाढिं डिण्डिमुण्डिं च भारभूतिं च लाकुलम् ।

तदेतत्–

गुह्याष्टकमिति ख्यातं जलावरणगं प्रिये ।।८५४।।

गुह्यत्वमेषां शतरुद्रादिभ्योऽपि उत्कर्षणात् । एते च भुवनेश्वरा भुवनमपि एतन्नामकं नानादिग्गतस्वयम्भूतीर्थादिरूपतया अनुग्रहार्थमवतीर्णाः प्रसिद्धाः । एवमन्येऽपि वक्ष्यमाणा ज्ञातव्याः ।।८५४।।

अथ–

तेजस्तत्त्वमतश्चोर्ध्वं कथयामि समासतः ।

अग्नेस्तु भुवनं तत्र कथयामि वरानने ।।८५५।।

तच्च–

अशोकस्तबकानां च सर्वतो दीप्तिमुद्वहत् ।

उत्फुल्लकिंशुकच्छायं जपाकुसुमसन्निभम् ।।८५६।।

उक्त जितने भुवनों का वर्णन मैंने तुम्हें सुनाया है, देवि उमे ! इनसे भी उत्तम आप्यतत्त्व में अवस्थित भुवनों के सम्बन्ध में मैं तुम्हें सुनाने जा रहा हूँ । ये आठ हैं । इनके इतने ही भुवनेश्वर भी हैं । इनमें प्रथम भुवन का नाम अमरेश है । इसी क्रम में प्रभास, नैमिष, पुष्कर भी आते हैं ।।८५३।।

इनके अतिरिक्त 'आषाढि' डिण्डि-मुण्डि, भारभूति और लाकुल नामक भुवन भी हैं । इन्हें भुवनाष्टक और इनके अधिपतियों को गुह्याष्टक भी कहते हैं । ये जलतत्त्वावरण में अवस्थित हैं ।।८५४।।

इन्हें गुह्य कहने का कारण शतरुद्रों से भी उत्कृष्ट स्थिति है । ये स्वयम्भू-तीर्थ भी यहाँ अनुग्रहार्थ ही अवतीर्ण हैं ।

इसके ऊपर तेजस्तत्त्व का अधिकार क्षेत्र आता है । भगवान् कह रहे हैं कि, मैं उसे भी तुम्हें सुना रहा हूँ । यह अग्नि के विभिन्न भुवन भी हैं ।।८५५।।

अग्नि का यह भुवन अशोक के गुच्छ की तरह आकर्षक है । उससे दीप्ति उद्दीप्त होती रहती है । खिले हुए किंशुक के फलों की फलकावली

अतिलोहितमित्यर्थः ॥८५६॥

भुवनस्यास्य मध्ये तु उदितार्कसमप्रभम् ।
परिमण्डलमाग्नेयं तेजोमण्डलमुच्यते ॥८५७॥

परितस्त्रिकोणाकारं मण्डलं परिमण्डलम् । तेजोमण्डलमिति तेजोमयं प्रधानभुवनम् ॥८५७॥

तस्य मध्ये तु भगवान् शिवाग्निः कारणं परम् ।

शिव एव परमेश्वरो गृहीताग्निमूर्तिः शिवाग्निः । परं कारणमिति ब्रह्माण्डवर्तिसर्वाग्निभेदानाम् ।

यदाह–

योऽवतीर्याण्डमध्ये तु स्थितो नित्यं त्रिधा त्रिधा ॥८५८॥

भौमान्तरिक्षजाठराग्निरूपतया ॥८५८॥

किञ्च–

वक्त्रे तु दक्षिणे तस्य रुद्रस्य परमात्मनः ।
स्थितो जिह्वास्वरूपेण स्वयंभूर्नीललोहितः ॥८५९॥

तस्येति शिवाग्निरूपस्य रुद्रस्य । यो नीललोहितो ज्वालालिङ्गात्मा श्रीपर्वतादौ स्वयंभूः प्रसिद्धः, स दक्षिणे वक्त्रे जिह्वारूपस्तद्दक्षिणवक्त्राद् भुवनमनुग्रहायावतीर्ण इत्यर्थः ॥८५९॥

के समान यह आग्नेय भुवन बड़ा मनोहर है । जपाकुसुम सदृश ही रक्ताभ भी है ॥८५६॥

इस आग्नेय भुवन के मध्य में उदित होने वाले बाल सूर्य के सदृश एक आग्नेय परिमण्डल है । उसे तेजोमण्डल कहते हैं । यह तेजोमय भुवन ही प्रधान भुवन है ॥८५७॥

इस तेजोमण्डल के मध्य में परम कारण रूप भगवान् शिव ही शिवाग्नि रूप से अवस्थित हैं । वे ही ब्रह्माण्डवर्त्ती सभी अग्नि-भेदों के परम कारण हैं । वही अण्डों में अवतीर्ण होकर त्रिधा त्रिधा रूपों में अवस्थित हैं । भौम भूमि में, अन्तरिक्ष में प्रमाता रूप में और देहभाव में जठराग्नि के रूप में यह स्पष्ट ही विभाजित है ॥८५८॥

किञ्च–

स एव तु महादेवि कालाग्निः परमेश्वरः ।

यः कर्परिकापृष्ठे ब्रह्माण्डोर्ध्वे च प्रतिपादितः स एवेति नीललोहितः । यस्य दक्षिणजिह्वामात्रात्मा कालाग्निः स निःसामान्यात्मेति यावत् ।

एतस्य शिवाग्नेर्ध्यायिजनोपयोगि–

तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहिता प्रिये ।।८६०।।
रक्तपद्मदलच्छायः पद्मरागसमद्युतिः ।
रक्ताम्बरधरः श्रीमान् रक्तमाल्यानुलेपनः ।।८६१।।
अर्काभाभ्यां कुण्डलाभ्यामलङ्कृतशुभाननः ।
महाहारेण दीप्तेन उरःस्थेन विराजते ।।८६२।।

पद्मरागमयेनेत्यर्थात् ।।८६२।।

किञ्च–

किरीटी कुण्डली दीप्तो देवानामास्यमुच्यते ।

अस्यन्त्यनेन शिवाग्निरूपेण विश्वभक्षकेण हविरित्यास्यम् ।

शिवाग्नि रूप इस रुद्र परमात्मा के दक्ष वक्त्र से स्वयंभू नीललोहित अग्नि रूप से, जो श्रीपर्वत आदि पर ज्वालाओं से नित्य समालिङ्गित रहते हैं, भुवनों पर अनुग्रह के लिये अवतीर्ण हैं ।।८५९।।

ब्रह्माण्ड के ऊर्ध्व भाग के कर्परिका पृष्ठ पर जो अवस्थित रूप से प्रतिपादित होते हैं, वही परमेश्वर श्री कालाग्नि रूप से प्रसिद्ध हैं । वे ही परमेश्वर की दक्ष जिह्वा हैं और दक्षवक्त्र में विद्यमान हैं । उसका रूप बड़ा विचित्र है । मैं इसके विषय में तुम्हें बताने जा रहा हूँ ।।८६०।।

१.लाल कमल के लाल पत्तों की लाली की तरह वे लाल रंग के हैं । २.पद्मरागमणि की लाली की उपमा भी उनसे दी जा सकती है । लाल कपड़ों में वे रमणीय लगते हैं । लाल फूलों की मालायें और लाल चन्दन के ही अनुलेप से लिप्त की तरह लगते हैं ।।८६१।।

कानों के दोनों कुण्डल मानो दो सूर्य हैं, उनसे उनके मुख का सौन्दर्य शतगुणित हो जाता है । महाहार से वे मनोहर लगते हैं । उनका उरःस्थल इससे अत्यन्त शोभायमान लग रहा है ।।८६२।।

यह देवताओं का आस्य (मुख) माना जाता है । इसी मुख से वह समस्त हवि ग्रहण करता है । अनेन विश्वभक्षकेण शिवाग्निरूपेण हविः अस्यत

अयं च अत्र भुवने–

सर्ववज्रमये पीठे उपविष्टः स्वयं प्रभुः ।।८६३।।
दावाग्निरिव शैलाग्रे वेणुघर्षात्समुत्थितः ।

किञ्च–

दशकोटिसहस्राणि आग्नेयास्तु गणेश्वराः ।।८६४।।
दक्षिणास्याद्विनिष्क्रान्ताः श्वसतोऽस्य स्वयंभुवः ।
हिताय सर्वलोकानां रुद्रा वै सूर्यवर्चसः ।।८६५।।
तेन तेऽग्निं महात्मानो नित्यशः पर्युपासते ।

गणानां स्वपरिवाराणामीश्वरा रुद्राः । हिताय सर्वभूतानामिति सूर्यमरीच्याद्यधिष्ठानद्वारेण संस्थिताग्न्यधिष्ठानेन च भोगमोक्षरूपमनुग्रहं सम्पादयितुम्, तथा च पुराणेषु–

'चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ।
रसातलगता ये च ये च तस्मात्परं गताः ।।
नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्योऽस्तु नित्यशः ।
येषां न विद्यते संख्या प्रमाणं रूपमेव वा ।।
असंख्येयगणा रुद्रा नमस्तेभ्योऽस्तु नित्यशः' ।

इस विग्रह वाक्य से यही सिद्ध होता है । ऐसे दीप्तिमन्त किरीट और कुण्डलधारी अग्निदेव सर्ववज्रमय पीठ पर स्वयं सर्वसमर्थ प्रभु विराजमान होते हैं ।।८६३।।

शैल के शिखर पर आरूढ वंश राशि की रगड़ से एवं घोर घर्षण से उत्पन्न दावाग्नि के सदृश ये नित्य दीप्तिमन्त हैं । इनके गणों के आग्नेय गणेश्वर करोड़ों में परिकलित हैं ।।८६४।।

दक्ष मुख से श्वास लेते ही स्वयंभू रुद्र निष्पन्न हो प्रकट हो गये । वे सर्वलोक हितैषी माने जाते हैं । सभी सूर्यवर्चस्व की चमक से चमकीले रुद्र हैं ।।८६५।।

वे सभी महात्मा अग्निदेव की नित्य उपासना करते हैं । उनकी किरणों के माध्यम से भोग और मोक्ष रूप अनुग्रह करने की प्रार्थना करते हैं । पुराण की उक्ति है कि, ''चन्द्रमा और सूर्य के मध्य में चन्द्र और सोम की रश्मियों के संगम में, वे लोग जो रसातल और उससे ऊपर वाले जीव हैं, उनको बारंबार नमस्कार है । न तो उनकी कोई संख्या है और न कोई प्रमाण या

इति स्तुतिवाक्यमस्ति । किञ्च–

नार्यश्च विविधा दिव्या दिव्यगीतविचक्षणाः ।।८६६।।

गणा रुद्रा भूतगणाः किङ्कराश्च सहस्रशः ।

तं पर्युपासत इति सम्बन्धः । किञ्च–

स वै शिवाग्निः पठितः सर्वहोमेश्वरः परः ।।८६७।।

पारमेश्वरेषु शास्त्रेषु दीक्षात्मनि शिवयज्ञे । किञ्चासौ–

अग्निकार्यविधानेषु हूयते तद्विदैः सदा ।

तत्र विदा ज्ञानं येषां ते तद्विदास्तैः । किञ्च–

तमग्निमैश्वरं यान्ति कृत्वाग्नेयीं तु धारणाम् ।।८६८।।

देहान्त इत्यर्थात् ।।८६८।।

अयं चास्य शिवाग्नेर्महिमा, यत्–

स एकधा स बहुधा व्याप्य सर्वं व्यवस्थितः ।

एकधेति शिवाग्नितया । बहुधेति वक्ष्यमाणपञ्चाशद्रूपतया । किञ्च–

स तेजस्तेजसां योनिः

आकृति ही है' । इसके अनुसार वे नित्यस्तुत्य हैं । वहाँ विविध प्रकार की आग्नेय नारियाँ हैं । वे बड़ी दिव्य हैं और दिव्य गीतिस्वारस्य में विच-क्षण हैं ।।८६६।।

वहाँ भूतों के अनगिनत गण हैं । रुद्रों के गण हैं और उनके हजारों हजार भृत्य हैं । वे सभी अग्नि की उपासना करते हैं । पारमेश्वर शास्त्रों में इन्हें ही शिवाग्नि कहते हैं । दीक्षा रूप शिवात्मक यज्ञ में यह होमेश्वर के रूप में प्रसिद्ध हैं ।।८६७।।

अग्नि के जितने कार्य हैं और होम के जितने विधान हैं । इनको जानने वाले होम विधानज्ञ कहलाते हैं । ऐसे विधानज्ञों द्वारा यह सह यज्ञार्थ प्रयुक्त होता है । ऐसे उपासक इन यज्ञों के फलस्वरूप उसी शिवाग्नि लोक में जाते हैं । उन्हें आग्नेयी धारणा की विधि ज्ञात होती है । उसी धारणा से वे अग्नि में घृत हो जाते हैं ।।८६८।।

इसकी अपरम्पार महिमा अवर्णनीय है । वह एक बार शिवाग्निरूप से और इसके भी अतिरिक्त पञ्चाशत् रूपों से भी सर्वव्यापक होकर व्यवस्थित होता है । यह वह तेज है, जो समस्त तेजोराशि की निष्पत्ति का हेतु माना जाता है । इसी से इस दिवाकर की उत्पत्ति हुई थी ।।८६९।।

यत:-

तस्माज्जज्ञे दिवाकरः ।।८६९।।

जज्ञे जात: । उक्तं च-

'ज्ञानशक्ति: परस्यैषा तपत्यादित्यविग्रहा' । इति । (स्व० १०/४९९)

शिवाग्नेरस्य इहोद्भवो यत उक्त: ॥८६९॥

किञ्च-

बहुधा व्यज्यते चासौ कल्पमन्वन्तरादिषु ।

वक्ष्यमाणेषु कल्पादिषु बहुधा व्यज्यते नानाप्रकारतया ब्रह्माण्डान्तरं-शांशिकयावतरति । किञ्चायम्-

भिन्नश्च जन्मभेदैश्च पञ्चाशद्भिश्च भूतले ।।८७०।।

ते च वायुपुराणादौ विद्युदरणिसूर्यकान्तोद्भूतानां पावकपावमानशुचिसंज्ञानां भेदेन तत्पुत्रपौत्रादिभेदेन च भरतवैश्वानराथर्वभृदृगादिनानानादनिर्दिष्टेन पञ्चाशन्नित्य-नैमित्तिककाम्यकर्माधिकरणभूता: केचित् लौकिका: केचिच्च वैदिका निर्दिष्टा: । मोचकस्तु एक एव शिवाग्नि: परमेशमन्त्रसंस्कारसंस्कृत: साक्षादयमेवावतीर्ण: स एकधेति योऽनन्तरं निर्दिष्ट: ॥८७०॥

इसी पटल के श्लोक ४९९ में स्पष्ट लिखा है कि, यह परा ज्ञानशक्ति है । यह नित्य तपोमय है । यही आदित्य विग्रहा देवता है । शिवाग्नि से ही इसकी उत्पत्ति है ॥८६९॥

कल्पकल्पों और मन्वन्तरों में यह विभिन्न रूपों में अंशांशिका रूप से अवतरित होता रहता है । जन्म-भेदों से भिन्न यह अग्नि पचास रूपों में भूतल में विख्यात है ।

वायुपुराण आदि पुराणों में विद्युत् अरणि, सूर्यकान्त आदि से समुद्भूत पावक, पवमान, शुचि संज्ञाओं से विभूषित है । इनके पुत्र और पौत्रों की परम्परा है । भरत, वैश्वानर, आथर्वभृद्, ऋग् आदि नाना नामों से निर्दिष्ट है । नित्य, नैमित्तिक, काम्यकर्माधिकरण में लैकिक और वैदिक रूपों में निर्दिष्ट है ।

सर्वोत्कृष्ट महत्त्वपूर्ण तो केवल शिवाग्नि है । यह मोचक अर्थात् मोक्षप्रद है । पारमेश्वर मन्त्रों से संस्कृत साक्षात् स्वयम् अवतरित होता है । इस तरह यह एकधा और बहुधा दोनों तरह से अनवरत समुपास्य है ॥८७०॥

उपसंहरति–

तदेवं कीर्तितं सम्यगाग्नेयं भुवनं महत् ।

अत्रैव–

भुवनाधिपांश्च भुवने कथयामि त्वतः परम् ।।८७१।।

हरिश्चन्दं च श्रीशैलं जल्पमाम्रातकेश्वरम् ।

महाकालं मध्यमं च केदारं भैरवं तथा ।।८७२।।

तदभिधाने रुद्राष्टकं पूर्वोक्तादुगुह्याष्टकात् सातिशयम्–

अतिगुह्यं समाख्यातं

अतिगुह्यं गुह्येभ्यः प्रकृष्टत्वात् । एवमुत्तरत्र ।

कथमेतदत्र स्थितमित्याह–

पूर्वेशान्तमनुक्रमात् ।

पूर्वदिश ईशानदिगन्तं स्थितं प्रधानभूतमेतद्रुद्राष्टकमित्यर्थः । एतच्चोक्त-वक्ष्यमाणाष्टकान्तरेष्वपि एवमवस्थानं प्राधान्यं चोपलक्षयति ।

अथोर्ध्वे वाय्वारणं तत्रस्थो वायुरव्ययः ।।८७३।।

प्राणस्य भुवनं तत्र वायोस्तु वरवर्णिनि ।

शङ्खगोक्षीरधवलं शरत्कुन्देन्दुसप्रभम् ।।८७४।।

इस तरह आग्नेय भुवन वर्णित हुआ है । इनके अधिपति भुवन-क्रम से ही कथनीय है । अब इसके बाद मैं वही कहने जा रहा हूँ ।।८७१।।

हरिश्चन्द्र, श्रीशैल, जल्प, आम्रातकेश्वर, महाकाल, केदार और भैरव ये आठ महत्त्वपूर्ण नाम हैं ।।८७२।।

इन्हें रुद्राष्टकों और गुह्याष्टकों से भी उत्कृष्ट मानकर अतिगुह्याष्टक कहते हैं । गुह्यों से भी ये प्रकृष्ट हैं । ये यहाँ पूर्व दिशा से ईशान पर्यन्त क्रमशः अवस्थित हैं ।

इसके ऊपर वायु का आवरण है । इस आवरण में अव्यय अर्थात् सना-तन पुरुष वायुदेव अवस्थित हैं ।।८७३।।

वायु के इस आवरण में प्राण का भुवन अलग है । वायु का भुवन अलग है । वस्तुतः प्राण भी एक वायु ही है । इसे प्राणवायु का भुवन मानने पर प्राण-वायु का एक ही भुवन मानना चाहिये । यह भुवन शङ्ख गोदुग्ध की तरह धवल रंग का माना जाता है । शरत्कालीन कुन्द और इन्दु (चन्द्र के समान समुज्ज्वल है ।।८७४।।

प्राणाख्यस्य प्रधानस्य वायोः-

तस्मिंस्तु भुवने दिव्ये दिव्याश्चर्यशतैर्युते ।
मध्ये तु मण्डलं दिव्यं शरच्चन्द्रसमप्रभम् ।।८७५।।
रश्मिमालाकुलं दिव्यं द्योतयद्वै दिशो दश ।

मण्डलं प्रधानपुरम् ।

तस्य मध्ये तु देवेशि वायोस्तु परमा तनुः ।।८७६।।

वाय्वधिष्ठातृदेवः स्थित इत्यर्थः ॥८७६॥

स च-

किरीटी कुण्डली दीप्तो हारकेयूरभूषितः ।
नानाभरणचित्राङ्गश्चित्रमाल्यानुलेपनः ।।८७७।।
चित्राम्बरधरः श्रीमान् महाहारविभूषितः ।

तं च-

मारुता नाम वै देवाः शतकोट्यो महाबलाः ।।८७८।।
उपासते महात्मानं वायुमूर्तिं महाद्युतिम् ।

कं तमित्याह-

यो व्यापयेच्छरीराणि एकधा पञ्चधा विभुः ।।८७९।।

इस दिव्य भुवन में दिव्य और शत शत आश्चर्यों से समन्वित मण्डल के मध्य में दिव्य शरच्चन्द्र के समान प्राण अवस्थित हैं ॥८७५॥

शत-शत रश्मियों से प्रकाशमान और दशों दिशाओं को द्युतिमन्त एवं विद्योतित इस प्रधान पुर में वायु का परम शरीर विद्यमान है ॥८७६॥

वह किरीट धारण करने वाला देव अत्यन्त दीप्तिमन्त है । कुण्डल धारण करने से उनका शरीर आकर्षक लग रहा है । हार और केयूर की भूषा से विभूषित है । इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के आभरणों से भूषित उनके अङ्गों की छवि निराली हो रही है । विचित्र विचित्र मालायें पहने सुगन्धित अनुलेपों से वे मनोहर हैं ॥८७७॥

विचित्र वस्त्रों के परिधान वाले महाहार विभूषित मारुत नामक शतकोटि संख्य मारुत नामक देव महाबलशाली हैं ॥८७८॥

महाकाय वायुदेव की उपासना में शताधिक मरुत लगे हुए हैं । यह वायु देव एक और पाँच प्रकार से शरीर धारण करते हैं ।

एकधा सामान्यप्राणात्मना । प्राणापानसमानोदानव्यानानां भेदेन तु पञ्चधा । व्यापयेदिति व्याप्नुवतः स्वप्रपञ्चव्याप्तिरूपान् वायून् प्रयुञ्जीत ॥८७९॥

न केवलं सर्वाणि शरीराणि स्वप्रपञ्चव्याप्तिरूपैः सूक्ष्मवायुभिः व्यापयेदिति, यावद्बहिरपि–

सप्तधा सप्तधा चैव तिर्यग्गो द्विगुणो विभुः ।

'आ मेघाद्भास्करात्' (५१३) इत्याद्युक्तनीत्या ये सप्त, ते प्रत्येकं पौराणिकप्रसिद्ध्या सप्तधेत्येकोनपञ्चाशद्धा बहिस्तिर्यग्गो वायुः । द्विगुण इति शब्दस्पर्शाख्यगुणद्वययुक्तः ।

एवंभेदभिन्नस्याधिष्ठातृदेवतात्मा–

स्वमण्डलस्य सा दिव्यैर्विभात्येका परा तनुः ॥८८०॥

किञ्च–

तमेतमेकं दशधा प्राणात्मानं तु योगिनः ।
ध्यात्वा त्यक्त्वा तु वै प्राणान् कृत्वा तस्मिंस्तु धारणाम् ॥८८१॥

एक रूप तो उसका सामान्य प्राणात्मक रूप है । प्राण अपान, व्यान, समान और उदान रूपों में यह पाँच प्रकार का है । इन रूपों से वह शरीर को व्याप्त करता है । इसे प्रपञ्चव्याप्ति कहते हैं ॥८७९॥

यह केवल शरीर को ही व्याप्त नहीं करता, वरन् अपनी प्रपञ्च व्याप्ति रूप स्फुरता से यह बाहर को भी व्याप्त करता है । इसी तथ्य को व्यक्त कर रहे हैं–

सात सात प्रकार का यह तिर्यक् गमन करने वाला है । साथ ही शब्द, स्पर्श गुणवत्ता के कारण यह द्विगुण भी है ।

इसी पटल के श्लोक ५१ के अनुसार सात कक्षाओं में सात वायु स्कन्ध हैं । उनके नाम आवह, प्रवह, उद्वह आदि वहीं द्रष्टव्य हैं । ये प्रत्येक भी सात प्रकार के होते हैं । अतः ७×७=४९ प्रकार के वायु हो जाते हैं । अपने प्रधान मण्डल में तो वायु अपनी परातनु से विराजमान हैं ॥८८०॥

योगी लोग एक प्राणात्मा वायु पुरुष को दश प्रकार विभक्त कर इसका साक्षात्कार कर उपासना करते हैं । इसका ध्यान करते हैं । फिर एक एक का परित्याग कर उस परम तनु में भी वायवी धारणा के माध्यम से परातनु में प्रवेश कर जाते हैं ॥८८१॥

तं विशन्ति महात्मानो वायुभूताः खमूर्तयः ।

तमिति सामान्यप्राणरूपमेकम् । दशधेति प्राणादिभेदा[1]न्नागकूर्मादि-भेदाच्च । तं विशन्तीति वाय्वाव[2]रणगतत्वाद्वायुदेवतासायुज्यं यान्ति ।

उपसंहरति-

इति प्राणस्य भुवनमाख्यातं तव सुव्रते ।।८८२।।

अथ-

भुवनेशांस्तत्र रुद्रान् कथयाम्यनुपूर्वशः ।

गयां चैव कुरुक्षेत्रं नाकलं कनखलं तथा ।।८८३।।

विमलं चाट्टहासं च माहेन्द्रं भीममष्टमम् ।

पूर्ववद् भुवनमप्यवतीर्णम्-

गुह्याद्‌गुह्यतरं ह्येतद्वेदितव्यं प्रयत्नतः ।।८८४।।

वेदितव्यमिति दीक्षायामुपस्थानादिपूर्वं शोध्यत्वेन ।।८८४।।

वे स्वयं आकश मूर्त्तिमन्त बनकर वायुरूप से उसमें प्रवेश कर जाते हैं । अर्थात् वायु देवता वे सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं ।

इस प्रकार प्राणभुवन की संक्षिप्त चर्चा हुई ।।८८२।।

प्राणभुवन के भुवनेश्वरों और वहाँ अवस्थित रुद्रों को क्रमिक रूप से तुम्हारे समक्ष प्रस्पष्ट रूप कह रहा हूँ । गया, कुरुक्षेत्र नाकल और कनखल इसी क्रम में आते हैं ।।८८३।।

इनके बाद विमल, अट्टहास, महेन्द्र और आठवाँ भीम इन आठों भुवनों में वह अपने आंशिक शरीर से अवतीर्ण हैं । भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ये भुवन, भुवनेश, इनके अधिष्ठान और इनमें भुवनेशावतरण सब कुछ गुह्य है, अर्थात् दुनिया के भौतिक वैज्ञानिक इस रहस्य-विद्या का पता नहीं लगा सकते । मैं रहस्य का साक्षी हूँ । स्वयं सब कुछ हूँ । अत: अपने रहस्य स्पन्दनों को मैं स्वयं जानता हूँ । इसीलिये तुमसे कह रहा हूँ । इसे साधना या दीक्षा से योगी स्वयं साक्षात्कार कर सकते हैं ।।८८४।।

---

१. भेदा क. पाठः ।

२. युपुराणगतवा. क. पाठः ।

अथोपरि–

आकाशे तु यथाकाशं शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ।

आकाश इति तदावरणे । यथाकाशमिति व्यापकम् । शुद्धेति स्वच्छम् । भुवनमित्यर्थात् । तथा अत्र–

सूक्ष्मरूपोऽव्ययो नित्यो मध्यदेशे व्यवस्थितः ।।८८५।।

आकाशाख्य एव परमेश्वरमूर्तिरूपो भुवनेश इत्यर्थात् ।।८८५।।

किञ्च–

आकाशधारणायुक्तो योगी युज्येत तत्पदे ।

देहान्तर एव । अथ–

अत्राकाशे प्रवक्ष्यामि ये रुद्राः संव्यवस्थिताः ।।८८६।।

तान् ।।८८६।।

वस्त्रापदं रुद्रकोटिमविमुक्तं महालयम् ।
गोकर्णं भद्रकर्णं च स्वर्णाक्षं स्थाणुमष्टमम् ।।८८७।।
पवित्राष्टकमेतद्धि समासेन प्रकीर्तितम् ।

पवित्रस्य निरावरणपदनिविष्टत्वेन पूर्वेभ्योऽपि उत्कर्षात् ।

अथ–

अस्य बाह्ये अहङ्कारः

इसके ऊपर आकाश-मण्डल है । आकाश तो आकाश ही है । शुद्ध है, शुचितापूर्ण है, निर्मल है और स्फटिकवत् पारदर्शी है । इसके मध्य देश में परमेश्वर मूर्त्तिरूप आकाश रूप भुवनेश्वर परम सूक्ष्म रूप से व्यवस्थित हैं । यह अव्यय तत्त्व हैं ।।८८५।।

आकाश-धारणा से योगी आकाश का सायुज्य प्राप्त कर उस पद को प्राप्त कर सकता है । आकाश में भी रुद्रों की व्यवस्थिति है । मैं उन्हें तुमसे बताऊँगा ।।८८६।।

वस्त्रापद, रुद्रकोटि, अविमुक्त, महालय, गोकर्ण, भद्रकर्ण, स्वर्णाक्ष और आठवाँ स्थाणु ये रुद्र हैं ।।८८७।।

इन्हें पवित्राष्टक कहते हैं । संक्षेप में ही मैंने इसे सुनाया । आकाश निरावरण पद है । शुचितापूर्ण है । अतः इनके भुवनेश पवित्र है । अतः इन्हें पवित्राष्टक कहते हैं ।

अस्य आकाशावरणस्य बाह्ये सर्वतो व्यापकत्वेनावस्थितोऽहङ्कार इत्यन्तर्गभीकृततन्मात्रेन्द्रियात्मकस्वविकारषोडशकमहङ्कारावरणमित्यर्थः ।

अतश्च–

तत्र रुद्रान्निबोध मे ।।८८८।।

छगलाण्डं दुरण्डं च माकोटं मण्डलेश्वरम् ।

कालञ्जरं शङ्कुकर्णं स्थूलेश्वरस्थलेश्वरौ ।।८८९।।

स्थाण्वष्टकं समाख्यातं

तिष्ठत्यस्मिन् तन्मात्रेन्द्रियाधिष्ठातृद्वारेण सर्वभोगसम्पदिति स्थाणुशब्दाभिधेयमष्टकमेतत् ।

पूर्ववदष्टकमेतत्–

पूर्वादीशानगोचरम् ।

स्थितमित्यर्थात् । एतदष्टकाधिष्ठानादेव च–

मध्येदेशे स्थितो रुद्रस्त्वहङ्कारेश्वरः प्रभुः ।।८९०।।

अहङ्काराधिष्ठातृदेवतात्मा एतत्तत्त्वाविभिन्नमूर्तिः । अत एव श्रीपूर्वादौ प्रधानभूतस्याष्टकस्य शोध्यत्वमुक्तम्, न तु तदधिष्ठेयस्याहङ्कारेश्वरस्य ॥८९०॥

इदानीं जलतत्त्वाधिपतेर्गुह्याद्यष्टकपञ्चकस्य दीक्षायां ध्यानोपयोगि रूपमादिशति क्रमेण–

श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं स्फटिकसप्रभम् ।

इसके ऊपर अहङ्कार तत्त्व है । यह सर्वत्र व्याप्त कर व्यवस्थित है । इसमें तन्मात्राओं, इन्द्रियों और इनके विकार षोडशक का अन्तर्भाव स्वीकृत है । इसके भी अलग रुद्र हैं ॥८८८॥

छगलाण्ड, दुरण्ड, माकोट, मण्डलेश्वर, कालञ्जर, शङ्कुकर्ण, स्थूलेश्वर और स्थलेश्वर ये स्थाण्वष्टक (स्थाण्वीश्वर) कहलाते हैं ॥८८९॥

इनका क्रम पूर्व, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, उत्तर और ईशानकोण है । मण्डल के मध्य में महात्मा अहङ्कारेश्वर प्रभु साक्षात् अधिष्ठित हैं । श्रीपूर्व शास्त्र आदि में स्थाण्वष्टकों की शोध्यता स्वीकृत है, स्थाण्वीश्वर की नहीं ॥८९०॥

जलतत्त्व के अधिपति पाँच अष्टकों की दीक्षा में ध्यान के लिये उपयोगी रूपों की प्रकल्पता वर्णों के आधार पर कर रहे हैं । इनके अनुसार वास्तविक वर्ण क्रम श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण और स्फटिक समान है । ये क्रमशः पञ्चाष्टकों के वर्ण माने जायेंगे । अर्थात्

तदित्थम्–

पञ्चाष्टकेषु ये वर्णाः समासात्कथितास्तव ।।८९१।।

शतरुद्राणामपि पूर्वादिदिक्क्रमेणैव वर्णविभागं निरूपयति–

सिता रक्तास्तथा कृष्णा नीलाः श्यामा बलाहकाः ।
पीताः शुक्लाश्च विज्ञेयाः अधस्तु धूम्रवर्चसः ।।८९२।।

ऊर्ध्वं तु कपिशाः । त एतद्वर्णाः–

शतरुद्राः समाख्यातास्त्रिनेत्राः शूलपाणयः ।
चन्द्रार्धमौलयः सर्वे रुद्राणीभिः समन्विताः ।।८९३।।

सर्व इति पञ्चाष्टकरुद्रा अपि त्रिनेत्रादिरूपाः ।।८९३।।

एवं देवानां रूपमुक्त्वा तद्भुवनानामप्याह–

पद्माकृतीनि ज्ञेयानि चित्ररत्नयुतानि च ।
शतरुद्रभुवनानि भोगैश्वर्ययुतानि च ।।८९४।।

क्रम	अष्टक	तत्त्व	श्लो० सं०	वर्ण
१.	गुह्याष्टक	जल तत्त्व	श्लोक ८५४	श्वेत
२.	अति गुहाष्टक	आग्नेय भुवन	श्लोक ८७३	रक्त
३.	गुह्याद् गुह्यतराष्टक	वायुतत्त्व	श्लोक ८८४	पीत
४.	पवित्राष्टक	आकाशतत्त्व	श्लोक ८८८	कृष्ण
५.	स्थाण्वष्टक	अहङ्कार तत्त्व	श्लोक ८९०	स्फटिक

संक्षेप से यही वर्णचित्र माना जाता है ।।८९१।।

जहाँ तक शतरुद्रों का प्रश्न है, पूर्वादि दिक्क्रम से ही उनके वर्ण विभाग का प्रकल्पन करना चाहिये । उनका क्रम इस प्रकार जानना चाहिये ।

१.पूर्व सित, २.अग्निकोण–रक्त, ३.दक्ष-कृष्ण, ४.निर्ऋति नील, ५.वरुण श्याम, ६.वायव्य-बलाहक, ७.उत्तर-पीत, ८.ईशान-शुक्ल, ९.ऊर्ध्व-कपिश और १०.अधः धूम्रवर्ण ।।८९२।।

शतरुद्र इन्हीं वर्णों के आधार पर पहचाने जाते हैं । वे सभी त्रिनेत्र होते हैं । इनके हाथों में शूल होते हैं । इसीलिये इन्हें शूलपाणि भी कहते हैं । अष्टमी के चन्द्र क़ो ये शिर पर धारण करते हैं । ये अपनी रुद्राणियों के साथ रहते हैं ।।८९३।।

इसी तरह उक्त पञ्चाष्टक रुद्र भी उक्त रूप में ही ध्येय हैं । उनके भुवनों की आकृति भी पद्म के समान ही होती है । चित्रविचित्र रत्नों से रमणीय इनके भुवन समस्त भोगों और ऐश्वर्यों से युक्त माने जाते हैं ।।८९४।।

पञ्चाष्टके पुराणि स्युः कूर्माकाराणि सर्वतः ।

एवमहङ्कारावरणे रुद्रानुक्त्वा तदन्तर्वर्तितन्मात्रादिषोडशकक्रमेण भुवनानि निरूपयितुमुपक्रमते–

आकाशावरणादूर्ध्वमहङ्कारादधः प्रिये ।।८९५।।
भुवनानि प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाः पुनः ।

तत्र–

आदौ तु गन्धतन्मात्रं विस्तीर्णं मण्डलं महत् ।।८९६।।
स्थितं वितानवद्देवि योजनानेककोटयः ।

मण्डलं भुवनं शतकोटिमानात् ब्रह्माण्डाद् क्रमेण दशगुणया वृद्ध्या कोटिगुणमहङ्कारावरणमिति तदन्तर्वर्तिनां तन्मात्राद्यावरणानामनन्तकोटितैव भवति ।

तच्च–

शुक्लरक्तसितापीतहरितं स्फटिकप्रभम् ।।८९७।।
वितानमिव देवेशि सर्वतः परिमण्डलम् ।

यथा च भूलोके तथा भूतत्त्वकारणेऽपि ।

शर्वो ह्यधिपतिस्तत्र एक एव वरानने ।।८९८।।

इन पाँच अष्टकों के भुवन कूर्म के आकार के होते हैं । ये अहङ्कार भुवन के रुद्रों के चित्र हैं । तदन्तर्वर्त्ती तन्मात्र भुवन सोलह परिगणित हैं । उनका यहाँ निरूपण कर रहे हैं । आकाश के ऊपर और अहङ्कार के नीचे के भुवन इस प्रकार हैं । १.पहले गन्धतन्मात्र को लीजिये । इसका मण्डल अर्थात् भुवन बड़ा विस्तीर्ण है । वितानवत् यह करोड़ों योजन क्षेत्र में फैला हुआ है ।।८९५-८९६।।

शतकोटि मान का ब्रह्माण्ड है । इसकी वृद्धि का क्रम दशगुना है । इस तरह अहङ्कार का आवरण कोटिगुना होता है । इसके अन्तर्वर्त्ती भुवनों के मान अनन्त कोटि ही हो सकते हैं । इस तरह रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द के वर्ण शुक्ल, रक्त, सित, पीत, हरित और स्फटिक के समान ही निश्चित है ।।८९७।।

यह परिमण्डल चारों ओर वितानवत् तने हुए हैं । इस गन्ध भुवन का अधिपति एकमात्र शर्व नामक रुद्र ही हैं ।।८९८।।

युक्तं चैतद्यतः–

तस्मात्तु जायते पृथ्वी शर्वेशेन प्रचोदिता ।

अन्यथा जडस्य तन्मात्रस्य कथं कारणता स्यात् । एवमन्यत्रापि ज्ञातव्यम् । अथ–

तस्मात्तु मण्डलादूर्ध्वं रसतन्मात्रमण्डलम् ।।८९९।।
हरितं मरकतश्यामं चाषपक्षनिभं प्रिये ।
भवो ह्यधिपतिस्तत्र एक एव वरानने ।।९००।।
तस्मादापो विनिष्क्रान्ता भवेशेन प्रचोदिताः ।

अथ–

तस्मात्तु मण्डलादूर्ध्वं रूपतन्मात्रमण्डलम् ।।९०१।।
स्फुरत्सूर्यांशुदीप्ताभं पद्मरागसमप्रभम् ।
रुद्रः पशुपतिस्तत्र एक एवावतिष्ठते ।।९०२।।
तस्मात्तेजो विनिष्क्रान्तं तद्वै पशुपतीच्छया ।
तत्तेजः सर्वलोकानां व्यापकं परमेश्वरि ।।९०३।।

पशुपत्याख्यो रुद्रः । लोकानां व्यापकमित्यन्तर्बहिश्च जाठरभौमरूपाद्यग्नि-रूपतया स्थितमित्यर्थः ।।९०३।।

इसी शर्वेश से प्रेरित होकर गन्धवती पृथ्वी उत्पन्न होती है । यदि शर्वेश से प्रेरित न होती, तो भला जडतन्मात्र में उत्पत्ति की शक्ति ही कैसे उत्पन्न होती ? इस तन्मात्र भुवन के ऊपर रसतन्मात्र मण्डल का क्रम आता है ।।८९९।।

यह हरित मरकतवत् श्याम रंग का है । चाष पक्षी के समान इसका वर्ण है । इसके अधिपति का नाम 'भव' है । इस भवेश द्वारा प्रेरित होकर ही अप् तत्त्व विनिष्पन्न हुआ ।।९००।।

इस मण्डल के ऊर्ध्वभाग में रूपतन्मात्र का मण्डल है । यह सूर्य की स्फुरणशील रश्मियों की दीप्ति से दीप्तिमन्त है । यह पद्मराग की प्रभा के समान भासमान है । इस भुवन के रुद्र का नाम पशुपति है । वही यहाँ प्रकृत रूप से प्रतिष्ठित हैं ।।९०१-९०२।।

इस रुद्र से तेज विनिष्क्रान्त हुआ था । इसमें पशुपति की इच्छा ही कारण है । यह तेज नितान्त लोकोपकारी है । हे परमेश्वरी लोक में व्याप्त यह रूपात्मक तेज जाठर अग्नि और भौम अग्नि आदि रूपों में परमेश्वर पशुपति की कृपा से ही यह लोकहित में उपयोगी है ।।९०३।।

अथ-

तस्मात्तु मण्डलादूर्ध्वं स्पर्शतन्मात्रमण्डलम् ।

सन्ध्यारुणसमच्छायं वायव्यं मण्डलं प्रिये ।।१०४।।

सन्ध्यायामरुणो गुणः किञ्चित्तमसा कर्बुरधूसराभो भवति ॥१०४॥

तच्चैतत्-

वितानाकारसदृशं समन्तात्परिमण्डलम् ।

तत्रैव मण्डले देवि त्वीशानः संव्यवस्थितः ।।१०५।।

अधिपतिः ॥१०५॥

अतश्च-

तस्माद्वायुर्विनिष्क्रान्त ईशेच्छाप्रेरितः प्रिये ।

यः पूर्वं वायुतत्त्वरूप उक्तः । किञ्च-

तस्मात्प्राणादयः पञ्च

तस्मादिति वायोः । ततोऽसौ-

वायोस्तद्व्यापकः परः ।।१०६।।

सप्तधा सप्तधा सोऽपि स एको बहुधा गतः ।

एतत्पूर्वमेव निर्णीतम् । अथ-

तस्मात्तु मण्डलादूर्ध्वं शब्दतन्मात्रमण्डलम् ।।१०७।।

इस रूप-मण्डल से ऊपर स्पर्शतन्मात्र का मण्डल है । यह सन्ध्याकालीन अरुणिमा की तरह रमणीय है । यह वायव्य मण्डल माना जाता है । वायु का ही गुण स्पर्श है । प्रातः सन्ध्या की अरुणिमा में कर्बुर धूसराभा उतनी नहीं होती जितनी सायंकालीन अरुणिमा में होती है ॥१०४॥

यह मण्डल वितानवत् तना हुआ है । इस चतुर्दिक प्रसरित मण्डल के अधिपति ईशान हैं ॥१०५॥

इसी से वायु की निष्पत्ति हुई । इसमें मूल हेतु ईशान रुद्र की इच्छा ही थी । यही वायु जीवों में पञ्चप्राण रूप से उच्छलित होता है । यह वायु का पर रूप माना जाता है ॥१०६॥

एक रूप होता हुआ भी यह पञ्च प्राणात्मक वायु दश प्राण रूप होता हुआ ७×७=४९ रूपों में अनेकात्मक हो जाता है ।

इस मण्डल से भी ऊपर शब्दतन्मात्र मण्डल है ॥१०७॥

नीलोत्पलदलश्यामं स्वच्छोदकसमप्रभम् ।
वितानसदृशाकारं समन्तात्परिमण्डलम् ।।९०८।।
भीमस्तत्राधिपत्येन एक एवावतिष्ठते ।
तस्मान्नभो विनिष्क्रान्तं भीमेच्छाचोदितं महत् ।।९०९।।
व्यापकं सर्वलोकानां परापरगतं प्रिये ।

परं जलादितत्त्वस्थानम्, अपरं तु ब्रह्माण्डान्तर्गतम् ।

अथ–

तस्मात्तु मण्डलादूर्ध्वं सूर्यमण्डलमुच्यते ।।९१०।।
सहस्रादित्यसङ्काशं दीप्यमानं समन्ततः ।
वितानवद्रश्मिदीप्तं समन्तात्परिमण्डलम् ।।९११।।
रुद्रो ह्यधिपतिस्तत्र त्वेक एवावतिष्ठते ।
सूर्यास्तस्माद्विनिष्क्रान्ताः कल्पे कल्पे वरानने ।।८१२।।

ये ब्रह्माण्डान्तरधिकृताः । एवमुत्तरत्र ।।९१२।।

यह नील उत्पल दलों की तरह श्यामवर्ण का माना जाता है । स्वच्छ उदक के समान पारदर्शी होता है । यह भी वितानवत् तना हुआ है और चारों ओर व्याप्त है ।।९०८।।

इसके अधिपति का नाम 'भीम' है । यह ज्ञान शब्दसम्राट् है । वस्तुतः इसी से आकाश की उत्पत्ति हुई थी । इसकी निष्पत्ति में भीम की ही इच्छा थी ।।९०९।।

यह सभी लोकों में परिव्याप्त है । पररूप जलादि से लेकर अपर ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत भी व्याप्त है । इसके ऊपर सूर्यमण्डल कहा जाता है ।।९१०।।

सहस्र आदित्यों के समान चतुर्दिक दीप्तिमन्त यह मण्डल वितानवत् तना हुआ है । अपनी ही परिमण्डलीय सीमा में चारों ओर चमक रहा है ।।९११।।

इसके अधिपति का नाम 'रुद्र' है । इस एक अद्वितीय प्रभावशाली रुद्र से ही कल्पों में सूर्य निष्पन्न होते हैं ।।९१२।।

अथ–

तस्मात्तु मण्डलादूर्ध्वं सोममण्डलमुच्यते ।
चन्द्रकोटिसहस्राणां तेजसा तुल्यमण्डलम् ।।९१३।।

तुल्यं च मण्डलं परिमण्डलमित्यर्थः ॥९१३॥

अथ च–

अधिपतिस्तु महादेव एक एवावतिष्ठते ।
तस्माच्चन्द्रादिमे चन्द्रा महादेवेन चोदिताः ।।९१४।।
असंख्याताः सहस्राणि कल्पे कल्पे विनिर्गताः ।

अथ–

तस्मात्तु मण्डलादूर्ध्वं वेदमण्डलमुच्यते ।।९१५।।
चन्द्रकोटिसमच्छायं समन्तात्परिमण्डलम् ।
वितानवत्स्थितं दिव्यमुग्रेशसमधिष्ठितम् ।।९१६।।
संरुद्धं वामया तत्तु

उग्राख्यस्य रुद्रस्य सम्बन्धिन्या वामाख्यशक्त्या तद्वेदमण्डलं संरुद्ध-माच्छादितं पराद्वयस्वरूपमनधिष्ठितमित्यर्थः ।

इस मण्डल के ऊपर 'सोम' मण्डल की परिकल्पना की गयी है । यह करोड़ों चन्द्रों की शोभा से भी शतगुणित शोभा युक्त है। तुल्यमण्डल परिमण्डलार्थक प्रयुक्त शब्द है ॥९१३॥

इसके एकमात्र अधिपति 'महादेव' रुद्र हैं। उसी चन्द्र से अन्य चन्द्र निष्पन्न होते रहते हैं । इसमें मूल कारण महादेव रुद्र ही हैं ॥९१४॥

कल्पों कल्पों में असंख्यात रुद्र विनिर्गत होते रहते हैं । इस चन्द्रमण्डल से ऊर्ध्व वेदमण्डल अवस्थित हैं ॥९१५॥

यह करोड़ों चन्द्रों की चन्द्रिका से चमत्कृत परिमण्डल है । यह भी वितानवत् तना हुआ है । बड़ा ही दिव्य है । इसके अधिपति रुद्र उग्र हैं । इस 'उग्र' देव की शक्ति का नाम वामा है । इस शक्ति से यह पूरा का पूरा मण्डल आच्छादित है । इसीलिये वेदमण्डल होते हुए भी यह पराद्वय स्वरूप से अनधिष्ठित हैं ॥९१६॥

परिणामतः वेदान्तप्रतिपाद्य अद्वय स्वरूप के वामा शक्ति से समावृत रहने के कारण कर्मानुष्ठानों की ही प्रधानता के कारण ये भेदमयता को ही आलिङ्गन

अतश्च वेदान्तप्रतिपाद्याद्वयात्मनः स्वरूपस्य वामशक्त्यावृतत्वात् कर्मानुष्ठानप्रधानानि भेदमयान्येव–

तस्माद्वै निर्गतानि तु ।

यजमानसहस्राणि कल्पे कल्पे स्थितानि हि ।।९१७।।

ब्रह्मणस्तपसोग्रेण उग्रेशेन प्रचोदितात् ।

तस्माद्वेदमण्डलरूपाद् ब्रह्म उग्रेशेन प्रचोदितात्, न तु ईश्वरचोदनां विना, उग्रेण तपसा लक्षितानि तानि निर्यातानि ब्रह्माण्डं यज्ञानुष्ठानायावतीर्णानि । तत्समकालमेव च–

वेदयज्ञाश्च विविधा ब्रह्मणोऽनन्तवर्त्मनः ।।९१८।।

तस्मादेते प्रवर्तन्ते यज्ञा यज्ञफलानि च ।

तपोदानादिभिः सार्धं वामशक्त्या नियन्त्रिताः ।।९१९।।

वेदयज्ञा ज्योतिष्टोमादयः । यज्ञा इति स्वाध्यायजपयज्ञादयः ।

एतच्च–

'ब्रह्माण्डमेतदाख्यातं पाशजालावतारितम्' ।

इत्युक्तदृष्ट्या–

'..................वामाधः प्रेरयत्यणुम्' ।

इति स्थित्या वामाशक्त्यधिष्ठानक्रमेण उग्रदेवेनैव सम्पाद्यते । ब्रह्मणोऽपि हि तन्निर्मातृत्वाभिमानस्तेनैव दत्तः ॥९१९॥

करते हैं । ये सभी वेद 'उग्र' से ही निष्पन्न हैं । इसके अनुसार कल्पों कल्पों से यजमानों का समूह यज्ञ के लिये उमड़ता रहता है ॥९१७॥

वेद मानों यज्ञों के प्रवर्त्तन के लिये ही निर्मित हैं । ऐसे विविध वेदयज्ञों (ज्योतिष्टोम आदि) से ब्रह्म का अन्तर्वर्त्म व्याप्त है ॥९१८॥

ये सभी यज्ञ यज्ञक्रिया से उत्पन्न फलों की भेदमयता में ही चरितार्थ हैं । इसके स्वाध्याय, जप, तप और दान आदि सभी वामा शक्ति से ही नियन्त्रित होते हैं ।

इस तरह यह 'ब्रह्माण्ड पाशजालों और पाशराशियों का कोश बन कर रह गया है' । इसको आगमिक मुक्तिप्रद और अच्छा नहीं मानते । एक स्थान पर कहा गया है कि, वामा अणुओं को अधोगति के लिये ही प्रेरित करती है । इस तरह वामा शक्ति के अधिष्ठान क्रमानुसार 'उग्र' नाम रुद्र ही ऐसा कर्म सम्पन्न करने के लिये प्रेरित करते हैं, यह सिद्ध हो जाता है । ब्रह्मा में भी ब्रह्माण्ड के निर्माता होने का अभिमान इन्हीं 'उग्र' नामक रुद्र द्वारा प्रदान किया गया है ॥९१९॥

उपसंहरति–

इत्यष्टौ तनवस्त्वेताः परा वै सम्प्रकीर्तिताः ।

परमेश्वरस्येत्यर्थः । यदपेक्षया परा एताः, ता अप्याह–

अपरा ब्रह्मणोऽण्डं वै व्याप्य सर्वं व्यवस्थिताः ।।९२०।।

बहिरन्तश्च स्थावरभूतरूपा इत्यर्थः । एवं चाभिदधत्सर्वमिदं परमेश्वरात्मकमिति अद्वयदृष्टिमेव प्रस्तुतां निर्वाहयति । एवं भूततन्मात्रात्मकदशविधकार्यतत्त्वगतो भुवनविभाग उक्तः, तत्प्रसङ्गेन च मूर्त्यष्टकाधिष्ठायकमूर्तीश्वराष्टकमुक्तम् । उक्तमूर्त्यष्टकाधिष्ठायकमध्ये याजमानी मूर्तिः सर्वोपरि प्रधानभूता उक्ता, यस्याः मूर्तिपञ्चकं कार्यात्मकं भोग्यं सूर्यसोमात्मकं च मूर्तिद्वयं कारणतया वर्तते ।।९२०।।

एवं कार्यावरणमहङ्कारान्तर्गतं पञ्चविधमुक्त्वा करणावरणैकादशकं प्रकटयितुमाह–

एभ्यः परतरं चापि मण्डलं करणात्मकम् ।

इस प्रकार परमेश्वर भैरव के ये आठ रुद्र इनके परशरीर ही माने जाते हैं । शर्व, भव, पशुपति, ईशान और भीम ये पाँच तन्मात्र भुवनों के और रुद्र, महादेव तथा उग्र ये तीन सूर्य, सोम, और वेद भुवनों के रुद्र मिलकर ही आठ होते हैं और परमेश्वर के आठ शरीर रूप हैं । ये सभी परमेश्वर के परविग्रह रूप हैं । इनका अपर रूप ही यह ब्रह्माण्ड है । यह सबको व्याप्त कर व्यवस्थित है ।

इस तरह परमेश्वर ही पर, अपर परापर रूपों में सर्वथा व्याप्त ही नहीं हैं, वरन् यह सब उनका ही शरीर है । साक्षात् सब कुछ वही हैं । यह सब उन्हीं का शरीर है । यह सब कुछ जो कुछ पञ्च तन्मात्रक है, सूर्य सोम वेदतन्त्र सब कुछ वही हैं । यह सब उन्हीं का शरीर है । इस तरह आगम सिद्ध अद्वय दृष्टि ही समर्थित होती है । इसी अद्वय दृष्टि का निर्वाह स्वच्छन्दतन्त्र करता है ।

इस वर्णन के क्रम में कार्यतत्त्वगत दश प्रकार का भुवन विभाग तथा इसी सन्दर्भ में मूर्त्यष्टक अधिष्ठायक आठ मूर्त्तीश्वर रुद्रों के आठ विभाग पूर्ण किये गये हैं । कुल मिलाकर इसी क्रम में याजमानी मूर्त्ति की चर्चा की गयी । इसकी पाँच कार्यात्मक मूर्त्तियों और सूर्य सोमात्मक मूर्त्तिद्वय का कारण रूप से वर्णन सम्पन्न होता है ।।९२०।।

कार्यावरणात्म अहङ्कारान्तर्गत विभाग के अनन्तर करणावरण में आने वाले एकादश विभाग की चर्चा कर रहे हैं । भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ! इन सबों

करणं शब्दोदीरणादिव्यापारतत्साधनकर्मेन्द्रियोदयस्थानम् । मण्डलं भुवनं वक्ष्यमाणदृष्ट्या वागादिकर्मेन्द्रियतत्त्वपञ्चात्मकतया विभक्तमित्यर्थः । तच्च क्रमेण–

शुक्लरक्तासितं पीतं हरितं चापि वर्णतः ।।९२१।।

तत्र च–

पञ्चाधिपास्तु तिष्ठन्ति मण्डले करणात्मके ।

ते च आधारपटलनिरूपयिष्यमाणनीत्या वह्निशक्रविष्णुमित्रकश्यपाः । किञ्च–

कर्मदेवाः प्रवर्तन्ते तस्माद्वै सर्वदेहिनाम् ।।९२२।।

कर्मदेवा वचनादिस्वक्रियाद्योतकानि कर्मेन्द्रियाणि तस्मात् करणमण्डलात् प्रवर्तन्ते देहिनां प्रत्यणु पृथग्रूपाण्युद्भवन्ति ।।९२२।।

तानि च–

वाक्पाणिपादपायुश्च उपस्थश्चेति पञ्चमः ।

अन्तःप्राणाश्रये त्यागादाने वागिन्द्रियकार्ये, बहिस्त्वादानं त्यागो द्वयं च पाणिपायुपादनिर्वर्त्यम्, समस्तत्यागादानक्षोभप्रशमनेनानन्दात्मकस्वरूपविश्रान्तिरुपस्थकार्या । न चेतद्व्यतिरिक्तः कश्चिद्व्यापारोऽस्तीति पञ्चैव कर्मेन्द्रियाणि । तेषां च सर्वशरीरव्यापकत्वेऽपि पाण्याद्यधिष्ठानस्थानम्, तेन वक्त्रादिनापि यद्ग्रहणम्, तदपि पाणीन्द्रियकार्यमेव–

से भी परतर करणात्मक भुवन विभाग है । करण का तात्पर्य है—शब्द के उदीरण के आदि व्यापार की साधन रूपा कर्मेन्द्रियों का मण्डल । जैसे ये वाग् आदि पाँच हैं, ऐसे ही इनके भुवन भी पाँच हैं । वे क्रमशः शुक्ल, रक्त, कृष्ण, पीत और हरित वर्ण के हैं ।।९२१।।

इस पाँच करणात्मक मण्डल के पाँच करणमण्डलाधिपति भी होते हैं । वे क्रमशः वह्नि, शक्र, विष्णु, मित्र और कश्यप माने जाते हैं । इन्हें कर्मदेव कहते हैं । जैसे वचन-क्रिया के कर्मदेव वह्नि माने जाते हैं । इन क्रियाओं के द्योतक इन्द्रियों को कर्मेन्द्रियाँ कहते हैं । इससे भी प्राणियों के पृथक् पृथक् कर्म व्यापार उद्भूत होते हैं ।।९२२।।

ये कर्मेन्द्रियाँ पाँच हैं । वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ । इनके कार्य इस प्रकार हैं–

१.वाक्– जब भी वाणी का प्रयोग कोई करता है, सबसे पहले उसके अन्तःप्राण में इच्छा का स्फुरण होता है । इसी से प्रेरित पुरुष किसी वर्ण को ग्रहण कर पुनः उसे त्यागकर नये अर्थ के लिये नये वर्ण को पद को ग्रहण करता है । यही त्याग और आदान नामक दो प्राणाश्रित व्यापार इस कर्मेन्दिय के हैं ।

बुद्धीन्द्रियाण्याह–

एभ्यः प्रकाशकं नाम परतः सूर्यसन्निभम् ।।९२३।।

'रूपादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः' । (सां०का०)

इति स्थित्या श्रोत्रादीनां शब्दादिप्रकाशकत्वात् तदुद्भवस्थानं प्रकाशकं मण्डलमित्युक्तम्, अत एव सूर्यसन्निभम् ।।९२३।।

एतच्च करणमण्डलात् पञ्चधैव । यदाह–

तस्माद्वै सम्प्रवर्तन्ते पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि तु ।

प्रत्यणु भिन्नभिन्नरूपाणीत्यर्थः । तानि च–

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका च यथाक्रमम् ।।९२४।।

व्योमवाय्वादितत्त्वप्रसरणक्रमेणेत्यर्थः ।

२-३-४.पाणि, पाद और पायु– ये तीनों कर्मेन्द्रियाँ बाह्य व्यापार वाली हैं । ये बाह्य वस्तुओं का त्याग और पुनः उनका आदान करती हैं । जैसे हाथ से लिखना है । यह बाहरी कार्य है । इसके लिये लेखनी का ग्रहण और न लिखने पर त्याग होता ही है । पैर में स्थान का त्याग कर आगे वाले स्थान का क्रमिक ग्रहण होता है । क्रम पादविक्षेपार्थक धातु में यह दोनों व्यापार निहित हैं । भोजन आदान प्रक्रिया है और पुरीषोत्सर्ग त्याग किया है ।

५.उपस्थ– त्याग आदान के अतिरिक्त आनन्दस्वरूप विश्रान्ति प्रदता भी इस इन्द्रिय में विशेष है । इनकी संख्या पाँच ही हो सकती है; क्योंकि ये ही और ऐसे ही काम इस विश्व में होते हैं ।

ये सर्व शरीर व्यापक हैं, फिर भी पाणि आदि मुख सम्पादक हैं । इसलिये कर्मेन्दिय व्यापार की व्यापकता को पाँच की सीमा में बाँध दिया गया है ।

इसी तरह पाँच बुद्धीन्द्रियाँ या ज्ञानेन्द्रियाँ भी हैं । इनसे ज्ञान का प्रकाशन होता है । प्रकाशन व्यापार तो सूर्य के ही समान है । सांख्य-कारिका कहती है कि, रूपादि पाँचों का आलोचन मात्र ही इन पाँचों की वृत्ति है । इस दृष्टि से श्रोत्रादि के प्रकाशक होने के कारण उनके उद्भव के स्थान अर्थात् प्रकाशक मण्डल रूप हैं । इसीलिये इनकी सूर्य की समानता भी उक्त है ।।९२३।।

करण मण्डल की दृष्टि से ये पाँच प्रकार के ही हैं । भगवान् कहते हैं कि, बुद्धीन्द्रियाँ भी पाँच ही हैं । १.श्रोत्र, २.त्वक्, ३.नेत्र, ४.जीभ और ५.नासिका । यही क्रमशः इनके नाम हैं । यह तत्त्वों के प्रसरण का भी क्रम है । आकाश से वायु । वायोरग्निः । अग्नेरापः और अद्भ्यः पृथिवी ।।९२४।।

एषां च–

विषयालोचनं वृत्तिः

यतः–

तेजोमण्डलसंस्थिताः ।

स्वाक्याधिपतयो नित्यं तेष्वेव प्रतिचोदकाः ।।९२५।।

भाविनीत्या दिग्वायुसूर्यवरुणाश्व्याख्यस्वकाधिष्ठातृदेवताप्रेरिता बुद्धिदेवाश्चोदनानुसारं रूपाद्यालोचनेषु प्रवर्तन्ते, तेनैषां विषयालोचनं वृत्तिरित्यर्थः । एषां कर्मेन्द्रियाणां च प्रतिलोमक्रमेण भुवनसंशोधनं कार्यम् ।।९२५।।

अथ–

एभ्यः परतरं चास्ति चन्द्रमण्डलसन्निभम् ।

विस्तारात्परिणाहाच्च सर्वतो रश्मिमण्डलम् ।।९२६।।

तस्माद्वै सम्प्रवर्तन्ते पञ्चार्थाः सर्वदेहिनाम् ।

शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धश्च पञ्चमः ।।९२७।।

भोग्यभूताः प्रतिपुरुषं विचित्रभोगसम्पादका रूपादयः सर्वे तस्मादुद्यन्ति । अत एव समस्ताम्मयचन्द्रोल्लासकत्वात्तस्य चन्द्रमण्डलसन्निभत्वं परिमाणतो रूपतश्चोक्तम् । यतश्चैतद्रश्मिमण्डलमत एवैतद्भूता विषया एतद्रश्मिरूपाः प्रकाशमानतया स्वप्रकाशस्वभावाः । यदुक्तं श्रीमदुच्छुष्मभैरवे–

विषय के आलोचन को ही वृत्ति कहते हैं । सभी बुद्धि देव तेजोमण्डल में ही अवस्थित रहते हैं । इनके अधिष्ठाता देवताओं जैसे, दिक्, वायु, सूर्य, वरुण अश्विनीकुमार से प्रेरित होकर बुद्धिदेव रूपादि कार्यों के आलोचन में प्रवृत्त होते हैं । इनका विषयालोचन ही वृत्ति कहलाती है । इन दोनों प्रकार की इन्द्रियों के प्रतिलोम क्रम से भुवनों का संशोधन होता है ।।९२५।।

इनसे परतर रूप चन्द्रमण्डल के सदृश है । विस्तार और परिणाह की दृष्टि से इसके चतुर्दिक रश्मिमण्डल का विस्तार है । इसी से समस्त जीवों के पाँच अर्थ क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध रूप प्रकाशित होते हैं ।

ये रूप आदि क्या हैं ? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि, ये भोग्य हैं । प्रति पुरुष ये भोग्य अर्थात् भोग के सम्पादक हैं । ये सभी परिणामतः और रूपतः चन्द्रमण्डल सदृश माने जाते हैं । इनके चारों ओर सर्वतः रश्मिमण्डल है । अतः इनसे उत्पन्न सभी विषय रश्मिरूप ही हो सकते हैं । ये सभी प्रकाशमान होने के कारण प्रकाशस्वभाव वाले ही हैं । उच्छुष्म भैरव में यह कहा गया है—

'यावन्न वेदका एते तावद्वेद्याः कथं प्रिये ।

वेद्यं वेदकमेकं तु तत्त्वं नास्त्यशुचिस्ततः' ॥

इति । यद्यपि पृथिव्यादयो रूपादिगुणा एवोत्पन्नास्तथाप्येते प्रतिपुरुषं विचित्रभोग-सम्पादका अन्य एव रूपादयो निर्याताः ॥१२७॥

किञ्च–

एभ्यः परतरं चापि सौम्यं सोमस्य मण्डलम् ।

एभ्य इति करणप्रकाशरश्मिमण्डलेभ्यः ।

तस्मान्मनो विनिष्क्रान्तं रश्मिभिर्दशपञ्चभिः ।।१२८।।

बुद्धिकर्मेन्द्रियविषयाख्यस्य ग्रहणग्राह्यरूपस्य रश्मिपञ्चदशकस्यानुसन्धातृ-रूपमिति कृत्वा तैरेव तद्युक्तमुक्तम् ॥१२८॥

तच्च–

चित्तं चेतो मनश्चेति

इत्थमुच्यमानां सत्–

शब्दाद्यक्षप्रवर्तकम् ।

यतश्चायं प्रवर्त्यमानैतद्रश्मिपञ्चदशककलापूरिततनुः स्वामृतकलया सह षोडशकलोऽत एव–

तस्याधिपो महातेजाश्चन्द्रमाः सौम्यतेजसा ।।१२९।।

'जब तक वेदक नहीं तक वेद्य के अस्तित्व की क्या कल्पना ? वेद्य और वेदक सब एक ही हैं । एक ही तत्त्व है । कहीं कोई अशुचि नहीं है' ।

यद्यपि पृथिवी आदि रूपादि गुणों के साथ ही उत्पन्न होते हैं । फिर भी ये भी प्रतिपुरुष अर्थात् प्रतिप्राणी विचित्र भोगों का ही सम्पादक होते हैं । वेदक से ही इनकी वेद्यता सिद्ध होती है ॥१२७॥

इनसे भी परतर सौम्य सोम का मण्डल है । एभ्यः का तात्पर्य करण प्रकाशरश्मि मण्डलों से है । उस सोम मण्डल से ही मन उत्पन्न हुआ, मन में ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और विषयों की पन्द्रह रश्मियों का संस्कार है । ये रश्मियाँ ग्राह्य भी होती हैं और ग्राहक द्वारा ग्रहण भी की जाती हैं । मन में इन सबका सूक्ष्म संस्कार पड़ा हुआ है ॥१२८॥

मन को ही चित्त कहते हैं । यही चेतस् है । इसे ही मन कहते हैं । इसका क्या तात्पर्य है ? यह शब्द आदि में इन्द्रियों का प्रवर्त्तन करता है । पन्द्रह रश्मियों के पुञ्ज के प्रकाश इसमें बैठे हुए हैं । यह अपनी उन रश्मियों की चेतना

महातेजा नित्यमक्षीणकलाषोडशकादिपरिपूर्णमूर्तित्वात्, अतश्च चेतनस्य पुरुषस्य विकारषोडशकादियुक्ततया स्वावसरनिर्णेष्यमाणस्यावरोहक्रमेण प्रतिनिधि-कल्पत्वात्–

'पुरुषे षोडशकले तामाहुरमृतां कलाम्' ।

इत्युद्घोष्यते ॥९२९॥

अथ–

तस्मात्तु मण्डलादूर्ध्वं परतो मण्डलं महत् ।
जपाकुसुमसङ्काशमरुणादित्यसन्निभम् ॥९३०॥
पूर्ववच्च प्रमाणेन समन्तात्परिमण्डलम् ।

पूर्ववदिति पूर्वोक्तचन्द्रमण्डलपरिमाणमित्यर्थः ।

किञ्च–

तस्मात्तु मण्डलाद्देवि सन्ध्यारुणसमद्युतिः ॥९३१॥
सधूमोऽग्निरिवासौ वै अहङ्कारः प्रवर्तते ।

को माध्यम बनाकर शब्द आदि में उन रश्मियों के प्रकाश को प्रवृत्त कर देता है । साथ ही इसमें भी चान्द्री अमृत कला का संस्कार बैठा हुआ है । इससे यह षोडशकलावान् ग्यारहवाँ अक्ष बन जाता है । इसका स्वामी महातेजस्वी अपने सौम्य तेज का प्रकाशक चन्द्रमा माना जाता है । चन्द्रमा स्वयं १६ कलावान् है । इसीलिये चेतन पुरुष १६ विकारों से युक्त होकर आरोह क्रम से ऊपर उठकर षोडश कलावान् परमेश्वर का सायुज्य प्राप्त करता है । कहा गया है कि,

'षोडश कलावान् पुरुष में षोडशी अमृता कला का ध्यान करना चाहिये' ॥९२९॥

इस सौम्य मण्डल से ऊपर एक बहुत बड़ा महत् मण्डल है । जपाकुसुम के समान गाढ़े लाल रंग का तथा अरुण आदित्य के समान तेजस्वन्त रंग का यह मण्डल पूर्ववत् प्रमाण का है अर्थात् चन्द्रमण्डल की तरह ही परिमण्डलित है ॥९३०॥

भगवान् कह रहे हैं कि, देश्वेश्वरि उमे ! उस मण्डल से ऊपर सन्ध्या कालीन अरुण के समान द्युतिमन्त अहङ्कार का मण्डल है ॥९३१॥

अहङ्कार की उपमा सधूम अग्निमण्डल से दी गयी है । बड़ी सटीक उपमा है यह । धुँआँ भी, आग भी और आग का प्रकाश भी अहङ्कार में धुँआ भी है, आग भी है और अपने जताने का उद्योत भी । तीनों हैं इस अन्तःकरण में ।

सर्वप्रमातृगता अहङ्कारा उद्यन्तीत्यर्थः । अहङ्कार इति जातावेकवचनम् । मनःपर्यन्तसमस्तविषयेन्द्रियाधिष्ठातृत्वात्तत्कल्पनस्वभावत्वाच्च तैजसभूतादिरूपस्यास्य सधूमाग्नितुल्यत्वमुक्तम् । एवं चाहङ्कारमनोविषयबुद्धीन्द्रियकारणभूतानि सूर्यसोमरश्मिप्रकाशकरणमण्डलानि पञ्च तथा तन्मात्रमण्डानि पञ्च व्याप्य अहङ्कारतत्त्वं स्थितमिति मनःप्रभृतिषोडशकमाहङ्कारिकमुच्यते । अत एव कारणस्कन्धदृष्ट्या बहिस्तत्त्वान्येकरूपाणि, करणस्कन्धदृष्ट्या तु प्रतिपुरुषं भिन्नभिन्नस्वभावानीति न करणस्कन्धरूपादहङ्कारात्षोडशकोत्पत्तिः; अपि तु सूर्यसन्निभान्मण्डलात्कारणस्कन्धरूपात्करणस्कन्धरूपाणां प्रतिप्रमातृभिन्नानामहङ्काराणामुत्पत्तिस्तथा मनःप्रभृतेः षोडशकस्येति मन्तव्यम् ।

यश्चायं करणस्कन्धात्मा अहङ्कारः, सः-

अन्तःकरणमात्मस्थं

आत्मनोऽन्तरङ्गमेतत्सकलवसुधादिप्रतिसाधनं कारणमित्यर्थः ।

किञ्च-

येनेदं रञ्जितं जगत् ।।१३२।।

जगत् स्थावरजङ्गमात्मकं तत्तत्समुचिताभिमाननिवेशनेन येनोपरक्तं कृतमित्यर्थः ।।१३२।।

मन पर्यन्त सारे विषयों और इन्द्रियों के अधिष्ठाता, उनके प्रकल्पन के स्वभाव और तेजस भूत रूप होने के कारण भी सधूमाग्नि की उपमा सही है । इस प्रकार अहङ्कार, मन, विषय और ज्ञानेन्द्रियों के कारण रूप, सूर्य, सोम, रश्मि प्रकाश और करणमण्डल ये पाँच, तन्मात्र मण्डल पाँच इन सबको व्याप्त कर अहङ्कार मण्डल व्याप्त है । इस तरह मन से लेकर ये सोलह आहङ्कारिक तत्त्व माने जाते हैं ।

इसलिये कारण स्कन्ध की दृष्टि से ये सभी बाहरी तत्त्व एक रूप ही सिद्ध होते हैं, किन्तु करण स्कन्ध की दृष्टि से प्रति पुरुष ये सभी भिन्न भिन्न स्वभाववान् सिद्ध होते हैं । ऐसी स्थिति में यदि अहङ्कार को कारण स्कन्ध का माना जाय, तो करण स्कन्ध रूप अहङ्कार से षोडशकत्त्व की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ?

सूर्यसन्निभ मण्डल रूप कारण स्कन्ध से करण स्कन्ध रूप प्रतिप्रमातृभिन्न अहङ्कार की मन पर्यन्त की उत्पत्ति अनायास ही सिद्ध हो जाती है । यह आत्मा का अन्तरङ्ग अहङ्कार आत्मस्थ तत्त्व ही है । इससे यह सारी इदन्ता रंजित है । अभिमान के अभिनिवेश से अनुरक्त है ।।१३२।।

अयं च–

मत्तद्विप इवान्धस्तु दावाग्निरूपसर्पति ।

यथा मत्तो द्विपो दावाग्निश्च तत्तत्तरुप्राण्यादिविनाशायोपसर्पति, तथा अयमन्धोऽविचारितयुक्तायुक्तस्तदभिमानादानक्रमेण सर्वजगन्नाशकः ।

किमयमस्य परोपतापकारी स्वभावः स्वत एवोद्भूतः, नेत्याह–

तस्याधिदेवो रुद्रो वै येनायं प्रेर्यते सदा ।।९३३।।

रुद्र इति यः पूर्वम्–

'मध्यदेशे स्थितो रुद्रत्वहङ्कारेश्वरः प्रभुः' । (८९०)

इत्युक्तः । प्रेर्यते संसाररक्षार्थमभिमानात्मनि स्वकार्ये प्रवर्त्यते ।।९३३।।

एतं ये परिवृत्य स्थिताः, तेऽपि–

छगलाण्डादयो देवि पूर्वं ते कथिता मया ।

गतमेतत् ।

अहङ्कारादथोर्ध्वं तु बुद्ध्यावरणमुच्यते ।।९३४।।

सूर्यकोटिसहस्राणां तेजसा तुल्यवर्चसम् ।

वर्चो दीप्तिः । किञ्च–

अष्टानां देवयोनीनामत्रैव भुवनं शृणु ।।९३५।।

अहङ्कार की उपमा भगवान् दो उपमानों से दे रहे हैं । १.मदमस्त हाथी और २.दावाग्नि । दोनों ये जब आगे बढ़ते हैं, तो किसी की परवाह नहीं करते, सामने जो पड़ता है, उसका विनाश ही ये करते हैं । हाथी जहाँ सामने वाले पुरुष को मार डालता है । हाथी वनस्पतियों को रौंद डालता है, वहीं दावाग्नि जलाकर राख कर देती है ।

इसी तरह अहङ्कार भी जिसमें बढ़ जाता है, उसको विनष्ट कर डालता है । उचित अनुचित का विचार किये विना वह मनुष्य अनर्थ का कारक बन जाता है । इसका अधिकारी रुद्र ही ऐसा होता है, जिसकी प्रेरणा से यह प्रेरित होकर ही अनर्थ में प्रवृत्त हो जाता है ।।९३३।।

भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ! मैंने तुमसे पहले छगलाण्ड की चर्चा की थी । वे ही इसे परिवृत कर अवस्थित हैं । इस अहङ्कार मण्डल के ऊपर बुद्धि का आवरण है । यह करोड़ों सूर्यों के वर्चस् के बराबर तेज से विशेषतः अञ्चित है ।।९३४।।

यह आठ देवयोनियों के भुवनों को अपने में समेटे हुए है । बुद्धि के आवरण में इन देवयोनियों का अष्टक सात्त्विकादि वृत्ति वैचित्र्य के साथ ही

प्राग् ब्रह्माण्डरूपेणोक्तानां पैशाचादिब्रह्मपर्यन्तानामष्टानां देवयोनीनां सात्त्विकादिवृत्तिवैचित्र्यैण स्थितानां पररूपेण अत्रैव बुद्धितत्त्वे धर्मादिगुणाष्टकयुक्ते भुवनाष्टकमस्तीति एवकाराशयः ॥९३५॥

तत्र–

ककुभं नाम भुवनं सन्ध्यारुणसमप्रभम् ।
मानसीभिस्तु तत्स्त्रीभिर्मुदिताभिः समाकुलम् ॥९३६॥

मानस्यो मनोऽनुकूलाः ॥९३६॥

किञ्च–

स्थितास्तत्र पिशाचास्तु सन्ध्यारुणसमप्रभाः ।
दशकोटिसहस्राणि

किञ्च–

तेषां तत्र निवासिनाम् ॥९३७॥

मध्ये–

स्वनन्दो नाम विक्रान्तः

स च तेष्वेव–

पिशाचेष्वीश्वरो महान् ।
सन्ध्यारुणसमच्छायो बन्धूककुसुमाकृतिः ॥९३८॥

उल्लसित है । धर्मादि गुणाष्टकों के साथ यह देवयोन्यष्टक भी सुशोभित है । पिशाचों से लेकर ब्रह्म पर्यन्त इनका स्वरूपावस्थान इस प्रकार का है ॥९३५॥

१– कुकुभ नामक भुवन सन्ध्याकालीन अरुण सा रमणीय है । मानसी और सदा प्रसन्न स्त्रियों से यह समावृत्त भुवन है । यहाँ मानसी का तात्पर्य मनोनुकूल होता है ॥९३६॥

इसमें पिशाच देवयोनि के लोग रहते हैं । इनकी संख्या दस हजार करोड़ है । इतनी वहाँ निवासियों की संख्या है ॥९३७॥

पिशाचों के अधिपति रुद्र का नाम 'स्वनन्द' है । इसका उपनाम विक्रान्त है । यह महान् आत्मा रुद्र सान्ध्यकालीन अरुण के समान सुन्दर और बन्धूक फूलों सा शोभित है ॥९३८॥

कुण्डलाभरणोपेतो हारकेयूरभूषितः ।
किरीटी चाङ्गदी मौली हेमचीनाम्बरः शुभः ।।९३९।।
परिवृत्तो भूतगणैः प्रभूतैः पार्श्वगैस्तथा ।
नानारूपधरैर्दिव्यैर्दिव्याभरणभूषितैः ।।९४०।।
दिव्यमाल्यानुलेपैस्तु दिव्यैश्वर्यसमन्वितैः ।

मौलिः शिखामणिः । दिव्यमैश्वर्यं पिशाचोचितमेव अणिमादि अष्टविधम्, एवमुत्तरत्रापि स्वोचितमेव दिव्यत्वं मन्तव्यम् ।

स च एतैः-

परिवृतो महातेजा गणैरिव महागणः ।।९४१।।

महान्तो गणा यस्य स महागणो महादेवः ।

अथ-

अतः परं प्रवक्ष्यामि राक्षसं भुवनं महत् ।
कोकिलाकण्ठसदृशं नीलजीमूतसन्निभम् ।।९४२।।
तस्मिंस्तु भुवने दिव्ये दिव्यैश्वर्यसमन्विते ।
करालो राक्षसेशो वै जात्यञ्जननिभो महान् ।।९४३।।
किरीटी कुण्डली दीप्तः शोभते तु महाद्युतिः ।
जात्यञ्जननिभः श्रीमान् दावाग्निरिव पर्वते ।।९४४।।

कुण्डलादि आभरणों से भूषित, हार-केयूरधारी, किरीट और अङ्गद के सहित शिर पर शिखामणि धारण करता है । हेमवर्णी रेशमी वस्त्रों से शुभप्रद और आकर्षक लगता है ।।९३९।।

भूतों पिशाचों से समावृत है । प्रभूत संख्या में पास के लोगों से सेवित है । नाना रूपधारी इनके भृत्य बड़े ही दिव्य हैं और दिव्य आभरणों से भी भूषित हैं ।।९४०।।

अपने अनुरूप ही मालाओं और अनुलेपों से अनुलिप्त हैं । वे सभी दिव्य ऐश्वर्यों से समन्वित हैं ! ऐसे सेवकों से समन्वित यह विक्रान्त स्वनन्द पिशाचों का अधीश्वर और महागणेश्वर है ।।९४१।।

२-इसके बाद देवि ! जिस दूसरे भुवन की चर्चा मैं तुमसे करने जा रहा हूँ, उसका नाम राक्षस भुवन है । नीले बादलों के समान और कोकिल कण्ठ के समान यह भुवन कृष्णवर्ण से विभूषित है ।।९४२।।

श्रीर्दीप्तिर्विद्यते यस्य, अत एव धूमबहुलेन दावाग्निना उपमित: ॥९४४॥

अस्य च परिवार:-

दशकोटिसहस्राणि मुदिता नाम राक्षसा: ।
भृङ्गजीमूतवर्णाभा वसन्त्यत्र महाप्रभा: ॥९४५॥

अथ-

अत: परं प्रवक्ष्यामि याक्षं वै भुवनं महत् ।
जाम्बूनदमयं सर्वं दिव्यरत्नसमुज्ज्वलम् ॥९४६॥
भोगैश्वर्यसमुत्पन्नं समन्तात्परिमण्डलम् ।
तस्मिंस्तु भुवने भद्रे सुभद्रो नाम यक्षराट् ॥९४७॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभो मुकुटादिविभूषित: ।
शतकोटिसहस्रैस्तु यक्षैरमितविक्रमै: ॥९४८॥
तैर्वृतो भ्राजते सर्वै: शर्व: सर्वगणैरिव ।

अथ-

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गान्धर्वं भुवनं महत् ॥९४९॥
पीतकौशीतकीप्रख्यं चम्पकैस्तु समच्छवि ।

कौशीतकी पुष्पविशेष: ।

तस्मिंस्तु भुवने दिव्ये सुरूपो नाम वै प्रिये ॥९५०॥

दिव्य ऐश्वर्यों से समन्वित 'कराल' नामक राक्षसेश्वर, किरीट कुण्डलधारी दावाग्निपर्वत पर दश करोड़ सहस्र 'मुदित' नामक राक्षसों के साथ जो बड़े ही काले काले हैं, उनके साथ रहता है ॥९४३-९४५॥

३-इसके बाद 'याक्ष' भुवन है । यह जाम्बूनद (स्वर्ण) मय, दिव्यरत्नों से उज्ज्वल, भोग और ऐश्वर्य से समन्वित परिमण्डलित इस भुवन का अधीश्वर 'सुभद्र' नामक यक्षराट् है ॥९४६-९४७॥

तपे सोने के समान मुकुट आदि से विभूषित, अत्यन्त पराक्रमी सौ करोड़ हजार यक्षों से समावृत गणों से आवृत शङ्कर के समान सुशोभित है ॥९४८॥

४-इसके बाद गान्धर्व भुवन है । पीला, कौशीतकी पुष्प के समान सुन्दर, चम्पक के समान चारुवर्ण भुवन में 'सुरूप' नामक गन्धर्व गणेश्वर रहते हैं ।

गन्धर्वदेवाधिपतिर्गन्धमादनसन्निभः ।

अप्रकम्प्यत्वात् । तथा–

तप्तजाम्बूनदनिभस्तरुणादित्यसप्रभः ।।९५१।।

दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गो दिव्याभरणभूषितः ।

दशकोटिसहस्त्रैस्तु गन्धर्वैः परिवारितः ।।९५२।।

मनःशिलाभङ्गनिभैर्हरितालनिभैस्तथा ।

स्वकान्ता नाम गन्धर्वाश्चित्रमाल्यानुलेपनाः ।।९५३।।

चित्राम्बरधराः सर्वे चित्राभरणभूषिताः ।

अथ–

तस्मात्परतरं वक्ष्ये स्थानमैन्द्रं च पार्वति ।।९५४।।

बृहद्धोगमिति ख्यातं तदूर्ध्वं सर्वकामदम् ।

शङ्खगोक्षीरधवलं शरत्कुन्देन्दुसन्निभम् ।।९५५।।

बृहद्धोगमिति यथार्थनाम । ऊर्ध्वमित्युत्कृष्टम् ।।९५५।।

तस्मिंस्तु भुवने दिव्ये दिव्याश्चर्यशतैर्युते ।

विभूतिर्नाम भगवान् महेन्द्रो भुवनेश्वरः ।।९५६।।

चन्द्रमण्डलसङ्काशो मुक्ताहारविभूषितः ।

शुक्लाम्बरधरः श्रीमाञ्छुक्लमाल्यानुलेपनः ।।९५७।।

ज्वलत्किरीटो दीप्ताभ्यां कुण्डलाभ्यामलङ्कृतः ।

हारकेयूरवाञ्छ्वेतः श्वेतोष्णीषविभूषितः ।।९५८।।

गन्धमादनवत् महाकाय हैं, तपे सोने और तरुण सूर्य के समान प्रतापी हैं ।।९४९-९५१।।

सुगन्ध अनुलेप लगाये, दिव्य आभूषण पहने, दशकोटि सहस्त्र गन्धर्वों से घिरे, दिव्य वस्त्र-भूषण वाले स्वकान्त गन्धर्वों से घिरे गन्धर्वराज सुशोभित हैं ।।९५२-९५४।।

५–इसके बाद ऐन्द्र भुवन है। इसे बृहद्धोग कहते हैं। शङ्ख, गोक्षीर, शरत्कुन्देन्दु धवल इसमें 'विभूति' नामक महेन्द्र भुवनेश्वर सम्राट् हैं ।।९५५-९५६।।

चन्द्र मण्डल के समान, मुक्ता के हारों से भूषित, श्वेतवस्त्रधारी, शुक्लहार और अनुलेप लिप्त किरीट, कुण्डल, हार, केयूर, श्वेत पगड़ी आदि से सुशोभित हैं ।।९५७-९५८।।

भूतिजा नाम वै देवा विभूत्या परया युताः।
किरीटिनः कुण्डलिनो दिव्यमाल्यविभूषिताः ।।९५९।।
दशकोटिसहस्राणि देवाश्चेन्द्राः प्रकीर्तिताः ।
तैरावृतो महातेजा नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।।९६०।।

भूत्या सह जातत्वाद्भूतिजा इत्युक्ताः ॥९६०॥

अतः परं तु–

मनोजं नाम भुवनं शरच्चन्द्रनिभं शुभम् ।
शुक्लाभ्रकनिभं दीप्तं मुक्ताहारसुवर्चसम् ।।९६१।।
अमृतो नाम वै तत्र चन्द्रमाः परमः स्थितः ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशः श्रीमाञ्छुक्लाम्बरोद्वहः ।।९६२।।
कुण्डलैर्दीप्तिसङ्काशैर्भूषितस्तु विराजते ।
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गो दिव्याभरणभूषितः ।।९६३।।
तत्र वै रश्मयो नाम्ना रश्मिव्यूहसमप्रभाः ।

देवाः ।

दिव्याः सौम्यास्तु ते ज्ञेयाः सोमतेजःसमुद्भवाः ।।९६४।।
दशकोटिसहस्राणि तेषां वै सौम्यतेजसाम् ।

अथ–

अत ऊर्ध्वं तु देवेशि प्राजेशं भुवनं महत् ।।९६५।।
तस्मिंस्तु भुवने दिव्ये प्रजेशस्त्वमितद्युतिः ।
विश्वरूपो विश्ववर्णो विश्वालङ्कारभूषितः ।।९६६।।

भूतियुक्त 'भूतिज' नामक देवों से आवृत है, किरीट कुण्डल आदि धारी दस करोड़ हजार देवों से आवृत उसी तरह शोभित होते हैं, जैसे नक्षत्रों से आवृत चन्द्रमा सुन्दर लगता है ॥९५९-९६०॥

६–इसके बाद 'मनोज' नामक भुवन है । शरच्चन्द्रचारु यह भुवन बड़ा ही दिव्य है । श्वेत अभ्रक के समान चमक वाला है । दीप्त है । इसमें 'अमृत' नामक चन्द्रमा अपने परम रूप में अवस्थित हैं । शुद्ध स्फटिकवत् शुक्ल वस्त्रधारी है । कुण्डल धारण करते हैं । गन्धदिग्ध दिव्याभूषण भूषित यह अमृत चन्द्र वहाँ हैं । वहाँ सोमतेज से उद्भूत रश्मिव्यूहवत् सुप्रभ रश्मि नामक दश करोड़ हजार मनोज परिवार है ॥९६१-९६४॥

७–इसके बाद प्राजेश भुवन है । यह बहुत बड़ा है । इसमें अमितद्युति नामक प्रजेश विश्वरूप विश्वात्मा विश्ववर्ण विश्वालङ्कार भूषित विराजमान हैं ।

विश्वरूपपरैर्देवैर्विश्वात्मा परिवारितः ।

अमितद्युतिरिति एतन्नामा । तेषां च-

दशकोटिसहस्त्राणि विश्वानां भूरितेजसाम् ।।९६७।।

परिवार्य महात्मानं शोभने पर्युपासते ।

विश्वानामिति एतत्संज्ञानाम्, अत एव असर्वनामत्वात्सुडभावः शोभन इति भुवनविशेषणम् ।

अथ-

ब्राह्मं चैवमतो ज्ञेयं शङ्खगोक्षीरसन्निभम् ।।९६८।।

पितामहो यत्र देवः शुक्लपद्मस्थसौम्यदृक् ।

शुक्लाम्बरधरः श्रीमाञ्छुक्लमाल्यानुलेपनः ।।९६९।।

शुक्लयज्ञोपवीती च महाहारविभूषितः ।

दशकोटिसहस्त्रैस्तु चन्द्रबिम्बसमप्रभैः ।।९७०।।

ब्राह्मैर्देवैः परिवृतः शारदाभ्रैरिवांशुमान् ।

तदित्थम्-

पैशाचं राक्षसं याक्षं गान्धर्वं त्वैन्द्रमेव च ।।९७१।।

सौम्यं तथैव प्राजेशं ब्राह्मं वै भुवनं प्रिये ।

साधिष्ठातृदैवतमुक्तमित्यर्थः ।

एतानि सुरयोनीनां स्थानान्येव पुराणि तु ।।९७२।।

एतानि पुराणि देवयोनीनां स्थानानि एव मुख्यान्येव अवस्थिति-धामानि ।।९७२।।

वे विश्वरूप देवताओं से परिवारित हैं । इसमें भी दस करोड़ विश्व देव रहते हैं ।।९६५-९६७।।

८-इसके बाद 'ब्रह्म' भुवन है । यह शङ्ख आदि के समान श्वेत सौन्दर्य से विभूषित है । यहाँ 'पितामह' देव शुक्ल पद्म पर, शुक्ल परिधान में, शुक्लानुलिप्त शुक्ल यज्ञोपवीत और महाहार पहने विराजमान हैं । यहाँ भी दश करोड़ हजार ब्रह्मदेवों से उसी तरह शोभा पाते हैं, जैसे श्वेत बादलों से घिरा सूर्य ।।९६८-९७०।।

इस प्रकार-१.पैशाच, २.राक्षस, ३.याक्ष, ४.गान्धर्व, ५.ऐन्द्र, ६.सौम्य, ७.प्राजेश और ८.ब्राह्म नामक ये आठ भुवन हैं । ये देवयोनियों के पुर माने जाते हैं ।।९७१-९७२।।

एभ्यश्च स्थानेभ्यः-

अवतीर्यात्मजन्मानं ध्यायन्तः सम्भवन्ति हि ।

परमेशनियोगाच्च चोद्यमानाश्च मायया ।।९७३।।

नियमिता नियत्या च ब्रह्मणो व्यक्तजन्मनः ।

व्यज्यन्ते ते च सर्गादौ नामरूपैरनेकधा ।।९७४।।

अंशेनैव वरारोहे

व्यक्तं प्रभूतात्मदेहमयं स्थूलं जन्म यस्य ब्रह्मणो ब्रह्माण्डान्तसत्यलोकाधिपतेस्तस्य सम्बन्धिनि प्रत्यहं कार्ये सर्गादौ सृष्टिप्रारम्भे व्यज्यन्ते तत्पदोचिताकृतिभाज आत्मजन्मानं बुद्धितत्त्वगतं ब्रह्माणं ध्यायन्तः परमेश्वरनियोगान्मायादिमाहत्म्याद्ब्रह्माण्डान्तर्जायन्ते । ते च अंशमात्रेणैव व्यज्यन्ते ।

सर्वात्मना पुनरेते-

न त्यजन्ति निकेतनम् ।

निकेतनं बुद्धिगतं निजं स्थानम् ।

एवं बुद्धितत्त्वगतं देवयोन्यष्टकमात्रमुक्त्वा प्रस्तुतभुवनदीक्षायां प्रकृतं मा विस्मार्षीत्याशयेनाह-

पुर्यष्टकेन्द्रियैः सार्धमात्मा मन्त्रैर्विशोधयेत् ।।९७५।।

भगवान् भैरव, भैरवी उमा को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि, देवि ! ये सभी माया से सम्मोहित होकर परमेश्वर के नियोजन के माध्यम से नियति द्वारा नियमित होकर व्यक्तजन्मा ब्रह्मा के सृष्टि के कार्यों में सर्ग के आदि अंश मात्र से ही स्थूल जन्म ग्रहण कर व्यक्त होते हैं । इसी क्रम में बुद्धितत्त्वगत आत्मजन्मा का ध्यान करते हुए जीवन की अवधि व्यतीत करते हैं । अपने परशरीर से अपने मूल निकेतन का परित्याग नहीं करते । यह इनका वैशिष्ट्य है ।।९७३-९७४।।

वस्तुतः ये सारी बातें और सारे तथ्य यहाँ इसलिये कहे गये हैं कि, मूल प्रकरण भुवनदीक्षा देते समय किस तरह किनका शोधन किया जाय ? इसलिये भगवान् यहाँ आदेश भी दे रहे हैं कि, पुर्यष्टक के साथ और इन्द्रियों के साथ बैठा हुआ शरीरस्थ आत्मा मन्त्रों के द्वारा (जो पहले ही प्रतिष्ठाकला के अन्तर्गत कर्मानुसार मूल वामदेवादि मन्त्र हैं उनके द्वारा) बुद्धितत्त्वगत भुवनों के शोधन के

बुद्धिपर्यन्तगते भुवनजाते शोधिते सति तन्मात्रमनोऽहङ्कारबुद्धिरूपेण पुर्यष्टकेन इन्द्रियैश्च बाह्यैः करणैः सार्धं यः स्थित आत्मा, अर्थात्तमेव मन्त्रैरिति प्राग्विभुक्तस्थित्या प्रतिष्ठायां यथाकर्मविभागं विनिर्मुक्तैर्मूलवामदेवादिभिः विशोधयेत् । विशोध्यत इति तु स्पष्टः पाठः ॥९७५॥

एतदुपसंहरन्नन्यदवतारयति–

पञ्चाष्टकं मूर्तयोऽष्टौ बुद्धितत्त्वमनुक्रमात् ।
विशोध्यैवं प्रयत्नेन क्रोधाष्टकमतः परम् ।।९७६।।

विशोधयेदिति सम्बध्यते । अनुक्रमादित्युक्तेरयमाशयः–गुह्याद्यष्टकचतुष्टयं जलादिव्योमतत्त्वान्तगं शोधयित्वा तन्मात्रपञ्चकसोमसूर्यवेद्यमण्डलगताः शर्वादि-मूर्तयोऽष्टौ विशोध्याः, ततः कर्मबुद्धीन्द्रियपराधिष्ठातॄनग्न्यादिसोमान्तानेकादश शोधयित्वा अहङ्कारगतं पञ्चमं स्थाण्वष्टकं ततोऽपि बुद्धिगतं देवयोन्यष्टकं विशोधयेत् । प्रयत्नेनेति प्रागुक्तेन अध्वसन्धानादिना भुवनेश्वरवागीश्वरीविसर्जनपर्यन्तेन समस्तेन कर्मविस्तारादिना, न तु हेलामात्रेण । उक्तं च अन्यत्र–

'न चावज्ञा क्रियाकाले संसारोद्धरणं प्रति' ।

इति ॥९७६॥

बाद आत्मा का भी शोधन करना चाहिये । श्लोक में विशोधयेत् रूप विधि क्रिया के स्थान पर विशोध्यत' यह आज्ञालङ्कार वाला पाठ आदेशात्मक ही होना उचित है ॥९७५॥

यहाँ क्रम के प्रति सावधान करते हुए कह रहे हैं कि, पञ्चाष्टक, अष्टमूर्त्ति और बुद्धितत्त्व इनका क्रमिक रूप से शोधन करने के उपरान्त ही क्रोधाष्टक का शोधन होना चाहिये । इस क्रम में गुह्याष्टक का जल से व्योम के अन्तर्गत शोधन, तन्मात्रपञ्चक का सोम, सूर्य और वेदमण्डलगत शर्व आदि आठ मूर्त्तियों का शोधन, फिर कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के पराधिष्ठाता रूप अग्नि से सोम रूप ग्यारहों का शोधन, इसके बाद अहङ्कार गत स्थाण्वष्टक का शोधन और इसके बाद बुद्धितत्त्वगत देवयोन्यष्टकों का शोधन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये । 'विशोधयेत्' इस विधि में यह सारा अर्थ भरा हुआ है । इसमें लापरवाही खतरनाक है । इसमें अध्वसन्धान से लेकर भुवनेश्वर और वागीश्वरी विसर्जन पर्यन्त सारे कर्मों का सविस्तार शोधन अनिवार्यतः अपेक्षित माना जाता है । इसीलिये भगवान् ने आदेश दे रखा है कि,

'क्रियाकाल में अर्थात् दीक्षा क्रिया के चलते रहने पर संसार से उद्धार के प्रति तनिक भी लापरवाही रूप अवज्ञा असह्य होती है' ॥९७६॥

एवमियदन्तं शोधयित्वा बुद्धितत्त्वगतमेव क्रोधेश्वराष्टकं यच्छोध्यं तदुद्दिशति–

संवर्तस्त्वेकवीरश्च कृतान्तो जननाशकः ।
मृत्युहन्ता च रक्ताक्षो महाक्रोधश्च दुर्जयः ।।९७७।।

महाक्रोधनाम्ना क्रोधाधिष्ठायिना रुद्रेणोपलक्षितमेतत्क्रोधाष्टकमुच्यते । एते च रुरुसङ्ग्रहे–

'क्रोधेशश्चण्डसंवर्तौ ज्योतिःपिङ्गलसूरकौ ।
पञ्चान्तकैकवीरौ च शिखी देशहितेश्वराः' ।।

इति नामान्तरेणापि पठिताः ।।९७७।।

नीलोत्पलदलाभानि तेषां वै भुवनानि तु ।
एकैकस्य परीवारः कोटिर्दशसहस्रकम् ।।९७८।।

अथ अत्रैव तत्त्वे–

क्रोधेश्वराष्टकादूर्ध्वं स्थितं तेजोऽष्टकं महत् ।
बलाध्यक्षो गणाध्यक्षस्त्रिदशस्त्रिपुरान्तकः ।।९७९।।
सर्वरूपश्च शान्तश्च निमेषोन्मेष एव च ।

निमेषसहित उन्मेष इत्यर्थः । एषां च–

सहस्रैः पञ्चदशभिः परिवारोऽभिधीयते ।।९८०।।

क्रोधेश्वराष्टक शोधन के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश दे रहे हैं ।

१.संवर्त्त, २.एकवीर, ३.कृतान्त, ४.जननाशक, ५.मृत्युहन्ता, ६.रक्ताक्ष, ७.महाक्रोध और ८.दुर्जय यह क्रोध के रुद्रों के नाम हैं । इन सबमें प्रमुख रुद्र महाक्रोध है । यह इनके अधिष्ठाता हैं । रुरुसङ्ग्रह में १.क्रोधेश, २.चण्ड, ३.सवर्त्त, ४.ज्योतिःपिङ्गल, ५.सूरक, ६.पञ्चान्तक, ७.एकवीर और ८.शिखी ये देशहितेश्वर रूप से प्रसिद्ध हैं । ये क्रोधाष्टकों का रूपान्तरित नाम हैं ।।९७७।।

ये सभी नीलोत्पल दल सदृश आभावाले भुवनों में रहते हैं । इनका परिवार भी दश हजार करोड़ का है । यह संख्या इनके एक एक परिवार की है ।।९७८।।

क्रोधेश्वराष्टकों के ऊर्ध्व क्षेत्र में विशाल तेजोष्टक का विस्तृत क्षेत्र है । इसमें १.बलाध्यक्ष, २.गणाध्यक्ष, ३.त्रिदश, ४.त्रिपुरान्तक, ५.सर्वरूप, ६.शान्त, ७.निमेष और ८.उन्मेष ये आठ तेजस्वी रुद्र रहते हैं । यह तेजोष्टक माना जाता है । इनमें से एक एक का परिवार पन्द्रह पन्द्रह हजार है ।।९७९-९८०।।

तेजोऽष्टकसमाख्याया निमित्तमाह–

अग्निरुद्राः स्मृता ह्येते तेजसा कृष्णवर्णकाः ।

अग्निवद्दीप्तत्वादग्निरुद्राः । तेजसा ज्ञानदीप्तिमयेनोपलक्षिताः, अत एव बुद्धिगतदीप्तात्मकतेजोष्टकाधिष्ठातृत्वादप्येतत्तजोऽष्टकमुच्यते ।

कूर्माकाराणि चित्राणि तेषां वै भुवनानि तु ।।९८१।।

अथ–

अत ऊर्ध्वं समाख्यातं योगाष्टकमनुत्तमम् ।

सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातयोगस्थितानां योगिनामधिष्ठातृत्वाद्योगाष्टकम्, अत एवाधस्तनाष्टकापेक्षयोत्कृष्टत्वादनुत्तमम् । तच्च–

अकृतं च कृतं चैव रैभवं ब्राह्ममेव च ।।९८२।।

वैष्णवं त्वथ कौमारमौमं श्रैकण्ठमेव च ।

रिभूणां देवानामिदं रैभवम्, एवं ब्राह्मं भुवनमित्यादि योज्यम् । तेन रा धनं तत्र भवमित्यादिव्याख्यानमसत् । एतच्च योगाष्टकं प्रधानतत्त्वाश्रयमिति श्रीमालिनी-विजये, सगुणयोगनिष्ठानां च शुद्धसत्त्वगुणा धीः प्रधानं वा प्राप्तिपदमिति न वस्तुभेदः कश्चित् ।

ये अग्निरुद्र हैं । तेज के कारण काले पड़ गये हैं । तेज से इनके ज्ञान की दीप्ति भी उद्योतित है । बुद्धिगत तेज भी इनका अपरिमित है । इनके भुवन कूर्म के आकार के हैं ।।९८१।।

इसके ऊपर योगाष्टक का अनुत्तम क्षेत्र आता है । ऐसे योगी जो सम्प्रज्ञात असम्प्रज्ञात योगसिद्धि में रत हैं, उनके इस योग की सिद्धि के ये अधिष्ठाता माने जाते हैं । इसी आधार पर इस अष्टक को योगाष्टक कहते हैं तथा नीचे के अष्टक से उत्कृष्ट होने के कारण इसको योगाष्टक और अनुत्तम इन विशेषणों से विशिष्ट मानते हैं । योगाष्टक के आठ भुवन इस प्रकार हैं–

१.अकृत, २.कृत, ३.रैभव, ४.ब्राह्म, ५.वैष्णव, ६.कौमार, ७.औम और ८.श्रैकण्ठ ।

ऋभु देवयोनि से उत्पन्न या सम्पन्न लोक रैभव कहलाता है । ब्रह्मा से ब्राह्म, विष्णु से वैष्णव, कुमार से कौमार, ओम से औम और श्रीकण्ठ से श्रैकण्ठ शब्द बनते हैं । किसी टीकाकार ने रा अर्थात् धन कह कर रा से होने वाले अर्थ को रैभव कहा है । यह ठीक नहीं मानना चाहिये ।

अतश्च–

क्रीडन्ति योगिनस्तत्र भुवनैः स्फटिकप्रभैः ।।९८३।।

तत्र नैष्कर्म्ययोगनिष्ठा अकृतपदे, कर्मयोगनिष्ठाः कृतपदे, निर्माणयोगगता रिभुपदे, पुरुषाद्वययोगसेविनो ब्रह्मपदे, वैष्णवशास्त्रोक्तयोगसेविनो वैष्णवपदे, निष्पन्नब्रह्मचर्ययोगाः कुमारपदे स्फटिकप्रभैः स्वच्छैर्भुवनैरुपलक्षिताः क्रीडन्ति । तदूर्ध्वं त्वौमं श्रैकण्ठं च धाम शैवसिद्धान्तोपदिष्टशक्तिशक्तिमदाराधनपुरःसरचित्त-वृत्तिनिरोधात्मनिष्पन्नानां प्राप्तिपदम् ॥९८३॥

तत्र शिवयोगिन्या भगवत्या उमाया देव्या योगाष्टकस्योपरि परेण रूपेण स्थिताया भुवनमाह–

ततः साक्षाद्भगवती जगन्माता व्यवस्थिता ।

उमा त्वमेया विश्वस्य विश्वयोनिः स्वयम्भवा ।।९८४।।

साक्षादित्युक्त्या योगाष्टकमध्ये भगवत्या अंशावतरणमित्याह, एवं वक्ष्य-माणश्रीकण्ठभट्टारकविषयेऽपि मन्तव्यम् । स्वयम्भवेति स्वातन्त्र्यात्परानुग्रहाय तत्र स्थिता, न अन्ययोगिवद्योगवशादेतत्पदं प्राप्ता ॥९८४॥

यह योगाष्टक प्रधान तत्त्व के आश्रित है, यह मालिनीविजयतन्त्र में स्पष्ट लिखा है । सगुण योगनिष्ठ योगियों के लिये शुद्ध सत्त्वगुणा बुद्धि प्रधाना यह पदवी रैभव स्थित योगियों के ही ये भुवन हैं । इसीलिये भगवान् भैरव कह रहे हैं कि, इन स्फटिक सदृश पारदर्शी लोकों को प्राप्तकर आनन्द का उत्सव मनाते हैं ।

क्रमशः इनमें निष्कर्म योगनिष्ठ अकृत में, कर्मयोगनिष्ठ कृत में, निर्माण योगनिष्ठ रैभव में, पुरुषाद्वययोगनिष्ठ ब्राह्म में, विष्णु भक्त वैष्णव लोक में, ब्रह्मचारी कौमार लोक में जाते हैं । यही क्रम है । तदनुसार औम और श्रैकण्ठ लोकों में शैवसाधक विशेष रूप से पहुँचते हैं । चित्तवृत्तिनिरोध से इन पुण्य लोकों की प्राप्ति सरल हो जाती है ॥९८२-९८३॥

योगाष्टक के मध्य में शिवयोगिनी भगवती उमा अपने पर रूप से अवस्थित हैं । वे विश्व की माँ हैं । स्वयंभवा और विश्व की आदिकारण हैं । अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये यहाँ व्यवस्थित हैं । दूसरों की तरह योगवश यहाँ प्राप्त नहीं हैं । यह अनन्य सामान्य माँ की कृपा का प्रतीक है ॥९८४॥

सा च–

तप्तजम्बूनदनिभा ह्युदयादित्यसप्रभा ।
महापीठे मणिमये सिंहाष्टकयुते शुभे ।।९८५।।
शतयोजनविस्तीर्णे दिव्यस्त्रग्धामलालिते ।

स्थितेति शेषः । किञ्च–

दिव्यकुण्डलिनी देवी महाहारविभूषिता ।।९८६।।

किञ्च–

विजयाग्रे महाभागा श्रीरिवोत्तमरूपिणी ।
जया च पद्मगर्भाभा सर्वालङ्कारभूषिता ।।९८७।।
नन्दा च पद्मपत्राक्षी हारकेयूरभूषिता ।
सर्वाभरणचित्राङ्गी सुनन्दा च मनोहरा ।।९८८।।
परिवार्य प्रतीहार्यः सर्वतः समुपस्थिताः ।

श्रीरिवेति पूवोक्तश्रीरूपेत्यर्थः । सर्वत इति चतुर्दिक्कम् ।

किञ्च–

त्रिंशत्कोटिसहस्राणि त्रिंशत्कोटिशतानि च ।।९८९।।

तपे सोने के समान शुद्ध पाण्डुर सौन्दर्यमयी माँ उदयादित्य की प्रभा से भास्वर हैं। सिंहाष्टक युक्त मणिमय महापीठ पर स्वयं विराजमान हैं ।।९८५।।

उनका वह महापीठ अत्यन्त विशाल है । दिव्य कुसुमावली लालित है । वहाँ महाहार विभूषित दिव्यतमा कुण्डलिनी देवी भी विद्यमान हैं ।।९८६।।

आगे के भाग में 'विजया' साक्षात् लक्ष्मी के लक्ष्म से लक्षित हैं । इनका उत्तम रूप बड़ा आकर्षक है । वहीं 'जया' भी पद्मगर्भ के समान सुकुमार सौन्दर्य से विभूषित हैं । सभी अनुरूप अलङ्कारों से अलङ्कृत हैं ।।९८७।।

'सुनन्दा' अपने मनोहारी सौन्दर्य से वहीं मण्डित हैं । अनुपम सौन्दर्य से आनन्दित 'नन्दा' की आँखे कमल दलों की तरह दीख रही हैं । हारकेयूर से भूषित हैं ।।९८८।।

चारों ओर उनकी सेवा में सजग प्रतिहारियाँ माँ की आज्ञा में यथास्थान समुपस्थित हैं । इनकी संख्या करोड़ों में आँकी जा सकती है ।।९८९।।

मानस्यो दिव्यनार्यस्तास्तां सदा पर्युपासते ।

ता इति लोकोत्तराः । त्रिंशत्कोटीति पाठे वर्णव्यत्ययश्छान्दसः ।

किञ्च–

विमानकोटिरेका च रुद्राणां भूरितेजसाम् ।।९९०।।

तत्रास्ति ।।९९०।।

ते च विमानस्था रुद्रास्तदाराधनपरा एवेति कृत्वा–

औमा इति समाख्याताः

किञ्च–

वैमाना इति तेऽन्यथा ।

विगतो मानः शरीरेन्द्रियादिविषयोऽभिमाने यस्याः सा विमाना भगवती, तस्या अमी वैमानाः । एते हि–

उपासते तु मां देवीं मातरं तनया इव ।।९९१।।

न च तत्रासौ केवलमनुग्रहपरा स्थिता, यावत्–

सावतीर्याण्डमध्ये तु मया सार्धं वरानने ।
अनुग्रहार्थं लोकानां प्रादुर्भूता सनातनी ।।९९२।।

सनातनी नित्यं पुंसामनुग्रहार्थं प्रपञ्चव्याप्त्या नानानामाकृतिरूपा प्रादुर्भूता व्यक्तिं गतेत्यर्थः । मया सार्धमिति वक्ष्यमाणश्रीकण्ठावतारेण कैलासवासिना मया सहेत्यर्थः ।।९९२।।

ये सभी मानस से उत्पन्न दिव्य नारियाँ हैं । बड़ी लोकोत्तर हैं, ललित हैं और माँ की उपासना में रत हैं । तेजस्वी रुद्रों के एक करोड़ विमान वहाँ हर समय उड़ान भरने को तत्पर रहते हैं ।।९९०।।

उस विमान में कर्मचारी रूप में, अधिकारी रूप में लगे रुद्र 'औम' मण्डल वाले बड़े वैज्ञानिक हैं । विमान की सारी मानकला (पैमाना) अर्थात् यान्त्रिकता के सर्वातिशायी विशेषज्ञ हैं । अथवा शरीरेन्द्रियादि अभिमान का परित्याग कर अवस्थित भगवती ये अपनी आत्मीय हैं । ये सभी देवी की उपासना में रात दिन लगे हुए हैं, जैसे माँ की सेवा में उसके पुत्र लगे रहते हैं ।।९९१।।

भगवान् श्रीकण्ठ ने किसी सन्दर्भ में यह कहा था, वही बात भगवान् भैरव देवी पार्वती को सुना रहे हैं कि, यह देवी श्रीकण्ठ के साथ अवतीर्ण होकर इस अण्डमध्य में मण्डित हो रही हैं । यह सनातनी देवी लोक के ऊपर अनुग्रह करने के लिये इस रूप में व्यक्त हो रही हैं ।।९९२।।

प्रतिकल्पं नानानामभेदेन देव्यवतीर्णेत्याह–

कल्पे पूर्वे जगन्माता जगद्योनिर्द्वितीयके ।
तृतीये शम्भवी नाम चतुर्थे विश्वरूपिणी ।।९९३।।
पञ्चमे नन्दिनी नाम षष्ठे चैव गणाम्बिका ।
विभूतिः सप्तमे कल्पे सुभूतिश्चाष्टमे तथा ।।९९४।।
आनन्दा नवमे कल्पे दशमे वामलोचना ।
एकादशे वरारोहा द्वादशे च सुमङ्गला ।।९९५।।
कल्पे त्रयोदशे देवि महातनुरुदाहृता ।
कल्पे चतुर्दशे चैव अनन्ता नाम कीर्तिता ।।९९६।।
भूतमाता पञ्चदशे षोडशे चोत्तमा स्मृता ।
सहस्रधारा सप्तदशे सती चाष्टादशे पुरा ।।९९७।।

कल्पो भाविमानेन चतुर्दशमन्वन्तरं ब्राह्मं दिनं यदन्ते कालाग्निर्जगद्-हति । तत्र प्रथमद्वितीयादिकल्पक्रमेण त्वेतन्नामरूपभेदेन लोकानुग्रहार्थमव-तीर्णा ।।९९७।।

कल्प कल्प में नाना नाम भेदों के साथ यह प्रादुर्भूत होती है । प्रथम कल्प में 'जगन्माता' के रूप में, द्वितीय कल्प में 'जगद्योनि', तृतीय कल्प में 'शाम्भवी', चतुर्थ में 'विश्वरूपिणी', पाँचवें में 'नन्दिनी', छठें कल्प में 'गणाम्बिका', सातवें कल्प में 'विभूति', आठवें कल्प में 'सुभूति', नवम कल्प में 'आनन्दा', दशम कल्प में 'वामलोचना', ग्यारहवें कल्प में 'वरारोहा', बारहवें कल्प में 'सुमङ्गला', तेरहवें कल्प में 'महातनु', चौदहवें कल्प में 'अनन्ता', पन्द्रहवें कल्प में 'भूतमाता', षोडशतम कल्प में 'उत्तमा', सत्रहवें कल्प में 'सहस्रधारा' और अठारहवें कल्प में 'सती' नाम से अवतीर्ण हुई थीं ।।९९३-९९७।।

ब्रह्मा के एक दिन में १४ मन्वन्तर होते हैं । इसके अन्त में कालाग्नि संसार को भस्म कर डालता है । इसके बाद इतनी ही बड़ी ब्रह्मा की रात । यह एक कल्प होता है । इसी मान के अनुसार कल्प कल्प में देवी के अवतीर्ण होने का ही यह क्रम यहाँ उल्लिखित है ।।९९३-९९७।।

आस्तां च निःसंख्यपुराकल्पगततत्तदवतारकीर्तनेनापरिसंख्येन, केवलमस्मिन् वर्तमाने–

चाक्षुषस्य मनोः कल्पे दक्षस्य दुहिता शुभा ।

ब्रह्मणा स्वचक्षुषा निर्मितत्वाच्चाक्षुषो यो मनुप्रजापतिस्तस्य कल्प इति तदीय एतत्कल्पसम्बन्धिनि प्रथमे मन्वन्तरात्मनि त्वं लोकानुग्रहार्थं दक्षप्रजापतिदुहितृरूपेणावतीर्णा अभव इत्यर्थः ।

अवतीर्य च–

अवमानाच्च दक्षस्य स्वां तनुं त्वजहाः पुरा ।।९९८।।

एतत्पुराणेषु प्रसिद्धमेव ॥९९८॥

ततः सैव–

अमां कलां तु चन्द्रस्य पुनरापूर्य संस्थिता ।

महेश्वरानुरागात्तच्छिरःस्थाममाख्यां विश्वाप्यायिकां चन्द्रकलामापूर्येति । एवमपि जगदनुग्रहप्रयोजनैव देवी ।

अथ परमेश्वरी अनुजिघृक्षाप्रेरितेन–

पुनर्हिमवताराध्य दुहिता त्वात्मनः कृता ।।९९९।।
त्वं देवि सा

तथारूपतां गृहीत्वा–

अद्भुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
मां भर्तारं पुनः प्राप्य जातास्यङ्गरुहा प्रिये ।।१०००।।

भगवान् कहते हैं कि, कितनी पुरानी गाथायें गायीं जाँय । मैं उन्हें छोड़ कर इस वर्त्तमान कल्प की बात कर रहा हूँ । इस चाक्षुष मन्वन्तर में इस कल्प में यह दक्षप्रजापति की पुत्री के रूप में उत्पन्न है । ब्रह्मा ने अपनी आँख (चक्षु) से इसे निर्मित किया था । इसलिये यह चाक्षुष है । यह मनु प्रजापति का कल्प है । इस कल्प के इस प्रथम मन्वन्तर में तुम दक्ष प्रजापति की दुहिता बनकर अवतीर्ण हो । इस अवतार का लक्ष्य भी लोकानुग्रह ही है । दक्ष से शिव के अपमान के कारण तुमने इस शरीर का परित्याग कर दिया था । यह पुराण प्रसिद्ध कथा है ॥९९८॥

महेश्वर के अनुरागवश उनके शिरोभाग में अवस्थित विश्वाप्यायिका अमा कला को पूर्ण करती हुई उसी में रम रही थी । इसे हिमवान् ने देखा और महेश्वर की आराधना कर अपनी दुहिता के रूप में प्राप्त किया है ॥९९९॥

मामिति परमहेश्वरमेव स्वातन्त्र्याद्गृहीतकैलासवासिमूर्तिम् । अङ्के रुहतीति अङ्गरुहा वामार्धभागगता ॥१०००॥

तदित्थम्–

कैलासनिलयश्चाहं त्वया सार्धं वरानने ।

भक्तदृशा च मम–

त्वं तनुर्वामभागस्य

अतश्च तत्त्वदृष्टाविव आकृतिदशायामपि–

मत्तो नैव वियुज्यसे ॥१००१॥

न केवलमस्मिन्नेव कल्पेऽद्यत्वे मच्छरीरार्धगतत्वेन स्थितासि, यावत्–

दक्षाध्वरे पुनर्जाता भद्रकालीति नामतः ।

पुनरिति अन्यस्मिन् दक्षयज्ञे दक्षप्रजापतिकृताराधनप्रकर्षात्तदनुग्रहाय भद्रकालीत्वेन अवतीर्णा त्वमभव इत्यर्थः ।

तदित्थं पररूपैव त्वम्–

एकानंशापरा मूर्तिः सतीशानाद्विनिःसृता ॥१००२॥

एकानंशा अविभक्ता अद्वितीयरूपा सती इत्यपरा मूर्तिरीशानाद्विनिःसृतेत्युक्तप्रकारनानाविधापरामूर्तिरूपा त्वमीशानादिति परमेश्वरस्वातन्त्र्यादेव जगदनुजिघृक्षयेत्थमास्थितेत्यर्थः, अथ च एकानंशाख्यदेवतात्वेनाप्यवतीर्णेत्यर्थः ॥१००२॥

भगवान् भैरव कह रहे हैं कि, देवि ! वही तुम हो । तुमने अद्भुत तपस्या की । तुम्हारा यह तप बड़ा ही दुश्चर था । तुमने उसी तपस्या के फलस्वरूप मुझे पति के रूप में पुनः प्राप्त कर तुम मेरी अर्धाङ्गिनी बन सकी हो । स्वातन्त्र्य वश मैं इस कैलाश पर्वत पर निवास करता हूँ और प्रिये तुम मेरी अङ्गरुहा हो ॥१०००॥

सुमुखि ! तुम्हारे साथ यहाँ कैलाश शिखर को ही निलय बनाकर रह रहा हूँ । तुम मेरी वामाङ्गिनी हो । तात्त्विक दृष्टि से मेरी शक्ति, आकृति दशा में भी मुझसे अवियुक्त होकर अवस्थित हो ॥१००१॥

दक्ष के यज्ञ में पुनः भद्रकाली नाम से उत्पन्न होकर भी तुम एक, अनंश पूर्ण स्वरूपा अपरा मूर्त्ति तुम ईश्वर रूप ईशान से ही विश्वानुग्रहार्थ अवतीर्ण हो । ये सभी स्वरूप तुम्हारी आकृति के ही प्रतीक हैं ॥१००२॥

किञ्च–

इदं चतुर्युगं प्राप्य द्वापरे विष्णुना सह ।
महिषस्य वधार्थाय उत्पन्ना कृष्णपिङ्गला ।।१००३।।

वर्तमानचतुर्युगगते द्वापरे श्रीभद्रकालीपुरनिरूपितनीत्या विष्णुना आराधिता सती तेनैव भ्रातृभूतेन सह महिषासुरवधाय अवतीर्णा ॥१००३॥

किञ्च–

कात्यायनीति दुर्गेति विविधैर्नामपर्ययैः ।
मनुष्याणां तु भक्तानां वरदा भक्तवत्सला ।।१००४।।
पूर्वमेवावतीर्णासि विन्ध्यपर्वतमूर्धनि ।

विविधैर्नामपर्ययैरिति विन्ध्यवासिनीभ्रमरवासिनीत्यादिनामभेदैः । कतस्य वृष्णिमध्यवर्तिनोऽपत्यं कात्यः, तस्य कृष्णावताराद्यपुरुषस्यापत्यं विष्णोर्भगिनी कात्यायनी । दुःखेन गम्यते जपयज्ञदानतपोभिरपि मुनिभिरपि न प्राप्यते; किन्तु भक्तिशालिभिरेव आसाद्यते इति दुर्गा । सा च विन्ध्यस्य मूर्धनि पूर्वमेवावतीर्णेति एतत्कल्पप्रारम्भ एव उक्तजम्बूद्वीपगतविन्ध्यपर्वतशिरसि भक्तानुग्रहार्थमवतीर्णा असि ।

अथेदानीम्–

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भुवनं वरवर्णिनि ।।१००५।।

इस तरह युगों युगों में तुम्हारे अनुग्रहकारी रूप के दर्शन होते हैं । चारों युगों के इस क्रम में द्वापर में तुम भाई विष्णु के साथ बहन रूप में महिषासुर के वध के लिये कृष्णपिङ्गला रूप में अवतीर्ण हुई थी ॥१००३॥

कात्यायनी और दुर्गा इन विविध नामों के द्वारा भक्ति में परायण भक्तों को कृपाकर वरदान देने के लिये उत्पन्न होती हो ॥१००४॥

तुम विन्ध्यवासिनी रूप में तथा भ्रामरी नाम से भी अपनी कृपा की वर्षा करती रही हो । वृष्णिवंश के कत नामक पुरुष के अपत्य को कात्य कहते हैं । यह कृष्णावतार का आद्य पुरुष था । उसकी सन्तति अर्थात् कात्य की अपत्य पुत्री कात्यायनी हो । दुर्गा की व्युत्पत्ति भी विचित्र है । दुः अर्थात् कठिनाई से गा अर्थात् यज्ञ दान तप से प्राप्त होने में कठिन, किन्तु भक्तों द्वारा सरलता से प्राप्त होने वाली तुम दुर्गा नाम से भी प्रसिद्ध हो ।

भगवान् कह रहे हैं कि, इस प्रकार के सुन्दर वर्णों में उत्पन्न होने वाली सौन्दर्यशालिनी देवि ! इसके ऊपर के भुवन भी इतने ही महान् हैं ॥१००५॥

सुचार्विति तु विख्यातं सहस्रादित्यकान्तिमत् ।

कैलासशिखराकारं शुद्धस्फटिकसप्रभम् ।।१००६।।

महाविमानकोटीभिरावृतं चक्रवर्तिनाम् ।

चक्रवर्तिनो मन्त्रेश्वरा अनुग्रहार्थमेव आकृतिपरिग्रहेण अत्र अवतीर्णाः ।

तस्मिंस्तु भुवने दिव्ये सूर्यकोटिसमद्युतिः ।।१००७।।

सहस्रबाहुचरणः सहस्रवदनेक्षणः ।

उमापतिर्जगन्नाथः सर्वानुग्रहकृद्धरः ।।१००८।।

तस्य च भगवतो विश्वभोक्तुः-

भोगस्थानं समस्तं वै तत्रस्थं वामभागतः ।

वामभागतो वामं देहार्धमाश्रित्य तत्रैव स्थितं समस्तं भोगस्थानमशेषभोग्योपभोगात्मतया वाममर्धम्, दक्षिणं तु भोक्तृरूपमेव । एवं च भोक्तृभोगात्मकविश्वशरीरोऽयं भगवानत एव सहस्रबाहुचरणादिरूपः ।

किञ्चायम्-

शतयोजनविस्तीर्णे नानारत्नविभूषिते ।।१००९।।

'सुचारु' नाम से प्रसिद्ध सहस्राधिक सूर्यों के समान कान्तिमान्, कैलास शिखर के समान शुद्ध स्फटिकवत् सुन्दर है ।।१००६।।

करोड़ों विमानों से समन्वित यह नगर है । चक्रवर्त्ती मन्त्रेश्वर तुम्हारी आराधना में यहाँ आकृति-परिग्रहपूर्वक अपने विमानों के साथ ही पड़े रहते हैं । ऐसे भुवन के अध्यक्ष भी यहाँ प्रतिष्ठित हैं ।।१००७।।

इस भुवन के अधीश्वर सहस्रशीर्षा पुरुष हैं । सहस्राक्ष हैं । सहस्रपात् हैं । इन्हें उमापति की संज्ञा से विभूषित करते हैं । ये सांसारिक जीवों के जगत् के स्वामी हैं और सबके ऊपर समान अनुग्रह करने वाले भगवान् भैरव हैं ।।१००८।।

ये विश्वभोक्ता हैं । इनका भोग स्थान ही यह विश्व है । भोग स्थान इनका वामभाग है और भोक्ता दक्षिण भाग । इस प्रकार भोग्य भोक्तृरूप यह विश्व शरीर भगवान् शुभ्र आसन पर विराजमान हैं । यह शतयोजन विस्तीर्ण अनिर्वचनीय आसन रत्नों से जटित है ।।१००९।।

दिव्यास्तरणसंछन्ने आदित्यशतसन्निभे ।
आसने परमे दिव्ये रत्नपद्मविचित्रिते ।।१०१०।।
उपविष्टो महातेजा वृषभैरष्टभिर्वृतः ।
हेमचीनाम्बरधरो हारकेयूरभूषितः ।।१०११।।
धारयन्सुप्रदीप्ते च सूर्यमण्डलसन्निभे ।
स्फुरन् मयूखसङ्घाते कुण्डले रश्मिसङ्कुले ।।१०१२।।

मयूखाः सूक्ष्माः प्रभाः, रश्मयस्तु स्थूलाः ।

किञ्च–

धारयन् मुकुटं मूर्ध्नि दिव्यरत्नविचित्रितम् ।
देदीप्यमानमत्युग्रं कैलासशिखरोपमम् ।।१०१३।।
प्रलम्बोऽस्य महाहारः प्रभवद्रश्मिसङ्कुलः ।
गाङ्गो हिमवतः शृङ्गात्पतितो निर्झरो यथा ।।१०१४।।

किञ्च–

त्रिंशत्कोटिसहस्रैस्तु त्रिंशत्कोटिशतैस्तथा ।
शूलिभिर्जटिभिस्त्र्यक्षैर्दिव्याभरणभूषितैः ।।१०१५।।
नानारूपधरै रुद्रैर्वृतो भूतगणैस्तथा ।
दिव्याभिर्मानसीभिश्च नारीभिः परिवारितः ।।१०१६।।

सिंहासन दिव्य आस्तरण से सुशोभित है । शतादित्यवत् सुन्दर है । परम दिव्य और रत्नकमलों से कमनीय है ।।१०१०।।

आठ महागण रूप वृषों से युक्त सिंहासन पर उपविष्ट स्वर्णवर्णी रेशम से सुकुमार, हार केयूरधारी और सूर्यगोलकवत् गोल कुण्डल पहने हुए विराजमान हैं ।।१०११-१०१२।।

शिर पर रत्नजटित महार्घ मुकुट है । कैलास शिखर के समान सुन्दर हैं ।।१०१३।।

इनका प्रलम्बमान हार मनोहर है । रश्मियों से भरा हुआ है । हिमवान् के शिखर से गाङ्गेय प्रपातवत् निर्मल, प्रकाशमान और आकर्षक है ।।१०१४।।

अनेकानेक जटाधारी, शूली, त्रिलोचन, भूषणों से भूषित तीस करोड़ हजार से भी अधिक रुद्रों से सेवित हैं । वे नाना रूपधारी रुद्र हैं । इनके साथ भूतों के समूह के समूह हैं । दिव्य मनोहर नारियों से परिवारित वे महान् महेश्वर सर्वाराध्य हैं ।।१०१५-१०१६।।

विमानशतकोटिभिरावृतः सर्व एव तु ।

अन्यच्च–

मातरः सप्त रूपिण्यो नानालङ्कारभूषिताः ।।१०१७।।
परिवार्य महात्मानं समन्तात्पर्यवस्थिताः ।

ता दिग्विभागेनाह–

ब्राह्मी कमलपत्राभा दिव्याभरणभूषिता ।।१०१८।।
आग्नेय्यां दिशि देवेशि स्थिता वै श्रीरिवापरा ।
शङ्खगोक्षीरसङ्काशा त्वैशान्यां तु वरानने ।।१०१९।।
माहेश्वरी महातेजास्तिष्ठते सुरपूजिता ।
कौमारी पद्मगर्भाभा हारकेयूरभूषिता ।।१०२०।।
दिश्युत्तरस्यां देवेशि कामिनीपर्युपासिता ।
स्निग्धनीलोत्पलनिभा हारकुण्डलमण्डिता ।।१०२१।।
दक्षिणस्यां दिशि तु सा उपास्ते परमेश्वरम् ।
वैष्णवीति च विख्याता शिवेन परमात्मना ।।१०२२।।

करोड़ों विमानों और वैमानिकों से समावृत हैं । वहाँ सात रूपधारी सप्त-मातायें भी अनेकानेक सुन्दर अलङ्कारों से अलङ्कृत होकर विराजमान हैं । ये सात मातृशक्तियाँ उन्हें चारों ओर से समावृत कर उनकी सेवा में संलग्न हैं । उनमें सर्वप्रथम मातृका का नाम 'ब्राह्मी' है । दिव्य आभरणों से भूषित ब्राह्मी अग्निकोण में अवस्थित हैं ।।१०१७-१०१८।।

'ब्राह्मी' आग्नेय दिशा में अवस्थित हैं और लगती हैं कि, एक दूसरी लक्ष्मी ही हैं । श्वेतवर्ण वाले शङ्ख और गोदुग्धवत् श्वेत एक देवी ईशान में हैं ।।१०१९।।

इसे माहेश्वरी या महेशानी कहते हैं, महा तेजस्विनी यह मातृका देवताओं से भी पूजित हैं ।

पद्मगर्भ सी सुकुमार और हारकेयूर से शोभित एक तीसरी देवी 'कौमारी' हैं ।।१०२०।।

यह उत्तर दिशा में रहती है । इसके साथ अन्य कामिनियों का दल भी रहता है ।।१०२१।।

वैष्णवी चौथी मातृका है । कोमलता में अनुपम नील उत्पलपत्र के समान श्याम, हार और केयूरधारिणी यह देवी शिव से ही अधिष्ठिता होती

शिवेनैवाधिष्ठिता सती इयं ध्याता, न तु विष्णुना। प्रत्युत एतस्य एतच्छक्त्यंशाधिष्ठितत्वादेव विष्णुत्वम् ॥१०२२॥

नीलजीमूतसङ्काशा सर्वाभरणभूषिता ।
वारुण्यां दिशि देवेशि वाराही पर्युपस्थिता ।।१०२३।।
शङ्खकुन्देन्दुधवला हारकुण्डलमण्डिता ।
ऐन्द्र्यां दिशि च सा देवी इन्द्राणी पर्युपस्थिता ।।१०२४।।
करालवदना दीप्ता सर्वाभरणभूषिता ।
नैर्ऋत्यां दिशि चामुण्डा उपास्ते परमेश्वरम् ।।१०२५।।

एताः सप्त परिवारभूताः, उमा तु देवी भगवतः शरीरार्धस्था अष्टमी । सैव योगेश्वरी यस्या एतत् प्रपञ्चः । यद्वक्ष्यति–

'उमैव सप्तधा भूत्वा.......................'। इति । (१०२९)

अत एव पूर्वं किञ्च–

'मातृकाभैरवं देवमवर्गेण प्रपूजयेत् ।
भैरवी कादिना पूज्या मातृवर्गैः प्रपूजयेत्' ॥ इति । (१/३४)

हुई भी वैष्णवी कहलाती हैं । विष्णु को तो अंश रूप से ही यह अपना कर वैष्णवी कहलाती है । यह दक्षिण दिशा में रहकर परमेश्वर की आराधना में रत है ॥१०२२॥

वारुणी दिशा में रहकर परमेश्वर भैरव की सेवा में रत देवी का नाम वाराही मातृका है । नीले बादलों के समान श्यामा सभी आभूषणों से भूषित यह देवी 'पवर्ग' की देवी है ॥१०२३॥

ऐन्द्री पूर्व दिशा को कहते हैं । इस दिशा में रहने वाली इन्द्राणी भी ऐन्द्री ही मानी जाती है । यह यवर्ग की अधिष्ठात्री देवी पूर्व दिशा की ओर से परमेश्वर की सेवा में रत रहती है ॥१०२४॥

इसी तरह नैर्ऋत्य दिशा में परमेश्वर की उपासिका करालवदना और आभूषणों से लदी देवी 'चामुण्डा' मातृका शवर्ग की देवी है ॥१०२५॥

ये सातों एक परिवार की देवियाँ हैं । उमा देवी भगवान् की शरीरार्धस्था आठवीं मातृका मानी जाती है । इसे योगेश्वरी और महालक्ष्मी भी कहते हैं । यही आठ प्रकार की होकर विश्ववाङ्मय का नियमन करती हैं ।

इसीलिये यह भी कहा जाता है कि, मातृका भैरव की पूजा अवर्ग से करनी चाहिये और भैरवी की पूजा क से लेकर ह तक के वर्णों से करनी

एतद्व्याख्यानावसरे इहत्यदेवगृहानुसारेण योजना दर्शिता ॥१०२५॥

एताश्च देव्यः–

न त्यजन्ति हि ता देवं सर्वभावसमन्वितम् ।

सर्वभावेन सर्वं सर्विकयान्तर्बहिश्च समन्वितमभेदव्याप्त्या अधिष्ठातृभूतम् ।

तदित्थं सततं परमेश्वरानुगता अप्येताः–

अंशेन मानुषं लोकं ब्रह्मणा चावतारिताः ॥१०२६॥

असुराणां वधार्थाय मनुष्याणां हिताय च ।

हितमनुग्रहः । चशब्दस्तुशब्दार्थे ।

कथमवतारिता इत्याह–

तपस्तप्त्वा महाघोरं ब्रह्मणा लोकधारिणा ॥१०२७॥

प्रजाहितकारिणा ॥१०२७॥

किञ्च–

रुरोश्चैव वधार्थाय मयापि त्ववतारिताः ।

मयापीति प्रभुणा सता, न तु ब्रह्मवत्तपस्तप्त्वा इत्यपिशब्दार्थः ।

न च एतदाकृतिमदेवासां तात्त्विकं रूपम्; अपि तु एताः–

स्वच्छन्दास्तु पराश्चान्याः परव्योम्नि व्यवस्थिताः ॥१०२८॥

चाहिये । यह योजना भगवान् की दृष्टि में पहले भी थी । जहाँ उन्होंने अष्टमातृकाओं का वर्णन प्रथम पटल में किया है ॥१०२५॥

ये सारी देवियाँ सर्वभाव भरित भगवान् भैरव का कभी परित्याग नहीं करतीं । भगवान् अभेद व्याप्ति से अन्तर बाहर सब तरह समन्वित हैं । इनका त्याग हो भी नहीं सकता । ये ऐसी हैं, फिर भी अंश रूप से ब्रह्मा के द्वारा अवतीर्ण की जाती हैं ॥१०२६॥

यही असुरों का वध भी करती हैं । भक्तों की रक्षा भी करती हैं । इसी उद्देश्य से ब्रह्मा भूतल पर इन्हें भेजते हैं । इसके लिये ब्रह्मा ने भगवान् भूतभावन की घोर तपस्या की थी; क्योंकि वे लोकधारी हैं ॥१०२७॥

भगवान् कहते हैं कि, रुरु के वध के लिये मैंने भी देवी को अंशतः अवतारित कराया था । ब्रह्मा की तरह तप करके नहीं, अपितु स्वात्म प्रभुत्व के बल पर ही ऐसा किया था । इन देवियों का तात्त्विक स्वच्छन्द पररूप परेव्योम में व्यवस्थित है ॥१०२८॥

स्वच्छन्दं पर्युपासीनाः परापरविभागतः ।

नित्यं स्थिता इति शेषः । परं स्वच्छन्दं चिद्भैरवं परेण तदविभिन्नेन रूपेण, अपरं तदुमापतिरूपम् । अनेनैव मुक्तेन विभागेनैव चायमुमापतिः परभैरवस्फार-सार एवेति । अनेनैवाशयेनाप्यादिसूत्रे परभैरवपदमस्माभिर्युक्तमेव व्याकारि पर-भैरवसत्तासारत्वादुमापतिर्भैरव इत्युक्त इति । एताश्च मातरः परशक्तिप्रपञ्चव्याप्ति-रूपा इत्याह–

उमैव सप्तधा भूत्वा नामरूपविपर्ययैः ।।१०२९।।
एवं स भगवान् देवो मातृभिः परिवारितः ।
आस्ते परमया लक्ष्म्या तत्रस्थो द्योतयञ्जगत् ।।१०३०।।

परा लक्ष्मीर्ज्ञानदीप्तिमयी उमा देवी तया सह । अतश्च उमैव सप्तधा स्थिता सती उमापतेर्देहाविभिन्नेत्यष्टशक्तिर्महेश्वरः ।।१०३०।।

अत एवैतद्व्याप्तिसारा एव–

अस्योपरि तथा चाष्टौ मूर्तयस्तस्य धीमतः ।

अस्य सुचारुणो भुवनस्योपरि तस्य धीमत इति एतदुमापत्यभिन्नस्य वक्ष्य-माणगुणतत्त्वनिष्ठस्य श्रीश्रीकण्ठस्य सम्बन्धिन्योऽष्टौ मूर्तयो मूर्तीश्वराः । तथा चेति तेनैव श्रीकण्ठाभिन्नेन प्रकारेण स्थिताः ।

ये स्वच्छन्द भैरव की परितः उपासना में परायण रहती हैं । परा और अपरा रूपों में ये नित्य अवस्थित स्वच्छन्द भैरव चित्स्वरूप ही माने जाते हैं । उनका पर रूप चिद्भैरव का और अपर रूप उमापति रूप का माना जाता है । इसीलिये उमापति को परभैरव स्फारसार कहा जाता है ।

आचार्य क्षेमराज ने प्रारम्भ में ही यह लिखा है कि, 'उमापति भैरव पर-भैरव सत्तासार होने के कारण ही उमापति भैरव कहलाते हैं' ।

ये मातायें भी पराशक्ति की प्रपञ्च रूप ही मानी जाती हैं । इसीलिये स्पष्ट कहते हैं कि, उमा ही सात रूपों को स्वीकार कर नाम रूप के भेद से भिन्न प्रतीत होती है ।।१०२९।।

इस तरह भगवान् महेश्वर इन मातृकाओं से परिवारित रहते हुए परम रूपिणी लक्ष्मी के साथ इस जगत् को विद्योतित करते हुए वहाँ विराजमान हैं ।।१०३०।।

इस 'सुचारु' भुवन के ऊपर उमापति से अभिन्न गुणतत्त्वनिष्ठ श्री श्रीकण्ठ सम्बन्धिनी आठ मूर्त्तियाँ विद्यमान हैं । इन्हें मूर्त्तीश्वर कहते हैं । ये पृथक् दृष्टिगत

ता आह–

शर्वो भवश्च भगवान् रुद्रः पशुपतिस्तथा ।।१०३१।।

ईशानश्चैव भीमश्च महादेवोग्र एव च ।

वक्ष्यमाणदृष्ट्यनुसारं ईशानादनन्तरं रुद्रः पठनीयः । महादेवेन सहित उग्र इति समासः ।

एवं नामनिर्दिष्टाभिः–

एताभिः कुरुते शर्वो मूर्तिभिः सृष्टिमुत्तमाम् ।।१०३२।।

भगवानुमापतिरेताभिरष्टभिः, मूर्तिभिरित्यनेन मूर्तीश्वराष्टकेन परापरादिभेदेन सर्वमूर्ध्वाधरपदमधितिष्ठतो भगवतो निजशक्तिचक्रात्मना सृष्टिमिति स्थूलसूक्ष्मप्रभावभूततन्मात्रादिरूपवक्ष्यमाणकलादिरूपां सृष्टिम्, उत्तमामित्युक्तसूक्ष्मस्थूलसृष्टिमुद्गतामूर्ध्वे स्थितां भगवानुमापतिरेव वक्ष्यमाणदृष्ट्या परापरभेदेन तत्र तत्र अवस्थितः करोति ॥१०३२॥

का सा सृष्टिरित्याह–

भूमिरापोऽनलो वायुराकाशं सूर्य एव च ।

सोमश्च यजमानश्चेत्यष्टौ सृष्टिरियं स्मृता ।।१०३३।।

होते हुए भी श्री श्रीकण्ठ से अभिन्न ही माने जाते हैं । इनके नाम १.शर्व, २.भव, ३.पशुपति, ४.ईशान, ५.रुद्र, ६.भीम, ७.महादेव और ८.उग्र हैं ।

इन्हीं आठ मूर्त्तीश्वरों के द्वारा भगवान् शर्व उत्तम सृष्टि करते हैं ॥१०३१-१०३२॥

भगवान् उमापति इस मूर्त्तीश्वराष्टक के माध्यम से सृष्टिक्रिया सम्पन्न करते हैं । यह ध्यान में रखने की बात है कि, पर और अपर पदों को अधिष्ठित करने वाले भगवान् इस मूर्त्तीश्वराष्टक रूप शक्तिचक्र के द्वारा ही सृष्टि सम्पन्न कराते हैं । सृष्टि को उत्तम कहना भगवान् की कृति होने के कारण उचित है ॥१०३२॥

यह सृष्टि भी आठ प्रकार की है । १.भूमि, २.जल, ३.वायु, ४.अग्नि ५.आकाश, ६.सूर्य, ७.सोम और ८.यजमान । ये भेद भी १.स्थूल, २.सूक्ष्म और ३.परभेद से तीन प्रकार के हैं । अपने निर्धारित स्थान से संसार के रूप में प्रत्यक्ष हो रहे हैं ।

उद्घात एक प्रकार की दीक्षा है । इसमें बिन्दु पद से पृथिवी आदि पञ्चभूत के स्वरूप तक की बात स्पष्ट हो जाती है । सूर्य और सोम करणशक्ति

एतदष्टकं स्थूलसूक्ष्मपरभेदेन तत्र तत्र अवस्थितं मन्तव्यम् । तेषां च मध्या-दुद्घातदीक्षायां बिन्द्वादिपदैः पृथिव्यादिस्वरूपं पूर्वं दर्शितम्, सूर्यसोमावपि करण-शक्तिरूपौ, तदाश्रयत्वेन च यजमानः प्रमातेति सर्वाध्वनि स्थितमेवैतत् ।

एवमेते मूर्तीश्वराः–

सर्वात्मना तु ते तस्मिन्नन्यत्रैकांशतः स्थिताः ।

तस्मिन्निति बुद्धितत्त्वगते मूर्तीशावरणे । अन्यत्रेति तन्मात्रावरणे ब्रह्माण्डा-न्तरे च ।

उपसंहारभङ्ग्या भगवत उमापतेर्यावती प्रपञ्चव्याप्तिस्तां दर्शयति–

एवमस्मिन् स्थितो देवो ब्रह्मलोकोर्ध्वतस्तथा ।।१०३४।।
मेरोश्च मूर्धनीशानो योगाष्टकमथेष्यते ।
श्रीकण्ठ इति नाम्ना च कैलासनिलयस्तथा ।।१०३५।।
शर्वाद्याभिश्च तनुभिरष्टाभिर्व्याप्य तिष्ठति ।

अस्मिन्निति सुचारुभुवने, ब्रह्मलोकोर्ध्वत इति रुद्रलोके, मेरोमूर्ध्नि ज्योतिष्क-शिखरे अथानन्तरमेष एव भगवान् योगाष्टकमिष्यते, न तु तदन्यत्किञ्चित् ।

रूप से सृष्टि का सन्धान करते हैं । यजमान तो प्रमाता ही होता है । इन तथ्यों का सभी अध्वा के सन्दर्भों में भावन करना आवश्यक है ॥१०३३॥

ये सभी मूर्त्तीश्वर स्वयं में पर और अंशतः अपर रूप से अवस्थित हैं । यह बुद्धितत्त्वगत मूर्त्तीश्वरों का आवरण कहा जा सकता है । तन्मात्र के आवरण में अंश रूप से ही उनका अवस्थान है–यह स्पष्ट हो जाता है ।

इस प्रकार की इस परापर रूप गहन प्रपञ्च व्याप्ति में अवस्थित भगवान् उमापति सुचारु भुवन में सुशोभित हैं । ब्रह्मलोक के ऊर्ध्व रुद्रलोक में इनका दूसरा स्वरूप है ॥१०३४॥

मेरु के मूर्धाभाग अर्थात् उसके ज्योतिष्क शिखर पर यही भगवान् उमापति योगाष्टक रूप से अवस्थित हैं । इसी प्रकार यही भगवान् उमापति कैलास निलय में श्रीकण्ठ नाम से ही विख्यात हैं ॥१०३५॥

यही भगवान् उमापति शर्व आदि मूर्त्तीश्वर रूपों के माध्यम से उन उन स्थूल-सूक्ष्मादि प्रपञ्च व्याप्ति में व्याप्त हैं । विश्व में व्याप्त उन उन रूपों में यही भगवान् उमापति ही माने जाते हैं । यह निश्चय ध्रुव सत्य है कि, सर्वत्र

तथा श्रीकण्ठ इति नाम्नायमेव कैलासनिलयश्चोमापतिरयमेव शर्वाद्याभिश्च मूर्तीश्वरमूर्तिभिस्तत्र तत्र तत्तत्स्थूलसूक्ष्मादि विश्वं व्याप्य तदैकात्म्येनावस्थिताभिरयमेव स्थित इति प्रपञ्चव्याप्तिरियं सर्वदैकस्यैव परमेश्वरस्येति यावत् । एतच्चैकादशे सुतरां स्फुटीभविष्यति ।

एषामेतदुमापतिभुवनमुत्पत्तिस्थानमित्याह–

ये तु माहेश्वरं योगं सगुणं पर्युपासते ।।१०३६।।

भक्त्या च ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च ।

दृष्ट्वा देहस्थमात्मानं तेऽत्र यान्ति मनीषिणः ।।१०३७।।

ये तु माहेश्वरशास्त्रनिरूपितं सत्त्ववृत्तिनिष्ठत्वात् सगुणं न तु ज्ञानक्रियादि-शक्तिस्फारसमावेशरूपं परयोगं परितो दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारैरुपासते सेवन्ते, ते देहस्थं न तु अनवच्छिन्नरूपमात्मानं ज्ञात्वा कर्तृरूपं स्वं स्वभावं साक्षात्कृत्य अत्र यान्तीत्युमापतिपदं सायुज्यादिना प्राप्नुवन्ति । अत्र च भक्तिर्मुख्यं कारणं सत्य-ब्रह्मचर्यदमेषु प्रधानभूतम् । दम इन्द्रियजयः । इत्थं चास्य योगस्य सगुणत्वमेव व्यक्तीकृतम् ॥१०३७॥

एक परमेश्वर की सत्ता ही स्फुरित है और उसी की व्याप्ति मान्य है । जो भगवान् महेश्वर के सगुण रूप की उपासना करते हैं, उनका उत्पत्तिस्थान भी यही है ॥१०३६॥

जो भक्ति और श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं । सत्य का आचरण कर इन्द्रिय संयमपूर्वक आचरण करते हुए देहस्थ देवताचक्र के सञ्चालक आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कर लेते हैं, ऐसे मनीषी लोग ही इस सुचारु भुवन में पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त कर धन्य हो जाते हैं ॥१०३७॥

महेश्वर शास्त्र में निरूपित सत्त्ववृत्ति में निष्ठ भक्त सगुण स्वरूप की उपा-सना करते हैं । ज्ञानी लोग तो क्रियादि शक्तियों के स्फार में समावेश युक्त परयोग की ही उपासना में रत रहते हैं । ऐसे लोगों के विषय में यहाँ नहीं कहा गया है । केवल सगुण उपासकों की गति की ही बात यहाँ कही गयी है ।

देह में अवस्थित अनवच्छिन्न स्वात्म महेश्वर का नहीं, केवल अपने स्वभाव का साक्षात्कार करते हैं, वही भगवान् उमापति का सायुज्य प्राप्त करते हैं । यहाँ सगुण भक्ति को ही प्रमुख कारण माना गया है । यहाँ सगुण योग का सुपरिणाम ही प्रदर्शित है ॥१०३७॥

न च सगुणशाम्भवयोगप्राप्यमेतत्पदम्, यावत्–

दृष्ट्वा च मण्डलं तस्य भक्त्या च परया भृशम् ।
मुक्तद्वैता यतात्मानस्तत्र यान्ति मनीषिणः ।।१०३८।।

तस्येति उमापतेर्मण्डलमिति तदधिकरणं यागं दृष्ट्वा तद्दर्शनात्समयदीक्षां प्राप्य तद्भक्त्या च मुक्तद्वैता इत्युमापतिरेव एका पारमार्थिकी देवतेति निश्चित्य तत्सेवार्थं प्रयतचिताः पूर्ववत्सायुज्यादिना एतत्पदं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः परमेश्वर-शास्त्राश्वस्तबुद्धयः ॥१०३८॥

अथ–

तेषां चैवोपरिष्टात्तु सुशिवा द्वादश स्थिताः ।

सुष्ठु शिवा आकृतिमत्त्वेऽपि शिवैक्यप्राप्त्या पूर्णसार्वज्ञ्यादिरूपाः । ते च–

वामो भीमस्तथेशश्च शिवः शर्वस्तथैव च ।।१०३९।।
विद्यानामधिपश्चैव एकवीरः प्रचण्डधृत् ।
ईशानश्चाप्युमाभर्ता अजेशोऽनन्त एव च ।।१०४०।।
तथा एकशिवश्चापि सुशिवा द्वादश स्मृताः ।

एषां ध्यानाय–

सर्वे कुङ्कुमसङ्काशाः सूर्यकोटिसमप्रभाः ।।१०४१।।
भुवनेषु विचित्रेषु शङ्खाकारेषु संस्थिताः ।

मूर्तीश्वराणां तु अधिष्ठेयपृथिव्याद्युचितमेव रूपमिति कृत्वेह नोक्तम् । अथ–

अत ऊर्ध्वं वीरभद्रो मण्डलाधिपतिः प्रभुः ।।१०४२।।

इस उमापति भगवान् के अधिकरण में सम्पन्न होने वाले मण्डल और याग का दर्शन करने वाले और समयदीक्षा प्राप्त करने वाले लोग भक्ति के माध्यम से द्वैतमुक्त होकर भगवान् उमापति ही एक पारमार्थिक सत्ता के साक्षत् प्रतीक हैं, यह निश्चय कर परमेश्वर शास्त्र के मनीषी वहाँ जा पाते हैं ॥१०३८॥

इन मूर्त्तीश्वरों के ऊपर द्वादश सुशिव अवस्थित हैं । शिवैक्य प्राप्ति से पूर्ण सार्वज्ञादि रूप प्राप्त करने वाले सिद्ध, सुशिव पद पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं । इनके नाम इस प्रकार हैं–१.वाम, २.भीम, ३.ईश, ४.शिव, ५.शर्व, ६.विद्याधिप, ७.एकवीर, ८.ईशान, ९.प्रचण्डधृत्, १०.अजेश, ११.अनन्त और १२.एकशिव । ये सभी रक्ताभ और सूर्य की प्रभा के समान प्रभा वाले हैं ॥१०३९-१०४१॥

वक्ष्यमाणस्य महादेवादिमण्डलेश्वराष्टकस्याधिपतिः । अस्यैव चासौ परा मूर्तिर्यः पूर्वं श्वेतादिमध्ये तदुपरि चोक्तः, अत एवायं प्रभुरिति ॥१०४२॥

अथ एतद्ध्यानादिपरिनिष्ठतो यः, सः–

तत्सायुज्यमनुप्राप्य तेनैव सह मोदते ।

अथ–

अत ऊर्ध्वं महादेवि महादेवाष्टकं विदुः ॥१०४३॥

महोदवो महातेजा वामदेवभवोद्भवौ ।

एकपिङ्गेक्षणेशानौ भुवनेशपुरःसराः ॥१०४४॥

अङ्गुष्ठमात्रसहिता महादेवाष्टके शिवाः ।

एते च–

मायाञ्जनविनिर्मुक्ताः परमेशानसम्मताः ॥१०४५॥

परमेशानस्य सम्मता इति तन्त्रावतारपटलदर्शितनीत्या पारम्पर्येण अनन्त-भट्टारकमूर्तिना परमेश्वरेण अनुगृहीताः, अतश्च प्राप्तप्रबोधप्रकर्षत्वान्मायागर्भा-

---

इनके शङ्ख के आकार के भुवन बड़े विचित्र हैं । उन्हीं में ये रहते हैं । मूर्त्तीश्वरों के अधिष्ठेय पृथ्व्यादि उचित स्थानों के होने के कारण उनके विषय में अलग से नहीं कहा गया है । इसके ऊपर मण्डलाधिपति प्रभु अर्थात् सर्वसमर्थ वीरभद्र का मण्डल है । वीरभद्र महादेवादि मण्डलाधिपों के अष्टक के अधिपति हैं । इनकी परामूर्त्ति का श्वेतादि के मध्य में पहले ही कहा गया है । इसीलिये यहाँ प्रभु शब्द का प्रयोग किया गया है ॥१०४२॥

इस आराध्य का सायुज्य प्राप्त करने वाले लोग उन्हीं के साथ जीवन के सौभाग्य का आनन्द लेते हैं । इसी के ऊपर महादेवाष्टक का क्षेत्र आता है ॥१०४३॥

१.महादेव, २.महातेज, ३.वामदेव, ४.भव, ५.उद्भव, ६.एकपिङ्गेक्षण, ७.ईशान और ८.भुवनेश ॥१०४३-१०४४॥

महादेवाष्टक के सभी रुद्र अङ्गुष्ठमात्र माप के हैं । ये सभी माया की मोह-कालिमा से विनिर्मुक्त हैं । परम ईशान की बराबरी नहीं करते, बल्कि समान शोभा वाले माने जाते हैं । अनन्त भट्टारक मूर्त्ति धारण करने वाले परमेश्वर से ये नित्य अनुगृहीत हैं ।

परिणामतः प्रबोध के प्रकर्ष के कारण मायागर्भ के अधिकार में रहते हुए भी माया के मोहपाश रूपी अञ्जन की कालिमा से विनिर्मुक्त हैं ।

धिकारित्वेऽपि मायाञ्जनविनिर्मुक्ता इत्युक्तम् । एते चापरेण रूपेणेहोक्ता मण्डलेश्वराः, परेण रूपेण तु कालतत्त्वे भविष्यन्ति । ते तु श्रीपूर्वशास्त्रे–

'महातेजःप्रभृतयो मण्डलेशानसंज्ञकाः ।
मायातत्त्वे स्थिताः....................'॥ (५/२८)

इत्युक्ता इति प्रक्रियाभेदः ॥१०४५॥

उपसंहरति–

बुद्धितत्त्वे समासेन भुवनेशा मयोदिताः ।

देवयोनिक्रोधतेजोयोगमूर्त्यष्टकानि पञ्चेति चत्वारिंशत्, योगाष्टकोपरि पुनरौमं श्रैकण्ठं च भुवनम्, ततः सुशिवद्वादशकमहादेवाष्टकं चेति द्वाषष्टिरत्र भुवनान्युक्तानीति विततायामिह भुवनदीक्षायां सर्वाणि शोध्यानि । संक्षिप्तायां तु यः शोधनप्रकारः, स पञ्चमे पटले निर्णीतः ।

अधोर्ध्वं गुणतत्त्वं तु

गुणसाम्यात्मनः प्रकृतितत्त्वात्सत्त्वगुणगुणोत्कर्षात्म अत्यन्तविलक्षणमत एव बुद्धिरिति विलक्षणव्यपदेश्यं बीजादिव अङ्कुररूपं कथं कार्यं जायते यावदुच्छूनताप्रायं किञ्चिद्वैषम्यात्ममध्ये गुणतत्त्वं प्रकृतितत्त्वादनतिभिन्नव्यपदेशं न जायत इत्याशयेनेह गुणतत्त्वं तत्त्वान्तरतया दर्शितम् ।

श्रीपूर्व शास्त्र में भी इसकी चर्चा आयी है । 'महातेज आदि नामधारी महातेजांश और मण्डलेशान्त आदि महामाया तत्त्व में अवस्थित हैं' । इसमें जो भेद है, वह प्रक्रिया भेद के कारण है ॥१०४५॥

ये सभी भुवनेश्वर बुद्धितत्त्व में ही अवस्थित हैं, जिन्हें मैंने अभी अभी सुनाया है । देवयोनि, क्रोध, तेज, योग और मूर्त्यष्टक ये पाँचों कुल ४० होते हैं ।

योगाष्टक के ऊपर औम और श्रैकण्ठ भुवन, इसके बाद द्वादश सुशिव, पुनः महादेवाष्टक कुल मिलाकर इसमें बासठ भुवन (४०+२+१२+८=६२) होते हैं । वितत भुवन दीक्षा में इन सबका शोधन आवश्यक माना जाता है । शोधन का संक्षिप्त प्रकार पञ्चम पटल में निर्णीत है ।

इसके ऊपर गुणतत्त्व आते हैं । गुण, साम्यात्मक प्रकृति तत्त्व माना जाता है । इसमें सत्त्वगुण का उत्कर्ष बड़ा विचित्र होता है । इसको बुद्धि की संज्ञा दी गयी है । यह व्यपदेश भी विलक्षण ही है । बीज से अङ्कुर रूप कार्य की उत्पत्ति होती है । वह अङ्कुरोत्पत्ति किस तत्त्व के प्रकर्ष से होती है, यह विचारणीय है ।

श्रीमालिनीविजयादौ तु किञ्चिद्वैषम्यावस्थायामित उच्छ्रितायामिव बीजाभिधानवद्‌गुणव्यपदेशस्यानिवृत्तेर्गुणतत्त्वं प्रकृतितत्त्वाभेदेनैवोक्तं सङ्क्षिप्तभुवनदीक्षाप्रतिपादनाशयेन । इह तु विततया भौवनविधिप्रतिपादनस्य प्रस्तुतंत्वात्प्रकृतितत्त्वाद्भेदेन गुणतत्त्वं दर्शितमिति नागमविसंवादः शङ्कनीयः ।

यच्च एतद्‌गुणतत्वम्–

तस्मिंश्चैव व्यवस्थितम् ।।१०४६।।

गुरुपङ्क्तित्रयं दिव्यं

दिव्यमिति प्रभावातिशययोगात् । तच्च–

गुणैरन्तरितं स्थितम् ।

सत्त्वादिभूमिकामुपविष्टमित्यर्थः । तत्र–

प्रथमा तमसः पङ्क्तिरुपरिष्टाद्व्यवस्थिता ।।१०४७।।

तमोगुणोर्ध्वमधिरुढेत्यर्थः ।।१०४७।।

यह सोचने की बात है कि, जब तक प्रकृतितत्त्व में कुछ उच्छूनता रूप वैषम्य न हो जाय और साम्यात्मकता में कुछ उद्दीप्त न हो जाय । तब तक कोई कार्य कैसे उत्पन्न होगा ?

वस्तुतः गुणतत्त्व है क्या ? प्रकृति में कुछ वैलक्षण्य की स्फुरत्ता ही है । उससे कुछ मिलता जुलता व्यपदेश वाला तत्त्व ही तो है । इसीलिये गुणतत्त्व को प्रकृति से अलग पदार्थ के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है ।

श्रीमालिनीविजय आदि शास्त्रों में यह स्पष्ट है कि, साम्यावस्था से किञ्चिद्वैषम्य में कुछ उच्छ्राय तो हो ही जाता है । बीज से अङ्कुर की तरह इसमें पार्थक्य दृष्टिगोचर नहीं होता, अपितु उसमें ही कुछ स्फार सा जो उससे अलग नहीं, वरन् अभेद भाव में ही स्फुरित स्फार सा गुणतत्त्व बन जाता है । रहती है मूलतः प्रकृति ही । संक्षिप्त भुवनदीक्षाप्रतिपादन की दृष्टि से इन तथ्यों का अनुसन्धान करना चाहिये । यहाँ गुणतत्त्व को प्रकृतितत्त्व से अलग कहने का कारण भुवनसम्बन्धिनी विधि के प्रतिपादन में सरलता की दृष्टि ही है । इसमें आगमों में विसंवाद की बात नहीं कहीं जा सकती । इसी आधार पर भगवान् यह घोषित कर रहे हैं कि, यह गुणतत्त्व उसी प्रकृतितत्त्व में ही व्यवस्थित है ।।१०४६।।

गुरुपंक्तित्रय जिसे दिव्य संज्ञा से उसके प्रभाव के आतिशय्य के कारण विभूषित किया गया है, यह भी गुणों से ही अन्तरित है अर्थात् सत्त्व आदि भूमि का ही स्पर्श करती है । गुरुपंक्ति की पहली पंक्ति उपरिष्टात् वर्त्तमान तमःप्रधान पंक्ति है । इसीलिये इसे तमस् पंक्ति कहते हैं ।।१०४७।।

तदत्र–

तेषां नामानि कथ्यन्ते यथावदनुपूर्वशः ।

तेषामिति पङ्क्तिनिष्ठानां गुरूणाम् ।

शिवः प्रभुर्वामदेवश्चण्डश्चैव प्रतापवान् ।।१०४८।।

प्रह्लादश्चोत्तमो भीमः करालः पिङ्गलस्तथा ।

महेन्द्रो दिनकृच्चैव प्रतोदो दक्ष एव च ।।१०४९।।

कलेवरश्च विख्यातस्तथा चैव कटङ्कटः ।

अम्बुहर्ता च नारीशः श्वेत ऋग्वेद एव च ।।१०५०।।

यजुर्वेदः सामवेदस्त्वथर्वा सुशिवस्तथा ।

विरूपाक्षस्तथा ज्येष्ठो विप्रो नारायणस्तथा ।।१०५१।।

गण्डो नरो यमो माली गहनेशश्च पीडनः ।

प्रथमा पङ्क्तिरुद्दिष्टा रुद्रैर्द्वात्रिंशता स्मृता ।।१०५२।।

अथ–

रजसश्चोपरिष्टात्तु द्वितीया पङ्क्तिरुच्यते ।

शुक्लो दासः सुदासश्च लोकाक्षः सूर्य एव च ।।१०५३।।

सुहोत्र एकपादश्च गृद्ध्रश्चैव शिवेश्वरः ।

गौतमश्चैव योगीशो दधिबाहुस्तथापरः ।।१०५४।।

ऋषभश्चैव गोकर्णो देवश्चैव महेश्वरः ।

गुह्येशानः शिखण्डी च जटी माली तथोग्रकः ।।१०५५।।

---

३२. तमःप्रधाना गुरुपंक्ति–

१.शिव, २.वामदेव, ३.चण्ड, ४.प्रह्लाद, ५.भीम, ७.कराल, ८.पिङ्गल, ९.महेन्द्र, १०.दिनकृत्, ११.प्रतोद, १२.दक्ष, १३.कलेवर, १४.कटङ्कट, १५.अम्बुहर्त्ता, १६.नारीश, १७.श्वेत, १८.ऋग्वेद, १९.यजुर्वेद, २०.सामवेद, २१.अथर्ववेद, २२.सुशिव, २३.विरूपाक्ष, २४.ज्येष्ठ, २५.विप्र, २६.नारायण, २७.गण्ड, २८.नर, २९.यम, ३०.माली, ३१.गहनेश और ३२.पीडन । यह पहली गुरुपंक्ति है । इसमें ३२ रुद्र अन्तरित है । ये सभी रुद्र तामसिकता के प्रभाव से भावित हैं, फिर भी गुरुवत् गौरवास्पद हैं ॥१०४८-१०५२॥

इसके ऊपर दूसरी रजःप्रधाना द्वितीय गुरुपंक्ति है । इसमें तीस रुद्र आते हैं । वे क्रमशः इस प्रकार हैं—१.शुक्ल, २.दास, ३.सुदास, ४.लोकाक्ष, ५.सूर्य, ६.सुहोत्र, ७.एकपाद, ९.गृद्ध्र, १०.शिवेश्वर, ११.गौतम, १२.गुह्येशान, १३.दधिबाहु, १४.ऋषभ, १५.गोकर्ण १६.महेश्वर, १७.शिखण्डी, १८.उग्रक,

भृगुः शिखी तथा शूली सुगतिश्च सुपालनः ।
अट्टहासो दारुकश्च लाङ्गलिश्चातिदण्डकः ।।१०५६।।
भवनश्च तथा भव्यो लकुलेशस्तथैव च ।
त्रिंशद्रुद्राः समाख्याता द्वितीया पङ्क्तिरुत्तमा ।।१०५७।।

अथ–

सत्त्वस्य चोपरिष्टात्तु तृतीया पङ्क्तिरुच्यते ।
देवोऽरुणो दीर्घबाहुरतिभूतिश्च स्थाणुकः ।।१०५८।।
सद्योजातस्तथा झिण्ठी षण्मुखश्चतुराननः ।
चक्रपाणिश्च कूर्माख्यस्त्वर्धनारीश्वरस्तथा ।।१०५९।।
कपाली भूर्भुवश्चैव वषट्कारस्तथैव च ।
वौषट्कारस्तथा स्वाहा स्वधा च परिकीर्तितः ।।१०६०।।
संवर्तकश्च भस्मेशः कामनाशन एव च ।
एकविंशतिरुद्रास्तु पङ्क्तिरेषा तृतीयका ।।१०६१।।

एवमेते त्र्यशीतिर्गुरवो महेश्वरेण गुणतत्त्वभोगप्राप्तिकामानां तदुचितज्ञानयोगप्रदाः परमेश्वरा ज्ञेयास्तथा कञ्चित्कालं नियोजितास्तत्र क्रीडन्ति । तदाह–

ज्ञानयोगबलोपेताः क्रीडन्ते दैशिकोत्तमाः ।

उत्तमपदेन गुणतत्त्वावस्थितत्वेऽपि नैषां तदुपरक्तत्वमित्याह । अत एव क्रीडन्ति, न तु इतरवद्गुणैर्बद्धाः । यतः–

१९.भृगु, २०.शिखी, २१.शूली, २२.सुगति, २३.सुपालन, २४.अट्टहास, २५.दारुक, २६.लाङ्गलि, २७.अतिदण्डक, २८.भवन, २९.भव्य और ३०.लकुलेश ॥१०५३-१०५७॥

इसके ऊपर सत्त्वप्रधाना तीसरी गुरुपंक्ति आती है । इसमें २१ रुद्र आते हैं । वे क्रमशः इस प्रकार हैं—१.अरुण, २.दीर्घबाहु, ३.अतिभूति, ४.सद्योजात, ५.झिण्ठी, ६.षण्मुख, ७.चतुरानन, ८.चक्रपाणि, ९.कूर्म, १०.अर्धनारीश्वर, ११.कपाली, १२.भूः, १३.भुवः, १४.वषट्कार, १५.वौषट्कार, १६.स्वाहा, १७.स्वधा, १८.संवर्त्तक, १९.भस्मेश, २०.कामनाशन और २१.स्थाणुक ॥१०५८-१०६१॥

ये तिरासी गुरुवर्ग के रुद्र, भगवान् महेश्वर द्वारा गुणतत्त्व भोगप्राप्ति की कामना वाले लोगों को तदनुरूप ज्ञान प्रदान करने के लिये नियुक्त हैं और ज्ञान योगबल से समन्वित हैं । ये गुणतत्त्व में अवस्थित हैं, किन्तु इन गुणों से उप-

संसारपाशनिर्मुक्ताः

आणव-कार्म-मायीयमलनिर्मुक्ता जीवन्मुक्ता इत्यर्थः ।

किञ्च–

महामोहविवर्जिताः ॥१०६२॥

महामोहः अत्र अख्यातिरूपा माया, तद्वियुक्ताः, अत एव शुद्धाः ॥१०६२॥

शुद्धविद्योदयादेते–

त्रिनेत्रा गुरवः सर्वे शुद्धस्फटिकनिर्मलाः ।
सर्वज्ञाः सर्वगाश्चैव लोकानुग्रहकारकाः ॥१०६३॥

सर्वज्ञत्वं सर्वज्ञानयोगसिद्धत्वमेषाम् । सत्त्वगुणतत्त्वास्पदभ्रमाद्यत्साङ्ख्य-पातञ्जलदृष्ट्या एतत्कैश्चिद् योजितम्, तदसदेव । केवलमेषां तावद्भोगलिप्सुजना-शयेन तावत्पदप्रापकाणां परमेश्वरयोगात्तत्र अवस्थानम् ॥१०६३॥

अतश्च एषाम्–

गजाकाराणि दिव्यानि सर्वेषां भुवनानि तु ।

पूर्वम्–

'वीरभद्रनिकेतश्च भद्रकाल्यालयस्तथा ।

त्रयोदशभिः..........................'॥ इति (७५३)

रक्त नहीं हैं । वे स्वात्मानन्द में प्रसन्न रहते हैं । यही उनकी क्रीडा का स्वरूप है । इन्हें देशिकोत्तम कहते हैं । सांसारिक पाशों से नित्य विनिर्मुक्त हैं । आणव-कार्म और मायीय मलों का इन पर कोई प्रभाव नहीं । अतः ये महामोह अर्थात् अख्याति रूपा माया से निर्मुक्त और नितान्त शुद्ध हैं ॥१०६२॥

इनमें शुद्ध विद्या के नित्योदय के कारण ये गुरु कहलाते हैं । ये सभी त्रिनेत्र हैं । शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल हैं, सर्वज्ञ हैं । सर्वत्र हैं और लोकानुग्रह में समर्थ हैं । सर्वज्ञानसिद्धि के कारण इन्हें सर्वज्ञ कहते हैं । ये केवल भोगलिप्सु लोगों को उनके अभिलाषपूर्त्ति के प्रापकतत्त्वमात्र हैं । परमेश्वर की आज्ञा से ही इनका गुणावस्थान है । उसका इन पर कोई प्रभाव नहीं ॥१०६३॥

इनके भुवनों की आकृति गजाकार ही है । पहले श्लोक १०/७५३ द्वारा जो तेरह भुवन संकलित किये गये थे । वहाँ के वे भुवन दूसरे हैं । उनसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं । वे वीरभद्र भुवन के ऊपर के भुवन हैं ।

ग्रन्थेन श्वेतादिभुवनान्येकादशभद्रकालीवीरभद्रभुवनाभ्यां सह त्रयोदश सङ्कलितानि । यत्पुनः–

'............अन्यैश्च भुवनैरुपशोभितम्' । (७५३)

इत्युक्तम्, तत्र अन्यानि भुवनानि वीरभद्रभुवनोर्ध्वगतानि ।

अथ अण्डवर्तिनोऽङ्गुष्ठमात्रप्रमाणरुद्रभुवनात्प्रभृति गुणतत्त्वान्तमसङ्कलितान् रुद्रान् सङ्कलयितुमाह–

बुद्धेः प्रकृतिपर्यन्ते ये रुद्रास्तान्निबोध मे ।।१०६४।।

बुद्धेरिति बुद्धेः पूर्वं ये सङ्कलयितुमवशिष्टास्तान्निबोध । किमवधीत्याह प्रकृतिपर्यन्ते प्रकृतिः पर्यन्ते यत्र स प्रकृतिपर्यन्तो गुणतत्त्वम्, तत्र तदवधीत्यर्थः ।।१०६४।।

तान् रुद्रान् भुवनसङ्कलनया सङ्कलयति–

शतद्वयं सप्तकं च भुवनानां वरानने ।

तत्र जलावरणेशस्य अङ्गुष्ठमात्रस्य पृथ्व्याः अब्धेः श्रियः सरस्वत्या गुह्याष्टकस्येति त्रयोदश भुवनानि, ततः शिवाग्नेरतिगुह्याष्टकस्य वाय्वीशस्य गुह्यातिगुह्याष्टकस्य आकाशेशस्य पवित्राद्यष्टकस्य, ततः शर्वादिमूर्तीशाधिष्ठितानि तन्मात्रसूर्यसोमदेवमण्डलान्यष्टौ, ततोऽपि करणप्रकाशरश्मिसूर्यसोममण्डलानि पञ्च, ततोऽहङ्कारेशस्य, ततः स्थाण्वष्टकस्याष्टावितीयदन्तं द्वाषष्टिर्भुवनानि, बुद्धावपि पूर्वोक्तनीत्या द्वाषष्टिः, गुणतत्त्वे त्र्यशीतिरित्येतच्छतद्वयं सप्ताधिकं भवति ।

किञ्चात्रैव–

अन्तर्भूताः स्थिताश्चान्ये ये ते नोक्ता वरानने ।।१०६५।।

इस अण्डवर्त्ती अङ्गुष्ठमात्र मान के रुद्र भुवनों से गुणतत्त्व पर्यन्त भुवनों के विषय में कह रहे हैं कि, बुद्धि से प्रकृति पर्यन्त जितने रुद्र और उनके भुवन हैं, उनको मैं बता रहा हूँ ।।१०६४।।

इनकी संख्या २०७ है । १–जलावरणेश्वर के पृथ्वी समुद्र, सरस्वती और गुह्याष्टक के तेरह भुवन । २–शिवाग्नि अति गुह्याष्टक, वायु के अधिपति के, गुह्यातिगुह्याष्टक के, आकाशेश पवित्राद्यष्टक के तथा शर्व आदि मूर्त्तीश्वरों से अधिष्ठित तन्मात्र सूर्य सोम वेद के आठ तथा ३–करण प्रकाश रश्मि सूर्य-सोम मण्डल के पाँच ४–अहङ्कारेश्वर, ५–स्थाण्वष्टक के आठ–कुल मिलाकर बासठ भुवन, ६.बुद्धि के भी बासठ, ७.गुण तत्त्व के ८३ ये सब मिलकर

विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्ध्यादिभुवनेश्वरा ये बृहत्तन्त्रेषु रुद्रा उक्ताः, तेऽत्रैवान्तर्भूतत्वात्पृथगिह नोक्ताः ॥१०६५॥

अथ–

गुणानामुपरिष्टात्तु प्रधानं परिकीर्तितम् ।

प्रधीयते अत्र गुणान्तं विश्वमिति प्रधानम् ।

तत्र ये संस्थिता रुद्राः

तान्–

कथयामि समासतः ॥१०६६॥

क्रोधेश्वरश्च संवर्तो ज्योतिः पिङ्गलक्रूरदृक् ।

पञ्चान्तकैकवीरौ च शिखेदसहितेश्वराः ॥१०६७॥

शिखेदसहिता अष्टौ एते प्रधानतत्त्वगता ईश्वर इत्यर्थः ॥१०६७॥

त एते–

तत्त्वे तु प्राकृते रुद्रा महावीर्या प्रकीर्तिताः ।

दुरतिक्रमा इत्यर्थः । अस्य प्रधानतत्त्वगता कि स्वरूपमित्याह–

गुणानां या परा काष्ठा तत्प्रधानमिहोच्यते ॥१०६८॥

परा काष्ठा अविभागावस्था ॥१०६८॥

अथ–

अतः पुरुषतत्त्वे तु भुवनानि निबोध मे ।

६२+६२+८३=२०७ भुवन होते हैं । भगवान् कहते हैं कि, देवि ! अन्य सारे कथित और अनुक्त सभी इन्हीं में अन्तर्भूत हैं ॥१०६५॥

गुणों के ऊपर प्रधानतत्त्व भुवन हैं । गुणान्त विश्व का इनमें आधान होता है । अतः इसे प्रधान कहते हैं । इनमें जितने रुद्र अवस्थित हैं, इन्हें संक्षेप में कहने जा रहा हूँ ॥१०६६॥

प्रधानतत्त्वगत ईश्वर अर्थात् प्रधानतत्त्वेश के रूप में १.क्रोध, २.संवर्त्त, ३.ज्योति, ४.पिङ्गल, ५.क्रूरदृक्, ६.पञ्चान्तक, ७.एकवीर और ८.शिखेद ये आठ हैं ॥१०६७॥

इस प्राकृततत्त्व के ये महेश्वर रुद्र महापराक्रमी होते हैं । यहाँ प्रधानतत्त्व में गुणों की पराकाष्ठा होती है । पराकाष्ठा ही अविभागमयी अवस्था मानी जाती है ॥१०६८॥

अत इति प्रकृतेरूर्ध्वम्, पारमेशस्वरूपगोपनावशाद्यत्सङ्कुचितचिदाभासरूपं पुरुषतत्त्वं तत्र, सङ्कोचांशाश्रयाणि भुवनानि तु चिन्मात्राश्रयाणि तस्य निर्विकारत्वात् । तत्र तावत्–

अम्बा च सलिला ओघा वृष्टिः सार्धं च तारया ।।१०६९।।
सुतारा च सुनेत्रा च कुमारी च ततः परम् ।
उत्तमाम्भसिका चैव तुष्टयो नव कीर्तिताः ।।१०७०।।

तथा–

तारा चैव सुतारा च तारयन्ती प्रमोदिका ।
प्रमोदिता मोदमाना रम्यका च ततः परम् ।।१०७१।।
सदा प्रमुदिका चैव सिद्ध्यष्टकमुदाहृतम् ।

सांख्यशास्त्रे तुष्टिनवकं सिद्ध्यष्टकं च यत्प्रत्ययसेव्यं बुद्धिधर्मतया गणितम्, तदिह सङ्कुचितचित्स्वभावस्य कलादिकञ्चुकाविवेकिनः पुरुषस्य भोक्तुरावारकम्, न तु पुंसि दृशिमात्रस्वभावे अभोक्तरि बुद्ध्यादिवशोत्थितस्य भोगस्य कथञ्चिदपि सम्भवः । नहि हिमान्यन्तर्देवदत्ते प्रतिबिम्बिते सति शीतानुभवलक्षणो भोगो गौण्यापि वृत्त्या सम्भवति । अतः सर्वोऽयं भोग उक्तरूपपुंसि पारमार्थिके भोक्तरि सति घटत इति तत्रैव तुष्ट्यादिप्रत्ययसद्भावो युक्त इत्येवमुक्तम् । तत्र–

यहाँ से पुरुषतत्त्व के भुवनों को बता रहा हूँ । यहाँ से अर्थात् प्रकृतितत्त्व के ऊर्ध्व भागावस्थित पुरुषतत्त्व गत रुद्रों और उनके भुवनों की चर्चा हो रही है । जहाँ तक पुरुष तत्त्व का प्रश्न है—यह वह तत्त्व है, जिसमें चित् तत्त्व में सङ्कोच आ जाता है । परिणामस्वरूप पारमेश्वरस्वरूप गोपन न होकर चिदाभास होता है । इसलिये इसके भुवन भी सङ्कोच के आश्रित ही होते हैं । चिन्मात्राश्रय के साथ सङ्कोच का भी आश्रय । अभी इस अवस्था में निर्विकारता बनी रहती है । इनमें संकोच का कारण माया होती है । उन तुष्टियों के ये नाम हैं—माया में तुष्टि देने की क्षमता होती है ।

१.अम्बा, २.सलिला, ३.ओघा, ४.वृष्टि, ५.तारा, ६.सुतारा, ७.सुनेत्रा, ८.कुमारी, ९.उत्तमाम्भसिका, ये नव तुष्टियाँ होती हैं ।।१०६९-१०७०।।

इनके अतिरिक्त आठ सिद्धियाँ भी होती हैं । वे ये हैं–१.तारा, २.सुतारा, ३.तारयन्ती, ४.प्रमोदिका, ५.प्रमोदिता, ६.मोदमाना, ७.रम्यका और ८.सदाप्रमुदिका ।

सांख्यशास्त्र में भी नव तुष्टियों और आठ सिद्धियों का वर्णन है । ये बुद्धि के धर्म के रूप में परिकलित हैं । आगम में ये पुरुष की आवारक मानी जाती हैं ।

'आध्यात्मिक्यश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः ।
पञ्च विषयोपरमतोऽर्जनरक्षासङ्गसंक्षयविघातैः' ॥ इति (५०)

तथा–

'ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातत्रयं सुहृत्प्राप्तिः ।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ..................................'॥ (५१)

इति याः सांख्यैः,

'अतत्त्वे तत्त्वबुद्ध्या यः सन्तोषस्तुष्टिरत्र सा ।
हेयेऽप्यादेयधीः सिद्धि..................................'॥

इति गुरुभिर्लक्षितास्तुष्टयः सिद्धयश्चोक्ताः, तासामम्बादिकास्ताराद्याश्च अधिदेवता एतन्नामसु भुवनेषु स्थिता इह निरूपिताः ।

किञ्च पारमेशमतयोगक्रमसाध्यं यदणिमाद्यष्टकरूपमैश्वर्यम्, तदप्येतन्नामक-देवताष्टकाधिष्ठितमत्रैव पुंस्तत्त्वे प्रोक्तनीत्या आवारकतया स्थितमित्याह–

अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च ।।१०७२।।

चित्स्वभाव के संकोच के कारण कला विद्यादि कञ्चुकों से संकुचित पुरुषतत्त्व भोक्ता हो जाता है । भोगलिप्सु के ये आवरक माया की दूतियाँ हैं ।

सांख्य का पुरुष द्रष्टा है । अभोक्ता है । उसमें बुद्धि आदि से उच्छलित भोग का सम्भव ही असम्भव है । भोग की सम्भूति से विश्व भरा हुआ है । इसका पारमार्थिक भोक्ता तो वही विश्वेश्वर है । यह तुष्ट्यादि प्रत्ययसद्भाव वहीं सम्भव है ।

सांख्य की दृष्टि में तुष्टि और सिद्धि की परिभाषायें अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि रूप ही हैं । अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि रूपी सन्तोष अभोक्ता में नहीं होता है । यह संकुचित चित्स्वरूपता ही अनुभूति है । इसीलिये इस तरह का सन्तोष ही तुष्टि मानी जाती है ।

इसी तरह हेय में उपादेय की बुद्धि ही सिद्धि है । यह भी संकोच की ही दशा में सम्भव है । ये अम्बिका आदि तुटियाँ और तारा आदि सिद्धियाँ इन्हीं नाम के भुवनों की अधिदेवता रूप ही हैं ।

अणिमा लघिमा महिमा आदि अष्टक परमेश्वर शास्त्रीय योग क्रम साध्य भगवदैश्वर्य रूप ही हैं । ये भी पुंस्तत्त्व के आवारक माने जाते हैं । इन्हीं नामों के देवता पुंस्तत्त्व में अधिष्ठित हैं । उनका क्रम इस प्रकार है–

प्राकाम्यं च तथेशित्वं वशित्वं यदुदाहृतम् ।
यत्र कामावसायित्वमणिमाद्यष्टकं स्मृतम् ।।१०७३।।

अणिमा शरीरस्य सूक्ष्मताकरणे सामर्थ्यम्, लघिमा तूलवल्लाघवोत्पादनशक्तत्वम्, महिमा महत्त्वोत्पादनशक्तता, प्राप्तिः सङ्कल्पमात्रात्तत्तद्देशावाप्तिः, प्राकाम्यमेकस्यैव युगपन्नानाशरीरकरणे शक्तता, ईशित्वमैश्वर्यम्, वशित्वं भूतवशीकारः, यत्र कामावसायित्वं सङ्कल्पमात्राद्देशकालस्वभावव्यवहितवस्तुनिश्चयः । भोग्यसामान्यगुणत्रयभोक्तृत्वात्पुंसोऽपि तद्गुणत्रयच्छायायोगाद् गुणवत्त्वम् ॥१०७३॥

१.अणिमा, २.लघिमा, ३.महिमा, ४.प्राप्ति, ५.प्राकाम्य, ६.ईशित्व, ७.वशित्व और ८.कामावसायित्व । इन्हें इस तरह जानना चाहिये ।

१.अणिमा– शरीर को अणु रूप बना देने का सामर्थ्य ही अणिमा है । 'मशक समान रूप कपि धरऊ' पंक्ति हनुमान् में इस अणिमा रूप सामर्थ्य की सूचना देती है ।

२.लघिमा– भार को हल्का बनाने का सामर्थ्य । जैसे रूई की तरह हवा में उड़ने का सामर्थ्य । पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के अवरोध से यह शक्ति मिलती है । आधुनिक उपग्रह वैज्ञानिक उस अवस्था का अनुभव करते हैं ।

३.महिमा– महत्त्व के उत्पादन की शक्ति । 'कनकभूधराकार शरीरा' की चौपाई हनुमान् में यह शक्ति भी इसकी सूचना देती है ।

४.प्राप्ति– संकल्प करते ही जहाँ चाहें, वहाँ उपस्थित हो जाना प्राप्ति कहलाती है । स्वामी तैलङ्ग में यह शक्ति थी ।

५.प्राकाम्य– एक का अनेक रूपाकार होने की शक्ति ।

६.ईशित्व– ऐश्वर्य प्राप्त करने की क्षमता ।

७.वशित्व– सबको वश में कर लेने की शक्ति और

८.कामावसायित्व– संकल्पमात्र से अन्तर्धान होना आदि ।

मैंने ऐसे महापुरुष के दर्शन किये हैं, जिनके चरण स्पर्श के लिये झुकते ही वे अन्तर्ध्यान हो गये थे ।

प्रकृतिवैषम्य से उत्पन्न ये तीनों गुण सामान्यतया भोग्य श्रेणी में ही आते हैं । इनका भोक्ता एकमात्र यही चिदाभास श्रेणी का पुरुषतत्त्व है । इन तीनों गुणों की छाया का आच्छादन पुरुष को प्रभावित करता है । इसी दृष्टि से वह पुरुष गुणवान् और गुणज्ञ भी कहलाता है ॥१०७१-१०७३॥

अथोर्ध्वं गुरुशिष्याणां पङ्क्तित्रयमतः शृणु ।

अत इति प्रोक्ताणिमाद्यष्टकादूर्ध्वम् । तत्र–

मस्करी पूरणः कृत्स्नः कपिलः काश एव च ।।१०७४।।

सनत्कुमारगौतमवसिष्ठाद्यांशकास्तथा ।

कश्यपो नासिकेतुश्च गालवो भौतिकस्तथा ।।१०७५।।

शाकल्यश्च समाख्यातो दुर्वासाः परमस्त्वृषिः ।

वाल्मीकिश्च गुरुश्रेष्ठः सपराशरगालवः ।।१०७६।।

पिप्पलादश्च सौमित्रिर्वायुपुत्रो भदन्तकः ।

गालवावत्र द्वावुक्तौ । एते हि–

मस्कर्यादिभदन्तान्ता दृष्टादृष्टस्य वादिनः ।।१०७७।।

द्वाविंशतिर्गुरुवराः प्रथमा पङ्क्तिरिष्यते ।

एते च पूर्ववदनुग्राह्याणामेव तत्पदप्राप्तिहेतुत्वेनेश्वरेच्छयैतत्पदावस्थितिजुषः कृताः । यदुक्तं श्रीमालिनीविजये–

'मयाप्येतत्पुरा प्रोक्तं कपिलाय महात्मने' । इति ।

दृष्टमेतत्पदप्राप्त्युचितोपासादिकम्, अदृष्टं चैतत्पदावाप्त्यात्मकं वदन्ति । एते च द्वाविंशतिर्गुरव एव ।

अणिमादिक के ऊपर गुरु शिष्यों की तीन पंक्तियाँ हैं । उनके विषय में बता रहे हैं–

१.मस्करी, २.पूरण, ३.कृत्य, ४.कपिल, ५.काश, ६.सनत्कुमार, ७.गौतम, ८.वसिष्ठ, ९.कश्यप, १०.नासिकेतु, ११.गालव, १२.भौतिक, १३.शाकल्य, १४.दुर्वासा, १५.वाल्मीकि, १६.गुरुश्रेष्ठ, १७.पराशर, १८.गालव, १९.पिप्पलाद, २.सौमित्रि, २१.वायुपुत्र और २२.भदन्तक । मस्करी से भदन्तक पर्यन्त ये २२ गुरु दृष्ट और अदृष्ट सबको स्पष्ट बता देने वाले श्रेष्ठ गुरुवर्य हैं । ये पहली पंक्ति के गुरु हैं । इनकी संख्या २२ है ॥१०७४-१०७७॥

दृष्ट उपासना है और अदृष्ट उक्त पद प्राप्ति का भविष्य माना जाता है । ये सभी ऋषि अनुग्राह्य शिष्यों को उस पद की प्राप्ति में सहायक माने जाते हैं ॥१०७७॥

इसके ऊपर रज:स्पर्श प्रधान दूसरी पंक्ति में शिष्य रूपी ऋषियों का कथन कर रहे हैं–

एतदूर्ध्वं तु रजःसंस्पर्शप्रधानायां पङ्क्तौ शिष्यरूपर्षीन् प्रतिपादयितुमाह–

जह्नुश्च तृणबिन्दुश्च मुनिस्तार्क्ष्यस्तथैव च ।।१०७८।।

ध्यानाश्रयोऽथ दीर्घश्च होता जागर एव च ।

अगस्त्यो वसुभौमश्च उपाध्यायश्च कीर्तितः ।।१०७९।।

शुक्रो भृग्वङ्गिरा रामो जमदग्निसुतोऽध्वगः ।

स्थूलशिरा बालखिल्यो मनुश्चेति प्रकीर्तितः ।।१०८०।।

वज्रात्रेयो विशुद्धश्च शिवश्चारुरथानुगः ।

वसुना सहितो भौम इत्येतौ द्वावेव, भृगुणा सहितोऽङ्गिरा इत्येतावपि द्वौ, रामो जमदग्निसुत एक एव, उपाध्याय इत्येतन्नामेति । एते उपाध्याया इति त्वसद्वक्ष्यमाणसंख्याविघातापत्तेः ।

तदित्थम्–

जहन्वाादिचारुपर्यन्ता द्वितीया पङ्क्तिरिष्यते ।।१०८१।।

अथ सत्त्वसंस्पर्शवत्यामपि भूमावाह–

हरो झिण्ठी प्रतोदश्च अमरेशश्चतुर्थकः ।

कृष्णपिङ्गेशरुद्रश्च इन्द्रजिद्वृषकः शिवः ।।१०८२।।

यम क्रूरश्च विख्यातो गङ्गाधर उमापतिः ।

भूतेश्वरः कपालीशः शङ्करश्च तथैव च ।।१०८३।।

अर्धनारीश्वरश्चैव पिङ्गलश्च तथापरः ।

महाकालश्च संवर्तो मण्डली त्वेकवीरकः ।।१०८४।।

तथा चान्यश्च विख्यातो भारभूतेश्वरो ध्रुवः ।

कृष्णपिङ्गेशरुद्र एक एव । वृषकः शिवः श्रेयोरूप इत्यप्येक एव । यम इत्यस्य विशेषणं क्रूरो विख्यात इति क्रूरतया प्रसिद्ध इत्यर्थः । उमापतेर्विशेषणं

१.जह्नु, २.तृणबिन्दु, ३. मुनि, ४.तार्क्ष्य, ५.ध्यानाश्रय, ६.दीर्घ, ७.होता, ८.जागर, ९.अगस्त्य, १०.वसु, ११.भौम, १२.उपाध्याय, १३.शुक्र, १४.भृगु, १५.अंगिरा, १६.राम, १७.अध्वग, १८.स्थूलशिरा १९.बालखिल्य, २०.मनु, २१.वज्र, २२.आत्रेय, २३.विशुद्ध, २४.शिव और २५.चारुरथानुग ।

इस तरह जह्नु से चारुरथ पर्यन्त २५ की दूसरी पंक्ति है, यह शास्त्र घोषित करता है ॥१०७८-१०८१॥

इनके ऊपर सत्त्वस्पर्शी ऋषियों की तीसरी पंक्ति है । १.हर, २.झिण्ठी, ३.प्रतोद, ४.अमरेश, ५.कृष्णपिङ्गेशरुद्र, ६.इन्द्रजित्, ७.वृषक शिव, ८.यम,

गङ्गाधर इति । कपालीशस्य विशेषणं भूतेश्वर इति अन्यो विख्यात इति विख्यात-नामा अन्य इत्यर्थः ।

तदित्थम्–

जहन्वादिचारुपर्यन्ता ऋषयः पञ्चविंशतिः ।।१०८५।।

तृतीयपङ्क्तिनिष्ठा इत्यर्थः । इह गुरुवाचोयुक्तिमकुर्वत ऋषयः शिष्या एव पुंस्तत्त्वोपासादिप्रकर्षादिमां भूमिमाप्ता इत्यादिशति ॥१०८५॥

प्रथमपंक्तिगता इव तृतीयपंक्तिगता अपि गुरव एव । यदाह–

हरादयो ध्रुवान्ताश्च गुरवो विंशतिः स्मृताः ।

एते च सर्वे अत्र स्थिता अपि अंशेन ब्रह्माण्डान्तरवतीर्य तत्र स्वोचित-मधिकारमतिवाह्य तदेव पदमाविशन्तीति मन्तव्यम् ।

उपसंहरति–

पङ्क्तित्रयं समाख्यातमृषीणां गुरुशिष्ययोः ।।१०८६।।

प्रोक्तनीत्या गुरुशिष्यरूपमृषिपङ्क्तित्रयमेतदित्यर्थः ॥१०८६॥

अथ–

नाडीविद्याष्टकं देवि कथयामि त्वतः परम् ।

पुर्यष्टकसम्बद्धा या वक्ष्यमाणनाड्यस्तासामष्टकं बन्धनविवर्धनं कथयामि । ताश्च–

इडा च चन्द्रिणी गौरी शान्तिः शान्तिकरी तथा ।।१०८७।।

माला च मालिनी चैव स्वाहा चैव स्वधा तथा ।

अस्य नाड्यष्टकस्य–

अथोपरिष्टाद्देवेशि विग्रहाष्टकमुच्यते ।।१०८८।।

विग्रहस्य सूक्ष्मशरीरस्य उत्थापकमष्टकं वक्ष्यमाणाभिमानदेवतारूपपुंस्तत्त्वा-वरणप्रयोजनम् ॥१०८८॥

९.गङ्गाधर उमापति, १०.कपालीश, ११.शङ्कर, १२.अर्धनारीश्वर, १३.पिङ्गल, १४.महाकाल, १५.संवर्त्त, १६.मण्डली, १७.एकवीरक, १८.विख्यात, १९.भार-भूतेश्वर और २०.ध्रुव ये २० ऋषि परिगणित हैं ॥१०८२-१०८६॥

इसके ऊपर पुर्यष्टक से सम्बन्धित नाड़ियों की विद्या से सम्बन्धित अष्टकों के विषय में कह रहे हैं–

१.इडा, २.चन्द्रिणी, ३.गौरी, ४.शान्ति, ५.माला, ६.मालिनी, ७.स्वाहा और ८.स्वधा । यह अष्टक नाडीविद्या से सम्बद्ध है । यह पुर्यष्टक के संचार में सहायिका होती हैं ।

तच्च–

कार्यं च करणं चैव सुखदुःखकरं तथा ।
ज्ञानं साध्यं च विख्यातं साधनं कारणं तथा ।।१०८९।।

कार्यं कार्यात्मसूक्ष्मदेहारम्भितन्मात्रोत्थापकम् । करणमिति सूक्ष्मदेहावस्थिताऽनभिव्यक्तप्रायबाह्येन्द्रियदशकोत्थापकम्, तन्नामैव देवतादशकम् । सुखदुःखकरमिति सुखदुःखोपभोगसम्पादकं देवताद्वयम् । ज्ञानं साध्यं चेति अनभिव्यक्तेन बुद्धीन्द्रियपञ्चकेन कर्मेन्द्रियपञ्चकेन च सम्पाद्यं ज्ञानमात्रं व्यापारमात्रे च विख्यातं प्रतीतं यत्तदधिष्ठातृदेवतारूपमिहैवोक्तम्, साधनमित्यन्तःकरणे व्यापकं देवतात्रयमित्यर्थः । कारणमिति कारणरूपस्य प्रधानतत्त्वस्य उत्थापकं देवतारूपमित्यर्थः । यद्यपि च प्राग्रश्मिकरणतेजोमण्डलाद्युक्तिप्रसङ्गे कार्यकरणादीनामुत्पत्तौ कारणमुक्तम्, तथापि तदेवेह देवतारूपं पुँस्तत्त्वेऽपि सूक्ष्मरूपतया स्थितं तत्रैव बन्धनात्मनस्तत्प्रयोजनस्य पर्यवसानात् । मायायां तु एतत्सर्वमेव, पाशजालं पररूपेणावस्थितमिति वक्ष्यति ।।१०८९।।

इनके ऊपर विग्रहाष्टक है । ये सूक्ष्म शरीर के उत्पादक माने जाते हैं । ये अभिमान देवता रूप पुंस्तत्त्व के आवारक माने जाते हैं । ये निम्नलिखितवत् हैं–

१.कार्य, २.करण, ३.सुखकर, ४.दुःखकर ५.ज्ञान, ६.साध्य, ७.साधन और ८.कारण ।

१.कार्य—सूक्ष्म देह के आरम्भक तन्मात्र के उत्थापक होते हैं ।

२.करण—सूक्ष्म देहावस्थित अनभिव्यक्त दश इन्द्रियों के उत्थापक होते हैं ।

३.सुखकर—सुखोत्पादक और भोगसम्पादक देव ही सुखकर हैं ।

४.दुःखकर—दुःखोत्पादक और भोगसम्पादक देव ही दुःखकर हैं ।

५.६.ज्ञान-साध्य—अनभिव्यक्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों द्वारा संपाद्य ज्ञान और व्यापारमात्र को कहते हैं ।

७.साधन—अन्तःकरण के तीन देवता और

८.कारण—कारण रूप प्रधान तत्त्व का उत्थापक होता है ।

यद्यपि कार्य कारण आदि की उत्पत्ति के सन्दर्भ रश्मिकरण तेजोमण्डल के प्रकरण में कहा जा चुका है, फिर भी यहाँ वे ही देवता रूप से पुँस्तत्त्व में अवस्थित हैं । ये बन्धन के प्रयोजन के पूरक हैं । माया में यह सारा का सारा पाशजाल पररूप से ही अवस्थित है ।।१०८७-१०८९।।

अथ–

देहपाशानतो वक्ष्ये

स्थूलदेहारम्भकानधिष्ठातृदेवताविशेषरूपानित्यर्थः ।

तत्र–

धर्मं च दशधोदितम् ।

च एवार्थे । धर्ममेव मुख्यं बन्धनमादौ दशविधं वच्मि ।

स च–

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्कता ।।१०९०।।
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचं सन्तोष आर्जवम् ।
एवं दशविधो धर्मो येनोक्तो धर्मकृन्नरः ।।१०९१।।

अकल्कता–

'स्वच्छता समता प्रीतिर्नापकारशतैरपि ।
कालुष्यमुत्सहेत्सोढुं सेयमुक्तेत्यकल्कता' ॥ (वि०बु०)

इति श्रीमतङ्गपारमेश्वरे इत्थं लक्षिता ॥१०९१॥

एवं धर्माख्यं प्रधानं देहपाशमुक्त्वा गौणमाह–

विकारान् षोडशाख्यास्ये परभावेन संस्थितान् ।

प्रागुक्तस्थूलरूपापेक्षया परभावेन सूक्ष्मेण रूपेण स्थितानित्यर्थः, पररूपतया तु मायायां भविष्यन्ति । तानाह–

रसो गन्धश्च रूपं च स्पर्शः शब्दस्तथैव च ।।१०९२।।

इसके बाद देह सम्बन्धी पाशों के सम्बन्ध में कहने जा रहे हैं । ये देह पाश भी स्थूल देहारम्भक अधिष्ठातृ देवता रूप से ही यहाँ अवस्थित हैं । इसी के साथ ही धर्म जो मुख्य बन्धन है । यह दश प्रकार का होता है, उसे ही पहले कह रहे हैं–

१.अहिंसा, २.सत्य, ३.अस्तेय, ४.ब्रह्मचर्य, ५.अकल्कता, ६.अक्रोध, ७.गुरुशुश्रूषा, ८.शौच, ९.सन्तोष और १०.आर्जव ये दश प्रकार के धर्म हैं । इनके आचरण से लोग धार्मिक कहलाते हैं । इन सबमें अकल्कता के अन्तर्गत स्वच्छता, समता, प्रीति शताधिक अपकारों के बावजूद कालुष्य का अभाव और सहनशक्ति, ये सब गुण आते हैं । मतङ्गपारमेश्वर ग्रन्थ में भी यही कहा गया है ॥१०९०-१०९१॥

ये धर्म देह के प्रधान पाश माने जाते हैं । गौण पाश में सोलह विकारों की गणना की जाती है । स्थूल रूप की अपेक्षा परभाव में अवस्थित ये माया-

तन्मात्रपञ्चकं ख्यातमिन्द्रियाणि निबोध मे ।
वाक्पाणिपादं पायुश्च उपस्थः कर्मसंज्ञकम् ।।१०९३।।

इन्द्रियपञ्चकमित्यर्थः ॥१०९३॥

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका पञ्चमी स्मृता ।

एतानि–

बुद्धीन्द्रियाणि देवेशि

तथा–

मनः षोडशकं स्मृतम् ।।१०९४।।

त एते–

देहपाशाः समाख्याताः

किञ्च–

अतो बुद्धिगुणान् विदुः ।

पुंसि सूक्ष्मरूपतया पाशकत्वेनावस्थितान् विदुरित्यविच्छिन्नेन पारम्पर्येण तत्त्वविदो जनाः । ते च–

धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च ततः परम् ।।१०९५।।
अधर्मश्च तथाज्ञानमवैराग्यमनीशिता ।

प्रागुक्तादहिंसादेर्धर्मादयमन्यो धर्म इष्टापूर्तलक्षणः ।

किञ्च–

अहङ्कारं च त्रिविधं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।।१०९६।।

तत्त्व में स्थित रहते हैं । ये १.रस, २.गन्ध, ३.रूप, ४.स्पर्श, ५.शब्द, तन्मात्रपंचक, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ हैं । ये १० हैं । इसके साथ ५ ज्ञानेन्द्रियाँ–श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और नासिका और सोलहवाँ मन ये सभी देह के पाश हैं ।

इनके साथ ही सूक्ष्मरूप से पाश बनकर बुद्धि के गुणभाव में अवस्थित रहने वाले विकारों को तत्त्वविद् पुरुष इस प्रकार जानते हैं–

१.धर्म, २.ज्ञान, ३.वैराग्य, ४.ऐश्वर्य तथा साथ ही १.अधर्भ, २.अज्ञान, ३.अवैराग्य और ४.अनैश्वर्य, दोनों मिलाकर धर्मादि ८ बुद्धि के ही गुण माने जाते हैं ॥१०९२-१०९५॥

इसके बाद भगवान् अहङ्कारतत्त्व की चर्चा कर रहे हैं । अन्त:करण रूप अहङ्कार सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का होता है ।

वैकारिकं तैजसं च भूतादिं च यथाक्रमम् ।

राजसं सात्त्विकं तामसं चेत्यर्थः ।

एवमेतानि तन्मात्रबहिष्करणान्तःकरणानि सूक्ष्मरूपतया पुंस्तत्त्वावस्थितानि बन्धकानि इह यान्युक्तानि, एतान्येव अत्र भूचरीदिक्चरी-गोचरी-चक्राण्यान्तराणि प्रतिपादितानि । तदनुसारेणैव चेह पररूपाणीत्युपक्रम एवोक्तिः कृता, खेचरी-चक्रं त्वान्तरं कञ्चुकदेवतारूपं भविष्यति ।

प्रातिलोम्यक्रमेण दीक्षाविधिमुपक्रान्तमेव स्मारयति–

दीक्षाकाले यथा शुद्धिस्तथा चैषां निबोध मे ।।१०९७।।

एषां पुंस्तत्त्वगतानां तैजसाद्यहङ्कारपाशानामित्यर्थः । यथा येन क्रमेणेत्यर्थः ।।१०९७।।

तमेव क्रममाह–

तमो रजस्तथा सत्त्वं शोधयेदनुपूर्वशः ।

एतच्चोपलक्षणपरम्, सर्वान् पाशान् प्रातिलोम्येन शोधयेदित्यर्थः ।

किञ्च–

शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धश्च पञ्चमः ।।१०९८।।

इसे वैकारिक, तैजस और भूतादि रूप से भी जानते हैं । ये भी पुँस्तत्त्व में ही अवस्थित हैं और बन्धप्रद हैं । वैकारिक ही राजस, तैजस ही सात्त्विक और भूतादि ही तामस अहङ्कार हैं । यही भूचरी, दिक्चरी और गोचरी चक्रों के अन्तर्गत आते हैं । इसीलिये उपक्रम के समय ही इन्हें पररूप ही कह दिया गया है । खेचरी चक्र तो आन्तर कंचुक देवता रूप माना जाता है । यह ध्यान देने की बात है कि, दीक्षा के समय इनकी शुद्धि कैसे की जाती है । ये पुँस्तत्त्वगत तैजसादि अहङ्कार रूप जो पाश हैं, इनकी शुद्धि प्रातिलोम्य क्रम से ही हो सकती है ।।१०९६-१०९७।।

यही कह रहे हैं कि, तामस रजस और सत्त्व इनका इसी क्रम से शोधन करना चाहिये । एक तरह से यह मान लेना चाहिये कि, पाशों की शुद्धि प्रातिलोम्य क्रम से ही होती है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये विषय भी प्रयत्नपूर्वक शोधनीय हैं । भोक्ता पुरुष में सूक्ष्म रूप से भोग्यात्म विषय अवस्थित रहते ही हैं । इसलिये इनका शोधन नितान्त आवश्यक है ।

भुवनादि दीक्षा के सन्दर्भ में सूक्ष्मों को अन्तर्विभावित करना चाहिये । इनका अन्तर्भाव रूप से शोधन नहीं होता, अपितु पृथक् पृथक् इस विस्तारमयी भुवन दीक्षा में शोधन होना ही चाहिये ।

विषयाश्च समाख्याताः शोधनीयः प्रयत्नतः ।

विशेषेण सिन्वन्ति इति विषया भोक्तरि पुंसि सूक्ष्मरूपतया भोग्यात्मानः स्थिताः, न तु पूर्वोक्ततन्मात्रात्मान इत्यर्थः । प्रयत्नतः शोधनीया इत्युक्तेरयमाशयः, न सङ्क्षिप्तभुवनादिदीक्षावत्–

'...............सूक्ष्मानन्तर्विभावयेत्' । (४/१५८)

इत्युक्तनीत्या अन्तर्भाव एषां चिन्तनीयः, अपि तु पृथक् पृथगेते सर्व एवात्र वितातायां भुवनदीक्षायां शोध्याः । एवमन्यत्र ।

किञ्च–

कामः क्रोधश्च लोभश्च मोहः पैशुन्यमेव च ।।१०९९।।
जन्ममृत्युजराव्याधिक्षुत्तृट्तृष्णास्तथैव च ।
विषादश्च भयं चैव मदो हर्षणमेव च ।।११००।।
रागो द्वेषश्च वैचित्त्यं कुपितानृतद्रोहिता ।
माया मात्सर्यधर्मश्च अधर्मश्चास्वतन्त्रता ।।११०१।।

तृष्णा स्पृहा, कुपितानृतद्रोहिणां भावः कुपितानृतद्रोहिता क्रोधः पूर्वापरविमर्शशून्यः, सप्रकर्षः, कोपः, मदो दर्पः, मात्सर्यधर्मः परगुणासहिष्णुतात्मा स्वभावः । एते च श्रीमतङ्गपारमेश्वरे वितत्य व्याख्याताः ॥११०१॥

त इमे सप्तविंशतिसंख्याः पाशाः–

आगन्तुकाश्च बोद्धव्याः

प्रागुक्तेभ्यः सहजेभ्यः अन्ये आगच्छन्ति तच्छीला देहप्राप्त्युत्तरकालमत एव प्रस्तुतत्वात्पुंसामभिव्यक्तिमायान्तीत्यागन्तुका अत एव सहजाश्च वैराग्यादयः । अन्यः स्थूल रागः शोधनीयः प्रयत्नत इत्यनुषङ्गः । एवमुत्तरत्र ।

इनके अतिरिक्त आगन्तुक पाशों पर भी ध्यान देना चाहिये । ये आगन्तुक पाश २७ होते हैं । इनका स्वरूप इस प्रकार है–

१.काम, २.क्रोध, ३.लोभ, ४.मोह, ५.पैशुन्य, ६.जन्म, ७.मृत्यु, ८.जरा, ९.व्याधि, १०.क्षुधा, ११.तृष्णा, १२.विषाद, १३.भय, १४.मद, १५.हर्ष, १६.राग, १७.द्वेष, १९.वैचित्य, २०.कुपित, २१.अनृत, २२.द्रोहिता, २३.माया, २४.मात्सर्य, २५.धर्म, २६.अधर्म, २७.अस्वतन्त्रता । पैशून्य–चुगलखोरी को कहते हैं । इसी तरह वैचिन्त्य को मानसिक विकलता मानते हैं । अन्य शब्द स्पष्ट हैं । ये सत्ताइस आगन्तुक पाश माने जाते हैं । ये सभी प्रयत्नपूर्वक शोधनीय हैं ॥१०९८-११०१॥

किञ्च–

गणपाशान्निबोध मे ।

ते च–

देवी नन्दिमहाकालौ गणेशो वृषभस्तथा ।।११०२।।
भृङ्गी चण्डीश्वरश्चैव कार्तिकेयोऽष्टमः स्मृतः ।

एते पराद्वयात्मकपारमेश्वरस्वरूपमात्मानमावृण्वानाः पाशा उच्यन्ते । यदुक्तमस्मत्प्रभुणा तन्त्रालोके–

'यत्किञ्चित्परमाद्वैतसंवित्स्वातन्त्र्यसुन्दरात् ।
पराच्छिवादुक्तरूपादन्यत्तत्पाश उच्यते ॥
तदेवं पुंस्त्वमापन्ने पूर्णेऽपि परमेश्वरे ।
तत्स्वरूपापरिज्ञानचित्रा हि पुरुषाः स्थिताः' ॥ इति । (८/२९३)

किञ्च–

अनन्तस्त्रितनुः सूक्ष्मः श्रीकण्ठश्च शिवोत्तमः ।।११०३।।
शिखण्डी चैकनेत्रश्च एकरुद्रस्तथापरः ।
विद्येश्वरात्मकान् पाशान् दीक्षाकाले विशोधयेत् ।।११०४।।

सहज पाशों के अतिरिक्त देहप्राप्ति के बाद पुरुष में अभिव्यक्त होते हैं, इसलिये इन्हें आगन्तुक कहते हैं । ये स्थूल रागादि पाश अनिवार्यतः शोधनीय हैं ।

इनके अतिरिक्त कुछ पाश ऐसे होते हैं, जिन्हें गुणपाश कहते हैं । पराद्वयात्मक पारमेश्वर स्वरूप आत्मा के ये आवारक होते हैं । आचार्य क्षेमराज के दीक्षागुरु भगवान् अभिनव गुप्त पादाचार्य ने श्रीतन्त्रालोक के ८/२९३ में कहा है–

'परम अद्वैतसंवित् के स्वातन्त्र्य से विभूषित परम शिव के अतिरिक्त जो कुछ भी है, वह सब पाशरूप ही है । इस प्रकार पुंस्तत्त्व के आपन्न होने पर अर्थात् स्वातन्त्र्यवश ही अपना गोपन कर संकुचित रूप से प्रस्फुरित पूर्ण परमेश्वर होने पर भी अपने स्वरूप का ज्ञान रह जाता है । यह विचित्र और विलक्षण स्थिति आश्चर्यजनक है' । श्री० त० ८/२९२-२९३ ।

इस दृष्टि से जो आत्मा के आवारक हैं, वे पाश ही कहे जा सकते हैं । ऐसी अवस्था में देवी, नन्दी, महाकाल, गणेश, वृषभ, भृङ्गी, चण्डीश्वर और आठवें कार्त्तिकेय ये गणेश्वर भी पाश रूप ही हैं ।

'शुद्धेऽध्वनि शिवः कर्ता प्रोक्तोऽनन्तोऽसिते प्रभुः' ।
इत्याम्नायान्तरोक्तनीत्या अशुद्धाध्वकारणं त्रितत्त्वादिपरिवृतो योऽनन्तभट्टारकस्तस्य पुंस्तत्त्वावारकत्वे सति अशुद्धाध्वस्रष्टृत्वं फलतीति तत्र सूक्ष्मरूपेणावस्थित इति भविष्यति। तदेवं तुष्टिनवकम्, सिद्ध्यष्टकम्, अणिमाद्यष्टकम्, पङ्क्तित्रयनिविष्टा द्वाविंशतिः पञ्चविंशतिर्विंशतिश्चेति सप्तषष्टिर्गुरुशिष्याः, नाड्यष्टकम्, विग्रहाष्टक-महिंसादयो दश, षोडश विकाराः, अष्टौ बुद्धिधर्मास्त्रिविधोऽहङ्कारः, शब्दादि-विषयपञ्चकमित्यहिंसादिविषयपञ्चकान्ता द्वाचत्वारिंशत्सहजा देहपाशाः कामादयः, अस्वतन्त्रतन्त्राः सप्तविंशतिरागन्तुकाः पाशाः, अष्टौ च गणेशाः, अष्टौ विद्येशाः पाशा इति त्रिनवत्यधिकं शतं पाशभुवनानां पुंस्तत्त्वे शोधनीयमुक्तम् ॥११०४॥

किञ्च–

उक्तानुक्ताश्च ये चात्र अन्यतन्त्रोक्तलक्षणाः ।
पौरुषेये तु शोध्यास्ते ततो मुच्येत पुद्गलः ॥११०५॥

ये त्रिनवत्यधिकशतसङ्ख्या इह पाशा उक्ताः, ये चान्ये रतिहासशोको-त्साहादयो निर्वेदग्लान्यादयश्च इहानुक्ता अन्यतन्त्रे भरतादिषूक्तस्वरूपास्ते सर्वे

इनके अतिरिक्त आठ विद्येश रूप, अनन्त, त्रितनु, सूक्ष्म, श्रीकण्ठ, शिवोत्तम, शिखण्डी, एकनेत्र और एकरुद्र ये आठ विद्येश्वरात्मक पाश हैं । इन सबका दीक्षाकाल में शोधन होना चाहिये ।

विद्येश पाश के प्रथम विद्येश्वर के विषय में यह स्पष्ट ही कहा गया है कि, शुद्ध अध्वा में कर्त्ता शिव होते हैं, किन्तु अशुद्ध रूप असित अध्वा के कर्त्ता अनन्त होते हैं । इस तरह उनकी अशुद्ध होने की सहजता शोधनीय है और इनके साथ विद्येश्वर भी शोधनीय सिद्ध होते हैं । अनन्त भट्टारक भी पुँस्तत्त्व के आवारक हैं ।

इस तरह नौ तुष्टियाँ, आठ सिद्धियाँ, अणिमादि आठ ऐश्वर्य पंक्तित्रय में आने वाले २२+२५+२०=६७ गुरु शिष्य, नाड्यष्टक, विग्रहाष्टक, अहिंसादि १० धर्म, सोलह विकार, बुद्धि के आठ धर्म, त्रिविध अहङ्कार, शब्दादि विषय पञ्चक, ४२ सहज कामादि देह पाश, २७ आगन्तुक पाश, आठ गणेश और आठ विद्येश कुल एक सौ तिरानबे पाशयुक्त भुवनों में पुँस्तत्त्व का शोधन अनिवार्यतः आवश्यक है ॥११०४॥

ऊपर १९३ पाशों की चर्चा की गयी है । ये सहज पाश हैं । इनके अतिरिक्त जो रति, हास, शोक, उत्साह आदि और निर्वेद तथा ग्लानि आदि यहाँ नहीं कहे गये हैं, अर्थात् अनुक्त हैं, वे भरत आदि नाट्यशास्त्रों में उक्त भी हैं ।

पौरुषे तत्त्वे शोधनीयाः । एवं सति ततः पाशेभ्यः पुद्गलो मुच्यते, यथा अन्तः-शङ्कातङ्कसंस्कारोत्थापनात्मना हिंसया गिलनं भोग्यलक्षणं यस्य स पुद्गलो माया-प्रमाता ॥११०५॥

गतमेतत्–

अथोर्ध्वे नियतिर्ज्ञेया तस्यां रुद्रान्निबोध मे ।

तानाह–

वामदेवस्तथा सर्वस्तथा चैव भवोद्भवौ ॥११०६॥

वज्रदेहः प्रभुश्चैव धाता च क्रमविक्रमौ ।

सुप्रभेदश्च दशमो नियत्यां शङ्कराः स्मृताः ॥११०७॥

दशदिक्क्रमवस्थिता इत्यर्थः ॥११०७॥

एतन्नियतितत्त्वनियमितः पुरुषो बुद्धिप्रमातृभूमिकां गृहीत्वा अहङ्कारमयः शरीरे हृत्पद्मे अवस्थित इति प्रतिपादयितुमाह–

यत्तद्धृदि स्थितं पद्ममात्मा तत्र व्यवस्थितः ।

'साक्षं कृत्स्नमिमं देहं यद्यपि व्याप्य तिष्ठति ।

तथाप्यस्य परं स्थानं हृत्पङ्कजसमुद्गकम्' ॥

इति स्थित्या हृत्पद्मात्मनो विश्रान्तिपदम्, अत एव अत्रस्थोऽयं पद्मासनस्वभाव-तयोक्तक्रमेण तत्तद्विषयावभासनादिसृष्टिं करोति ।

तच्च पद्मम्–

नियतिदलमहङ्कारकेसरं बुद्धिकर्णिकम् ॥११०८॥

ये सभी पाश पौरुष तत्त्व में शोध्य हैं । इस तरह शास्त्राज्ञा के अनुसार इनका शोधन कर देने से पुद्गल अणु पुरुष मुक्त हो जाते हैं । इसी तरह आन्तरिक रूप से शङ्कातङ्क रूप संस्कार को उत्थापित करने वाले हिंसा आदि भावों से मिलन रूप क्रिया का कारक पुद्गल रूप माया प्रमाता भी मुक्त हो जाता है ॥११०५॥

इसके ऊपर नियति रूप कञ्चुक का भुवन है । भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ! तत्रस्थ रुद्रों को तुम समझो और जानो । वे हैं–१.वामदेव, २.शर्व, ३.भव, ४.उद्भव, ५.वज्रदेह, ६.प्रभु, ७.धाता, ८.क्रम, ९.विक्रम, १०.सुप्रभेद ये दश रुद्र नियति भुवन के हैं । ये उसमें दसों दिशाओं में अवस्थित हैं । इस नियति- तत्त्व से पुरुष नियत हो जाता है ॥११०६-११०७॥

ऐसा पुरुष बुद्धि प्रमाता की भूमिका का निर्वाह करते हुए अहङ्कारमय दशा में इस शरीर के हृदयपद्म में अवस्थित रहता है । यही कह रहे हैं कि, हृदय में अवस्थित वह आत्मा यद्यपि पूरे शरीर का साक्षी है और इसमें व्याप्त रहता है,

नियतिवशोद्भूतानि मनोबुद्धिकर्माक्षविषयरूपाणि दलानि सञ्चारपदानि यस्येति व्याख्येयम्, न तु नियतिरेव दलानि यस्येति नियतेरहङ्कारकेसराधोव्याप्त्यभावात् । अहङ्कार एव रञ्जकत्वात्केसररूपो यत्र, बुद्धिस्तु अध्यवसायपर्यन्तविषयभोगसाधकत्वादुपरिवर्तिकर्णिकारूपा । अत्र चस्य आत्मनः–

'प्रधानाशयमापन्नं गुणत्रयावसर्पितम्' । (२/४१)

इति पूर्वोक्तस्वरूपं स्मर्तव्यमन्यथा बुद्धिप्रमातृत्वायोगात् ॥११०८॥

एतच्च नियतिनियमितत्वं कालकलितस्यैव घटते, न तु कालोत्तरस्वभावस्य । अतो यदेतत्कलनाकारणम्, तत्र–

कालतत्त्वे शिवा ज्ञेया

शोधत्वेनेति शेषः । तांश्च–

कथयामि समासतः ।
शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धश्च प्रशान्तः परमाक्षरः ॥११०९॥
शिवश्च सुशिवश्चैव ध्रुवश्चाक्षरशम्भुराट् ।
दशैते तु शिवा ज्ञेयाः कालतत्त्वे वरानने ॥१११०॥

अक्षरराट् शम्भुराडिति द्वौ ॥१११०॥

फिर भी इसका सबसे प्रिय स्थान हृदयकमल ही है । यह उसका विश्रान्ति स्थल है । इस पद्मासन पर विराजमान यह पुरुष सभी विषयों का अवभासन करता है ।

यह पद्म भी बड़ा विचित्र है । नियति से उद्भूत, मन बुद्धि कर्माक्ष विषय रूप ही इसके दल हैं । इनमें यह सञ्चार करता है । अहङ्कार ही रञ्जक होने के कारण केसर रूप है । बुद्धि अध्यवसायरूप कर्म व्यापार रूप विषयभोग में प्रवृत्ति की प्रमुखता के कारण ऊपर उल्लसित उसकी कर्णिका है । इस आत्म पुरुष पर प्रकृति का प्रभाव और तीनों गुणों की संसृति का संसरण भी ध्यातव्य है, अन्यथा बुद्धि प्रमाता होने का योग नहीं हो सकता ॥११०८॥

नियति से नियन्त्रण तभी घटित होता है, जब काल से कलित होता है । कालोत्तर स्वभावसम्पन्न पुरुष नियति से नियमित नहीं हो सकता । काल ही कलना का कारण है । इस कालतत्त्व में भी रुद्रों की स्थिति की जानकारी शास्त्र देता है–

१.शुद्ध, २.बुद्ध, ३.प्रबुद्ध, ४.प्रशान्त, ५.परमाक्षर, ६.शिव, ७.सुशिव, ८.ध्रुव, ९.अक्षराट्, १०.शंभुराट् । ये दश रुद्र कालतत्त्व में रहते हैं ॥११०९-१११०॥

तत्र–

हेमाभाः शङ्कराः प्रोक्ताः शिवाः स्फटिकसन्निभाः ।

शङ्करा नियतिस्थाः, शिवास्तु कालस्थाः । किञ्च–

एकैकस्य विनिर्दिष्टा परिवारो यशस्विनि ।।१११११।।

कोटिरेका तथान्यानि सहस्राणि तु षोडश ।

तेषां च–

कूर्माकाराणि सर्वेषां प्रोक्तानि भुवनानि तु ।।११११२।।

अथ–

अत ऊर्ध्वं हरिहरौ रागतत्त्वे निबोध मे ।

काल्यकलनं वेद्यसम्बन्धं विना न युज्यते बोधरूपस्य पुंस इति किञ्चिन्मे स्यादिति वेद्यसामान्याभिलाषात्मना, अत एव स्त्र्यादिविषयबुद्धिधर्मस्थूलराग-विलक्षणेन रागतत्त्वेनावश्यमयमुपरक्तः । अतः पुंरञ्जके रागतत्त्वे हरिहरौ मुख्यौ भुवनेशौ ।

अन्यानप्याह–

सुहृष्टः सुप्रहृष्टश्च सुरूपो रूपवर्धनः ।।११११३।।

मनोन्मनो महाधीरः

एते पूर्वाभ्यां सह अष्टौ–

वीरेशाः परिकीर्तिताः ।

यथा नियतिकालगता रुद्राः शङ्कराः शिवाश्चोक्ताः, तथा एते वीरेशा उच्यन्ते दुष्परिहरत्वाच्चैवमुक्ताः ।

नियतिस्थ ये सभी शङ्कर हेमाभ अर्थात् सोने के रंग के होते हैं । हेमाभ और कालस्थ सभी शिव स्फटिक के समान निर्मल हैं । इन सबके अपने अपने लम्बे परिवार हैं ॥११११॥

शङ्कर का परिवार जहाँ एक करोड़ का है, वहीं शिव के सोलह हजार परिवार के लोग हैं । इनके भुवन कूर्माकार हैं ॥१११२॥

इसके ऊपर रागकञ्चुक का क्षेत्र है । इसमें 'हरि' और 'हर' मुख्य भुवनेश हैं । काल्य का कलन वेद्य सम्बन्ध के विना नहीं हो सकता । बोधरूप पुरुष ही कलन करता है । उसे मुझे यह हो, वह हो, इत्यादि इच्छाओं का अम्बार लग जाता है । यह वेद्य की उपलब्धि की अभिलाषा का ही रूप है । बोधरूप पुरुष इन बातों से उपरक्त रहता है । यह रागतत्त्व पुरुष का रंजकतत्त्व है ।

किञ्च अन्यानपि–

रागतत्त्वे प्रवक्ष्यामि येऽन्ये रुद्रा व्यवस्थिताः ।।१११४।।

तानिति शेषः ॥१११४॥

कल्याणः पिङ्गलो बभ्रुर्वीरश्च प्रभवस्तथा ।

मेधातिथिश्छन्दकश्च दाहकः शास्त्रकारिणः ।।१११५।।

शास्त्रकारिण इति शास्त्रकारिनाम्न एकस्यैव गुरुत्वाद्बहुवचनं कृतमत्र पञ्च गुरव इति प्रदर्शनाय ॥१११५॥

यदाह–

पञ्च शिष्यास्तथाचार्या दशैते संव्यवस्थिताः ।

आद्याः शिष्याः, अन्त्या आचार्याः ।

सामान्यवेद्याभिष्वङ्गात्मकं रागतत्त्वं वेद्यप्रकाशेनोपपद्यते । तत्प्रकाशनाय किञ्चिज्ज्ञत्वप्रदं विद्यातत्त्वमस्य सम्बद्धमित्याह–

विद्यातत्त्वमतश्चोर्ध्वं तस्मिन् वै भुवनं शृणु ।।१११६।।

भुवनमिति भुवनानीत्यर्थः ॥१११६॥

इसी पुरुषरंजक रागतत्त्व में हरि और हर दो भुवनेश्वर हैं। इन दोनों के साथ और छः वीरेश भी हैं। इनके नाम १.सुहृष्ट, २.सुप्रहृष्ट, ३.सुरूप, ४.रूपवर्धन, ५.मनोन्मन, ६.महाधीर हैं। जैसे नियति में शङ्कर और काल में शिव भुवनेश हैं, उसी तरह ये वीरेश कहलाते हैं। इसी तरह रागतत्त्व में भी अन्य रुद्र हैं ॥१११३-१११४॥

वे हैं–१.कल्याण, २.पिङ्गल, ३.बभ्रु, ४.वीर, ५.प्रभव, ६.मेधातिथि, ७.छन्दक, ८.दाहक, ९.शास्त्रकारी ये नौ ही हैं। मेधा और अतिथि को अलग करने से ही इनकी संख्या दश हो सकती है। शास्त्रकारी तो सभी पाँचों आचार्य ही हैं। पहले वाले पाँच शिष्य हैं ॥१११५॥

पाँच शिष्य और पाँच आचार्य मिलकर ही इनकी संख्या दश होती है। आदि के पाँच 'कल्याण' से 'प्रभव' पर्यन्त के पाँच आचार्य हैं, अर्थात् गुरु हैं। सामान्यवेद्य का विशिष्ट सम्पर्क ही 'रागतत्त्व' कहलाता है। वेद्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होता है। इसके लिये विद्यातत्त्व का सहारा चाहिये। विद्या सर्वज्ञ को अल्पज्ञ या किञ्चिज्ज्ञ बनाती है। यह किञ्चिज्ज्ञत्व प्रदान करने वाली 'विद्या' रागतत्त्व से सम्बद्ध होती है।

इसी विद्यातत्त्व की स्थिति रागतत्त्व के ऊर्ध्व में मानी जाती है। इस तत्त्व के भुवन अलग हैं। उन्हें भगवान् बता रहे हैं ॥१११६॥

तानि तदीशद्वारेण प्रतिपादयति–

वामो ज्येष्ठश्च रौद्रश्च कलो विकरणस्तथा ।

बलविकरणश्चैव बलप्रमथनस्तथा ।।११७।।

सर्वभूतदमनश्च तथा चैव मनोन्मनः ।

कलो विकरण इति कलविकरणः । क्वचिदेते वामादयः स्त्रीलिङ्गपाठेन दृश्यन्ते ।

किञ्चिज्ज्ञत्वरूपविद्यासम्बन्धोऽपि न अकर्तुरुपपद्यत इति मायानिगूहितपूर्णज्ञानक्रियास्फारस्य अस्य किञ्चित्कर्तृत्वोन्मीलनात्कलातत्त्वमस्ति । ततस्तत्र–

कलातत्त्वे महादेवि महादेवत्रयं स्थितम् ।।११८।।

महादेवो महातेजा महाज्योतिः प्रतापवान् ।

महच्छब्दोपलक्षितं देवत्रयं महादेवत्रयम् । प्रतापवानिति अतिदीप्तः ।

तदत्थिम्–

कलातत्त्वं समाख्यातं समासेन वरानने ।।११९।।

समासेनेत्युक्तेरयमाशयो यदन्येऽप्यत्र वामदेवभवोद्भवैकपिङ्गेक्षणभुवनेशा-

---

भुवन और भुवनेश के नाम एक ही हैं, यह जानना चाहिये । भुवन भुवनेशों के नाम इस प्रकार हैं–१.वाम, २.ज्येष्ठ, ३.रौद्र, ४.कलविकरण, ५.विकरण, ६.वलविकरण, ७.बलप्रमथन, ८.सर्वभूतदमन और ९.मनोन्मन । आगमों में इन्हें स्त्रीलिङ्ग के पाठ द्वारा भी वामा, ज्येष्ठा आदि रूपों में कहा गया है ।

विद्या का सम्बन्ध किञ्चिज्ज्ञत्व रूप होता है । अशुद्ध विद्या के प्रभाव से ही सर्वज्ञ शिव अल्पज्ञ बन जाता है ।

यह सम्बन्ध भी अकर्त्ता में नहीं प्रकाशित होता । माया कञ्चुक द्वारा जिस शिव का पूर्णज्ञानक्रिया स्फार निगूहित कर दिया गया है, उसमें किञ्चित्कर्तृत्व रह जाता है । उसी किञ्चित्कर्तृत्व के उन्मीलन में कला तत्त्व कारण बनता है ।

इसलिये भगवद्व्यवस्था में भी विद्या के ऊपर विशेषरूप से कलातत्त्व के भुवन हैं । भगवान् कहते हैं कि, कलातत्त्व में महादेवत्रय अवस्थित हैं, अर्थात् तीन महादेव भुवन है । उनके नाम हैं–१.महादेव, २.महातेज और ३.महाज्योति हैं । ये सभी बड़े प्रतापशाली हैं, अर्थात् दीप्तिमन्त हैं ।

भगवान् कहते हैं कि, मैंने संक्षेप में तुम्हें इन तथ्यों से अवगत कराया है । इस संक्षेप का तात्पर्य है कि, इसमें ४.वामदेव, ५.भव, ६.उद्भव, ७.एक,

ङ्गुष्ठमात्राख्याः सन्ति । एते ह्यष्टौ मङ्गलेश्वराः पूर्वं बुद्धितत्त्वेऽपररूपेणोक्ताः, इत तु पररूपेण । तत्र च त्रय एव प्राधान्यादुक्तास्तदेवं नियतिकालरागविद्याकलाख्यं यदेतत्तत्त्वपञ्चकमुक्तम्, तत्प्रोक्तभौवनसन्निवेशाश्रयतया बहिः साधारणमेव । ततस्तु प्रतिपुरुषमेतन्नामकमेव तत्त्वपञ्चकं कञ्चुकशब्दावाच्यं भिन्नभिन्नमेवाद्भुतमन्तःकरणादि-वत् । एतच्च तण्डुलस्य कम्बुकमिव पुंसः परमावरणम्, प्रकृत्यादितन्मात्रान्तं तु सूक्ष्मशरीरारम्भकं तुषवत्सूक्ष्मम्, भूतपञ्चकं तु स्थूलशरीरारम्भकं किंशारुकवत्स्थूल-मेवेति सर्वमेतत्प्रातिलोम्येन प्रोक्तभुवनविभागेन शोधनीयम् ॥१११९॥

प्रोक्तनामानः सर्व एव–

एते रुद्रा महादेवि त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ।

असामान्येन महेश्वराभिज्ञानेन अलङ्कृताः । येषां च प्राक् परिवारो न सङ्ख्यातः, तेऽपि–

रुद्रकोटिसहस्रैस्तु समन्तात्परिवारिताः ॥११२०॥

८.पिङ्गेक्षण, ये आठ मङ्गलेश्वर भुवन हैं । ये बुद्धितत्त्व में अपर रूप से अवस्थित हैं और यहाँ पररूप से अवस्थित हैं । प्राधान्य के कारण केवल तीन ही कहे गये हैं ।

इस तरह नियति, काल, राग, विद्या और कला रूप पाँच कञ्चुक तत्त्वों की स्थिति का यहाँ तक चित्रण किया गया है । यह भौवनसन्निवेश का सामान्य बाह्य उल्लास है ।

प्रतिपुरुष यह तत्त्व-पञ्चक भिन्न भिन्न अन्तःकरण में अद्भुत रूप से निबद्ध है । यह तुषतण्डुलन्याय की तरह पुरुष के आवरण बन जाते हैं । प्रकृति से तन्मात्र पर्यन्त सूक्ष्म शरीर के आरम्भक ये तुषवत् सूक्ष्म रूप में रहते हैं । पञ्च महाभूतों में स्थूल शरीरारम्भक रूप में किंशारु अर्थात् बाल अनाज की फलियों की आकृति के अग्रभाग के रूप में रूपायित हो जाते हैं । इस अवसर पर यह बता देना आवश्यक है कि, शोधन प्रक्रिया प्रातिलोम्य प्रक्रिया के अनुसार ही करनी चाहिये ॥१११९॥

भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ! ये सारे रुद्र त्रिनेत्र हैं और चन्द्रशेखरवत् चन्द्रशेखर हैं । यह पहचान महेश्वर की ही है । इससे वे विशेष रूप से अलङ्कृत होते हैं । जिनके परिवारों के विषय में कुछ नहीं कहा गया है, उनके परिवार हजारों करोड़ के विशाल परिवारों से समन्वित हैं, यह जानना चाहिये ॥११२०॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशाः

सर्व एव तु–

योगैश्वर्यबलान्विताः ।

विशेषमेषामाह–

रागे रक्तास्तु विज्ञेया ज्ञानयोगबलोत्कटाः ॥११२१॥

छत्राकारास्तु तेषां वै गृहा रत्नविचित्रिताः ।

अन्येषां तु कूर्माकारा उक्ताः । गतमेतत् । अथैषाम्–

उपरिष्टाद्भवेन्माया

तां च ते–

कथयामि समासतः ॥११२२॥

व्याप्य या वै त्वधोध्वानं वैश्वरूप्येण संस्थिता ।

व्याप्य अतिमात्रमाप्य आकलादिक्षित्यन्तं सर्वमिति व्युत्पत्त्या न च भेदेन अत्र व्याप्यव्यापकभावः; अपि तु अभेदेनेत्याशयेन व्याप्यविश्वं स्थितेत्युक्तम् । समासत इति सङ्क्षिप्तभुवनेशप्रतिपादनाशयेन ।

तदाह–

तत्र रुद्रा महाभागा द्वादशैव महाबलाः ॥११२३॥

प्रधानभूताः स्थिताः । महाबला इति परमेशज्ञानं विना दुष्परि-हराः ॥११२३॥

सभी शुद्ध स्फाटिक के समान सुन्दर हैं । सभी योग के ऐश्वर्य से समन्वित हैं । ज्ञानयोग बल में उत्कट होने पर भी ये सभी राग रक्त होते हैं ॥११२१॥

इनके घर छत्राकार हैं । नाना प्रकार के रत्नों से रमणीय हैं । इन तत्त्वों के ऊपर मायातत्त्व के भुवन हैं । उनका भी कथनमात्र मैं कर रहा हूँ ॥११२२॥

यह माया तत्त्व समस्त अधोवस्थित अध्वावर्ग को व्याप्त कर विश्वरूपता से अवस्थित है । कला से लेकर क्षिति पर्यन्त सभी इसकी व्यापकता के परिवेश में आते हैं । यहाँ व्याप्यव्यापकभाव में भेदमयता नहीं, वरन् अभेद दृष्टि का प्राधान्य है । इसीलिये भगवान् यह घोषित करते हैं कि, यह विश्व को व्याप्त कर अवस्थित है । भुवनेशों की दृष्टि से ही समास शैली अपनाकर कथन मात्र कर दिया गया है । इसमें १२ मात्र ही रुद्र अवस्थित हैं, जो महाबलवान् हैं । ये बारह रुद्र प्रधान रुद्र हैं । परमेश्वर के ज्ञान से ही इनकी विशिष्ट जानकारी हो सकती है ॥११२३॥

तानेतान् पुटविभागेन दर्शयति-

गहनश्च असाध्यश्च तथा हरिहरः प्रभुः ।
दशेशानश्च देवेशि त्रिगलो गोपतिस्तथा ।।११२४।।
अधःपुटे तु विज्ञेया मायातत्त्वे वरानने ।

एते षडित्यर्थः ।

क्षेमेशो ब्रह्मणः स्वामी विद्येशानस्तथैव च ।।११२५।।
विद्येशश्च शिवश्चैव अनन्तः षष्ठ उच्यते ।
ऊर्ध्वमायापुटस्थास्तु रुद्रा एते प्रकीर्तिताः ।।११२६।।
एषां मध्ये तु भगवाननन्तेशो जगत्पतिः ।

श्रीमतङ्गशास्त्रे पुनर्मध्यपुटेऽपि-

'यत्रासौ विग्रहेशानः स्थितः परमदुर्जयः' ।

इत्युपक्रम्य-

'यत्र शर्वो भवश्चैव उग्रो भीमश्च वीर्यमान् ।
भस्मान्तको दुन्दुभिश्च श्रीवत्सश्च महाबलः' ॥

इति ग्रन्थेनाष्टकमुक्तम् । श्रीपूर्वशास्त्रे तु महादेवाद्यङ्गुष्ठमात्रमण्डलेश्वराष्टकमेव मायायामुक्तमिति तन्त्रप्रक्रियाभेदः ।

एष च अनन्तनाथः-

उद्भवं भावयित्वा तु स्वेच्छया कुरुते प्रभुः ।।११२७।।

उन रुद्रों के नाम इस प्रकार हैं । १.गहन, २.असाध्य, ३.हरिहर, ४.ईशान, ५.त्रिगल और ६.गोपति । ये माया के अधःपुर के रुद्र हैं ।

ऊर्ध्वपुर में भी १.क्षेमश, २.ब्रह्मेश, ३.विद्येशान, ४.विद्येश, ५.शिव और ६.अनन्त हैं ॥११२४-११२६॥

इन दोनों पुरों के मध्य भगवान् अनन्तेश्वर जो सांसारिकों के स्वामी हैं, विराजमान हैं । मतङ्गशास्त्र में मध्यपुर में भी विग्रहेशान नाम परम दुर्जय रुद्र की बात कही गयी है तथा इसके बाद रुद्राष्टकों की स्थिति की भी चर्चा है । वे आठ-१.शर्व, २.भव, ३.उग्र, ४.भीम, ५.भस्मान्तक, ६.दुन्दुभि, ७.श्रीवत्स और ८.महाबल हैं ।

वहीं श्रीपूर्वशास्त्र में मात्र महादेवाष्टकों की बात कही गयी है, जो अङ्गुष्ठमात्रात्मक रुद्र हैं और मण्डलेश्वर हैं । यह भेद प्रक्रिया और अनुभूतिगत भेद है । यह ध्रुव सत्य है । इसमें रहने वाले अनन्तेश्वर जीवों के उद्भव का भावन करते हैं और स्वेच्छा से भी उसकी व्यवस्था करते हैं ।

यस्य स्वकर्मपरिपाकाद्यादृगुद्भवः स्थावराद्यात्मक उचितस्तं तस्य भावयित्वा विचार्य स्वेच्छया परमेशेच्छाचेष्टितस्वेच्छामात्रेण, न तु कुम्भकारवत्सहकार्याद्यपेक्ष्य कुरुते यतोऽसौ प्रभुरियत्यध्वनि प्रभवनशीलः ॥११२७॥

किञ्चायम्–

सर्वज्ञः सर्वकर्ता च निग्रहानुग्रहे रतः ।

कलादिक्षित्यन्तं सर्वं जानाति करोति च, तत्रैव आयातशक्तिपातानामितरेषां च अनुग्रहं निग्रहं च करोति ।

तदित्थम्–

प्रथमेन तु भेदेन रुद्रा द्वादश कीर्तिताः ।।११२८।।

इह–

'अतः परं भवेन्माया सर्वजन्तुविमोहिनी' । (११३८)

इति वक्ष्यमाणदृष्ट्या पारमेश्वरी शक्तिर्माया । सा तत्त्वरूपतया ग्रन्थिरूपतया च द्विधा स्फुरिता । तत्र तत्त्वरूपया–

'माया तु कोटिधा व्याप्य स्थिता सर्वं चराचरम्' ॥ इति ॥ (६७१)

तथा–

'व्याप्य या वै त्वधोध्वानं वैश्वरूप्येण संस्थिता' । (११२३)

इति या उक्ता, तस्यामूर्ध्वाधरपुटात्मककाण्डरूपत्वमस्ति । तत्र पुटद्वये मायायाः प्रथमेन तत्त्वात्मना भेदेन द्वादश रुद्राः प्रकीर्तिता विभागेन अवस्थिता उक्ताः ॥११२८॥

वस्तुतः अपने कर्म के परिपाक के अनुसार ही जाति और आयु मिलती है । उसी का विचार अनन्तेश्वर करते हैं । आवश्यकतानुसार स्वेच्छा से इसमें उलटफेर भी करते हैं । कुम्हार की तरह सहकारी कारणों के बल पर नहीं बनने देते, क्योंकि, ये स्वयं प्रभु हैं ॥११२७॥

ये अन्तरेश्वर सर्वज्ञ हैं । सर्वकर्तृत्वसम्पन्न हैं । निग्रह और अनुग्रह दोनों में समर्थ हैं । कला से क्षिति पर्यन्त सब जानते हैं और जानकर सब कुछ करते हैं क्योंकि, वे प्रभु हैं । आयातशक्तिपात साधकों के ऊपर ही निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ हैं ।

इस प्रकार माया के उभय पुरों में विद्यमान द्वादश रुद्र ही अधिपति बनाये गये हैं । ये पुर सर्व जन्तुविमोहिनी माया के ही होते हैं । माया पारमेश्वरी शक्ति है । यह तत्त्वरूपा और ग्रन्थिरूपा भी है । दोनों तरह से स्फुरित होती है । तत्त्व रूप से यह वैश्वरूप्य भाव से सर्वाध्ववर्ण को व्याप्त कर अवस्थित होती है ।

ऊर्ध्वाधरपुटा माया के प्रथम पुर में तत्त्वरूप से १२ रुद्र अवस्थित हैं ॥११२८॥

यस्त्वस्या निःसंख्यावान्तरभेदभिन्नकलादिक्षित्यन्ततत्त्वसन्ततिस्रोतोभेदप्रसूति-हेतुः शक्तेः किञ्चिदुच्छूनतेवाम्नातो ग्रन्थ्यात्मा स्थूलस्वभावः, असौ सुसूक्ष्मतम-सत्त्वरजस्तमोरूपतया ऊर्ध्वमध्याधरग्रन्थिभेदेन तालुग्रन्थिसमानरूपेण त्रिधा अवस्थितः । यथोक्तं प्राक्–

'अधश्छादनमूर्ध्वं च सितरक्तं विनिर्दिशेत् ।
मध्ये तमो विजानीयाद्गुणास्त्वेते व्यवस्थिताः' ॥ (२/६६)

इति । तत्र त्रिभेदे ग्रन्थ्यात्मनि रूपे रुद्राणां विभागेन स्थितिमाह–

अस्मिंस्तु ये यथा रुद्रा मायातत्त्वे व्यवस्थिताः ।
तथाहं कथयिष्यामि भेदत्रयविभागशः ।।११२९।।

अस्मिन्निति प्रोक्तकलादितत्त्वस्रोतःसन्तानप्रसूतिहेतौ ग्रन्थ्यात्मनि मायीये रूपे ये गोपत्याद्या अनन्ताद्या यथा येन क्रमेण स्थिताः, तथा भेदत्रयविभागश इति सत्त्वादिग्रन्थिरूपेण भेदेन वर्णयिष्यामि ॥११२९॥

तत्र–

गोपतिश्च ततो देवि अधोग्रन्थौ व्यवस्थितः ।

तत इति कलातत्त्वप्रतिपादितमहादेवादिरुद्रभुवनोर्ध्वं यो मायीयोऽधोग्रन्थि-स्तत्र प्रागुक्त एव गोपतिः पररूपेण स्थितः ।

माया के तत्त्व और ग्रन्थिरूप दो भेदों की बात पहले आ चुकी है । यह माया शक्ति की किञ्चित् उच्छूनता मानी जाती है । यह ग्रन्थि-स्वभाव वाली होती है । साथ ही असंख्य अवान्तरभेदभिन्न कलादि क्षित्यन्त तत्त्व परम्परा की भेदमयी प्रसूति की हेतु होती है ।

इस ग्रन्थि का भेदन साधक करता है । सत्त्व, रजस् और तमस् रूप से ऊर्ध्व, मध्य और अधःस्थितियों में त्रिधा अवस्थित है । यह २/६६ द्वारा भी कहा गया है अधः और ऊर्ध्व और मध्य, मध्य में सित, रक्त और तमोमयी होती है ।

इसके विषय में भगवान् कहते हैं कि, इस माया तत्त्व में जितने रुद्र व्यवस्थित हैं, वे भी तीन भेदों के विभाग के अनुसार ही हैं । अर्थात् ग्रन्थिरूपा और कलादि तत्त्वों की परम्परा की प्रसूतिहेतु माया में जो गोपति और अनन्त आदि रुद्र जैसे और जिस क्रम से अवस्थित हैं, उन्हें तीन भेदों के रूप में मैं वर्णन करने जा रहा हूँ ॥११२९॥

भगवान् कहते हैं कि, देवि ! गोपति अधोग्रन्थि में व्यवस्थित हैं । कलातत्त्व प्रतिपादित महादेव के रुद्रभुवन के ऊर्ध्वमायीय अधोग्रन्थि

तथा–

ग्रन्थ्यूर्ध्वे संस्थितो विश्वस्त्रिकलः क्षेम एव च ।।११३०।।
ब्रह्मणोऽधिपतिश्चैव शिवश्चेति स पञ्चमः ।

ग्रन्थ्यूर्ध्व इति ऊर्ध्वग्रन्थावित्यर्थः । स इति प्रागुक्त एव । अपररूपेण इह अयं विश्वाभिधो रुद्रः स्थितः, न त्वन्य इत्यर्थः ।

किञ्च–

अध ऊर्ध्वमनन्तस्तु

अध इति अधोग्रन्थेरूर्ध्वं यो ग्रन्थिस्तत्र अनन्तः स्थित इत्यर्थः । एतच्च ग्रन्थितत्त्वात्मतया द्वित्वं मायायाः श्रीशिवतनौ–

'मायाबिलमिदमुक्तं परतस्तु गुहा जगद्योनिः ।
उत्पत्त्या तेष्वस्याः पतिशक्तिक्षोभमनुविधीयमानेषु ।।
योनिविवरेषु नानाकामसमृद्धेषु भगसंज्ञा' ।

इत्यादिग्रन्थेन गुरुभिर्दर्शितमिति । एतं व्याख्याक्रमं त्यक्त्वा यत्तु श्री-भुल्लकेन व्याख्यातं यथा परमेश्वरो लकुलेशाय ज्ञानं भेदेन प्रकाशितवानिति श्रीलकुलस्वच्छन्दप्रदर्शितस्थित्या द्विस्कन्धं पारमेश्वरज्ञानमिति द्विधा मायायां भुवनेशविभाग इह दर्शित इति, तद्युक्तमयुक्तं वेति सचेतसो जानन्ति ।

यश्च अयमनन्तभट्टारकाश्रयो मध्यमो ग्रन्थिरुक्तः–

पाशाश्चैवात्र संस्थिताः ।।११३१।।

में गोपति व्यवस्थित हैं। इस ग्रन्थि के ऊर्ध्व भाग में विश्व, त्रिकल और क्षेम हैं ।११३०।।

ब्रह्मेश, शिव आदि ग्रन्थि के ऊर्ध्व भाग में ही अवस्थित हैं तथा अधोभाग के ऊर्ध्व में अनन्त अवस्थित हैं। यह माया की द्विधा स्थिति का स्वरूप है।

शिवतनुशास्त्र में कहा गया है कि,

यह महाबिल है। पररूप में यह जगत् की योनिरूपा गुहा है। उत्पत्ति की दृष्टि से पति और शक्ति दो उभय रूपों में क्षुब्ध योनिविवरों की नाना कामनाओं से समृद्धि के कारण इनको 'भग' संज्ञा से विभूषित करते हैं।

श्री भुल्लक नामक व्याख्याकार ने कहा है कि, परमेश्वर ने लकुलीश को भेदपूर्व ज्ञान प्रदान किया था। इस तरह लाकुल और स्वच्छन्द भागों में द्विस्कन्ध ज्ञान दिया था। इसीलिये माया में भुवनेश विभाग प्रदर्शित है। यह विचारणीय विषय है। इस पर शास्त्रार्थ होना चाहिये।

इसी अनन्त भट्टारक वाली मध्य ग्रन्थि में सभी पाश अवस्थित हैं ।।११३१।।

ते च–

पूर्वं वै कथिता देवि

वैशब्द एवार्थे । पूर्वमेव पुरुषतत्त्वनिरूपणावसरे–

'अम्बा च सलिला ओघा................'। (१०६९)

इत्यादिना तुष्टिसिद्ध्याद्या विद्येशपाशान्ता ये पाशा उक्ताः, ते इह पररूपेण अवस्थिता इत्यर्थः । माया हि सर्वेषां पाशानामुत्पत्तिभूः । तैस्त्वनन्तप्रयुक्तैर्विशिष्ट-देवतात्मभिः सूक्ष्मरूपैर्वामशक्त्याधिष्ठिता अणवो बध्यन्ते । बुद्धितत्त्वे तु तुष्टि-सिद्ध्यादयः केचित्पाशाः स्थूलरूपाः स्थिताः, तदेषां विभवस्थानमित्युक्त-प्रायम् ।

किञ्च–

अतो ऋषिकुलं भवेत् ।

यत्पूर्वं पाशमध्ये गुरुशिष्यात्मकपङ्क्तित्रयेण ऋषिकुलमुक्तम्, तदिह पाशानामुपरि स्थितम् ।

किञ्चात्र–

योनिर्वागीश्वरी चैव यस्यां जातो न जायते ।।११३२।।

यह बात पुरुषतत्त्व निरूपण के अवसर पर पहले ही कही जा चुकी है । श्लोक १०६९ के द्वारा अम्बा, सलिला ओघा आदि तुष्टि और सिद्धि आदि विद्येशान्त जितने पाश कहे गये हैं, वे यहाँ पररूप से अवस्थित हैं । माया सभी पाशों की प्रसू है, उत्पत्तिस्थान है । इन पाशों के द्वारा ही जो अनन्तेश्वर से प्रेरित होते हैं तथा विशिष्ट देवताशक्तियों से तथा सूक्ष्म वामादि शक्तियों से अधिष्ठित होते हैं, इनसे अणुबद्ध अर्थात् पाशग्रस्त हो जाते हैं ।

बुद्धितत्त्व में तुष्टि और सिद्धि आदि कुछ पाश स्थूल रूप से भी अवस्थित हैं । यह उनका विभव स्थान माना जाता है । पाशों के मध्य गुरुशिष्यों की तीन पंक्ति रूप ऋषिकुल पाशों के ऊपर अवस्थित है ।

जहाँ तक योनि का प्रश्न है । यही वागीश्वरी शक्ति होती है । वाक् तत्त्व को भुवनों की उत्पत्ति का कारण मानते हैं । इस दृष्टि से योनि अर्थात् विश्वकारण वागीश्वरी यहाँ सूक्ष्म रूप से अवस्थित है । पर रूप शुद्ध विद्या होती है । शुद्ध विद्या के सारस्वत भुवन में वागीश्वरी के सम्बन्ध में पहले कहा गया है ।

यह परमेश्वर का शक्त्यात्मक विश्व-विस्तार प्रसार स्थूल, सूक्ष्म और पररूप से अवस्थित है । इसमें किसी भी अवस्था में उत्पन्न पुरुष वर्गदीक्षा के मन्त्रों के

................वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे' ।

इति स्थित्या योनिर्विश्वकारणं वागीश्वरी अत्र सूक्ष्मेण रूपेण स्थिता परेण शुद्ध-विद्यायां प्रतिपादयिष्यमाणत्वादपरेण सारस्वतभुवने प्रोक्तत्वात् । सर्वं हि स्थूल-सूक्ष्मपररूपतया त्रिर्विभक्तं परमेश्वरशक्त्यात्मकं तत्र तत्र तथा तथावस्थितमेकादशे वक्ष्यति । कीदृशी वागीश्वरीत्याह यत्र यस्यां प्राङ्निर्णीतस्थित्या स्थूलसूक्ष्मपर-रूपायां जातो मन्त्रसंस्कृतिसम्पादितगर्भाधानादिसंस्कारेणोत्पन्नस्तत्र तत्र तत्त्वे प्राग-र्जिततत्तत्कर्मफलोपभोगाय नानायोनिभेदेन सृष्टो न जायत इति पाशशुद्धेर्योज-निकायाश्च सम्पन्नत्वात्परशिवैक्यप्राप्त्या मुच्यत इत्यर्थः ॥११३२॥

किञ्चात्र मायायाम्–

ओङ्कारसाध्यधातारो दमनेशस्ततः परम् ।

ध्यानं भस्मेशमेवाहुः

ओङ्काराभिधान्साध्यादीन् पञ्च रुद्रानाहुः, अन्ये तु ऋषिकुलं यदनन्तर-मुक्तम्, तदेवोङ्कारसाध्यादिनामषट्केन विभक्तमिति व्याख्यातवन्तः ।

किञ्च–

प्रमाणानि तदूर्ध्वतः ।।११३३।।

हेयोपादेयाशेषप्रमासाधकत्वात्प्रमाणशब्दाभिधेया अष्टौ रुद्राः प्रणवाख्य-रुद्रपञ्चकावरणस्योपरि स्थिताः ॥११३३॥

तानि प्रमाणान्युद्दिशति–

पञ्चार्थं गुह्यमेवाहू रुद्राङ्कुशमतः परम् ।

हृदयं लक्षणं चैव व्यूहमाकर्षमेव च ।।११३४।।

संस्कार से सम्पादित गर्भाधानादि संस्कारों से शुद्ध कर देने पर अर्जित कर्मफल भोग के शुद्ध हो जाने पर उसमें उत्पन्न होने पर पुनर्जन्म से रहित हो जाते हैं, अर्थात् पुनः उनका जन्म नहीं होता और वे पुनः जन्म न लेने वाले जीन्मुक्त हो जाते हैं । पाशशुद्धि की योजनिका क्रिया से वे शुद्ध होकर परशिवैक्य प्राप्त कर लेते हैं । यही उनके जन्म लेने का रहस्य है ॥११३२॥

मायातत्त्व में ओङ्कार, साध्य, धाता, दमनेश, ध्यान और भस्मेश ये पाँच रुद्र हैं । इनके अतिरिक्त अन्य जो हैं, उनकी गणना ऋषि कुल के रूप में होती है । कुछ ऋषि कुल को ही छः भेदों में विभक्त मानते हैं । जो कुछ भी हो, इनके ऊपर प्रमाण नामक आठ रुद्र और भी अवस्थित हैं । हेय और उपादेय रूप समग्र प्रमा के साधक होने के कारण इन्हें प्रमाण कहते हैं और वे प्रणव आदि पाँच रुद्रों के आवरण के ऊपर अवस्थित हैं ॥११३३॥

आदर्शं च तथैवेह अष्टमं परिकीर्तितम् ।

एते रुद्रा एतन्नामकपाशुपतशास्त्रावतारकाः । तत्र च हृदयाख्यं यत्प्रमाणमुक्तम्, तस्यान्तर्भूतानि यानि पुरकल्पकनकशालानिरुत्तरविश्वप्रपञ्चाख्यानि षट् क्रियाप्रधानानि प्रमाणानि प्रोक्तज्ञानप्रधानप्रमाणाष्टकविलक्षणानि हृदयाख्यात्प्रमाणाल्लकुलेशशिष्येण मुसुलेन्द्रेणोद्धृत्य आरुरुक्षूणां प्रथमं प्रदर्शितानि, न तानि इह पृथग्गणितानि । एवम्–

'लाकुलं मौसुलं चैव द्विधा तन्त्रं प्रकीर्तितम्' । (११ पट०)

पाशुपतं यत्, तदत्र मायान्तरपरतया स्थितम्, परं पदं त्वेषामीश्वरतत्त्वमिति वक्ष्यति । अत एव–

'सर्वाध्वनो विनिर्मुक्तं शैवानां तु परं पदम्'। (११पट०)

इति वक्ष्यमाणस्थित्यैव पाशुपतेभ्यः शैवानां महदन्तरमित्युक्तम् ।

ये प्रणवप्रमाणाभिधा रुद्रा उक्ताः–

एते परिवृता देवि रुद्रकोटिसहस्रकैः ।।११३५।।
नानावर्णविचित्राश्च नानाभरणभूषिताः ।
नानानारीसहस्रैस्तु रमन्ते पत्युरिच्छया ।।११३६।।

पत्युरनन्तस्य । अतश्च स एव लकुलेशादीनां गुरुः ॥११३६॥

पञ्चार्थ प्रमाण भी है और इस नाम के पाशुपत शास्त्रावतारक भी हैं । दूसरा प्रमाण हृदय है । इसके अन्तर्गत पुर, कल्प, कनक, शाला, निरुत्तर, विश्व प्रपञ्च ये छः क्रियाप्रधान प्रमाण आते हैं । ये पहले कहे गये ज्ञानप्रधान आठ प्रमाणों के अतिरिक्त हैं । लकुलेश के शिष्य मुसलेन्द्र ने हृदय से इन्हें अलग कर आरुरुक्षु साधकों के सौविध्य के लिये पहले प्रदर्शित किया था । हृदय से अलग उन्हें नहीं कहा गया है । इसी आधार पर लाकुल और मौसुल उभयविध तन्त्रों की बात कही गयी है ।

पाशुपतशास्त्र मायान्तर परभाव में स्थित शास्त्र है । इनका परपद ईश्वर तत्त्व है । सर्वाध्वाविनिर्मुक्त शैवों से और पाशुपतों से यह महान् अन्तर है ।

प्रणवप्रमाण नामक जो रुद्र हैं, ये हजारों करोड़ रुद्रों से भी परिवृत माने जाते हैं । विचित्र वर्णों के ये नाना आभूषणों से भी भूषित रहते हैं । इनके यहाँ नारियों का अनुपात पुरुषापेक्षा बहुत है । अतः सर्वत्र हजारों नारियाँ उनके साथ रहती हैं । यहाँ अनन्त को पति मानकर इनकी इच्छा से रमण की बात लिखना अच्छा नहीं लगता । लकुलेशों के गुरु की रमण की आज्ञा गले नहीं उतरती ॥११३६॥

किञ्च–

त्रिनेत्राः शूलिनः सर्वे जटाचन्द्रकिरीटिनः ।

अलुप्तशक्तिविभवा मायातत्त्वाधिकारिणः ।।११३७।।

भुवनेषु विचित्रेषु योन्याकारेषु संस्थिताः ।

एवं चैतदाराधका एतत्पदप्राप्तिभाज एषामधिकारसमाप्तौ सह मुच्यन्त इत्यर्थलभ्यम् ।

एवं मायायास्तत्त्वरूपतां ग्रन्थिरूपतां च निर्णीय शक्तिरूपतामपि आख्यातुमाह–

अतः परं भवेन्माया सर्वजन्तुविमोहिनी ।।११३८।।

सर्वान् जन्तून् जायमानान् सृज्यमानान् मोहयति स्वस्वरूपाख्यातिसतत्त्वाणवमलभाजः करोति । एवं चाभिदधन्मलस्यावास्तवतेत्याह, तच्चास्माधिः पूर्वमेव निर्णीतम् ।।११३८।।

किञ्च अन्यत्–

निर्वैरपरिपन्थिन्या तया भ्रमितबुद्धयः ।

इदं तत्त्वमिदं नेति विवदन्तीह वादिनः ।।११३९।।

सभी त्रिनेत्र, शूली, जटी, चन्द्रकिरीटी, अलुप्तशक्ति, अलुप्तविभव और मायातत्त्व के अधिकारी रुद्र हैं । इनके भुवनों का आकार योनि जैसा है । उसी आकृति के भुवन में रहते हैं । इनकी यह विशेषता है कि, ये आराधक श्रेणी के रुद्र हैं । अधिकारसमाप्ति पर ये मुक्त हो जाते हैं । अर्थतः उपलब्ध इस अर्थ पर विचार करना चाहिये ।

माया को तत्त्वरूप और ग्रन्थि इन दो रूपों में वर्णन का विषय बनाया गया है । यहाँ से उसकी शक्तिरूपता का वर्णन करने जा रहे हैं–

सभी सर्जनप्रक्रिया के अन्तर्गत जन्तुओं अर्थात् जन्म ग्रहण करने वाले जीवों की यह विमोहिनी शक्ति भी है । अपने वास्तविक रूप की ख्याति का अभाव पैदा कर उन्हें आणवमल से युक्त कर देती है । जीव मलावरण के नष्ट हो जाने पर अपने स्वरूप को पहचान लेते और शिवैक्यानुभूतिनिष्ठ परमानन्दमकरन्द से मुग्ध हो धन्य हो जाते हैं ।।११३७-११३८।।

माया विना वैर के भी विश्वपथिक जीवों को लूट लेती है । उसके कारण जीव जगत् भ्रमितबुद्धि हो जाता है । वादमात्र में ही इनकी उद्देश्य पूर्त्ति हो जाती है । सच्चाई का पता लगना चाहिये और तत्त्व का साक्षात्कार करना चाहिये,

विवदन्ते परस्परविरुद्धं जल्पन्ति, अत एव वादिनो वादमात्रे पर्यवसिताः, न तु तत्त्वज्ञाने । विमतावात्मनेपदिनो वदेः परस्मैपदं व्यत्ययात् ।

अतश्च एतानसौ–

सत्पथं तु परित्यज्य नयति द्रुतमुत्पथम् ।

सत्पथः पारमेश्वरशास्त्राणि, इतरदसत्पथः ।

एतदेव व्यनक्ति–

गुरुदेवाग्निशास्त्रस्य ये न भक्ता नराधमाः ।।११४०।।

असद्युक्तिविचारज्ञाः शुष्कतर्कावलम्बिनः ।

भ्रमयत्येव तान् माया ह्यमोक्षे मोक्षलिप्सया ।।११४१।।

असद्युक्तिः पारमेशपराद्वयागमबाह्यस्तर्कः । अमोक्षः परमाद्वैतचिदानन्दघन-परमेश्वरैक्यव्याप्तेरन्यत्सर्वमेव ॥११४१॥

कथमियं परिहार्या स्यादित्याह–

शिवदीक्षासिना च्छिन्ना न प्ररोहेत्तु सा पुनः ।

शिवेन स्वच्छस्वतन्त्रचिदानन्दघनेन शङ्करेण प्रोक्ता या ज्ञानयोगक्रियाप्रधाना नानाप्रकारा दीक्षा–

इसमें इनकी रुचि नहीं होती । विवाद के लिये ही ये विवाद करते रहते हैं, तत्त्वज्ञान के लिये नहीं ॥११३९॥

इसलिये ऐसे लोगों को माया सत्पथ से विरत कर उत्पथ की ओर अग्रसर कर देती है, अर्थात् परमेश्वर के पथरूप शास्त्रों में अरुचि उत्पन्न कर दुर्निवार आकर्षण में लगा लेती है । ऐसी दशा में गुरुदेव, याग और शास्त्रों की आवश्यकता होती है, जो सच्चा रास्ता दिखा सकें । किन्तु दुर्भाग्य ! सारे नराधम अघोमार्ग की ओर ही दौड़ लगा कर सरपट भाग रहे हैं । गुरु, अग्नि और शास्त्र में उनकी भक्ति नहीं रह जाती ॥११४०॥

ऐसे लोगों को यह माया देवी अमोक्ष के अन्धपथ पर ही छोड़ देती है । जीव जानता है कि, मैं तो मोक्ष के पथ का पथिक हूँ । उसी की लिप्सा मुझमें हैं । मैं वहीं जा रहा हूँ । पर माया उसे उस राह की ओर घुमा देती है, जिधर भयङ्कर आवागमन का मगरमच्छ उसे जीवित ही निगल लेता है । फलतः वे असद् युक्ति के विचार को ही ज्ञान मानने लगते हैं और सूखे नीरस तर्कों का ही आश्रय लेते हैं ॥११४१॥

तर्क, पारमेश्वर पराद्वयवाद के विरुद्ध ही ले जाता है । परमाद्वैत चिदानन्द-घन शिवैक्य के अतिरिक्त पथ ही अमोक्ष पथ है । वस्तुतः इन दोनों को

'दीयते ज्ञानसद्भाव:...............'।

इति प्राङ्निरूपितरूपा, सैव पाशच्छेदकत्वादसिरिव तेन, यस्य च्छिन्नेति स्वातन्त्र्यशक्त्यात्मपरस्वरूपप्रत्यभिज्ञानेन उन्मूलिता, तं प्रति न कदाचित्प्ररोहतीत्यर्थ: ।

एवं मायायास्तत्त्वग्रन्थिशक्त्यात्मकं त्रिविधं रूपमुक्तम् । तत्र तत्त्वात्मकमशेषविश्वव्यापकाण्डरूपसन्निभम्, ग्रन्थ्यात्मकं त्रिविधम्, शाक्तं तु स्वातन्त्र्यशक्तिसारमेव । तथात्वेन अपरिज्ञायमानत्वान्मोहितान् प्रति मायेत्युच्यते । तदेवमियमीश्वरप्रयुक्ता निगूहितस्वस्वरूपान्पुंस: ज्ञातृकर्तृरूपान् स्वै: कलादिनियत्यन्तैस्तत्त्वै: किञ्चित्कर्तृत्वकिञ्चिज्ज्ञातृत्वाभिलाषकलननियमनैर्मितभोग्योपभोगभाज: प्रोक्तपाशशतपाशितान् विधाय किञ्चिदंशात्मभोग्यसामान्यरूपे प्रधानाशये तथा निक्षिपति, येन तत्कार्यगुणादिक्षित्यन्तस्थूलपाशपाशिता योनेर्योन्यन्तरमेव एते अनुसरन्ति । अत: पारमेशदीक्षायां समुच्छेद्यैव । इयं च इयद्विश्वव्यापिकापि माया अख्यातिरूपापि पारमेश्वरप्रकाशभित्तावेव प्रकाशत इति । एतन्मुखेन या विश्वप्रकाशिका पारमेश्वरप्रकाशभित्ति:, सा शुद्धविद्योच्यते । ततस्तां निरूपयति–

अथोपरि महाविद्या सर्वविद्याभवोद्भवा ।।११४२।।

दीक्षा की तलवार से काटना ही वास्तविक पथकार्य है । स्वच्छ स्वतन्त्र स्वच्छन्द चिदानन्दघन शिव के द्वारा निर्दिष्ट शास्त्र विधि द्वारा उसे उपलब्ध कराना ही गुरु का उत्तरदायित्व होता है । इससे कट जाने पर यह माया लता फिर उगने का नाम नहीं लेती ।

दीक्षायें ज्ञानयोग और क्रिया प्रधान कई प्रकार की बतायी गयी हैं । पहले ही घोषणा है कि, दीक्षा में सर्वप्रथम ज्ञानसद्भाव ही इसके द्वारा दिया जाता है । पहले ज्ञानसद्भाव देने का निरूपण हो चुका है । वही पाश को काटती है । इसलिये दीक्षा ही असि मानी जाती है । इस तलवार से उसे काटकर स्वातन्त्र्यशक्तिरूप स्वात्मरूप का प्रत्यभिज्ञान दीक्षा करा देती है ।

इस प्रकार माया के तीन रूप स्पष्ट हो जाते हैं । मायातत्त्व, मायाग्रन्थि और मायाशक्ति । तत्त्वदृष्टि से अशेष विश्वव्यापिका मायाण्डरूपिणी माया है । ग्रन्थि की दृष्टि से तीन प्रकार की है और स्वतन्त्र शक्ति सारात्मक अज्ञान प्रदात्री मोहमयी माया है । मोहितों को मूर्ख बनाने में लिप्त मायाशक्ति ही है ।

जगतः प्रलयोत्पत्तिविभूतिनिधिरव्यया ।

'दशकोटिगुणा विद्या मायां व्याप्य व्यवस्थिता' । (६७१)

इत्युक्तत्वादशुद्धविद्यावैलक्षण्यतो महती अशेषवेदनरूपत्वाद्विद्या सर्वासां विद्याराज्ञीप्रभृतीनां दिव्यानां भावानां च प्रणवोपलक्षितानां सर्वमन्त्राणामुद्भव उल्लासो यस्याः सा तथा । अत एव मन्त्रात्मकाशेषाधिष्ठातृनिर्माणादिद्वारेण तदधिष्ठेयं मायादितत्त्वतत्तत्प्रमातृभुवनादिरूपस्य जगतः प्रलयोत्पत्त्योर्विभूतौ च–

'विद्यामण्डलराजानां मण्डलानां विभूतयः ।
न शक्याः परिसङ्ख्यातुं मन्त्राणां च तथात्मनाम्' ॥

इति स्थित्या आत्मभोगसम्पत्तौ निधिराश्रयो विश्वसर्गस्थितिसंहारकारिणीत्यर्थः, स्वयं तु प्रकाशरूपतया अन्यथा । यत्त्वेकादशे अत्रापि संहारादि वक्ष्यते, तत्सङ्कोचापेक्षया ।

यह ईश्वर प्रयुक्त शक्ति है । स्वात्म रूप गोपन की स्वतन्त्रता से स्वस्वरूप को न पहचानने वाले ज्ञाता और कर्त्ता रूप पुरुषों को कला के प्रभाव से कुछ कुछ करने वाला, अशुद्धविद्या से अल्पज्ञ, नियति से मित, भोगोपभोग युक्त राग से रागानुरक्त और काल से मृत्युग्रास बनाकर सैकड़ों प्रकार से पाशित कर देती है । अतः परिणामस्वरूप एक योनि से योन्यन्तर गमन रूप आवागमन के चक्कर में फँस जाते हैं, इसीलिये परमेश्वर की दीक्षा से इसका उच्छेद स्वात्मलाभ के लिये आवश्यक हो जाता है ।

ऐसी विश्वव्यापिका यह मायाशक्ति यद्यपि अख्याति रूप है, फिर भी परमेश्वर की प्रकाशभित्ति पर ही प्रकाशित होती है। इस प्रकार जब विश्वप्रकाशिका परमेश्वर की प्रकाशभित्ति का इससे मुख्यतया सम्पर्क हो जाता है, तो यह शुद्धविद्या का रूप ग्रहण कर लेती है। शुद्धविद्या सित सृष्टि का पहला तत्त्व है ।

माया के ऊपर यह महाविद्या समस्त विद्याओं की सृष्टि की मूल हेतु होती है । इसी पटल के श्लोक ६७१ द्वारा माया से दश करोड़ गुना है, इसका उल्लेख किया गया है । अशुद्धविद्या से यह विलक्षण शक्ति है । अशेष वेदन कराने में हेतु है । अर्थात् सही अर्थों में विद्या है । सभी विद्या की राज्ञी रूपा ही दिव्य भावमयी है । अर्थात् प्रणव से उपलक्षित सभी मन्त्रों का उल्लास भी इसी से होता है ।

अधिष्ठाता मन्त्र और उनके अधिष्ठेय मायादि तत्त्व उनके प्रमाता भुवन रूप जग की प्रलयोत्पत्ति रूप विभूति की यह निधि है, अर्थात् आश्रय है ।

किञ्च–

सा एव परमा देवी वागीशीति निगद्यते ।।११४३।।

परमेति मायाया उक्ताया भेदप्रथोत्थापिकाया इयमन्या अभेदप्रथोन्मीलन-प्रथमसोपानकल्पा वागीशस्य परपरामर्शात्मनो महेश्वरस्य इयं वागीशीति निरुच्यते ॥११४३॥

अत एव–

अष्टवर्गविभिन्ना च विद्या सा मातृकैव तु ।

अ-क-च-ट-त-प-य-शैरष्टाभिर्वर्गैर्भिन्ना न त्वभिन्ना अनाहतपरामर्शमयत्वेन भिन्नाशेषविश्वावभासभाजो मन्त्रानुन्मीलयेत्, अत एव च इयं मातृका वाच्य-वाचकाशेषविश्वहेतुत्वेऽपि पशुभिस्तथात्वेन अपरिज्ञाता माता ।

अथात्र–

भुवनानि प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।।११४४।।

तत्र–

वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काली विकरणी तथा ।
बलविकरणी चैव बलप्रमथनी तथा ।।११४५।।

विद्यामण्डलराजरूप मण्डलों, यन्त्रों और उनमें स्थित मन्त्रात्माओं रूप रुद्रों की परिसंख्या की गणना बड़ी कठिन है । इस दृष्टि से इनकी भी निधि है । आश्रय है । विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार तीनों का कारण होता है । यह स्वयं प्रकाश रूप होता है । इन दृष्टियों से यह स्वयं प्रकाशरूपा भी है । यही शुद्ध-विद्या परम दिव्यसम्पन्ना वागीश्वरी शक्ति भी है । अर्थात् भेदप्रथा की उत्थापिका माया से विलक्षण अभेद प्रथा के उन्मीलन की प्रथम सोपान रूपा वागीश रूप पर परामर्शक महेश्वर की अन्तरङ्गा वागीशी शक्ति भी कहलाती है ॥११४३॥

यह वागीशी शक्ति अष्टवर्गों में बँटी हुई है । इसके आठ वर्ग १.अवर्ग, २.कवर्ग, ३.चवर्ग, ४.टवर्ग, ५.तवर्ग, पवर्ग यवर्ग और शवर्ग रूप हैं । यह भिन्न परामर्शमयी है । इसीलिये इसे अभिन्न नहीं मानते । अनाहत परामर्श रूप अशेष विश्व के अवभास में समर्थ मन्त्रों का उन्मीलन इसी से होता है । इसीलिये इस विद्या को मातृका कहते हैं । वाच्यवाचक रूप इस सम्पूर्ण विश्व का हेतु होने पर भी पाशबद्ध पुरुष इसे इसके वास्तविक रूप को नहीं जानते । ऐसी यह माता मातृका रूप से विख्यात है ।

दमनी सर्वभूतानां तथा चैव मनोन्मनी ।

एताश्च श्रीमदानन्दभैरवे-

वामया विसृजेत्सर्वं ज्येष्ठया पालयेत्पुनः ।
रौद्र्या लोकोपसंहारं कुरुते स्वेच्छया प्रभुः ॥
काल्या कलति भूतानि विकरण्या किरेत्कलाः ।
बलमप्यन्यया सर्वं बलं मथ्नाति चान्यया ॥
दमन्या दमयित्वा तु मनः सङ्कल्परूपकम् ।
नयते परमं स्थानमुन्मन्या तु महेश्वरः' ॥

इति निरुक्ताः । विकरण्येति कलविकरण्या कलाः शक्तीर्विकिरेत् सर्वं स्व-शक्त्यधिष्ठितं करोति । अन्यथा बलविकरण्या सर्वत्र बलं स्वव्यापारकरण-सामर्थ्यं विकिरेत् । अन्यया बलप्रमथन्या सर्वेषां रुद्रक्षेत्रज्ञानां बलं प्रमथ्नाति । दमयित्वेति समनान्तां भूमिमाविश्येत्येवमत्र सङ्गतिः । ये तु पूर्वमशुद्धविद्याया वामादयो नव देवाः स्त्रीलिङ्गपाठाद्वामाद्या वा नव शक्तय उक्ताः, ते एतदंशा-वताररूपाः स्थूला बोद्धव्याः ।

इस प्रकार इस वागीश्वरी शक्ति के भुवन भी शास्त्रों में वर्णित हैं । ये स्त्रीलिङ्ग नाम से ही विश्रुत हैं । ये हैं-१.वामा, २.ज्येष्ठा, ३.रौद्री, ४.काली, ५.कलविकरिणी, ६.बलविकिरणी, ७.बल प्रमथनी, ८.सर्वभूतदमनी और ९.मनोन्मनी । अशुद्ध विद्या में वामादि नव रुद्रदेव भुवन हैं, वे ही स्त्रीलिङ्ग पाठ में यहाँ व्यक्त हैं । इन्हीं शक्तियों के वे अंशावतार रूप हैं ।

श्रीआनन्दभैरव में इसका इस प्रकार वर्णन किया गया है । १- भगवान् भैरव वामा शक्ति के माध्यम से सबका विसर्जन करते हैं ।

२- ज्येष्ठा शक्ति के द्वारा सबका पालन करते हैं ।

३- रौद्री से स्वेच्छापूर्वक लोक का उपसंहार करते हैं ।

४- काली से समस्त प्राणियों का कलन करते हैं ।

५- विकरणी से कलाओं को विकीर्ण करते हैं । कलशब्द के साथ ही यह कलविकरणी कहलाती है । कला रूप शक्तियों के विकीर्णन का तात्पर्य स्व-शक्त्यधिष्ठित करती है ।

६- बलविकरणी से स्वव्यापारकरण सामर्थ्य बाँटती है ।

७- अन्या अर्थात् बलप्रमथनी के द्वारा बल का मन्थन करती है ।

८- सर्वभूतदमनी से सबके सङ्कल्पात्मक मन का दमन करती है और

एताश्च–

तप्तचामीकराकाराः पञ्चवक्त्रास्त्रिलोचनाः ।।११४६।।

अमोघवीर्याः सर्वज्ञाः सर्वतः सर्वदा स्थिताः ।

सर्वज्ञानुगताः सर्वाः सर्वाभरणभूषिताः ।।११४७।।

सर्वलक्षणसम्पन्नाः सर्वैश्वर्यसमन्विताः ।

तप्तचामीकराकारा अतिदीप्ताः । लक्षणानि विज्ञानयोगरूपाणि । सर्वतः सर्वत्र सर्वकालं स्थिता एतदनधिष्ठितं न किमप्यस्तीत्यर्थः । ईदृश्योऽपि सर्वज्ञं महेश्वरमनुगतास्तेन शक्तिमता अधिष्ठिताः । सर्वमेवाभरणं तेन भूषिताः ।

प्रधानाः सप्त कोट्यस्तु मन्त्राणां या व्यवस्थिताः ।।११४८।।

तासां मध्यात्–

एकैकस्य परीवारो लक्षायुतसहस्रशः ।

एकैकस्येति मन्त्रस्य । किञ्च–

पद्माकारेषु दिव्येषु क्रीडन्ति भुवनेषु ते ।।११४९।।

९– मनोन्मनी से महेश्वर परम स्थान में ले जाते हैं ।

इसमें बलप्रमथनी द्वारा रुद्रक्षेत्रज्ञों के बल का मन्थन विशेष रूप से ज्ञातव्य है । दमनी समनान्त भूमि तक पहुँच कर सब सङ्कल्पों का दमन करती है ।

ये सभी शक्तियाँ तपे सोने के रंग के समान सुन्दर, पाँच मुखों वाली और तीन नेत्रों से युक्त हैं ॥११४४-११४६॥

ये अमोघ पराक्रममयी, सर्वज्ञ और सर्वदा अवस्थित रहने वाली सर्वप्रदा शाश्वती शक्तियाँ हैं। सर्वज्ञ जीवन्मुक्त साधकों की अनुगत या सर्वज्ञ शिव की अनुगता है। सभी अनुरूप आभूषणों से सभी प्रकार से मण्डिता है ॥११४७॥

ये सर्व सुलक्षणों से सम्पन्न गुणवती शक्तियाँ हैं । सभी प्रकार के सांसारिक ऐश्वर्यों से समन्विता है । लक्षणविज्ञान योग से परिलक्षित होती हैं । जो सर्व-काल में अवस्थित होता हैं, वही व्यापक तत्त्व होता है । ये सर्वज्ञ महेश्वर की ही अनुगता है अर्थात् उसी सर्वज्ञ से अधिष्ठित हैं । ये सभी प्रधान शक्तियाँ हैं । सात करोड़ मन्त्रों से व्यवस्थित होती हैं ॥११४८॥

इनमें एक एक मन्त्र का परिवार दस हजार लाखों तक आता है । इनके भुवन कमल के आकार के हैं । ये मन्त्र और इनकी शक्तियाँ सभी अपनी शाक्त सीमाओं में क्रीडा का आनन्द लेते हैं ॥११४९॥

त इत्येकशेषाद्वामाद्याः शक्तयो मन्त्राश्च । अत्रैव–

त्रिगुणी ब्रह्मवेताली स्थाणुमत्यम्बिका परा ।
रूपिणी मर्दिनी ज्वाला सप्तसङ्ख्यास्तदीश्वराः ।।११५०।।

विद्याराज्यः समाख्याताः

तेषां मन्त्राणां विद्यानां च ईश्वराः प्रभवः, अत एव विद्यानां मन्त्राणां राज्य इत्युक्ताः । अत एव एताः–

दीक्षाकाले विशोधयेत् ।

एतच्छुद्धावेतदधिष्ठितसप्तकोटिसङ्ख्याकमन्त्रशुद्धिसम्पत्तेः ।

एवं मायान्ताशेषविश्वभेदसर्वज्ञमन्त्राश्रयभूता या उक्ता शुद्धविद्या, सापि स्वाङ्गकल्पतया अहमिदं सर्वमिति स्फुटेदन्ताहन्तासामानाधिकरण्याभासात्मनि ईश्वर-तत्त्वे भित्तिभूते सति भाति, नहि भेदाभेदप्रकाशं भित्तिभेदं विना भेदसर्वज्ञतापि घटते । तत ईश्वरत्त्वं दर्शयितुमाह–

बाह्ये तस्यैश्वरं तत्त्वं

तस्येति विद्यातत्त्वस्य । बाह्य इति तदेव व्याप्त्या परिवृत्य स्थित-मित्यर्थः । अतश्च–

भुवनान्यत्र मे शृणु ।।११५१।।

सात करोड़ मन्त्रों की तथा विद्याओं की सात ही शक्तियाँ हैं और इसी नाम की ये विद्यायें इनकी अधीश्वरी भी हैं ।

१.त्रिगुणी, २.ब्रह्मवेताली, ३.स्थाणुमती, ४.अम्बिका, ५.रूपिणी, ६.मर्दिनी, ७.ज्वाला । ये प्रभ्वी शक्तियाँ विद्याराज्ञी कहलाती हैं ॥११५०॥

इनका शोधन दीक्षाकाल में होना चाहिये । इनकी शुद्धि हो जाने पर इनसे अधिष्ठित सात करोड़ मन्त्र भी शुद्ध हो जाते हैं ।

वस्तुतः शुद्ध विद्या मायान्त अशेष विश्व भेद सर्वज्ञा और मन्त्राश्रया होती है । ईश्वर की एक तरह यह स्वाङ्ग ही होती है । इसी दृष्टि से अहन्ता और इदन्ता के सामान्याधिकरण्य के आभासक ईश्वर तत्त्व मुख्य हो जाते हैं; क्योंकि, ईश्वर दशा की अनुभूति 'अहम् इदं सर्वम्' यही मानी जाती है । अर्थात् इदन्ता ज्ञान अहन्ता में समा सा गया होता है । इसीलिये ईश्वर तत्त्व शुद्धविद्या की भित्ति रूप तत्त्व माना जाता है । ईश्वर की भेदसर्वज्ञता भेदाभेद प्रकाशरूप भित्तियों के ज्ञान के विना कैसे हो सकती है । अतः शुद्धविद्या के बाद ईश्वर की बात कर रहे हैं–

तत्र मुख्यभुवनावस्थितस्य ईश्वरस्य तावत्स्वरूपमाह–

अष्टविद्येश्वरैर्युक्तो वीतमायो निरञ्जनः ।
स्थितिसंहारकर्ता वै मोक्षैश्वर्यप्रदायकः ।।११५२।।

युक्तो वक्ष्यमाणक्रमेण परिवृतः । वीता माया यस्मात्, यतोऽयं भिन्नवेद्यप्रथात्मनः अञ्जनाद् मायाख्यान्मलान्निक्रान्तः । नहि मन्त्रवदसम्भेदेन सर्वं जानाति, अपि तु भेदाभेदरूपतया । अत एव भेदांशस्पर्शाद्विद्येश्वरपरिवृतत्वं भुवनादिव्यवस्था च अस्योच्यमाना न अयुक्ता । एवं शिवतत्त्वपर्यन्ते सूक्ष्मतया आसूत्रितकल्पस्य भेदस्य भावाद् भुवनादिव्यवस्थापि शोध्यतया वक्ष्यमाणोपपन्नैव । स्थितिसंहाराभ्यां सृष्टिरप्युपलक्षिता । तच्च एतत्सृष्ट्यादित्रयम्–

'शुद्धेऽध्वनि शिवः कर्ता................'।

इति नित्या मन्त्रमण्डलादिशुद्धाध्वविषयमेव अस्येति मन्तव्यम् । तथा च श्रीमालिनीविजये–

'स सिसृक्षुर्जगत्सृष्टेरादावेव निजेच्छया ।
विज्ञानकेवलानष्टौ बोधयामास पुद्गलान्' ॥ (१/१९)

शुद्धविद्या के बाहर अर्थात् उसकी व्याप्ति को समावृत कर ईश्वर तत्त्व व्याप्त होता है । इसके भुवन भी बड़े विचित्र हैं ॥११५१॥

मुख्य भुवन में अधिष्ठित ईश्वर के स्वरूप का वर्णन कर रहे हैं ।

१– भगवान् आठ विद्येश्वरों से युक्त हैं । अर्थात् परिवृत हैं ।

२– वीत है, समाप्त हो गयी है माया जिससे, ऐसी माया को अतिक्रान्त कर अवस्थित हैं ।

३– भिन्न वेद्य प्रथा ही अञ्जन है, माया नामक मल है । इससे भगवान् ऊपर उठे हुए हैं, अर्थात् परम निर्मल हैं ।

४– ईश्वर अवस्था में अभेदता का प्रकर्ष और भेदमयता गौण रहती है । इसलिये अहन्ता में ही इदन्ता आत्मसात् होती रहती है । इसकी जानकारी ईश्वर को रहती है । भेदांश के स्पर्श के कारण उसमें विद्येश्वरों के प्रति आत्मीयता का भाव भी रहता है । इसलिये यह विद्येश्वरों से आवृत रखता है ।

५– यह स्थिति संहार के साथ साथ सृष्टि करने में समर्थ है । यद्यपि शुद्ध अध्वा में कर्त्ता शिव माने जाते हैं । अतः मन्त्र मण्डलादि की शुद्धि के साथ ही यह भी शोध्य हो जाता है । शुद्ध ईश्वर ही आराध्य है ।

तथा–

'मन्त्राणामसृजत्तद्वत्सप्त कोटीः समण्डलाः' । (१/२१)

इति मोक्षमैश्वर्यं च लोकोत्तरभोगरूपं न केवलं मन्त्रेभ्यो ददाति, यावन्मन्त्रादि-प्रयुक्त्या आयातशक्तिपातेभ्यो मायागर्भगतेभ्योऽपि । एतदप्युपलक्षणपरम्, तेन दम्भेन देवगुर्वादिसेविमायीयजनेभ्यो विलयमपि ददाति । एवं हि पञ्चविधकृत्य-कारित्वमस्य उक्तं भवति ॥११५२॥

अस्य आसनवर्णनं ध्यानोपयोगि उपदिशति–

तस्यासनं तु विस्तीर्णं सहस्रदलसम्मितम् ।

असङ्ख्यातदलमित्यर्थः । यतोऽत्र–

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च मन्त्रास्तस्यासने स्थिताः ।।११५३।।

यद्यपि सप्त कोटयो मन्त्राणाम्, तथापि–

'ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ते जातमात्रे जगत्यपि ।

मन्त्राणां कोटयस्तिस्रः सार्धाः शिवनियोजिताः ॥

अनुगृह्याणुसङ्घातं याताः पदमनामयम्' ॥ (१/४१)

श्रीमालिनीविजय में लिखा है कि, वह ईश्वर जगत् की सिसृक्षा के कारण अपनी इच्छा से ही सृष्टि के प्रारम्भ में आठ विज्ञान केवलों को बोधित किया । वस्तुतः विज्ञान केवलों में एक मल का सम्पर्क बना रहता है । इसलिये इन्हें पुद्गल भी कहते हैं । इन आठ १.अघोर, २.परमघोर, ३.घोररूप, ४.घोर मुख, ५.भीम, ६.भीषण, ७.वमन और ८वें पिबन को ईश्वर ने बोधित अर्थात् प्रेरित किया था ।

६– वहीं मन्त्रों की सात करोड़ संख्या और मण्डलों की भी सृष्टि की । ये कथन ईश्वर के सामर्थ्य पर प्रकाश डालते हैं । ईश्वर भोग और ऐश्वर्य न केवल विज्ञानकेवलों मन्त्रों और मन्त्रेश्वरों को ही प्रदान करते हैं, वरन् आयात शक्तिपात माया गर्भगत साधकों को भी प्रदान करते हैं । यही नहीं दम्भपूर्वक दिखावे के लिये जो देवों और गुरुजनों को धोखे में रखकर सेवा का प्रदर्शन करते हैं, उनके लिये विलय भी प्रदान करते हैं । इससे यह सिद्ध हो जाता है कि, पंचविध कृत्य का अधिकार ईश्वरतत्त्व को है ॥११५२॥

इति श्रीमालिनीविजयोक्तनीत्या सार्धास्तिस्रः कोट्योऽनुग्रहाधिकारायावस्थिता इत्येवमुक्तम् ।

तदित्थमयं विनियोज्यमन्त्रपद्मासनाधिरूढः-

तत्रस्थ ईश्वरो देवो वरदः सर्वतोमुखः ।

देवो द्योतनादिपरमार्थः । सर्वतोमुखं प्रधानरूपं यस्य ।

आकारतोऽपि-

पञ्चवक्त्रः सुतेजस्को दशबाहुस्त्रिलोचनः ।।११५४।।
गोक्षीरधवलः सौम्यो नागयज्ञोपवीतवान् ।
दिव्याम्बरधरो देवो दिव्यगन्धानुलेपनः ।।११५५।।
सर्वलक्षणसम्पूर्णः सर्वाभरणभूषितः ।
त्रिशूलपाणीन्दुमौलिर्जटामुकुटमण्डितः ।।११५६।।
प्रसन्नवदनः कान्तो योगैश्वर्यप्रदायकः ।
वरदाभयहस्तश्च ध्येयोऽसावीशयोगिभिः ।।११५७।।

ईश्वर का आसन सहस्राधिक दलों वाले कमल के रूप में नितान्त कमनीय है । इसके आसन पर साढ़े तीन करोड़ मन्त्र नियोजित हैं । यद्यपि मन्त्र सात करोड़ हैं । फिर भी ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्त जगत् के उत्पन्न होते ही शिव द्वारा ३०५० करोड़ मन्त्र इस आसन में नियोजित कर दिये गये ॥११५३॥

इस प्रकार मन्त्रयुक्त पद्मासन पर अधिरूढ परम उद्योतमय दिव्य देवेश्वर, सर्वातिशायी रूप में विराजमान हैं । आकार से ये पञ्चवक्त्र हैं, तेजस्वी, दशबाहु और त्रिलोचन हैं ॥११५४॥

गोक्षीरधवल हैं, सौम्य हैं, नाग का यज्ञोपवीत धारण करते हैं । दिशाओं के अम्बर धारण करते हैं । दिव्यगन्ध के अनुलेपन से लिप्ताङ्ग हैं ॥११५५॥

समस्त ऐश्वर्य लक्षणों से सम्पन्न हैं । सभी प्रकार के अनुरूप आभूषणों से भूषित हैं । हाथ में त्रिशूल धारण करते हैं । जटा पर चन्द्र शोभित है । सुन्दर मुकुट से मण्डित हैं ॥११५६॥

प्रसन्नवदन, कान्तिमान और योगियों को योग के समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाले परमेश्वर वरद और अभय मुद्रा में विश्व को अभयदान देने में तत्पर हैं । ऐसे परमेश्वर योगियों के द्वारा सदा ध्यान करने योग्य हैं ॥११५७॥

पञ्चवक्त्राद्याकृतौ प्रागुक्तं सतत्त्वं मन्तव्यम् । वरदाभयपाणिश्चेति चकारात् खड्गखेटकादेः परिग्रहः । सौम्य इति पारमेश्वरक्रियाप्राधान्येन सृष्टिप्राधान्यात्, अत एव द्वादशपटलवक्ष्यमाणस्थित्या ध्यातः सन् योगैश्वर्यप्रदायक ईश्वर-योगिनाम् ॥११५७॥

यथा च परमेश्वरो रुद्रक्षेत्रज्ञानां ध्यानार्चनादिना अनुग्रहीतुं गृहीतेश्वराकारः, तथा तत्समवायिनी शक्तिरपि तथैव आश्रिताकृतिरित्याह–

तस्योत्सङ्गगता विद्या सर्वविद्यासमाश्रिता ।
दिव्यवस्त्रपरीधाना दिव्यमाल्यानुलेपना ।।११५८।।
दिव्यस्त्रग्दाममालाभिर्मुक्ताहारैर्विभूषिता ।
मुक्ताफलप्रतीकाशा पञ्चवक्त्रा त्रिलोचना ।।११५९।।

विद्येति मायीयवर्णभट्टारकरूपा मातृका, एवमपि प्रागुक्तयुक्त्या अंशेन भेदस्यानिवृत्तेरुत्सङ्गगतेत्युक्तम्, एवमुत्तरत्र । सर्वाभिर्विद्याभिः सर्वैर्मन्त्रविद्यागणै-रुत्पत्तिक्षेत्रत्वात्सम्यगभेदेनाश्रिता अवष्टब्धा । मुक्ताफलप्रतीकाशेति अनुग्रहप्रवण-त्वात् सौम्येत्यर्थः ॥११५९॥

हाथ में त्रिशूल के साथ ही खड्ग खेटकादि आयुधों का परिकल्पन करना चाहिये । सौम्य कहने का तात्पर्य क्रिया प्रधान सृष्टि की सर्जन शक्ति का प्राधान्य मानना चाहिये । बारहवें पटल में भी योगैश्वर्यप्रद ईश्वर के ऐश्वर्य का वर्णन है । इस दृष्टि से ईश्वर योग में सम्पृक्त योगियों को ऐश्वर्य-प्रदान करते हैं ॥११५७॥

ईश्वर के उत्सङ्ग में सर्वविद्यासमाश्रिता विद्या विराजमान रहती हैं । दिव्य वस्त्रों को धारण करने वाली विद्या देवी दिव्य मालाओं से मण्डित और दिव्य अतुलेपनों से लिप्ताङ्ग हैं ॥११५८॥

दिव्य स्त्रक्, दाम और मालाओं तथा मुक्ताहारों से विभूषित हैं । मुक्ता-फलप्रतीकाश का तात्पर्य अनुग्रह करने में प्रवण माता बड़ी वात्सल्यमयी हैं । ये स्वयं पाँच वक्त्रों वाली और त्रिलोचना हैं ॥११५९॥

यहाँ विद्या का तात्पर्य मायीयवर्ण भट्टारक रूपा मातृका ही है । इसी अर्थ में ही विद्या को चरितार्थ करना चाहिये । उत्सङ्ग में रहने का भावार्थ यह है कि, परमेश्वर प्रभु से ये नित्य अवियुक्त हैं ॥११५९॥

एषा च–

आराधिता विधानेन वेदयेज्ज्ञानिनः सदा ।

विधानेन अन्तरभेदप्रत्यवमर्शबलेन आराधिता प्रसादं प्रापिता सती ज्ञानशालिनो वेदयेत् प्रकाशितस्वस्वरूपान् सम्पादयेत् ।

किञ्च–

प्रहसन्तीव सा भाति महेशवदनेक्षणात् ।।११६०।।

वदनमाकृत्यपेक्षया वक्त्रं स्वरूपापेक्षया तु परा शक्तिः । ईक्षणं दृष्टिर्ज्ञानं च ।।११६०।।

अतो भगवतः परिवाररूपान्–

विद्येश्वरानतो वक्ष्ये पूर्वादीशान्तगान् क्रमात् ।

ते च विद्यातत्त्वगता अपि अत्र परेण रूपेण स्थिताः ।

अनन्तश्चैव सूक्ष्मश्च तथा चैव शिवोत्तमः ।।११६१।।
एकनेत्रैकरुद्रौ च त्रिनेत्रश्च प्रकीर्तितः ।
श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च ज्ञेया विद्येश्वराः क्रमात् ।।११६२।।

एते च अनन्ताद्या गुरुभिः शिवतनावित्थमुक्ताः–

विधान पूर्वक आराधन करने पर यह वात्सल्यमयी माँ ज्ञानी पुरुषों में ज्ञान का प्रकाश करने की कृपा करती हैं । यहाँ विधान का तात्पर्य आन्तर अभेद परामर्श के प्रभाव सहित प्रत्यवमर्श माना जाना चाहिये । इसी तरह के प्रत्यवमर्शपूर्वक ध्यान से माँ का प्रसाद मिलता है ।

वह नित्य मुस्कराती हुई सी लगती हैं; क्योंकि परमेश्वर को अभेद परामर्श का परानन्द उसे सदा अनुभूत होता रहता है । महेश्वर के सुन्दर और आकर्षक आनन को देखकर प्रसन्न होना और विस्मित हो जाना परम स्वाभाविक है । ऐसी यह विश्वमोहिनी मातृका विद्या है ।।११६०।।

पूर्व से ईशान पर्यन्त सभी दिशाओं में क्रमपूर्वक रहने वाले, विद्यातत्त्वगत रहते हुए पररूप से अतः विद्येश्वर रूप में रहने वाले इसके परिवार का कथन कर रहे हैं। १.पूर्व में अनन्त, २.अग्निकोण में सूक्ष्म, ३.दक्षिण में शिवोत्तम, ४.निर्ऋति में एकनेत्र, ५.पश्चिम में एकरुद्र, ६.वायव्य में त्रिनेत्र, ७.उत्तर में श्रीकण्ठ और ८.ईशान में शिखण्डी नामक विद्येश्वर रहते हैं ।।११६१-११६२।।

शिवतनु शास्त्र में इस प्रकार वर्णित हैं—शताधिक भगबिलों में विलसित

'भगबिलशतकलितगुहामूर्धासनगोऽष्टशक्तियुग्देवः ।
गहनाद्यं निरयान्तं सृजति च रुद्रांश्च विनियुङ्क्ते ॥१॥
उद्धरति मनोन्मन्या पुंसस्तेष्वेव भवति मध्यस्थः ।
ते तेनोदस्तचितः परतत्त्वालोचनेऽभिनिविशन्ते ॥२॥
स पुनरधःपथवर्तिष्वधिकृत एवाणुषु शिवेन ।
अवसितपतिविनियोगः सार्धमनेकात्ममन्त्रकोटीभिः ॥३॥
निर्वात्यनन्तनाथस्तद्धामाविशति सूक्ष्मरुद्रस्तु ।
अनुगृह्याणुमपूर्वं स्थापयति पतिः शिखण्डिनः स्थाने ॥४॥
इत्यष्टौ परिपाट्या यावद्धामानि यान्ति गुरुरेकः ।
तावदसङ्ख्याकानां जन्तूनां निर्वृतिं कुरुते ॥५॥
तेऽष्टावपि शक्त्यष्टकयोगामलजलरुहासीनाः ।
आलोचयन्ति देवं हृदयस्थं कारणं परमम् ॥६॥
ते भगवन्तमनन्तं ध्यायन्तः स्वहृदि कारणं शान्तम् ।
सप्तानुध्यायन्त्यपि मन्त्राणां कोटयः शुद्धाः' ॥७॥ इति ।

गुहा माया, तस्या मूर्धा शुद्धविद्या, तदेवासनम्। शक्त्यष्टकेन वामादिना योगो यत्र तादृशो अमलजलरुहे आसीनाः। परममनन्तमिति प्राप्तेश्वररूपम् ॥११६२॥

माया की मूर्धा अर्थात् शुद्ध विद्या के आसन पर विराजमान आठ शक्तियों से समन्वित परमेश्वर गहन से लेकर निरय पर्यन्त सृष्टि का सर्जन करते हैं और इसकी व्यवस्था के लिये रुद्रों को नियुक्त करते हैं ॥१॥

मनोन्मनी शक्ति से उन्हीं में रहते हुए भक्त पुरुषों का उद्धार करते हैं। दुर्भाग्य यह है कि, अपने अन्तर में रहते हुए परमेश्वर से उदस्त हो गया चिद्रूप ज्ञान जिनका, ऐसे लौकिक लोग उनकी आलोचना के अभिनिवेश से ग्रस्त हो जाते हैं ॥२॥

ऐसी अवस्था में भी अधोभागगामी पुरुषों के उद्धार के लिए कृपालु शिव द्वारा अधिकृत निश्चयतः पति विनियोग को मान्यता देने वाले ईश्वर, ३.५० करोड़ मन्त्रों के साथ ॥३॥

अनन्तनाथ नामक सूक्ष्म रुद्र अपने आत्मबल से अणुओं का उद्धार करते हैं। एक विशिष्ट अणु को शिखण्डी के स्थान पर नियुक्त करते हैं ॥४॥

एक ही गुरु आठ परिपाटियों के माध्यम से आठ धामों में यह उद्धार यात्रा करते हैं। इस पथ में असंख्य जन्तुओं का उद्धार हो जाता है। आठ परिपाटियाँ

अत्रैव च ईश्वरतत्त्वे भुवनान्तराण्याह–

अतो रूपमवस्थानं

विद्येशावरणोर्ध्वं रूपावरणं नाम भुवनमित्यर्थः । एवमुत्तरत्र ।

तत्र रुद्रान्निबोध मे ।

धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुर्थकम् ।।११६३।।

यद्वशाद्विद्येश्वराणामधस्तनाध्वाधारवत्त्वमशेषज्ञत्वम्, पूर्णतया नैराकाङ्क्ष्यम्, महाविभवप्रदत्वम् । त एते धर्माद्या रुद्रा ईश्वरस्य परिवाराः ।।११६३।।

अत्रैव च ईश्वरतत्त्वे–

सूक्ष्मावरणमूर्ध्वेऽतः

अतो रूपावरणादूर्ध्वे ।

तत्र शक्तित्रयं विदुः ।

ताश्च–

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च शक्तयः समुदाहृताः ।।११६४।।

प्रधानभूताः ।।११६४।।

आसामेव हि काल्यादयः प्रागुक्ताः प्रपञ्चः । अत एवाह–

परिवारस्तु तासां वै कोट्योऽनेकास्तु सङ्ख्यया ।

आसामेवाशेषशक्तिप्रपञ्चात्मकत्वात् । ये च आसां परिवारत्वेन स्थिताः, ते–

सर्वे सर्वगता मन्त्राः सर्वज्ञाः सर्वकामदाः ।।११६५।।

ये आठ उद्धारक शक्त्यष्टकयोग से निर्मल कमलासन पर विराजमान रहकर अपने ही अन्तर में विनिविष्ट परम कारण देवेश्वर का अन्तर्दशन करते हैं ।।५-७।।

यह विद्येश्वरों का आवरण है । इसके ऊपर रूप का आवरण है । इसी नाम का यह भुवन भी है । इनमें रहने वाले रुद्र १.धर्म, २.ज्ञान, ३.वैराग्य और ४.ऐश्वर्य नाम के हैं । इन्हीं चारों के आधार पर विद्येश्वर की परिभाषा स्थिर होती है और इनका सर्वज्ञत्व भी स्थिर रहता है । धर्म और ज्ञान का यह महाप्रभाव है । वैराग्य से निराकांक्षता बनी रहती है और ऐश्वर्य के कारण ये स्वयं विभव-प्रद माने जाते हैं ।।११६३।।

रूपावरण के ऊपर सूक्ष्मावरण विद्यमान है । वहाँ तीन शक्तियों का साम्राज्य है । वे हैं–१.वामा, २.ज्येष्ठा और ३.रौद्री । ये प्रधान शक्तियाँ हैं ।।११६४।।

इनके ऊपर असंख्य परिवार हैं । करोड़ों करोड़ों की संख्या तो असंख्य ही होती है । इनके परिवार के सभी सर्वग हैं, मन्त्रस्वरूप हैं, सर्वज्ञ हैं और सभी कामनाओं की पूर्त्ति करने वाले हैं और काली आदि सभी शक्ति प्रपञ्च युक्त हैं ।।११६५।।

शुद्धस्फटिकसङ्काशास्त्रिनेत्राः शूलपाणयः ।
सर्वलक्षणसम्पन्नाः सर्वाभरणभूषिताः ।।११६६।।
सर्वैश्वर्यसुसम्पूर्णाश्चारुचन्द्रार्धशेखराः ।

किञ्च–

शतपत्राब्जभाकारैः शुद्धहारेन्दुरश्मिभिः ।।११६७।।
नानारत्नोज्ज्वलैश्चित्रैः प्रकारैस्तोरणाकुलैः ।
ईश्वरानुगताः सर्वे तिष्ठन्ति भुवनेषु ते ।।११६८।।

शतपत्राब्जानां भा दीप्तिरिवाकारो येषां तादृशैः, तथा अन्यैहरैः सुदीप्तिभिः प्राकारैरुपलक्षितेषु भुवनेषु ईश्वरभट्टारकमन्त्रानुगताः क्रीडन्तीति सम्बन्धः ॥११६८॥

अत एव आराधकैरेते–

तमाराधयितुं देवं पूज्यन्ते सर्वकर्मसु ।

सभी शुद्ध स्फटिक के समान, त्रिनेत्र और शूल धारण करने वाले हैं । सभी लक्षणों से समान और सभी अनुरूप आभूषणों से आभूषित हैं ॥११६६॥

सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं । सभी शिर पर अष्टमी के चन्द्र को धारण करने वाले रुद्र हैं । शतदल कमल की आभा के समान भासमान और श्वेतहार तथा चन्द्र की श्वेतरश्मियों से सुशोभित हैं ॥११६७॥

अनेकानेक रत्नों से निष्पन्न रश्मियों से समुज्ज्वल, चित्र-विचित्र प्राकारों और तोरणों से समाकुल भवनों में निवास करने वाले ये सभी परमेश्वर के ही अनुगत रहते हैं, सभी ऐसे भुवन-भवनों में निवास करते हैं ॥११६८॥

शतपत्र की दीप्ति की तरह के आकार का क्या तात्पर्य हो सकता है ? दीप्ति के समान आकार नहीं, उसका रूप होता है । दीप्ति रूप में अवसित है और रूपवान् आकार होता है । आकार चित्र का या पदार्थ का होता है । उसमें कलाकार रंगों का समावेश करता है । तब उसकी शोभा होती है और शोभा में ही दीप्ति रह सकती है ।

प्राकारों से उपलक्षित भुवनों के अर्थ में ही इनका प्रयोग किया गया है । ईश्वरानुगत शब्द से ईश्वर भट्टारक मन्त्रानुगत अर्थ लेना चाहिये ॥११६८॥

उस देवेश्वर की आराधना करने के लिये सर्वकर्म सन्दर्भों में उसी की पूजा करते हैं । भगवान् कृष्ण ने भी गीता में ९/२७ के द्वारा यही कहा है कि, अर्जुन ! 'तुम जो कुछ करते हो, भोजन करते हो, हवनात्मक यज्ञ-यागादि करते

'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्' ॥ (भ०गी० ९/२७)

इति न्यायेन कर्मविषये तमीश्वरमाराधयितुमेते परिवाररूपा मन्त्राः पूज्यन्ते, एतत्पूजकानामेवंव्याप्तिविदामेतन्मुखेन ईश्वरावाप्तिर्भवतीत्यर्थः । किञ्च–

व्रतं पाशुपतं दिव्यं ये चरन्ति जितेन्द्रियाः ।।११६९।।
भस्मनिष्ठा जपध्यानास्ते व्रजन्त्यैश्वरं पदम् ।

भस्मनिष्ठा स्नानमयक्लृप्तिरूपा येषाम् ।

प्रासङ्गिकमुक्त्वा प्रकृतमाह–

तत्रैश्वरस्तु भगवान् देवदेवो निरञ्जनः ।।११७०।।
अधिकारं प्रकुरुते शिवेच्छाविधिचोदितः ।

तत्र ईश्वरतत्त्वे देवानामनन्तादीनां देवः । अधिकारं तेषामेव अनुग्रहादौ विनियोजनम् । शिवेच्छैव विधत्ते सर्वमिति विधिः, तत्रचोदितः । परमशिव एव हि इच्छाज्ञानक्रियाप्रधानः शिवसदाशिवेश्वरभूमिका भासयति । यदुक्तं श्रीमतङ्ग-पारमेश्वरे–

हो, दानयज्ञ करते हो, तपस्या करते हो, वह सब कुछ अर्थात् वे सारे कर्म मुझे अर्पण कर दो' ! इसी दृष्टि को यहाँ भी दर्शाया गया है । आराधना के लिये सभी कर्मों में उसी की पूजा करते हैं, का यही तात्पर्य है । इन आराधकों के द्वारा परिवार रूप मन्त्र ही सभी कामों में पूजित होते हैं । ये पूजक पूजा की व्याप्ति के जानकार हैं । उन्हें यह ज्ञात है कि, ईश्वर की प्राप्ति इसी तरह होती है ।

यही नहीं, वे लोग इन्द्रियजित हैं । सभी वशी हैं । वे नित्य दिव्य पाशुपत व्रत का मनोयोगपूर्वक आचरण भी करते हैं ॥११६९॥

वे भस्म के महत्त्व को जानते हैं । वीरों की तरह भस्मनिष्ठ होकर स्नानादि में इसका श्रद्धाभाव से प्रयोग करते हैं । जप और ध्यान करते हैं या जप में 'तज्जपस्तदर्थभावनं के अनुसार जप के अर्थ में प्रवेश कर ध्यानमग्न रहते हैं । वे अपने इस आचरण के प्रभाव से ईश्वर के परम पद को प्राप्त कर लेते हैं ।

ईश्वर तत्त्व में वहीं देवेश्वर निरञ्जन भगवान् निवास करते हैं ॥११७०॥

केवल निवास ही नहीं करते । अपने अधिकारों का प्रयोग भी करते हैं । वे शिवेच्छा के अनुगत हैं । परिणामस्वरूप प्रत्येक कर्म में शिवेच्छा की प्रेरणा का ही अनुभव करते हैं । विद्येश्वरों मन्त्रों को उनके अनुग्रहादि कार्यों में नियोजन करना इनके ही अधिकार में है ।

'लयाधिकारभोगाह्वत्रितत्त्वोक्तिविमर्शनात् ।
पदार्थः पतिनामासौ प्रथमः परिकीर्तितः' ।। इति ।

अत्र च उक्तवक्ष्यमाणरूपाणि–

दश पञ्च च शोध्यानि भुवनानीश्वरे क्रमात् ।।११७१।।

तत्रैश्वरभुवनं (१) विद्येशाष्टकावरणभुवनं (२) धर्मादिचतुष्टयाश्रयरूपावरण-भुवनं (३) वामादिशक्तित्रयाश्रयसूक्ष्मावरणभुवनमिति चत्वारि तावदुक्तानि, वक्ष्य-माणानि तु शुद्धावरण-विद्यावरण-प्रमाणावरण-नामावरण-शुद्धशिवावरण-मोक्षा-वरणाख्यानि सप्त आवरणानि, ततो ध्रुवभुवनम्, ततो वामादिशक्तित्रयाश्रयेच्छा-शक्तिभुवनम्, ततः प्रबुद्धावरणम्, ततः समयावरणमित्येकादश चतुर्भिः सह पञ्चदश भवन्ति ।।११७१।।

वस्तुतः 'शिवेच्छा से ही विश्व संचालित होता है । यह ज्ञान और इसको ध्यान में रखकर काम करना ही विश्व की विधि है । परमेश्वर शिव ही इच्छा, ज्ञान क्रिया प्रधान है । वही शिव, सदाशिव और ईश्वर की भूमिकाओं का निर्वाह करता है, उनको भासित भी करता है ।

श्रीमतङ्गपारमेश्वर शास्त्र में स्पष्ट उल्लेख है कि, 'लय (संहार) अधिकार (स्थिति) और भोग (सृष्टि) नामक तीन तत्त्वों की बातों का यदि हम विमर्श करें, तो सबसे पहले हमारे मन में जिस अनुभूति का उद्भव होता है, इसका कर्त्ता कोई अदृष्ट पति अर्थात् सर्वेश्वर ही है' ।

इतनी जानकारी देने के बाद भगवान् अन्त में प्रकृत दीक्षा का संकेत करते हुए यह कह रहे हैं कि, भुवन दीक्षा के अन्तर्गत ये १५ भुवन शोधन के योग्य हैं । इनका शोधन अवश्य करना चाहिये ।

१.ईश्वर भुवन, २.विद्येश्वराष्टकों के भुवन, ३.धर्मादि चतुष्टयाश्रय रूप आवरण भुवन, ४.वामा, ज्येष्ठा, रौद्री रूप तीन शक्तियों का आश्रय सूक्ष्मावरण भुवन (यद्यपि ये चार कहे गये हैं और आगे के पटलों में शुद्ध, विद्या, प्रमाण, नाम, शुद्धशिव और मोक्ष नाम के सारे आवरण और भी उक्त हैं) इसके बाद ध्रुव भुवन, वामादि शक्तियों की आश्रयरूपा इच्छा का भुवन, प्रबुद्धावरण, ईश्वरा-वरण रूप ११ भुवन । पहले चारों को मिलाकर पन्द्रह भुवन होते हैं । ये सभी शोध्य हैं ।।११७१।।

एतानि पञ्चदशापि भुवनानि आन्तरेण क्रमेण-

तालुकोर्ध्वे विजानीयाद्दीक्षाकाले वरानने ।

मायातत्त्वात्मकतालुग्रन्थ्यूर्ध्वशुद्धविद्यापद्मकर्णिकोर्ध्वे यदीश्वरतत्त्वं तालुकोर्ध्वगतम्, तत्र जानीयात्, तद्विश्रान्तिपुरःसरं पूर्वोक्तमन्त्रक्रमेण शोधयेदित्यर्थः । एतच्चोपलक्षणम्, तेन ब्रह्माण्डगतानि भुवनानि हृद्विश्रान्त्या, जलादिप्रकृत्यन्तगतानि कण्ठविश्रान्त्या, प्रकृत्यादिमायान्तगतानि तालुविश्रान्त्या, तदूर्ध्वपदविश्रान्त्या शुद्धविद्यातत्त्वगतानि भुवनानि शोधनीयानि । एवं ललाट-ब्रह्मरन्ध्र-व्यापिनीपदविश्रान्त्या सदाशिवशक्तिशिवतत्त्वगतानि वक्ष्यमाणानि भुवनानि शोधनीयानि ।

अथ शुद्धावरणादिभुवनैकादशकं क्रमेण दर्शयति-

शुद्धावरणमूर्ध्वं तु तस्मिञ्छक्तिद्वयं स्मृतम् ।।११७२।।
ज्ञानं क्रिया च विख्यातं

ज्ञानक्रियाशक्तिभुवनद्वितयरूपेण तद्भुवनमित्यर्थः, एवमुत्तरत्र ।

भगवान् शङ्कर यहाँ एक रहस्य की बात कह रहे हैं कि, देवि ! यह ध्यान देने की बात है कि, दीक्षा के समय शिष्य को गुरु द्वारा समझा देना चाहिये कि वत्स ! इन सभी बाह्य भुवनों का शरीर में भी समावेश है । यह प्रकृति की प्रक्रिया है और 'यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' के अनुसार इन भुवनों का आश्चर्य जनक सन्निवेश तालु के ऊपर ही है ।

तालुग्रन्थि मायातत्त्वात्मक होती है । इसके ऊपर शुद्धविद्या का पद्म है । उसकी कर्णिका में ईश्वर तत्त्व है । इतने अन्तराल में ही इन १५ भुवनों का शोधन हो जाना चाहिये ।

इसके अतिरिक्त ब्रह्माण्ड के सारे भुवन हृदयाश्रित ही हैं । जल से लेकर प्रकृति पर्यन्त कण्ठ में विश्रान्त हैं । प्रकृति से मायान्त भुवन तालु में विश्रान्त हैं । तालुकोद्र्ध्वगत ईश्वर भुवन की चर्चा अभी की गयी । ललाट, ब्रह्मरन्ध्र, व्यापिनी पद तक, शक्ति, सदाशिव शिवतत्त्वगत भुवन शोधनीय हैं । इस तरह भुवन दीक्षागत शोधन प्रक्रिया रहस्यमयी है । इससे इसका महत्त्व सिद्ध हो जाता है ।

इसके ऊपर शुद्धावरण है । शुद्धावरण में मात्र शक्तियाँ ही सक्रिय रहती है । इन्हें शक्तिद्वय नाम से संकेतित किया गया है ॥११७२॥

इन दोनों शक्तियों में पहली शक्ति का नाम ज्ञान है और दूसरी शक्ति का नाम क्रिया है । जहाँ तक इच्छा शक्ति का प्रश्न है, यह शिवेच्छा के रूप में

अथ–

द्वे विद्ये चाप्यतः परम् ।

भावसंज्ञाप्यभावाख्या तस्मिञ्छक्तिद्वये स्मृते ।।११७३।।

तस्मिञ्ज्ञानक्रियाख्ये प्रोक्ते शक्तिद्वये विषयतया द्वे भावाभावाख्ये वेदनपरमार्थत्वाद्विद्ये स्थिते । तत्र पूर्वोक्तयुक्त्या स्फुटेदन्तात्मकभाववेदनशक्तिरेका, इदन्तोत्थानभित्तिभूताख्यात्यात्माभाववेदनशक्तिर्द्वितीयेत्येतद्भुवनद्वितयरूपं विद्यावरणमेतदित्यर्थः ।।११७३।।

अतश्च–

तेजेशश्च ध्रुवेशश्च प्रमाणानां परं पदम् ।

प्रमाणावरणे चोर्ध्वे

पूर्वोक्तानां मायातत्त्वाश्रितानां पञ्चार्थादिप्रमाणानां परमिदं पदं प्राप्तिस्थानं तेजेशश्च ध्रुवेशश्च विद्यावरणादूर्ध्वे प्रमाणावरणे स्थिते इत्येतत्प्रमाणावरणमपि भुवनद्वितययोगि ।

अथ–

कथयामि च मानतः ।।११७४।।

मानतो माने प्रमाणावरणोर्ध्वगते माननाम्न्यावरणे रुद्रान् कथयामि ।।११७४।।

श्लोक ११७१ में ही व्यक्त कर दी गयी है । इस तरह एक ज्ञानशक्ति भुवन और दूसरा क्रियाशक्ति भुवन रूप ही यह शुद्धावरण भुवन है । इस शक्तिद्वय में दो विद्यायें भी काम करती हैं—इनके नाम हैं, १.भावविद्या और २.अभाव विद्या । ये दोनों वेदना की पारमार्थिकता को व्यक्त करने के कारण ही विद्यायें कहलाती हैं । एक में स्फुट इदन्तात्मक भाव की संवेदना होती है और दूसरी में इदन्ता को उत्थान करने की भित्ति के रूप में अख्याति बैठी रहती है । इसलिये पारमार्थिक ज्ञान का अभाव हो जाता है । इसीलिये इसे अभावविद्या कहते हैं । यह विद्यावरण है, यह कहना इससे सिद्ध हो जाता है ।।११७३।।

तेजेश और ध्रुवेश ये दोनों विद्यावरण के ऊपर प्रमाणावरण में अवस्थित है । इन भुवनों के इसी नाम के भुवनेश भी हैं । इस तरह इनमें भी दो भुवन ही माने जाते हैं । इनके ऊपर अर्थात् प्रमाणावरण के ऊपर मानाम्नाय नामक आवरण के रुद्र अलग से कथनीय हैं । वही कह रहा हूँ ।।११७४।।

ते च–

ब्रह्मा रुद्रः प्रतोदश्च अनन्तश्च चतुर्थकः ।

तेन एतद्रुद्रभुवनचतुष्टयभुवनपरिष्कृतमेतन्मानावरणभुवनमित्यर्थः ।

अथ–

सुशुद्धावरणं चोर्ध्वे तत्र रुद्रत्रयं विदुः ।।११७५।।
एकाक्षः पिङ्गलो हंसः कथितं तु समासतः ।

परिवार एषामसङ्ख्य इति वक्ष्यति । अथ–

शिवावरणमूर्ध्वं तु तत्रैको ध्रुवसंज्ञकः ।।११७६।।
संस्थितो रुद्रराजस्य मोक्षावरणमूर्ध्वतः ।

तत्र च–

एकादशैव रुद्राश्च कथयामि समासतः ।।११७७।।

तानाह–

ब्रह्मदन्किदिण्डिमुण्डाः सौरभश्च तथैव च ।
जन्ममृत्युहरश्चैव प्रणीतः सुखदुःखदः ।।११७८।।

जन्महरो मृत्युहरः । सुखं द्यति खण्डयतीति सुखदः, एवं दुःखदः ।

त एते एकादश–

विजृम्भितः समाख्यातास्तालूर्ध्वे तु व्यवस्थिताः ।

ब्रह्मा, रुद्र, प्रतोद और चौथे अनन्त ये चारों मानावरण के रुद्र हैं ।

इसके ऊपर सुशुद्धावरण है । इसमें तीन रुद्र अपने अधिकार का प्रयोग करते हैं ।।११७५।।

एकाक्ष, पिङ्गल और हंस ये तीनों रुद्रों के नाम हैं । इनका असंख्य परिवार है । इसके ऊपर शिवावरण है । उसमें एक ही रुद्र हैं । उनका नाम ध्रुव है ।।११७६।।

शिवावरण के ऊर्ध्व में एक ही ध्रुवसंज्ञक भुवन है । इसके ऊपर रुद्राधिपति का मोक्षावरण है । इसके ग्यारह रुद्र हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं ।।११७७।।

१.ब्रह्म, २.दन्कि, ३.दिण्डि, ४.मुण्ड, ५.सौरभ, ६.जन्महर, ७.मृत्युहर, ८.प्रणीत, ९.सुखद, १०.दुःखद ये दश रुद्र हैं । यहाँ सुखद का अर्थ सुख का खण्डन करने वाला माना जाता है । ग्यारहवें रुद्र का नाम आगे की कारिका में दिया गया है ।।११७८।।

ग्यारहवें रुद्र का नाम विजृम्भित है । ये सभी शरीर में तालु के ऊर्ध्व भाग में अवस्थित हैं । ऐश्वर तत्त्व ही इनका आश्रय है ।

तालूर्ध्वे इति प्रागुक्तमेव ऐश्वरं तत्त्वमेषामाश्रय इति स्मारयति ।

अथ–

पुनरूर्ध्वे ध्रुवं ज्ञेयं निरञ्जनपदं शुभम् ।।११७९।।

प्रमाणावरणे शिवावरणे ध्रुवावरणे च एक एव स्थूलसूक्ष्मपरभेदेन ध्रुवाख्यो रुद्रस्त्रिरत्रोक्त इति पुनःशब्दार्थः ॥११७९॥

अथ अस्य ध्रुवावरणस्य–

ईशशक्तित्रयं मूर्ध्नि

स्थितम् । तच्च–

कथितं चानुपूर्वशः ।

वामा ज्येष्ठा रौद्री चेति यत्सूक्ष्मावरणे प्राक् शक्तित्रयमुक्तम्, तदेवेह पर-रूपेण स्थितमित्यर्थः ।

किञ्च अत्रैव प्रधानभूतायाः–

इच्छाशक्त्यभिधानायाः

शक्तेः पुरम् । ताश्च वामाद्या एतस्याः–

अन्तर्भूताः प्रकीर्तिताः ।।११८०।।

तेन वामादिभुवनत्रयपरिवृतमेतदिच्छाभुवनमत्रेत्यर्थः ॥११८०॥

अथ–

प्रबुद्धावरणं चोर्ध्वे

तत्र च रुद्रान्–

कथयामि समासतः ।

प्रीतः प्रमुदितश्चैव प्रमोदश्च प्रलम्बकः ।।११८१।।

इसके ऊर्ध्व में निरञ्जन पद नामक ध्रुव आवरण है । इस तरह प्रमाणा-वरण, शिवावरण और ध्रुवावरण एक ही स्थूल, सूक्ष्म और परभेद से ध्रुव नामक रुद्रशक्ति सक्रिय रहती है ॥११७९॥

ध्रुवावरण के मूर्धा भाग में ईश्वर की तीन शक्तियाँ, वामा, ज्येष्ठा और रौद्री जो सूक्ष्मावरण की शक्तियों के रूप में कही गयी हैं । वे यहीं पररूप से अवस्थित हैं । ये तीनों शक्तियाँ इच्छाशक्ति नाम प्रधान भगवत्–शक्ति के अन्तर्गत ही स्फुरित मानी जाती हैं । इसका तात्पर्य यह लगाया जाना चाहिये कि, वामा, ज्येष्ठा और रौद्री शक्तियों से परिवृत यह इच्छावरण भुवन ही है ॥११८०॥

इसके ऊपर प्रबुद्धावरण है । इसके रुद्र भी अलग अलग हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं–१.प्रीत, २.प्रमुदित, ३.प्रमोद, ४.प्रलम्बक, ५.विष्णु, ६.मदन, ७.गहन,

विष्णुर्मदन एवाथ गहनः प्रथितस्तथा ।

तदेतदत्र–

रुद्राष्टकं समाख्यातं विज्ञेयं प्राग्दिशः क्रमात् ।।११८२।।

ततोऽपि–

समयावरणं चोर्ध्वे

अत्र रुद्रान्–

कथयामि समासतः ।

प्रभवः समयः क्षुद्रो विमलश्च शिवस्तथा ।।११८३।।

ततो घनः समाख्यातो निरञ्जनस्ततः परम् ।

रुद्रोङ्कारस्तु पञ्चैते

प्रभवाख्यस्य समयस्य विशेषणं क्षुद्र इति । विमलः शिव इति विमल-शिवाख्यः । एतांश्च–

तालूर्ध्वे तु विजानत ।।११८४।।

विजानतेति बहुवचनमुपदेश्यशिष्यप्रशिष्यादिभेदेन, एवमन्यत्र । तालूर्ध्व इति एतावदन्तमीश्वरतत्त्वाश्रयमिति स्मरणाय ॥११८४॥

तदत्र भुवनपञ्चदशकान्तर्वर्तिभुवनान्तरसङ्ख्यापूर्वमेतदुपसंहरति–

एकोनषष्टिर्भुवनं ज्ञानशक्त्यादितः क्रमात् ।

रुद्रोङ्कारान्तमित्येतद्दीक्षाकाले विशोधयेत् ।।११८५।।

ज्ञानशक्तेरादीनि ईश्वरविद्येश्वररूपसूक्ष्मावरणगतानि यानि भुवनानि, ततः प्रभृति रुद्रोङ्कारान्तमेकोनषष्टिरीश्वरतत्त्वेऽवान्तरभुवनानि । तत्र ईश्वरस्यैकम्, विद्येशा-

---

८.प्रथित, ये रुद्राष्टक हैं । ये दिशाओं के क्रम से पूरब से ईशान पर्यन्त अवस्थित है ॥११८१-११८२॥

इसके ऊपर समयावरण है । इसके रुद्र १.प्रभवसमय, २.विमलशिव हैं ॥११८३॥

३.घन, ४.निरञ्जन, ५.रुद्रोङ्कार । ये पाँचों तालु के ऊर्ध्व में अवस्थित हैं ॥११८४॥

ये उनसठ भुवन ज्ञानशक्ति से लेकर रुद्रोङ्कारान्त परिगणित हैं । दीक्षा काल में इनका विशोधन होना चाहिये । ईश्वर, विद्येश्वर रूप सूक्ष्मावरण गत जो भुवन हैं, वहाँ से लेकर रुद्रोङ्कारान्त ये उनसठ भुवन ईश्वरतत्त्व के अवान्तर भुवन

नामष्टौ, रूपावरणे चत्वारि, सूक्ष्मावृतौ त्रीणि, शुद्धावृतौ द्वे, विद्यावृतौ द्वै, प्रमाणावृतौ द्वे, नामावृतौ चत्वारि, सुशुद्धावृतौ त्रीणि, शिवावृतावेकम्, मोक्षावृतावेकादश, ध्रुवावृतावेकम्, इच्छाशक्तिभुवनं वामादिशक्तित्रयेण सह चत्वारि, प्रबुद्धावृतावष्टौ, समयावृतौ पञ्चेत्येवमेकोनषष्ट्या अवान्तरभुवनैर्युक्तमेतदीश्वरतत्त्वं सङ्क्षेपेण, न तु विस्तरतः शोधयेत् ॥११८५॥

अस्य च–

एकैकस्य परीवारः कोट्योऽनेकाः सहस्रशः ।

ते च–

त्रिनेत्रा वरदाः सर्वे शुद्धसामर्थ्यविग्रहाः ॥११८६॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशा दशबाह्विन्दुशेखराः ।

त्रिशूलपाणयः सर्वे जटामुकुटमण्डिताः ॥११८७॥

सर्वे सर्वगुणोपेताः सर्वज्ञाः सर्वदेश्वराः ।

सर्वलक्षणसम्पूर्णाः सर्वाभरणभूषिताः ॥११८८॥

हैं । इस ईश्वरतत्त्व में १, विद्येश में ८, रूपावरण में ४, सूक्ष्मावरण में ३, शुद्धावरण में २, विद्यावरण में २, प्रमाणावरण में २, नामावरण में ४, सुशुद्ध में ३, शिवावरण में १, मोक्षावरण में ११, ध्रुवावरण में १, इच्छाशक्ति भुवन में वामादि शक्तित्रय को मिलाकर ४, प्रबुद्धावरण में ८, समयावरण में ५ इस तरह १+८+४+३+२+२+२+४+३+१+११+१+४+८+५=५९ उनसठ होते हैं । इन अवान्तर भुवनों से युक्त ईश्वरतत्त्व का संक्षिप्त रूप से संशोधन करने योग्य है ॥११८५॥

इनमें एक एक का कोटि कोटि परिवार सृष्टि की असंख्यता का प्रतीक है, ये सभी त्रिनेत्र, वरद और सभी शुद्ध परमेश्वर सामर्थ्य से समन्वित शरीर वाले हैं ॥११८६॥

शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल, दश भुज और चन्द्रशेखर हैं । सबके हाथों में त्रिशूल आदि विशिष्ट आयुध हैं । जटा-मुकुट से मण्डित ये सभी बड़े आकर्षक हैं ॥११८७॥

सभी समग्र गुणग्रामों से गौरवास्पद हैं । सर्वज्ञ हैं और सर्वप्रद अर्थात् सब प्रकार के वर प्रदान करने में समर्थ हैं । सभी सुलक्षणों से सुसम्पन्न हैं और सभी प्रकार के आभूषणों से भूषित हैं ॥११८८॥

रुद्रकन्यासमाकीर्णा दिव्यै रूपैर्मनोहरैः ।
सङ्क्रीडन्ते पुरवरैः शिवेच्छाविधिचोदिताः ।।११८९।।

शुद्धं मायामलेन अकलुषं यत्सामर्थ्यं ज्ञानक्रियाविषयम्, तदेव विग्रहः स्वरूपं येषाम् । यद्यपि सर्वेऽहमिदं सर्वमिति स्वाङ्गकल्पाशेषविश्वप्रकाशात्मानः, तथापीश्वरेच्छातो नानारूपा अपि । एवमुत्तरत्रापि ॥११८९॥

अथ–

ईश्वरस्य तथोर्ध्वे तु अधश्चैव सदाशिवात् ।
सुशिवावरणं चोर्ध्वे तस्मिञ्ज्ञेयः सदाशिवः ।।११९०।।

यदेतत्सर्वविषयस्फुटेदन्ताहन्तासामानाधिकरण्यावभासादेकमीश्वरतत्त्वमुक्तम्, तद-न्तरा स्फुटेदन्ताच्छादकाहन्तावभासात्मकसदाशिवतत्त्वं विना नोपपद्यते नहि आन्तराभासं विना बाह्याभासस्योदयो भवतीत्येतदीश्वरतत्त्वभित्तिभूतेन सदाशिवतत्त्वेन भवितव्यमित्याशयेन ईश्वरस्योपरि सदाशिवतत्त्ववर्तिवक्ष्यमाणप्रधानसदाशिवभुवनस्य अधः सदाशिवतत्त्वाश्रितसुशिवावरणमस्तीत्युक्तम् । सुशिवश्चेह सदाशिवभट्टारक एव । यदाह 'तस्मिञ्ज्ञेयः सदाशिवः' वक्ष्यमाणपररूपात् सदाशिवादन्योऽयम-पररूप इत्यर्थः ॥११९०॥

रुद्रकन्याओं से घिरे हुए हैं । वे कन्यायें दिव्य और अप्सराओं की तरह आकर्षक हैं, मनोहर हैं । ये सभी पुराधिपों के साथ क्रीडा के आनन्द में संलग्न रहती हैं । ये सब इच्छाशक्ति की विधि के प्रेरणा के अनुसार ही ऐसा करती हैं ॥११८९॥

शुद्ध का तात्पर्य मायामल से रहित अर्थात् उनका सामर्थ्य ज्ञान और क्रिया से सम्बन्धित है । यद्यपि वे सभी 'अहमिदं' इस अनुभूति के अनुसार सर्व को स्वाङ्ग कल्प ही मानकर व्यवहार करते हैं । फिर भी ईश्वर की इच्छाशक्ति के अनुसार ही स्वकर्म सन्नियोग करते हैं ॥११८९॥

ईश्वर तत्त्व के ऊपर और सदाशिव तत्त्व के नीचे सदाशिवतत्त्वाश्रित सुशिवावरण ऊर्ध्व में ही अवस्थित है । यह सुशिव भी सदाशिव रूप ही हैं । सदाशिव जहाँ पररूप हैं, वहीं सुशिव अपररूप माने जाते हैं । इस सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि ईश्वर तत्त्व स्फुटेदन्ताहन्ता सामानाधिकरण्य से अवभासित तत्त्व है । वहीं स्फुटेदन्तातत्त्वाच्छादक अहन्तावभासक सदाशिव तत्त्व है । इस तरह ईश्वरतत्त्व की भित्ति सदाशिव तत्त्व ही है । इसीलिये ईश्वर तत्त्व के ऊपर सदाशिव तत्त्व उक्त है ॥११९०॥

स च–

त्रिपञ्चनयनो देवश्चन्द्रार्धकृतशेखरः ।
वक्त्रपञ्चकसंयुक्तो दशबाहुर्महाबलः ।।११९१।।
शुद्धस्फटिकसङ्काशः स्फुरन् वै दीप्ततेजसा ।
सिंहासनोपविष्टस्तु

तदुपरि च–

श्वेतपद्मासनस्थितः ।।११९२।।
पञ्चब्रह्माङ्गसहितः सकलाद्यैः समन्वितः ।
दशभिश्च शिवैर्युक्तो रुद्राष्टादशकान्वितः ।।११९३।।

पञ्च ब्रह्माणि सद्योजातादीनि । अङ्गानि हृदयादीनि ॥११९३॥

सकलादीन् विभजति–

सकलो निष्कलः शून्यः कलाढ्यः खमलङ्कृतः ।
क्षपणश्च क्षयान्तस्थः कण्ठ्यौष्ठ्यश्चाष्टमः स्मृतः ।।११९४।।

अस्य आन्तरक्रमेण स्थानमाह–

त्रिपञ्च नेत्र भगवान् सदाशिव अष्टमी के चन्द्र को धारण करने वाले चन्द्रशेखर हैं । इनको पञ्चमुख कहते हैं । दश भुजाओं से युक्त भगवान् सदाशिव सर्वातिशायी शक्तिमान् हैं । इसीलिये महाबलवान् कहलाते हैं ॥११९१॥

सिंहासन पर उपविष्ट सब राजेश्वर के समान वे श्वेत पद्म के आसन पर विराजमान हैं । शुद्ध स्फटिक के सदृश श्वेत नैर्मल्य से अलङ्कृत देवाधिदेव तेजस्विता के प्रकाश से सर्वदा स्फुरित की तरह प्रतीत होते हैं ॥११९२॥

पाँच ब्रह्म ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात रूप अङ्गों से युक्त सकल आदि रुद्रों से परिवृत और दश शिवों से समावृत वे अठारह रुद्रों के साथ सदा सुशोभित होते हैं । पञ्च ब्रह्ममयता इनका महान् धर्म है । अङ्गों में अर्थात् हृदयादि छः अङ्गों में उनको न्यस्त किया जाता है ॥११९३॥

सकल आदि से वे समन्वित हैं, यह ऊपर लिखा हुआ है । उन्हीं सकल आदि रुद्रों का नामोल्लेख कर रहे हैं । १.सकल, २.निष्कल, ३.शून्य, ४.कलाढ्य, ५.खपुष्प, ६.क्षपण, ७.क्षयान्तःस्थ और ८.कण्ठौष्ठ्य, ये आठ हैं ॥११९४॥

भ्रुवोर्मध्ये तु विज्ञेयो देवदेवः सदाशिवः ।
सकलाद्यैर्वृतो देवः

देव इति द्योतमानः । किञ्च–

ओङ्कारेशादिभिः क्रमात् ।।११९५।।

वृत इति वर्तते ॥११९५॥

ओङ्कारेशादीन् दश शिवानाह–

ओङ्कारेशः शिवो दीप्तः कारणेशो दशेशकः ।
सुशिवश्चैव कालेशः सूक्ष्मरूपः सुतेजसः ।।११९६।।
शर्वश्च दशमः प्रोक्तः

त एते प्राग्दिश आरभ्य–

ऊर्ध्वान्तं संव्यवस्थिताः ।

सदाशिवस्य ब्रह्मावरणसकलाद्यावरणाभ्यां बहिः ।

एषामपि–

रुद्राश्चाष्टदश बहिः

संव्यवस्थिता इत्येव ।

तेषां नामानि वै शृणु ।।११९७।।
विजयस्त्वथ निःश्वासः स्वयम्भूश्चाग्निवीरराट् ।
रौरवो मुकुटो विसरश्चन्द्रो बिम्बः प्रगीतवान् ।।११९८।।
ललितः सिद्धरुद्रश्च सन्तानः शर्व एव च ।
परश्च किरणश्चैव पारमेश्वर एव च ।।११९९।।

ये भ्रूमध्य में साधकों द्वारा सेवित होते हैं । अत्यन्त द्युतिमान् दिव्य देव सदाशिव उपर्युक्त सकलादि सकलाष्टकों से समावृत रहने के साथ ही साथ ओङ्कारेश्वरों से भी परिवृत रहते हैं ॥११९५॥

ओङ्कारेशादि शिव दश माने जाते हैं । वे ये हैं–१.ओंकारेश, २.शिव, ३.दीप्त, ४.कारणेश, ५.दशेशक, ६.सुशिव, ७.कालेश, ८.सूक्ष्मरूप, ९.सुतेजस और १०वें शर्व ॥११९६॥

ये दशों पूर्वदिशा से लेकर ऊर्ध्व पर्यन्त दशों दिशाओं में रहते हैं । ये सदाशिव के ब्रह्मावरण और सकलावरणों से बाहर आवरण में अवस्थित हैं । इनके भी बाहर अष्टादश रुद्र रहते हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं ॥११९७॥

१.विजय, २.निःश्वास, ३.स्वयम्भू, ४.अग्नि, ५.वीरराट्, ६.रौरव, ७.मुकुट, ८.विसर, ९.चन्द्र, १०.बिम्ब, ११.प्रगीतवान्, १२.ललित, १३.सिद्धरुद्र, १४.सन्तान, १५.शर्व, १६.पर, १७.किरण और १८वें पारमेश्वर ।

अग्निसहितो वीरराडिति द्वौ। एते च एतन्नामकस्य मुक्त्यवताराः शास्त्रावतारैर्विश्वमनुगृह्णानाः स्थिताः, अत एव दशाष्टादशभेदेन चैतदुच्यते ॥११९९॥

तदेवं ब्रह्माङ्गसकलादिशिवरुद्रावरणैश्चतुर्भिः परिवृतः-

सादाख्यस्तु समाख्यातः सकलो मन्त्रविग्रहः ।

सर्वकारणमध्यक्षः सृष्टिसंहारकारकः ॥१२००॥

भुक्तिमुक्तिप्रदाता च साधकानां क्रियावताम् ।

भवनामतः प्रभृति सदिति व्यपदेशप्रवृतेः सदाख्ये सदाशिवतत्त्वे भवो देवः सादाख्यः । स च सकलो मन्त्रमूर्तिरिति । वक्ष्यमाणनिष्कलमूर्त्यपेक्षया अध्यक्षः सर्वेषामधिष्ठाता सर्वदर्शी च । सर्वकारणत्वं सुस्पष्टयति सृष्टीति । सृष्टिसंहारौ स्थितिविलयावप्युपलक्षयतः । साधकानामिति आराधकानां मुमुक्षूणां मुक्तिं सिषाधयिषूणां मुक्तिम्, भुक्तिपूर्वां मुक्तिं तु क्रियावतामनुष्ठानपराणां सम्पादयति ।

ये दो भागों में विभाजित रुद्र हैं । ११९६ वाले दश मुक्त्यवतार और ये अट्ठारह शास्त्रावतार माने जाते हैं । इसीलिये दश और अट्ठारह रूपों में पृथक् पृथक् कहे गये हैं ॥११९८-११९९॥

इस प्रकार ब्रह्माङ्ग, सकल, शिव और रुद्रावरण रूप चार आवरणों से परिवृत सादाख्य नामक यह सदाशिव देव ही अपने सद्व्यपदेश युक्त सदाख्य सदाशिवतत्त्व में प्रसृत होने के कारण 'सदाशिवतत्वे भवः सादाख्यः' इस विग्रह के अनुसार सादाख्य नाम से विश्रुत हैं । यह सकल मन्त्रमूर्त्ति रूप हैं ।

यह सभी कारणों का एक मात्र कारण हैं । यह निष्कल मूर्त्ति की अपेक्षा ही सर्वाधिष्ठाता अध्यक्ष माने जाते हैं । कारणरूपता का प्रतिपादन करते हुए कह रहे हैं कि, वही सृष्टि और संहार के कर्त्ता हैं ॥१२००॥

सृष्टि और संहार में स्थिति और विलय भी उपलक्षित हो जाते हैं । यही भुक्ति और मुक्ति रूप दोनों फल उपासना के अनुसार प्रदान करते हैं । आरुरुक्षु क्रियावान् आराधक मुक्ति की सिद्धि की आकाङ्क्षा से यदि आराधना करता है, तो मुक्ति और भुक्तिपूर्वक मुक्ति चाहता है, तो अनुष्ठानरत उस साधक को भुक्ति और तदनन्तर मुक्ति भी प्रदान करता है ।

किञ्च–

कोटयः सप्त मन्त्राणामासने तस्य संस्थिताः ।।१२०१।।

निवृत्ताधिकाराश्च अर्धचतस्रः प्रवृत्ताधिकाराश्च अर्धचतस्र इति याः सप्त मन्त्रकोटयः, ताः सर्वा अनेनाधिष्ठिता इत्यर्थः । ईश्वरभट्टारकेण त्वधिकारे प्रवृत्ता अर्धचतस्र एव अधिष्ठितास्तस्य स्थूलभोगत्वादिति शेषः । अत एव प्रागीश्वरस्य आसनपद्मं सहस्रदलमुक्तम् ॥१२०१॥

अस्यासनं तु ततोऽपि विशिष्टमित्याह–

आसनं लक्षपत्राढ्यं चन्द्राकोट्ययुतप्रभम् ।

ईश्वरपद्मादप्यधिकदलमित्यर्थः । तच्च पद्मम्–

वामाद्यैर्विभुपूर्वैश्च पञ्चवक्त्रैस्त्रिलोचनैः ।।१२०२।।

ताराद्यैः शक्तिभेदैश्च प्राग्दिशः परिवारितम् ।

वामाद्याः प्रागुक्ता एव इह परेण रूपेण स्थिताः, विभुपूर्वोक्तास्तु–

'विभुर्ज्ञानी क्रिया चेच्छा वागीशी ज्वालिनी तथा ।

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च सर्वाः कालानलप्रभाः' ॥ (८/६६)

इति श्रीपूर्वे निर्दिष्टाः । ताराद्यास्तु शक्तयः प्रागुक्ताष्टात्रिंशत्कलारूपाः । तत्र वामाद्याः प्रागादिदिक्क्रमेण दलेषु मध्यान्ताः । विद्याद्यास्तु तत्प्रातिलोम्येन मध्यादिप्राग्दलान्ताः । तदुक्तं श्रीपूर्वे–

मन्त्र सात करोड़ हैं, कुछ निवृत्ताधिकार और कुछ प्रवृत्ताधिकार वाले । इनमें ३.५० करोड़ तो निवृत्ताधिकार वाले और ३.५० करोड़ प्रवृत्ताधिकार मन्त्र हैं । ये सभी इसी सादाख्यतत्त्व से अधिष्ठित हैं ।

ईश्वर भट्टारक ने प्रवृत्ताधिकार मन्त्रों को ही अधिष्ठेय बनाया है । इसका कारण यह है कि, ये मन्त्र स्थूल भोग प्रद हैं । इसलिये 'आसने तस्य' अर्थात् ईश्वर के ही साढ़े तीन करोड़ मन्त्रों के सहस्र दल कमलासन पर विराजमान होने की बात यहाँ कही गयी है ॥१२०१॥

इसका आसन लक्षदल वाला पद्म है । वह करोड़ों चन्द्रों की शोभा से समन्वित है । वह पद्म वामादिक और विभुपूर्वक नौ शक्ति मन्त्रों और शक्तियों से समन्वित है । यह पञ्चवक्त्र और त्रिलोचन रुद्रों से सुशोभित है ॥१२०२॥

यह तारा आदि शक्ति के विभिन्न रूपों से दिशाओं के क्रमानुसार अर्थात् पूर्व से ईशान पर्यन्त परिवारित है । ये तारा आदि शक्तियाँ पूर्व में कहीं गयी हैं किन्तु, यहाँ वामा आदि पररूप से अवस्थित हैं । ये सभी श्रीपूर्व शास्त्र में इस प्रकार कही गयी हैं–

'वामा ज्येष्ठा.................................'। (८/६३)

इत्युपक्रम्य–

'.........................भानुमार्गेण विन्यसेत् ।
विभ्वादिनवकं चान्यद्विलोमात्परिकल्पयेत्' ॥ इति (८/६५)

ताराद्यास्तु प्रागादिक्रमेणैव न्यस्ता भावनीयाः ।

अस्य च देवस्य–

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्वामे दक्षिणतः स्थिते ।।१२०३।।

पाठक्रमादर्थक्रमो बलीयानिति न्यायात् ज्ञानशक्तिर्दक्षिणे क्रियाशक्तिर्वामे इति ज्ञेयम् । किञ्च–

इच्छाशक्तिः परा देवि यया सर्वमधिष्ठितम् ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारांस्तिरोभावमनुग्रहम् ।।१२०४।।
यया करोति देवेशः सर्वदा सर्वमध्वनि ।
तस्योत्सङ्गगता सा तु नित्यं चैवात्मवर्तिनी ।।१२०५।।

परेति ज्ञानक्रियापेक्षया । अधिष्ठितं व्याप्तम् । सर्वमिति सृष्ट्यादिपञ्चक-विशेषणम् । सर्वदेति–

१.विभु, २.ज्ञानी, ३.क्रिया, ४.इच्छा, ५.वागीशी और ६.ज्वालिनी रूप शक्तियों से शक्तिमान् हैं । १.वामा, २.ज्येष्ठा और रौद्री ये तीन कालानल के समान प्रभा से भास्वर हैं ।

तारा आदि शक्तियाँ ३८ कलाओं से कलित हैं । वामादि दिक् क्रम से दलों के मध्यभाग में हैं । विद्या आदि इसके उल्टे मध्य से पूर्व दिशा पर्यन्त हैं । श्रीपूर्व शास्त्र में वामा ज्येष्ठा से शुरू कर मानुभार्गेण विन्यसेत् के साथ विभ्वादिनवक को भी विलोम से रखने की बात करते हैं । तारा आदि को तो शास्त्रकार स्वयं प्राग्दिशः अर्थात् पूर्व से ईशान क्रम में न्यस्त करने की बात निर्धारित करते हैं ।

इसके अतिरिक्त ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तियाँ क्रमशः इसके वाम भाग और दक्षिण भाग में है, किन्तु आचार्य ने पाठक्रम से अर्थक्रम को बलवान् मान कर क्रियाशक्ति को वाम भाग और ज्ञानशक्ति को दक्षिण भाग में होने की बात कही है ॥१२०३॥

इनके अतिरिक्त इच्छाशक्ति को दोनों से महत्त्वपूर्ण मानकर भगवान् कहते हैं कि, इस शक्ति से तो सारा का सारा तत्त्ववाद ही अधिष्ठित है । इसी के माध्यम से देवाधिदेव परमेश्वर उत्पत्ति, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह सब

'तदेवं व्यवहारेऽपि प्रभुर्देहादिमाविशन् ।

भान्तमेवान्तरर्थौघमिच्छया भासयेद्बहिः' ॥ (१/६/७)

इति प्रत्यभिज्ञोक्तनीत्या देहाद्याविष्टश्चिदात्मा महेश्वरस्तदर्थावभासतत्स्थिति-तच्चर्वण-तत्संस्कारावस्थापन-तत्प्रकाशमयत्वापादनैर्हि प्रतिक्षणं जगतः पञ्च कृत्यानि करोति । उत्सङ्गगतेति आकृतिमत्त्वे आत्मशिवस्य ॥१२०५॥

तत्कथं सदाशिवस्योक्तमिति तत्संख्यामाह–

सा चेच्छा देवदेवस्य शिवस्य परमात्मनः ।

स एवापररूपेण पञ्चमन्त्रमहातनुः ।।१२०६।।

इच्छारूपधरः श्रीमान् देवदेवः सदाशिवः ।

यतः शिव एव अपररूपेण सदाशिवः, अत इच्छा अस्य शक्तिरुक्तेत्यर्थः । पञ्चभिरीशानादिब्रह्माभिर्मन्त्रैर्महती विश्वव्यापिका महामाहात्म्या च तनुर्यस्य । शिवस्य अनुग्रहार्थमेतदपररूपग्रहणं स्वस्वातन्त्र्यादित्याह इच्छारूपधर इति । अत एव अयं सदेत्याकृतिपरिग्रहापरिग्रहयोः शिव इवेति कृत्वा सदाशिव उच्यते । श्रीमान् ज्ञान-दीप्त्यतिशययुक्तः ।

कुछ करते हैं । सभी अध्वावर्ग में सदा सर्वदा इन्हीं की शक्ति से सक्रिय रहते हैं । यह देवी परमात्मा से नित्य अवियुक्त इन्हीं की उत्सङ्गगता और आत्मवर्तिनी मानी जाती है ॥१०४-१२०५॥

प्रत्यभिज्ञा शास्त्र अ० १ के श्लोक ६७ में शास्त्रकार कहते हैं कि, प्रभु सर्व-समर्थ परमेश्वर समग्र व्यवहारों में भी देहादि में अवस्थित रहते हुए वेद्य रूप आन्तर अर्थौघ को बाह्य रूप से भासित करता है । इस उक्ति के अनुसार देहादि में आविष्ट रहते हुए चिदात्मा महेश्वर पदार्थों का अवभासन, उसकी स्थिति, उनका चर्वण, उनके संस्कारों का अवस्थापन और उनके प्रकाशमयत्व का आपादन रूप उत्पत्त्याद्यनुग्रहान्त पाँचों कृत्य करते रहते हैं । उन्हीं परमेश्वर की यह उत्सङ्गगता है ॥१२०६॥

देवाधिदेव परमेश्वर शिव की इच्छारूपिणी यह महाशक्ति है । परमेश्वर पर रूप से पञ्चमन्त्रात्मक रूप महातनुधारी हैं और अपर रूप से वही सदाशिव भी हैं । महातनुता ईशानादि पञ्च ब्रह्मस्वरूपता और उनके मन्त्रों से प्राप्त है । शिव अपररूपग्रहण विश्व पर अनुग्रह के लिये ही करते हैं ।

अत्र च–

शक्तयस्तस्य याः प्रोक्ताः

वामाद्यः ।

तथा वै मन्त्रनायकाः ।।१२०७।।

आवरणचतुष्टयस्थाः ॥१२०७॥

एते सर्वे–

एकैकं परितो देवि पद्मैरर्बुदकोटिभिः ।
तथा खर्वनिखर्वैश्च प्रतिरूपैर्महाबलैः ।।१२०८।।
विद्यारूपैः स्वरूपाढ्यैरप्रमेयगुणान्वितैः ।
सर्वलक्षणसम्पन्नैः सर्वाभरणभूषितैः ।।१२०९।।
हास्यलास्यविलासाढ्यैर्भ्रूक्षेपोन्मदविभ्रमैः ।
चन्द्रकोटिशतप्रख्यैः प्रस्रवद्भिरिवामृतम् ।।१२१०।।
ताभिः सार्धं सदा रुद्राः प्रक्रीडन्तीच्छया प्रभोः ।
पुरवरैः सर्वतोभद्रैश्चन्द्रकोटिसमप्रभैः ।।१२११।।

परिवृता इत्यर्थः । एकैकमिति क्रियाविशेषणम् । पद्मार्बुदादयो वक्ष्यमाण-सङ्ख्याविशेषरूपाः । प्रतिरूपैरिति मुख्यसदृशैः । बलं ज्ञानक्रियासामर्थ्यम् । रूपमाकृतिसौन्दर्यं स्वरूपं च । गुणाः सर्वज्ञत्वादयः । लक्षणानि ज्ञानयोगैश्वर्याणि । सर्वेण आभरणेन भूषितैः । अशेषविश्वात्मभिः परानुग्रहप्रवणतया नित्यप्रमुदितत्वेन हास्यलास्यादियुक्तत्वम् । अत एव हेलामात्रेण परानुग्रह-सम्पत्तेर्भ्रूक्षेपेणोद्गतो मदो येषु तादृशा विभ्रमा विलासा येषां तैर्विद्यावृन्दैः परिवृता इति सङ्गतिः ।

श्रीमान् सदाशिव भी उनके अपर रूप ही हैं । वे भी इच्छा रूपधारी हैं । सत्प्रवृत्ति से सदाशिव बन जाते हैं । श्रीमान् हैं अर्थात् ज्ञान लक्ष्मी की उद्दीप्ति से दीप्त और प्रकाशमान हैं । इनकी जैसी शक्तियाँ हैं, उसी तरह के इनके मन्त्र नायक भी हैं । आवरणचतुष्टय में ही वे भी अधिष्ठित हैं ॥१२०७॥

एक एक इनके चारों ओर अरबों करोड़ों कमल तथा खर्व निखर्व संख्या में इनके प्रतिरूप महाबलवान् साक्षात् विद्या रूपों और स्वात्म रूपों में समर्थ, अप्रमेय गुणों से समन्वित, सर्वलक्षणसम्पन्न, सर्वाभरणभूषित, रुद्र, हास्य, लास्यमय विलासलीला में संलग्न, भ्रूक्षेप से उन्मद विग्रह वाली, करोड़ों चन्द्रों के समान सुन्दर अमृतवर्षी स्त्रियों के साथ विहार करते हैं । यह सब प्रभु की ही प्रपञ्च लीला है । इनके नगर भी सर्वतोभद्र हैं और चन्द्रकोटिसमप्रभ हैं ।

ताभिर्विद्याभिः क्रीडन्ति परानुग्रहायैव विहरन्ति पुरवरैरुपलक्षिताः ॥१२११॥

त एते सर्वे–

मायाधर्मविनिर्मुक्ता निर्मला विगतज्वराः ।
अधिकारं प्रकुर्वन्ति सर्वज्ञामोघशक्तयः ।।१२१२।।

मायाया धर्मश्चित्स्वरूपावरणम्, तेन विनिर्मुक्ताः । यद्यपि परमशिवापेक्षया एषां सङ्कुचितत्वं महामायाकार्यं पाशेनास्ति, तथापि मायाप्रमातृवत्सङ्कोचमया न भवन्ति । अत एव च निर्मला मायानावृताः । सङ्कोच एव हि पुंसामाणवमलमित्युक्तप्रायम् । अत एवैते विगतज्वराः सर्वसन्तापरहिताः । एवमपि च अनुग्राह्यानुग्रहाय शिवेन नियतिकालाधिकारवशानुबद्धाः स्थापिताः । सर्वज्ञाश्च ते, अमोघशक्तयश्च त इति समासः ॥१२१२॥

किञ्च–

अधिकारक्षये शान्ता जायन्ते सर्वगाः शिवाः ।

इनमें कुछ बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये । जैसे महाबल शब्द है । इसमें बल का तात्पर्य ज्ञान और क्रिया शक्तियों का सामर्थ्य है । अप्रमेय गुणान्वित में गुण से सर्वज्ञ आदि छः गुणों का अर्थ लेना चाहिये । इसी तरह विद्यावृन्द में भी शृङ्गारतत्त्व के प्रदर्शन में मानवीयता का देवत्वकरण ही वाञ्छित है ॥१२०८-१२११॥

ये सभी माया धर्म से विनिर्मुक्त हैं । निर्मल और सभी प्रकार के ज्वरादि उपद्रवों से रहित हैं । सभी सर्वज्ञ और अमोघ शक्ति रूप से हैं । ये सभी अपने अधिकारों का यहाँ प्रवर्त्तन करते हैं ।

माया का धर्म चित् का आवरण करना है । इससे रहित होने का तात्पर्य अनावृत चैतन्य से समन्वित है । यद्यपि परम शिव की अपेक्षा इनका कुछ कुछ सङ्कोच महामाया जन्य पाशों से है, फिर भी माया प्रमाताओं की तरह ये सङ्कोच ग्रस्त नहीं होते । इसी कारण वे निर्मल होते हैं, अर्थात् माया से अनावृत हैं । यह निश्चित है कि, सङ्कोच पुरुष के आणव मल का ही परिणाम है । मल से निर्मुक्त पुरुष तीनों मलों से मुक्त होता है । इसका फल यह है कि, ये किसी प्रकार के ज्वर या सन्ताप से रहित होते हैं । भगवान् शिव ने उन्हें अनुग्राह्यों पर अनुग्रह के लिये वहाँ नियुक्त और नियोजित कर रखा है ॥१२१२॥

शान्ता निवृत्तमहामायाकृततावन्मन्त्राख्याः, तथा व्यापकशिवैकीरूपा भवन्तीत्यर्थः ।

इत्थं च–

परप्रेर्याः पुनर्भूयो न भवन्ति कदाचन ।।१२१३।।

महासंसारतः सदाशिवान्ते विश्वत्र शून्यातिशून्यपदमाप्ते ये अविदिततत्त्वास्ते महासृष्टौ भूयः सृज्यन्ते यथैकादशे दर्शयिष्यते । एते तु भगवन्तो मुच्यन्त एवेति पुनःशब्दस्यार्थः ॥१२१३॥

उपसंहरति–

सुशिवावरणं ख्यातं मन्त्रगर्भं वरानने ।

मन्त्रा आसनगता आवरणगताश्च गर्भे यस्य तदेतत्सुशिवस्य सदाशिवभट्टारकस्य सम्बन्धि आवरणं भुवनमित्यर्थः । अथ च परिपूर्णज्ञानशालिव्यतिरेकेण अन्येषां परपदावारकत्वादेव तानि आवरणानीत्युच्यन्ते ।

अथ–

बिन्द्वावरणमूर्ध्वेऽतश्चन्द्रकोटिसमप्रभम् ।।१२१४।।

बिन्दुतत्त्वस्थानव्याप्तिरूपमावरणं बिन्द्वावरणम् ॥१२१४॥

अपने अधिकार के क्षय होने के उपरान्त महामाया द्वारा कृत मन्त्राख्य अधिकार से निवृत्त हो जाने पर ये व्यापक शिवैक्य भाव में निमग्न होकर शान्त हो जाते हैं । इसके बाद वे कभी भी पुनः प्रेर्य नहीं होते और न कभी जन्म लेते हैं ।

ऐसे लोग होते हैं, जो इस महासंसार से सदाशिवान्त में शून्यातिशून्य पद पर पहुँच कर भी तत्त्ववाद की गहराई से अपरिचित रह जाने के कारण आवागमन के बन्धन में पड़ जाते हैं । उनका सृजन पुनः हो जाता है । पर ये सर्वथा मुक्त हो जाते हैं ॥१२१३॥

आसन ही इन मन्त्रों का स्थान होता है । ये वहाँ सुशिवावरण में सुरक्षित रहते हैं । यह उनका गर्भ माना जा सकता है । उसी सदाशिव भट्टारक सम्बन्धी सुशिव के आवरण रूप भुवन में ये रहते हैं । यह भुवन ही मन्त्रगर्भ आवरण है । परिपूर्ण ज्ञानवानों के अतिरिक्त अन्य लोगों का उसमें प्रवेश न हो सके, इसीलिये इन्हें आवरण कहते हैं ।

इसके ऊपर बिन्दुतत्त्वावरण है । करोड़ों चन्द्रों की आभा से भासित यह आवरण है ॥१२१४॥

तत्र पद्मं महादीप्तं दशकोटिसमन्वितम् ।
तत्र पद्मे स्थितो देवः शान्त्यतीतो महाद्युतिः ।।१२१५।।
पञ्चवक्त्रो विशालाक्षो दशबाहुस्त्रिलोचनः ।
तडित्सहस्रपुञ्जाभः स्फुरन्माणिक्यमण्डितः ।।१२१६।।

अशेषं यद्विश्वम्, प्राप्तमहाविकासदीप्तियोगोत्कृष्टत्वान्माणिक्यम् ॥१२१६॥

किञ्च–

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथैव च ।
परिवारः स्मृतस्तस्य शान्त्यतीतस्य सुव्रते ।।१२१७।।

प्रागुक्तं कलाचतुष्टयमेव अशेषविश्वाध्वगर्भं परशक्तिरूपतया स्थितमस्य देवस्य परिवारः । किञ्च–

तस्य वामे तु दिग्भागे शान्त्यतीता व्यवस्थिता ।

एताश्च–

पञ्चवक्त्राः स्मृताः सर्वा दशबाह्विन्दुशेखराः ।।१२१८।।

इसमें एक ऐसा पद्म है, जो दश करोड़ पत्रों से समन्वित है । उस पद्मासन पर महाद्युति मन्त्र शान्त्यतीत देवेश्वर विराजमान होते हैं ॥१२१५॥

ये पञ्चवक्त्र हैं । विशालाक्ष हैं । दश बाहुओं से विभूषित हैं और त्रिलो-चन हैं । एक बार कौंधने वाली हजारों बिजलियों की राशि जितनी प्रभा विकीर्ण कर सकती है, उसी प्रकार की प्रभा के वे पुञ्ज हैं और स्फुरणशील माणिक्यों से वे मण्डित हैं ।

जहाँ तक मणिक्य का प्रश्न है, यह तो एक चमकदार पत्थरमात्र होता है, किन्तु आचार्य क्षेम यह कल्पना कर रहे हैं कि, यह अशेष विश्व इस अवस्था में महाविकासमयी प्रकाशात्मकता की महादीप्ति से दीप्तिमान् होकर अपने उत्कृष्ट स्वरूप में माणिक्यवत् महादीप्तिमान् बन गया है । उसी माणिक्य से यह शान्त्यतीत देवेश्वर भी दीप्तिमान् हो रहा है ॥१२१६॥

निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ता यह इस महादीप्तिमन्त भगवान् शान्त्य-तीत का अपना परिवार है । यह कलाचतुष्टय अशेष विश्व के अध्ववर्ग को अपने परिवेश में गर्भ की तरह धारण करता है । यहाँ सभी परशक्ति रूपा ये परिवार की सदस्यायें हैं ॥१२१७॥

इस परिवार के वाम दिग्भाग में शान्त्यतीत रहते हैं । उनके ये परिवार भी पञ्चवक्त्र, दशबाहु, और चन्द्रशेखर हैं ॥१२१८॥

तदेवम्–

बिन्दुतत्त्वं समाख्यातं पुरकोट्यर्बुदैर्वृतम् ।

मन्त्रमन्त्रेशतदीशपरिवारसम्बन्धिभिः । एष च शान्त्यतीत ईश्वरभट्टारक-परव्याप्तिरूपः । यद्वक्ष्यति–

'आभिः कलाभिः संयुक्तो ध्यातव्यो बिन्दुरीश्वरः' । इति । (१२/१५४)

योजनिकाग्रन्थेऽप्युक्तम्–

'........................बिन्दुश्चैवेश्वरः स्वयम्' । इति । (४/२६४)

अस्मिन् हि अध्वनि स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन मन्त्रदेवतादीनां स्थितिरित्युक्त-प्रायम् ।

एतद्बिन्द्वावरणमुक्त्वा, अर्धचन्द्राद्यावरणमप्याह–

अर्धचन्द्रस्तदूर्ध्वे तु तदूर्ध्वे तु निरोधिकाः ।।१२१९।।

अत्र भुवनान्याह–

एते द्वे तु महास्थाने पञ्चपञ्चकलान्विते ।

कला देवताः । तत्र–

ज्योत्स्ना ज्योत्स्नावती कान्तिः सुप्रभाः विमला शिवा ।।१२२०।।

यह बिन्दुतत्त्वावरण मन्त्र, मन्त्रेश्वर और मन्त्रमहेश्वर आदि सम्बन्धी कोटि कोटि अरबों अरबों परिवारों से समावृत है । भगवान् शान्त्यतीत भट्टारक की महाव्याप्ति का यह एक स्वरूप है । कहा गया है कि,

इन सभी कलाओं से संयुक्त भगवान् ईश्वरस्वरूप बिन्दु का ध्यान करना चाहिये । (१२/१५४)

योजनिका ग्रन्थसन्दर्भ में बिन्दु को स्वयम् ईश्वर माना जाता है ।

इस अध्वा में स्थूल सूक्ष्म आदि भेद से मन्त्रों और देवताओं की स्थिति का आकलन करते हैं, यह बात ऊपर के वर्णनों से स्पष्ट हो जाती है ।

बिन्द्वावरण के ऊपर अर्धचन्द्र का आवरण क्रमिक रूप से आता है । यही कह रहे हैं कि, बिन्द्वावरण के ऊर्ध्व भाग में चन्द्रार्ध अर्थात् अर्धचन्द्र का आवरण और इससे भी ऊपर निरोधिका का आवरण है ॥१२१९॥

ये दोनों महास्थान माने जाते हैं । ये दोनों पाँच पाँच कला देवताओं से समन्वित हैं । अर्धचन्द्र की कला देवतायें १.ज्योत्स्ना, २.ज्योत्स्नावती, ३.कान्ति, ४.सुप्रभा और ५.विमला इन कलाओं से कलित हैं ॥१२२०॥

अर्धचन्द्रे स्थिता ह्येता निरोधिन्यां शृणु प्रिये ।
रुन्धनी रोधनी रौद्री ज्ञानबोधा तमोपहा ।।१२२१।।

विमलाया विशेषणं शिवेति । अर्धचन्द्रपदस्य प्रकाशाह्लादप्रकर्षात्तच्छक्तीनां तथोचितनामानि । निरोधिनीपदस्यापि निरोधहेतुत्वाद्रुन्धनी रोधनी रौद्रीति तिस्रः शक्तयः । प्रबुद्धानां तु निरोधनिवृत्तौ ज्ञानबोधा तमोपहेति शक्तिद्वयमूर्ध्वप्रवेश-दातृत्वादेवमभिधानम् ॥१२२१॥

अत्र पूर्वोक्तं मात्राविभागं स्मारयति–

अर्धमात्रः स्मृतो बिन्दुः स्वरूपश्च चतुष्कलः ।
तस्याप्यर्धमर्धचन्द्रस्त्वष्टांशश्च निरोधिका ।।१२२२।।

'ह्रस्वं दीर्घं प्लुतं सूक्ष्ममतिसूक्ष्मं..........'। (६/५)

इत्येतद्ग्रन्थनिर्णयावसर एवैतन्निर्णीतं यथा यावद्यावन्मन्त्रोच्चार ऊर्ध्वोर्ध्वं पद-माश्रयति, तावत्तावद्वाच्यवाचकगता स्थूलरूपता निवर्तते, सूक्ष्मसूक्ष्मतरादिरूपता च अभिव्यज्यमाना विश्रान्तिप्रकर्षं ददाति यावदुन्मनापरतत्त्वात्मनि पर्यन्ते सर्वोपाधि-

---

निरोधिका में १.रुन्धनी, २.रोधनी, ३.रौद्री, ४.ज्ञानबोधा, ५.तमोपहा, ये पाँच कलायें हैं । ये सभी निरोध की हेतु मानी जाती हैं । जो प्रबुद्ध होते हैं, उनके निरोध की निवृत्ति हो जाने पर ज्ञानबोधा और तमोपहा नामक कलायें ऊर्ध्व प्रवेश प्रदान करती हैं । यथा नाम तथा गुण इनमें पाया जाता है ॥१२२१॥

बिन्दु से लेकर निरोधिका पर्यन्त मात्रा विभाग की चर्चा कर रहे हैं । बिन्दु अर्धमात्रिक माना जाता है । इसका चतुष्कलस्वरूप शास्त्र में वर्णित है । इसकी आधी मात्रा अर्धचन्द्र की होती है और निरोधिका १/८ मात्रा की होती है । मात्राओं के वर्णन में ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म ये पाँच विभाग किये गये हैं । जितना जितना मन्त्रोच्चार ऊपर उच्चरित होता जाता है, ऊर्ध्व ऊर्ध्वपद का आश्रय लेने लगता है, उतनी ही उतनी वाच्यवाचकगत स्थूलता समाप्त या निवृत्त होने लगती है । सूक्ष्म सूक्ष्मरूपता व्यक्त होने लगती है ।

इससे यह अनुभव होने लगता है कि, मन्त्र की स्वर प्रक्रिया की साधना या उपासना की विश्रान्ति का प्रकर्ष बढ़ने लगता है । यह अनुभूति उस अति-सूक्ष्मता की गति पर ही आधारित होती है ।

सूक्ष्मता का आतिशय्य नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी और उन्मना तक पहुँचता है । यहाँ विश्रान्ति समाप्त हो जाती है । समस्त उपाधियाँ शान्त हो जाती हैं । चिदानन्दघनस्वच्छ स्वच्छन्द भैरव समावेश में शिवैक्य उल्लसित हो

प्रशान्त्या चिदानन्दघनस्वच्छन्दभैरवरूपावेशो भवतीति । तदेवेह परमेश्वरेण स्मारितं यथा भुवनशुद्ध्यवसरे सूक्ष्मतरसूक्ष्मतमादिरूपा मान्त्री व्याप्तिरनुसरणीया गुरुभिः । एवमुत्तरत्रापि स्वयमनुसर्तव्यम् ।

निरोधिन्याः स्वरूपं निर्वक्ति–

निरोधयति देवान् सा ब्रह्माद्यांस्तु वरानने ।

का तु कथा सामान्यजन्तूनाम् ।

यत एवम्, तेनैषा–

निरोधिनीति विख्याता

अतश्च पूर्वोक्तकरणबन्धव्याप्त्यनुसरणपुरःसरमन्त्रोच्चारयुक्त्या–

तां भित्वा तु वरानने ।।१२२३।।

साদाख्यपरभावेन पञ्चमन्त्रमहातनुः ।

लभ्यत इति शेषः । सादाख्यदेव इत्यर्थः । परभावेनेति प्रागुक्तो यः, स एव अनेन सूक्ष्मेण रूपेणेत्यर्थः ।

उठता है । इस श्लोक द्वारा इस अनुभूति का स्मरण कराया गया है । भुवनशुद्धि के अवसर पर सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतमा मान्त्री व्याप्ति का अनुसरण साधक निरन्तर करता है । गुरुजनों का भी यह उत्तरदायित्व है कि, वे शिष्यों को इस ओर प्रवृत्त कर दें ॥१२२२॥

निरोधिनी के स्वरूप की चर्चा कर रहे हैं । इसके अनुसार निरोधिनी ब्रह्मा आदि देवताओं का निरोध करती है । सामान्यजनों की तो कोई बात ही नहीं की जा सकती ? जब देवताओं को वह ऊपर जाने से रोकती है, तो दूसरों का प्रवेश ऊर्ध्व देश में कैसे हो सकता है ? इसीलिये इसको निरोधिनी, निरोधिका या रेखिनी भी कहते हैं । ऐसी दशा में सर्वप्रथम करण बन्ध व्याप्ति की युक्ति का अनुसरण करते हैं । मन्त्रोच्चार की युक्ति अपनाते हैं और माया तथा अनन्तेश्वर की प्रार्थना करते हैं, तब उसका द्वार खुलता है । यह रहस्य साधना है ॥१२२३॥

यहाँ भेदन करने की क्रिया का अर्थ उसका तोड़ना नहीं, अपितु मन्त्रोच्चार के माध्यम से उसे रिझाना है । इसे शिव भक्तियोग कहते हैं । उसी समय निरोधिनी शक्ति अपनी ज्ञानबोधा कला को आज्ञा देती है । उसी समय ज्ञान के प्रकाश में रास्ता खुल जाता है । यही योग की भाषा भेदन और तन्त्र की भाषा में भक्तिभावित अध्यवसाय कहते हैं ।

तस्य स्थानं रूपं च निरूपयति–

तस्योर्ध्वे तु स्मृतो नादः स किञ्जल्करजःप्रभः ।।१२२४।।

महद्भिः पुरुषैर्व्याप्तः सूर्यकोट्ययुतप्रभैः ।

तस्येति निरोधिकावरणस्य । नाद इति समस्तवाचकाभेदमयपरामर्शसतत्त्वः श्रीसदाशिव एव पररूपः । किञ्चल्करजःप्रभ इति दीप्त्यतिशययुक्तः । महद्भिः पुरुषैरिति मन्त्रमहेश्वरभूमेः प्रभृति उत्तरोत्तरं तारतम्येन स्थितैः ।

किञ्चात्र–

तेषां वै नायिका वक्ष्ये भुवने पञ्चसङ्ख्यया ।।१२२५।।

तेषां महतां पुरुषाणां मध्ये नायिकाः प्रधानभूता देवताः । भुवन इति अस्मिन् नादावरणं गते भुवनपञ्चक इत्यर्थः ।।१२२५।।

ता आह–

इन्धिका दीपिका चैव रोचिका मोचिका तथा ।

ऊर्ध्वगा तु समाख्याता कला त्वेषा तु पञ्चमी ।।१२२६।।

दीप्त्यतिशयादासामीदृशि नामानि । पञ्चमीति एतासां मध्ये प्रधानभूता ।।१२२६।।

निरोधिनी के ऊपर जाने के बाद योगी नीचे भी आ सकता है । निरोधिनी उसे जान जाती है । उस प्रबुद्ध भक्त साधक का जीवन धन्य हो जाता है । ऊपर की यात्रा का परिणाम यह है कि, वहाँ पञ्चमन्त्र महातनु परभाव से सादाख्य देव मिल जाते हैं । भक्त साधक के आने की सूचना उनको मिल जाता है ।

निरोधिनी के ऊर्ध्व भाग में तुरत 'नाद' का निवास मिलता है । यह किञ्जल्क रज की प्रभा के समान भास्वर होता है ।।१२२४।।

नाद का स्थान निरोधिका के आवरण के ऊपर है । नाद विमर्श स्पन्द से समुत्थ वाच्यवाचक के अभेद प्रत्यवमर्श रूप वह दिव्य दशा है, जिसमें सदाशिव देव की दिव्यता की दीप्ति भरी हुई है । एक तरह से परभाव से वह सदाशिव देव ही नाद है । किञ्जल्क की द्युति का रसास्वाद तो कोई बिरला शिवसुधारसज्ञ ही कर सकता है । वह स्थान सूर्य कोट्ययुत प्रभ उच्चकोटि के साधकों से व्याप्त है । उन महान् पुरुषों की नायिका अर्थात् उन्हें उत्तरोत्तर उत्कर्ष प्रदान करने वाली प्रधान देवता सरस्वती रूपा ही है । इस नादावरण भुवन की वह मलिका है । इसमें पाँच भुवन विख्यात हैं ।।१२२५।।

उस नायिका की पाँच कलायें हैं । १.इन्धिका, २.दीपिका, ३.रोचिका, ४.मोचिका और ५.ऊर्ध्वगा । यह पञ्चमी मुख्या प्रधानभूता कला है । इनके नामों से उस आवरण की दिव्य दीप्ति का पता चलता है ।।१२२६।।

किञ्च–

तस्मिन् पद्मं सुविस्तीर्णं

तस्मिन्निति ऊर्ध्वगशक्तिधाम्नि । सुविस्तीर्णमिति प्रकृतापेक्षया ।

तत्र च–

ऊर्ध्वगेशः स्थितः प्रभुः ।

ऊर्ध्वगाख्याया नादान्तात्मनः शक्तेरीशोऽधिष्ठाता । स च–

चन्द्रार्बुदप्रतीकाशः पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः ।।१२२७।।
चन्द्रार्धशेखरः शान्तो दशबाहुर्महातनुः ।
इन्धिकादिवृतो देवः शूलपाणिर्जटाधरः ।।१२२८।।

शान्त इति नादापर्यन्तविश्वोपशमात् । जटाधरत्वादिकं प्राग्वत् ॥१२२८॥

किञ्च–

ऊर्ध्वगा तु कला तस्य नित्यमुत्सङ्गगामिनी ।

इयदन्तो सदाशिवतत्त्वस्य व्याप्तिः । एवमत्र सादाशिवे तत्त्वे सुशिव-बिन्द्वर्धचन्द्रनिरोधिकानादनादान्तरूपाणि पञ्च आवरणानि । तत्र सुशिवावरणे सदाशिवः, वक्त्राङ्गैकादशिका, सकलाद्यष्टकम्, ओङ्कारादिशिवदशकम्, विजयादि-रुद्राष्टादशकमिति श्रीसदाशिवेन सह आवरणदेवता अष्टचत्वारिंशत् । आसन-पद्मगतास्तु वामाद्या नव, विश्वाद्या नव, ताराद्या अष्टात्रिंशदिति षट्पञ्चाशद्

नाद से ऊर्ध्व नादान्त में एक अत्यन्त विस्तीर्ण पद्म है। उस पद्मासन पर ऊर्ध्वगा शक्ति के ईश ऊर्ध्वगेश विराजमान होते हैं। वे ऊर्ध्वगेश अरबों चन्द्रमा के समान सुन्दर और सुप्रभान्वित हैं। वे पञ्चवक्त्र हैं और वे त्रिलोचन भी हैं ॥१२२७॥

शिर पर अष्टमी के चन्द्र को धारण करते हैं, नितान्त शान्त, दशबाहुओं से विभूषित महाकाय ये सदा इन्धिका आदि कला शक्तियों से समावृत रहते हैं। शूलपाणि ये जटाधर नाद पर्यन्त विश्व के उपशामक हैं ॥१२२८॥

ऊर्ध्वगेश की नित्य उत्सङ्गगामिनी ऊर्ध्वगा कला उससे नित्य अवियुक्त रहती है। यहाँ तक सदाशिव तत्त्व की व्याप्ति रहती है। इस प्रकार इस सदा शिवतत्त्व में, सुशिव, बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिका, नाद और नादान्त रूप पाँच आवरण सिद्ध हैं। सुशिवावरण में सदाशिव, वक्त्राङ्गों की ग्यारह कलायें, सकलादि अष्टक, ओंकार आदि दश शिव, विजयादि १८ रुद्र, ये सदाशिव के साथ आवरण के ४८ देवता नित्य अवस्थित हैं।

ज्ञानक्रिये पार्श्वगते इच्छा उत्सङ्गस्थेति सप्तोत्तरशतमत्र देवतानाम् । बिन्द्वावरणे शान्त्यतीतेशः, शान्त्यतीता, निवृत्त्याद्याश्चतस्र इति षट् देवताः । अर्धचन्द्रावरणे तु ज्योत्स्नादिशक्तिपञ्चकम् । निरोधिन्यां रुन्धन्यादिशक्तिपञ्चकम् । ततो नाद-भट्टारकः । ततो नादान्तपदे इन्धिकाद्याश्चतस्र ऊर्ध्वगेश्वर ऊर्ध्वगा चेति षट् । एव-मत्र सदाशिवतत्त्वे सत्रिंशच्छतं देवतानाम् ।

अथ शक्तितत्त्वे भुवनेशानादिशति–

ततः सुषुम्णाभुवनं सुषुम्णा तत्र संस्थिता ।।१२२९।।

सुषुम्णाख्या देवता, यदधिष्ठानान्मध्यंनाडी सुषुम्णेत्युच्यते ॥१२२९॥

न च असावेव स्थिताः, अपि तु तत्प्रभुः–

सुषुम्णेशः स्थितस्तत्र चन्द्रकोट्ययुतप्रभः ।
दशबाहुस्त्रिनेत्रश्च श्वेतपद्मोपरि स्थितः ।।१२३०।।
शशाङ्कशेखरः श्रीमान् पञ्चवक्त्रो महातनुः ।

किञ्च–

इडा च पिङ्गला चैव वामदक्षिणतः स्थिते ।।१२३१।।

आसन पद्म में वामादि ९, विश्वाद्या ९, तारा आदि ३८ कुल मिलाकर ५६ ज्ञान और क्रियायें दोनों पार्श्वों में और इच्छा उनके उत्सङ्ग में इस तरह कुल देवताओं की संख्या १०७ हो जाती है ।

बिन्दु के आवरण में शान्त्यतीतेश, शान्त्यतीता और निवृत्ति आदि चार कलायें मिलकर ये छः देवता होते हैं ।

अर्धचन्द्र के आवरण में ज्योत्स्ना आदि ५शक्तियाँ, निरोधिनी में रुन्धनी आदि पाँच शक्तियाँ और इसके बाद नाद भट्टारक का आवरण आता है । इसके बाद नादान्त पद पर इन्धिका आदि ४, ऊर्ध्वगेश और ऊर्ध्वगा को मिलाकर छः देवता हैं । इस तरह सदाशिव तत्त्व में १३० देवताओं का अवस्थान सिद्ध होता है ।

इसी के ऊर्ध्व में शक्ति तत्त्व आता है । इसमें सुषुम्ना नामक देवता का निवास है । इसी के अधिष्ठान के कारण मध्य नाडी सुषुम्णा कही जाती है ॥१२२९॥

वहाँ इसके अतिरिक्त सुषुम्णेश भी अवस्थित हैं । ये दस हजार करोड़ चन्द्रों की शोभा के समान हैं । दश बाहु त्रिनेत्र और श्वेत पद्मासन पर अवस्थित होते हैं ॥१२३०॥

सुषुम्णेश शशाङ्कशेश्वर हैं, श्रीऐश्वर्यसम्पन्न, पञ्चवक्त्र और महाकाय हैं । इडा और पिङ्गला इनके वाम दक्षिण भाग में अवस्थित हैं ॥१२३१॥

सुषुम्णा तु वरारोहे तुषारकणधूसरा ।
श्वेतपद्मकरा देवी पद्ममालाविभूषिता ।।१२३२।।

तुषारधूसरा त्विति तुशब्दात् इडापिङ्गले श्यामलोहिते इति तन्त्रान्तराज्ज्ञातव्यम् ॥१२३२॥

पञ्चवक्त्रा सुशोभाढ्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी ।
तस्योत्सङ्गगता देवी ध्यातव्या साधकादिभिः ।।१२३३।।

एषा सुषुम्णा विश्वव्यापिनीत्याह–

ग्रथितस्तु तया सर्वस्त्वध्वायमध-ऊर्ध्वगः ।

ग्रथित उम्भितो व्याप्तः अधः अनन्तान्तः, ऊर्ध्वे शिवतत्त्वान्तः । सर्वोऽध्वेति शारीरो बाह्यश्च ।

सुषुम्णा का स्वरूप तुषार के कणों के समान धूसरवर्ण वाला होता है । इसका तुषार धूसर होना यह सिद्ध करता है कि, इडा और पिङ्गला दूसरे रङ्ग की है । तन्त्रान्तर में यह उल्लेख है कि ये दोनों श्याम और लोहित वर्ण की हैं ॥१२३२॥

यह पञ्चवक्त्रा, शोभा की धाम, त्रिनेत्रा और शूलधारण करने वाली है । सुषुम्णेश के उत्सङ्ग में विराजमान इस देवी का ध्यान साधकों के द्वारा इसी रूप में करना चाहिये ॥१२३३॥

यह कहने के लिये तो प्रति देह स्थित नाडी है, किन्तु यह वास्तविकता नहीं है । यह विश्वव्यापिनी देवी शक्ति है । इसके द्वारा समग्र अध्वावर्ग ऊर्ध्वग और निम्नग (अधः) दोनों रूपों में ग्रथित है । यहाँ अधः ग्रथित का तात्पर्य अनन्त पर्यन्त है । ऊर्ध्व का तात्पर्य शिव तत्त्वान्त है । अर्थात् अनन्त से लेकर शिवतत्त्व पर्यन्त इसकी व्याप्ति है । सारे अध्वावर्ग का तात्पर्य भी शरीर अध्वा और बाह्य अध्वा दोनों है ।

इस तरह की जानकारी के बाद यह कहा जा सकता है कि, विश्वव्यापक सुषुम्णादि शक्ति की भित्ति पर निर्भर नाद इसके अधःप्रसर मार्ग से अधस्तनस्थ सभी अध्वावर्ग में अधिष्ठित रहता है । पुनः ऊर्ध्व परायण करता हुआ अपने ही आवरण को तोड़कर नादान्त भूमिका में प्रवेश करता है । वहाँ सभी ब्रह्मबिलात्मक शक्तितत्त्व में लीन हो जाता है ।

अतश्च विश्वव्यापकसुषुम्णादिशक्तिभित्तिमाश्रितो नादस्तदधःप्रसरणमार्गेण अधस्तनं सर्वमध्वानमधिष्ठितं मूलभूत ऊर्ध्वप्रसरणेन विभिद्य, नादान्तभूमिमारुह्य, ब्रह्मबिलात्मनि शक्तितत्त्वे लीयत इत्याह–

नाड्याधारस्तु नादो वै भित्त्वा सर्वमिदं जगत् ।।१२३४।।
अधःशक्त्या विनिर्गत्य यावद्ब्रह्माणमूर्ध्वतः ।
नाड्या ब्रह्मबिले लीनस्त्वव्यक्तध्वनिरक्षरः ।।१२३५।।
नदते सर्वभूतेषु शिवशक्त्या त्वधिष्ठितः ।

नाडिः सुषुम्णा आधारो यस्य । भित्त्वेत्यत्र करणमध इत्युदयस्थानादुत्थिता क्रमेणारोहन्ती शक्तिः । ऊर्ध्वत इत्यूर्ध्वशक्त्या पूर्वोक्तप्रयोगतः स्पष्टीभूतया, ब्रह्मबिलान्तं निर्गत्य तत्रैव तया नाड्या सह लीनः श्लिष्टो भवति । सापि हि नाडी तदन्तेति तत्रैव श्लिष्टा शक्तिद्वययोगाच्च नादस्यानच्कस्य द्विकुब्जरूपत्वात् । स च नादः–

जहाँ तक नाद का प्रश्न है, इसे नाड्याधार कहते हैं । नाडियों का आधार नाद कैसे है, यह विचारणीय प्रश्न है । इस रूप में सारे जगत् का भेदन करता है ।।१२३४।।

अधःशक्ति के द्वारा अधः की ओर प्रव्रजण करता हुआ यह ब्रह्मा तक पहुँचता है और ऊर्ध्व की ओर जाता हुआ ब्रह्मबिल में विलीन होकर अव्यक्त अक्षर ध्वनि का रूप ग्रहण कर विराजमान हो जाता है ।।१२३५।।

उस समय यह समस्त प्राणियों में अव्यक्त नाद के रूप में नदन करता है । इसका सर्वाधिक महत्त्व यह होता है कि, यह स्वयं शिव और शक्ति दोनों से अधिष्ठित हो जाता है ।।१२३५।।

नाड्याधार– नाडी सुषुम्णा ही आधार है जिसकी, उसे ही नाड्याधार कहते हैं । नाड्याधार नाद को कहते हैं ।

भित्वा– इसमें करण अधःशब्द है । अधःभेदन कर उदय स्थान से उदित होकर क्रमशः आरोहण करने वाली शक्ति ।

ऊर्ध्वतः– ऊर्ध्वशक्ति के द्वारा ब्रह्मबिल पर्यन्त जाकर वहीं इस नाडी के सहित लीन हो जाती है । लीन होने का तात्पर्य उसी से श्लिष्ट हो जाना होता है । श्लिष्ट होकर दो शक्तियों के योग से नाद अव्यक्त हो जाता है । यह अव्यक्त होना अनच्क हो जाना है; क्योंकि उस समय वह द्विकुब्ज हो जाता है । यह द्विकुब्जता दो शक्तियों के योग के कारण होती है । कहा जाता है कि,

'नादाख्यं यत्परं बीजं सर्वभूतेष्ववस्थितम्' ।
इत्याम्नायान्तरोक्तनीत्या सर्वभूतेष्वव्यक्तध्वनिरूपः, अत एव अक्षरः अविचल-त्स्वरूपो नदन् वक्ष्यमाणघोषादिपरामर्शमयत्वेन स्थितः । यद्यपि ब्रह्मबिललीन इत्युक्तस्तथापि लयोऽस्य सूक्ष्मतररूपेण शक्तिस्फुरत्तात्मना अवस्थानमत एव शिवशक्त्या त्वधिष्ठित इत्युक्तम्, न त्वत्यन्तं नाश इत्यक्षर इत्युचितैवोक्तिः ।

यत एवंविधा नादस्य व्याप्तिरतः–

एवं ज्ञात्वा वरारोहे शोधयेत्तं शिवाध्वरे ।।१२३६।।
ततो ब्रह्मबिलं ज्ञेयं रुद्रकोट्यर्बुदान्वितम् ।
तत्र ब्रह्मा परो ज्ञेयः शशाङ्कशतसप्रभः ।।१२३७।।

'नाद परम बीज है और सभी प्राणियों में अवस्थित है' । इसी आधार पर सभी प्राणियों में अव्यक्त रूप से अवस्थित है तथा अविचलद्रूप से नदन् करता हुआ स्थित है ।

यद्यपि इसे ब्रह्मबिल में लीन कहा गया है, फिर भी इसका लय सूक्ष्मतर शक्ति की स्फुरत्ता के साथ ही इसका अस्तित्व वहाँ बना रहता है । अर्थात् ब्रह्मबिल में भी स्फुरत्ता से युक्त नाद अक्षर रूप में रहता ही है । इसीलिये शिव-शक्ति से अधिष्ठित होने की बात भी कही गयी है । यहाँ लय का अर्थ नाश नहीं लेना चाहिये । अक्षरता तभी चरितार्थ हो सकती है ।।१२३४-१२३५।।

भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ! उक्त प्रत्यवमर्श के आधार पर नाद को इसके तात्त्विक रूप को और इसके महत्त्व को जानकर शिवाधार में अर्थात् दीक्षा काल में इसका शोधन करना चाहिये । इसके शोधन से शाक्त का प्रस्फुरण हो जाता है ।।१२३६।।

इसके ऊपर ब्रह्मबिल का आवरण आता है । इसमें करोड़ों अरब रुद्रों का अन्वय है । यह भी आन्तरवत् बाह्य का आश्रय रूप है । यद्यपि ३.५० करोड़ मन्त्रों की संख्या यहाँ निर्धारित है, फिर भी इनके असंख्य परिवार है । अतः सूक्ष्म रूप में उनकी अवस्थिति भी यहाँ मान्य है । इसीलिये कोट्यर्बुद संख्या की बात श्लोक १२३७ में कही गयी है ।

यहाँ ब्रह्मा भी परभाव में अवस्थित हैं । इसका तात्पर्य यह है कि, प्रागुक्त ब्रह्माण्डगत स्थूल तथा बुद्धितत्त्वगत सूक्ष्म रूप से भी उत्कृष्ट ब्रह्मा का भाव है । ये सभी शताधिक शशाङ्कों की शोभा के समान शोभा से शोभाय-मान हैं ।।१२३७।।

दशबाहुस्त्रिनेत्रश्च पञ्चवक्त्रेन्दुशेखरः ।
त्रिशूलपाणिर्भगवाञ्जटामुकुटमण्डितः ।।१२३८।।

ब्रह्मबिलं नाम आवरणमन्तरिव बहिर्भुवनाश्रयत्वेनापि स्थितम् । यद्यपि सार्धास्तिस्त्रः कोट्यो मन्त्राणामुक्तास्तथापि तत्परिवारस्य असङ्ख्यत्वादत्रापि च तेषां सूक्ष्मतमेन रूपेण अवस्थिततत्वादरुद्रकोट्यर्बुदान्वितमित्युक्तम् । पर इति प्रागुक्ताद् ब्रह्माण्डगतात्स्थूलाद्बुद्धितत्त्वगताच्च सूक्ष्मादुत्कृष्टः, अत एव शाक्तत्वादयं सितो दशबाह्वादिरूपश्च ।।१२३८।।

किञ्च–

ब्रह्माणी तु परा शक्तिर्या सा मोक्षपथे स्थिता ।
द्वारं या मोक्षमार्गस्य रोधयित्वा व्यवस्थिता ।।१२३९।।
मोक्षमार्गप्रदात्री च ब्रह्मोत्सङ्गे च संस्थिता ।

परेत्यर्थात् । मोक्षपथे–

'...............शैवी मुखमिहोच्यते' । (वि०भै० २०)

इति स्थित्या ऊर्ध्वोन्मुखशक्तिमार्गे । अतश्च अज्ञानिनः प्रति तदेव शक्तिपथात्मकं मोक्षद्वारमीश्वरेच्छया रुन्धाना स्थिता, ज्ञानिनः प्रति मोक्षमार्गं प्रददाति तच्छीला ।

ये भी दशबाहु हैं, त्रिनेत्र हैं, पञ्चवक्त्र हैं, चन्द्रशेखर हैं, त्रिशूलपाणि हैं और जटामुकुट से मण्डित भगवान् ब्रह्मा हैं ।।१२३८।।

यहाँ भी परा अर्थात् स्थूल सूक्ष्म रूपों से उत्कृष्ट रूप में देवी ब्रह्माणी विद्यमान हैं । यह पराशक्ति मोक्ष के पथ में ही विद्यमान है । ब्रह्मबिल का छिद्र तो बहुत छोटा है । उसमें प्रवेश की सबको अर्थात् अनधिकारियों को मनाही है । यह देवी उसका रोधन कर वहाँ अवस्थित है । मोक्षपथ शैवीमुख होता है । इसलिये ऊर्ध्वोन्मुख शक्ति मार्ग में प्रवेश कठिन है ।

अज्ञानियों के लिये तो असम्भव है । उसी मोक्षमार्ग को जो शक्तिपथात्मक भी माना जाता है, उसका रोधन कर वह वहाँ व्यवस्थित है । ज्ञानियों के लिये मोक्षमार्ग प्रकाशपथ का काम करता है । देवी ब्रह्माणी उनका वहाँ स्वागत भी रचाती है, इसीलिये उसे मोक्षमार्गप्रदात्री भी मानते हैं ।।१२३९।।

चूँकि देवी ब्रह्माणी मोक्षमार्ग प्रदात्री है और उसका रोधन भी करती है । अतः उस बिल के अवरोध का भेदन करने के लिये मन्त्रोच्चार करना पड़ता है । मन्त्रोच्चार से ही वह जान जाती है कि, यह साधक है और

यतो ब्रह्माणी एवंविधा, अतः प्रोक्तमन्त्रोच्चारक्रमेण–

तां भित्त्वात्र वरारोहे गन्तव्यमूर्ध्वतः प्रिये ।।१२४०।।

अत्रेति शक्तितत्त्वे यदूर्ध्वं शक्तिव्यापिनीसमनाधाम, तत्रेत्यर्थः ।।१२४०।।

अथ–

अत ऊर्ध्वं स्थिता शक्तिः प्रसुप्तभुजगाकृतिः ।
आधारो भुवनानां सा तां प्रवक्ष्यामि सुव्रते ।।१२४१।।

शक्तिरिति शक्तितत्त्वगतशक्त्यावरणम् । सा च प्रसुप्तभुजगस्य इव आकृतिर्यस्या इत्यनेन ब्रह्मबिलान्तमशेषमान्तरमुन्मिषितरूपत्वाद्विषमूर्छितमिव कृत्वा निःस्पन्दरूपकुण्डलाकारतया स्थिता । सा च आन्तरेण क्रमेण **ब्रह्मरन्ध्रोपरि त्वग्भूमिकां निविष्टा** । आधार इयमेव अध ऊर्ध्वं च व्याप्य विश्वं धारयन्ती आधारशक्तिरित्यर्थः । ता प्रवक्ष्यामीति तत्रस्थानि भुवनानि अधिष्ठातृदेवताद्वारेण वच्मीत्यर्थः ।।१२४१।।

तत्र–

सूक्ष्मा चैव सुसूक्ष्मा च तथा चान्यामृतामिता ।

शक्तिभूमेः सूक्ष्मत्वाह्लादकत्वापरिच्छिन्नत्वयोगात्तद्देवतानां तादृश्येव नामानि ।

ज्ञानवान् है । उसी के लिये यह विधान है कि, उसे ऊर्ध्व की ओर गन्तव्यमेव अर्थात् जाना ही चाहिये । यह ऊर्ध्व दिशा यह शक्ति, व्यापिनी और समना रूप ही है ।।१२४०।।

इसके ऊपर प्रसुप्त सर्प की आकृति वाली भगवती शक्ति अवस्थित है । यह समस्त भुवनों की आधार है । इसके विषय में और बताने जा रहा हूँ । शक्ति है, इसका तात्पर्य शक्तितत्त्वगत आवरण वहाँ है । ब्रह्मबिल तक अशेष आन्तर तत्त्वों को उन्मिषित करने से वे विषमूर्च्छित से हो गये हैं । उन्हें ऐसा करके स्वयं भी निःस्पन्द कुण्डली के आकार में स्वयं कुण्डली मारकर अवस्थित हो गयी है ।

आन्तर क्रम में ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर त्वचा की परत डाली गयी है । यही विश्वाधार है अर्थात् अधः एवम् ऊर्ध्व व्याप्त होकर विश्व को धारण करती है ।।१२४१।।

शक्ति भूमि की सूक्ष्मता के कारण वहाँ की मुख्य शक्ति का नाम 'सूक्ष्मा' है । इससे भी सूक्ष्म होने का कारण 'सुसूक्ष्मा' दूसरी शक्ति है । तीसरी आह्लादिका है ।

एतासां च–

व्यापिनी मध्यतो ज्ञेया

एता एव तु–

शेषाः पूर्वादितः क्रमात् ।।१२४२।।

सर्वाश्च एताः–

पञ्चवक्त्रास्त्रिनेत्राश्च सुतेजस्का महाबलाः ।

तदित्थम्–अत्र च सौषुम्णावरणे सुषुम्णा, तदीश्वरः, इडापिङ्गले चतस्रो देवताः, ब्रह्मबिलावरणे ब्रह्मा ब्रह्माणीति द्वे, शक्त्यावरणे सूक्ष्मादिदेवतापञ्चकमित्येकादश शक्तितत्त्वे देवताः ।

शक्तितत्त्वं समाख्यातं शिवतत्त्वं शृणु प्रिये ।।१२४३।।

यच्च प्रागस्फुटेदन्ताहन्तासामानाधिकरण्याभासात्सदाशिवतत्त्वं ज्ञानशक्तिप्रधानमुक्तम्, तत् तदासूत्रकेच्छाशक्तिप्रधानं शक्तितत्त्वं विना न घटते । नहि किञ्चिदुच्छूनतारूपान्तरासूत्रणां विना कस्याप्युदय इति सदाशिवतत्त्वस्य भित्तिभूतं शक्तितत्त्वमुक्तम् । तदपि शक्तिरूपत्वात्स्वाश्रयमपेक्षत इति इयतः शक्तितत्त्वान्तस्य विश्वस्य यदाश्रयस्तच्छिवतत्त्वमुक्तम् । तच्च शक्त्यन्ताध्वोत्तीर्णम्, तदारोहक्रमेणैव प्राप्यमित्थं चोपलक्ष्यतां नातिक्रामतीति तत्रापि अतिसुसूक्ष्मतया भुवनस्थितिं वक्तुमाह–

अतः उसका नाम 'अमृता' और चौथी अपरिच्छिन्न रूपा है । अतः 'अमिता' नामिका है । इनके मध्य में रहने वाली शक्ति का नाम व्यापिनी है और शेष पूर्वादि दिशाओं में क्रमपूर्वक उल्लसित हैं ।।१२४२।।

ये सभी पञ्चवक्त्रा, त्रिनेत्रा, तेजस्विनी और महाबलवती शक्तियाँ हैं ।

इस प्रकार शक्तितत्त्व का वर्णन किया गया है । इसमें सौषुम्न आवरण में सुषुम्ना, सुषुम्णेश, इडा और पिङ्गला ये चार देवतातत्त्व हैं । ब्रह्मबिल के आवरण में ब्रह्मा, ब्रह्माणी दो, शक्त्यावरण में सूक्ष्मा, सुसूक्ष्मा, व्यापिनी, अमृता और अमिता ये पाँच शक्तियाँ कुल मिलाकर इसमें ग्यारह देवता समुल्लसित रहते हैं । इसी के बाद शिवतत्त्व आता है ।।१२४३।।

पहले स्फुट इदन्ताहन्ता सामानाधिकरण्य के आभास से सदाशिव तत्त्व की चर्चा आ चुकी है । यह ज्ञानशक्ति प्रधानतत्त्व माना जाता है । फिर भी यह निश्चय है कि, ज्ञान का आसूत्रण इच्छा शक्ति से ही होता है । अतः इच्छा शक्ति प्रधान शक्तितत्त्व के विना समानाधिकरण्याभास घटित नहीं हो सकता ।

पुरश्रेष्ठैरनेकैस्तु समन्तात्परिवारितम् ।
हेमप्राकाररचितं रत्नमाणिक्यमण्डितम् ।।१२४४।।
अशेषभोगसम्पन्नं सर्वकामगुणोदयम् ।

किञ्च–

भुवनानि प्रवक्ष्यामि तत्रैव संस्थितानि तु ।।१२४५।।

धाराधिरूढे अत्रापि शिवतत्त्वे हेमप्राकारादिव्यवस्थेत्यहो बत अख्यातेर्महिमा । एवं च अभिदधदित्यत्पर्यन्तातिसुसूक्ष्मस्थित्या पृथिव्यादीनां व्याप्तिरिति चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियाख्यमेव शक्तिपञ्चकं गुणप्रधानताद्याभासनवैचित्र्येण सप्तपञ्चकतत्त्वाभासरूपतया यथोत्तरमाश्यानीभावप्रकर्षाद्भूतपञ्चकान्तेन रूपेण स्फुरति । भूतपञ्चकमपि यथोर्ध्वं सूक्ष्मसूक्ष्मतराद्याभासवैचित्र्येण प्रोक्तशक्तिपञ्चकात्मकेन गलिताश्यानीभावात्मना पूर्णेन रूपेण विकसतीति पञ्चशक्तिसामरस्यमयं परमशिवतत्त्वमेव इत्थम्–

'स्थूलसूक्ष्मस्वरूपेण तदेकं संव्यवस्थितम्' । (४/२९५)

इत्युक्तयुक्त्या विश्वात्मना अवस्थितम् । अतस्तत्र तत्र पदे शिवरूपतया विश्वावभासवत्त्वेऽपि तथानवभासात्मकाज्ञानबन्धविनिवर्तनं दीक्षाज्ञानक्रमेण क्रियत इति शिक्षयति परमेश्वरः । सर्वकामगुणोदयमिति सर्वेषामत्युत्तमभोगरूपाणां कामानां गुणानां च सर्वज्ञत्वादीनामुदयो यत्र यतश्चेति योज्यम् ॥१२४५॥

किसी का उदय तब तक नहीं हो सकता, जब तक कुछ उच्छूनता रूपान्तर का आसूत्रण न हो । इसलिये यह कहा जा सकता है कि, सदाशिव तत्त्व का भित्ति रूप ही शक्तितत्त्व है ।

यह भी निश्चित है कि, शक्तितत्त्व कोई न कोई अपना आश्रय चाहता है । विना आश्रय के शक्ति का कोई स्वरूप नहीं बन सकता । इस आधार पर कहा जा सकता है कि, इतने प्रपञ्च रूप शक्ति तत्त्वान्त विश्व का आश्रय एक मात्र शिवतत्त्व ही है ।

शिव शक्त्यन्त अध्वावर्ग से उत्तीर्ण तत्त्व है । उसे आरोह क्रम से ही इस महत्तत्त्व की उपलब्धि की जा सकती है । इस उपलभ्यता का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता । फिर भी इसी में अवस्थित और अत्यन्त सूक्ष्म रूप से अवस्थित भुवन स्थिति का वर्णन अपेक्षित है । उसी शिवतत्त्वगत भुवन स्थिति का वर्णन यहाँ किया जा रहा है–

शिवतत्त्व अनेकानेक पुरश्रेष्ठों से सब ओर से समावृत है । हेम प्राकार से मण्डित ये पुर मणियों और माणिक्यों की अगणित प्रकीर्णता से रमणीय हैं । अर्थात् मणिमाणिक्यमयी वह पुरी है ॥१२४४॥

तानि च अधिष्ठातृमुखेन आह–

व्यापकं व्योमरूपं च अनन्तानाथनाश्रितम् ।

कारणानां पञ्चकं च शिवतत्त्वे व्यवस्थितम् ।।१२४६।।

अनन्तेति त्रयस्य समाहारः ॥१२४६॥

किञ्च–

तत्र पद्मं सुविस्तीर्णमनन्तानन्तसम्भवम् ।

तस्य पद्मस्य मध्यस्थो देवश्चायमनाश्रितः ।।१२४७।।

सुविस्तीर्ण प्रोक्तसर्वपद्मापेक्षया । समनन्तरप्रोक्तानन्तादित्येतदावरणात्प्रभृति अनन्तस्य अशेषविश्वस्य अनन्तमध्यानन्तान्तस्य सम्भवो यतः । अत एव प्रागनन्तासनमित्यनन्ताद्यनन्तमध्यानन्तान्तमासनमनन्तासनमित्यस्माभिर्व्याकारीति युक्तमुत्पश्यामः । देवो द्योतनादिरूपः, न किञ्चिद्भुवनाध्ववर्ति समाश्रितोऽपि तु सर्वैर्भुवनेशैराश्रितः । स च–

पञ्चवक्त्रधरः शान्तः सर्वज्ञः परमेश्वरः ।

दशबाहुर्महादीप्तः सृष्टिसंहारकारकः ।।१२४८।।

सर्वानुग्रहकर्ता च प्रणतार्तिविनाशनः ।

भुक्तिमुक्तिप्रदाता च सूर्यकोट्यर्बुदप्रभः ।।१२४९।।

सम्पूर्ण प्रकार के भोगों से सम्पन्न, सभी सकाम गुणों से उत्कर्ष पूर्ण भुवन वहाँ अवस्थित हैं । मैं उनका कथन करने जा रहा हूँ ॥१२४५॥

अधिष्ठाता के नाम पर भुवनों के नाम नियत हैं । वे ये हैं–

१.व्यापक, २.व्योमरूप, ३.अनन्त, ४.नाथ, ५.अनाश्रित ये कारण–पञ्चक रूप शिवतत्त्व में व्यवस्थित हैं ॥१२४६॥

वहाँ अनन्तानन्त सम्भव एक महापद्म है । बड़ा ही विस्तीर्ण पद्म है । उसी सुविस्तीर्ण पद्मासन पर यह अनाश्रित परमेश्वर देव मध्य में शोभायमान रहते हैं । इस शिवावरण से अनन्त अर्थात् शेष विश्व का जो आदि, मध्य और अवसानान्त विश्व विस्तारमय प्रपञ्च है, इसका आदि कारण है । इस आसन पर विद्योतमान देव अनाश्रित रूप हैं । भुवनाध्ववर्त्ति किसी पदार्थ पर यद्यपि आश्रित नहीं हैं, फिर भी सभी भुवनेश्वरों द्वारा आश्रय रूप में स्वीकृत हैं । ऐसे भगवान् शिव वहाँ विराजमान हैं ॥१२४७॥

पञ्चवक्त्रधर, शान्त, सर्वज्ञ रूप ये परमेश्वर शिव दशबाहु, दीप्तिमन्त और सृष्टि, स्थिति और संहार के आदि कर्त्ता हैं ॥१२४८॥

स्फुरन्मुकुटमाणिक्यः समन्तादुपशोभितः ।
दिव्याम्बरधरो देवो दिव्यगन्धानुलेपनः ।।१२५०।।
पद्मासनोन्नतोरस्कः शशाङ्ककृतशेखरः ।
आबद्धमणिपर्यङ्कश्चामरोत्क्षेपवीजितः ।।१२५१।।
रुद्रकोट्यर्बुदानीकैः समन्तादुपशोभितः ।

शान्त इति शक्त्यावरणपर्यन्तगतस्य भेदसंस्कारस्यापि प्रशमात् । पञ्च-वक्त्रादित्वं प्राग्वत् । सृष्टिसंहारौ स्थितिविलयावप्युपलक्षयतः । सर्वेति यस्य यस्य अनुग्रह आयाति, तत एव प्रणतार्तिविनाशन इति । एतत्प्राग्वत्साधकाभि-प्रायेण । एतदेव भुक्तिमुक्तीत्युक्त्या व्यक्तीकृतम् । उन्नतोरस्को महोत्साहः ।

किञ्चात्र–

व्यापिनी व्योमरूपा चानन्तानाथा त्वनाश्रिता ।।१२५२।।

सब अनुग्राह्यों के ऊपर अनुग्रह करने वाले, प्रणत अर्थात् विनम्रभाव से स्वात्म का समर्पण करने वाले, भक्त की पीड़ा का हरण करने वाले, भुक्ति और मुक्ति दोनों को प्रदान करने वाले अरबों सूर्यों की शोभा से परम शोभायमान परमेश्वर वहीं रहते हैं ।

मुकुटमाणिक्यमण्डित, चारों ओर से उपशोभित, दिव्य अम्बर धारक दिव्य गन्धानुलिप्ताङ्ग भगवान् शिव हैं ॥१२४९-१२५०॥

पद्मासन पर प्रतिष्ठित, उन्नतवक्ष, चन्द्रशेखर मणिपर्यङ्कबद्ध चामर के उत्क्षेप से वीजित, कोटि कोटि अरबों खरबों रुद्रों की सेना या समूह श्रेणी से शरण्य उपशोभित परमात्मा शिव उसी महापद्मासन पर बैठ विश्व प्रसार का आनन्द लेते हैं ॥१२५१॥

कुछ विशेष शब्द जैसे शान्त आदि के अर्थ–

१.शान्त– शक्त्यावरणपर्यन्त भेदवाद के प्रशमनकारक ।

२–सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह के आदिकर्त्ता ।

३.प्रणतार्त्ति– जिस जिस पर अनुग्रह, उनकी पीड़ा का हरण ।

४–बुभुक्षु को भुक्ति और मुमुक्षु को मुक्तिप्रद ।

५–उन्नतोरस्क महोत्साह सम्पन्न आदि शब्दार्थ हैं ॥१२४८-१२५१॥

भगवान् शिव कारणरूप कारयित्री शक्तियों से भी समन्वित हैं । वे– १.व्यापिनी, २.व्योमरूपा, ३.अनन्ता, ४.अनाथा, इन पञ्चवक्त्रा, महावीर्या,

पञ्चवक्त्रा महावीर्या दशबाह्विन्दुशेखराः ।

त्रिनेत्राः शूलहस्ताश्च कारणैश्च समन्विताः ।।१२५३।।

पूर्वाद्युत्तरपर्यन्ता एताश्चैव व्यवस्थिताः ।

कारणैरिति एतैरेव व्यापिनीप्रभृतिभिः सम्यगन्वितास्तदभिन्ना इत्यर्थः । एता इत्यनाथान्ताश्चतस्रः ।

पञ्चम्याः स्थितिमाह–

अनाश्रितो मध्यगस्तु संस्थितः प्रभुरव्ययः ।।१२५४।।

अनाश्रितकला देवी तस्योत्सङ्गे च संस्थिता ।

एवमाचक्षाणस्य अयमाशयः–यच्छक्तिसम्बन्धादेव सर्वे शक्तिमन्तस्तत्तत्स्वकार्यं सम्पादयन्ति, अतश्च परमशिवपदमपि प्रस्फुरच्छक्तिस्फाररसमेव इह उपेयम्, न तु शान्ताशेषशक्तिकम् । यस्तु शान्तव्यपदेशोऽत्र, स भेदप्रशमादिति ।

उपसंहरति–

एवं वै शिवतत्त्वं तु कथितं तव सुन्दरि ।।१२५५।।

तदेतत्–

शोधयित्वा ततश्चोर्ध्वं शक्तिश्चैव परा स्मृता ।

दशबाहु वाली, इन्दुशेखरा, त्रिनेत्रा, शूलहस्ता, सभी कारणों अर्थात् कारयित्री शक्तियों से समन्वित हैं । ये सभी पूरब, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में अवस्थित हैं और सभी अनाश्रित शिवरूपा हैं ।।१२५२-१२५३।।

इन चारों के मध्य में अनाश्रित अव्यय भगवान् प्रभु शिव विराजमान हैं । उसी के उत्सङ्ग में अनाश्रित कला देवी अवस्थित हैं । ये मुख्य पाँचवीं कारण शक्ति हैं ।।१२५४।।

सारे शक्तिमन्त शक्ति के सम्बन्ध से ही स्वकार्यों का सम्पादन करते हैं । परमशिव भी प्रस्फुरणशील शक्तियों के स्फार के रस से परिपूर्ण हैं । शक्तियों का आशय कभी भी किसी अवस्था में यहाँ तक कि शान्त्यतीत अवस्था में नहीं होता । इस तरह का महान् शिवपद का यह स्वरूप बड़ा अद्भुत है ।।१२५५।।

इसका शोधन भी दीक्षाकाल में अत्यन्त आवश्यक है । इसके शोधन के उपरान्त ही पराशक्ति जिसे समना कहते हैं, उसमें प्रवेश की यात्रा करनी पड़ती है ।

समना नाम सा ज्ञेया

ततः शिवतत्त्वादूर्ध्वं त्वक्शेषस्थव्यापिनीपदावस्थितानाश्रितभट्टारकापेक्षया तत्पदविश्रान्त्या ज्ञातव्या । एषा च सह मनसा सुसूक्ष्मतमेन संवेदनेन वर्तते, न तु संविदि त्रिभूमिकामाप्तेति कृत्वा समना । यदुक्तं प्राक्–

'समनं क्रमविज्ञान..................'। इति ।

अत ऊर्ध्वं मननव्यापारो नास्तीत्याह–

मनश्चोर्ध्वं न जायते ।।१२५६।।

एषा च समना–

परिपाट्या स्थितानां तु पृथिव्यादिशिवावधौ ।
सर्वेषां कारणानां च कर्तृभूता व्यवस्थिता ।।१२५७।।

सर्वेषामित्यनन्ताद्यनाश्रितान्तानाम् ।।१२५७।।

अतश्च इयम्–

बिभर्त्यण्डान्यनेकानि शिवेन समधिष्ठिता ।

'पृथग्द्वयमसङ्ख्यातमेकमेकं पृथग्द्वयम्' । (२/५०)

इति श्रीमालिनीविजयोक्तनीत्या ब्रह्माण्डप्रकृत्यण्डात्मकमण्डद्वयमसङ्ख्यातं मायाण्ड-शक्त्यण्डद्वयं तु एकैकरूपमिति कृत्वा एषा शक्तिरनेकानि अण्डानि अन्तःकृत्वा स्थितेति तच्छास्त्रप्रक्रियापि अत्र उररीकृतैव ।

शिवतत्त्व से ऊर्ध्व त्वक्शेषस्थ व्यापिनी नहीं, समना पद होता है । उससे नीचे व्यापिनी होती है । इस पद में अनाश्रित भट्टारक की अपेक्षा इसमें विश्रान्ति ही श्रेयस्कर है । समनां मन के साथ संवेदन में प्रवर्त्तित होती है । संवित्तत्त्व में त्रिभूमिका को प्राप्त करने के कारण समना नहीं कही जाती । कहा गया है कि,

'समना एक क्रम विज्ञानमात्र है' । समना के ऊपर मनन का व्यापार नहीं होता । यह कह रहे हैं कि, मन इसके ऊपर नहीं रह पाता ।।१२५६।।

यह समना पृथिवी से शिवपर्यन्त की परम्परा की साधना में संलग्न व्याक्तियों की आराधना की आधार है । यह सभी कारणों की कर्त्ता है । सर्वेषाम् अर्थात् अन्तरा अनाश्रित आदि पदों की भी कारयित्री शक्ति है ।।१२५७।।

यह शिव के साथ समधिष्ठित होकर अनेक अण्डों का भरण करती हैं, धारण करती हैं ।

अण्ड एक प्रकार के आवरण होते हैं । इनमें ही भुवन रूप कार्य सम्पन्न होते हैं । इनमें दो पृथक् हैं और असंख्यात हैं अर्थात् पार्थिवाण्ड और प्रकृत्यण्ड

शक्तित्वादेव चैषा शिवेन सम्यगभेदव्याप्त्या अधिष्ठितेति यदुक्तम्, तत्स्फुटयति भाविपटलार्थैकीकारयुक्त्या–

तत्रारूढस्तु कुरुते शिवः परमकारणम् ।।१२५८।।
सृष्टिस्थितिसमाहारं तिरोभावमनुग्रहम् ।

आरूढ इत्यशेषविश्वभावासूत्रणेन भित्तिकल्पमननमात्रात्मकैतच्छक्तिभूमिकां स्वामुल्लास्येत्यर्थः । परमकारणमिति परमशिवः ।

स हि–

हेतुकर्ता महेशानः सर्वकारणकारणम् ।।१२५९।।

सर्वेषां ब्रह्माद्यनाश्रितान्तानां पृथिव्यादिबीजान्तानामपि तेनैव तत्तद्भूमिका-ग्रहणात् तथावभासितानां कारणानां कारणं स्वातन्त्र्यात्स्वभित्तावुल्लासक इत्यर्थः । तथा महानीश्वरस्तेषां तत्तदुचितविभवप्रदत्वेन सर्वातिशायी । कर्तेति स्वतन्त्रः । हेतुरिति तेषामेव स्वे स्वे कर्मणि योजनप्रवर्तकं निमित्तम् ॥१२५९॥

किञ्च–

समना नाम या शक्तिः सा तस्य करणं स्मृतम् ।

स्वशक्त्यैव विश्वमाभासयतीत्यर्थः । यतः–

तयाधितिष्ठेद्देवेशो ह्यधःकारणपञ्चकम् ।।१२६०।।

ये दोनों असंख्यात हैं, अर्थात् इनके विस्तार का अन्त नहीं । इन दोनों के अतिरिक्त मायाण्ड और शक्त्यण्ड ये दोनों एकैकरूप होते हुए भी अनेक अण्डों को अपने वश में अर्थात् अन्तःकृत्य रूप से अवस्थित रखते है और शिवेन अधिष्ठित के अनुसार शिव से अधिष्ठित रहकर अनेक अण्डों को शक्ति ही धारण भी करती है । शक्ति होने के कारण ही शक्तिमान के साथ अभेद व्याप्ति से अधिष्ठित भी रहती है । मनात्मिका भित्तिरूपा शक्ति को उल्लसित कर वहीं आरूढ रह कर परम कारण शिव; सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह के कार्य सम्पन्न करते हैं ॥१२५८॥

सारे शास्त्र यह घोषणा करते ही हैं कि, यही हेतुकर्त्ता महामहेश्वर सर्व कारणकारक हैं । ब्रह्मा से अनाश्रित पर्यन्त कारणों के पृथ्वी से बीजान्तप्रभृति कारणों का और इन्हीं कारणों में अवभासित कारणों का कारण स्वान्तन्त्र्य स्वभाव के कारण स्वात्मभित्ति में सबका उल्लास करते हैं । इसीलिये ये शक्तिमन्त ही कारणों के भी कारण हैं ॥१२५९॥

समना नाम की इनकी जो शक्ति है, वही इस महेश्वर की करण हैं; क्योंकि यही अपनी शक्ति से विश्व को आभासित करती है । इसी के कारण अर्थात् इसी

तया स्वमननशक्त्या अनाश्रितादिव्याप्यन्तं सदाशिवाद्यशेषकारणत्वात्कारण-पञ्चकमधितिष्ठेत् तदनुप्राणनतया स्वकार्यसामर्थ्ययुक्तं कुर्यात् । तथा च शिव एव पररूपोऽनाश्रितादिरूपतां गृह्णाति । तथा तदीया परा शक्तिरप्यनाश्रितादिशक्ति-रूपतया स्फुरति ॥१२६०॥

तत्र तत्कारणपञ्चकमध्यात्प्रधानभूतस्य–

अनाश्रितस्य देवस्य कारणं सेयमाश्रिता ।

परमेश्वरेण स्वशक्त्या आभास्यमानः अनाश्रितभट्टारकादिः परिग्रहवर्ति-स्वस्वशक्तिसहित एव आभास्यते । अतस्ता एव देव्यः अनाश्रितादीनां स्वकार्य-कारणतां भजन्ते ।

तच्च एतच्छक्तियुक्तः–

स वै प्रेरयते भूयस्त्वनाथं तु जगत्पतिम् ।।१२६१।।

भूय इत्यस्येदमाकूतं यत्परमशिव एव गृहीतानाश्रितभूमिको द्वितीयामिमां प्रेरणां करोति ॥१२६१॥

इत्थमेव च–

अनाथश्चाप्यनन्तेशमनन्तो व्योमरूपिणम् ।
व्योमव्यापी महादेवो व्यापिनं बोधयेत्प्रभुम् ।।१२६२।।

एते च प्रोक्तस्वशक्तिसहिता एव प्रेरकाः प्रेर्याश्च ॥१२६२॥

किञ्च–

व्यापिनी करणं तस्य कर्ता वै व्याप्यसौ प्रभुः ।

तत्त्व के द्वारा अनाश्रित से लेकर व्याप्यान्त सदाशिव आदि सभी के कारण रूप होने के कारण कारणपञ्चक में अधिष्ठित होते हैं । अर्थात् शिव ही अनाश्रित रूपता भी ग्रहण करते हैं । उसी की पराशक्ति अनाश्रित आदि रूपों में स्फुरित भी होती हैं ॥१२६०॥

उस कारणपञ्चक में प्रधानभूत कारणरूप अनाश्रित भट्टारक परमेश्वर भी स्वात्मशक्ति से अपनी शक्ति के साथ ही आभासित होते हैं । अतः ये देवियों ही अनाश्रितादि कारणों की उनकी कार्यकारणता को नियमित करती हैं । अर्थात् अनाश्रित देव की कारण यही देवी है । इस प्रकार शक्ति से युक्त वही देव 'अनाथ' नामक जगदीश्वर को भी प्रेरित करते हैं ॥१२६१॥

अनाथ (१२४६) भी पूर्ववत् अनन्तेश को, अनन्तेश व्योमेश को व्योम-केश व्योमरूप व्यापिनं अर्थात् 'व्यापक' शिव को प्रेरित करते हैं ॥१२६२॥

कर्तृत्वमेतदीयं कर्मप्रदर्शनेन अभिव्यनक्ति–

कर्मरूपा स्थिता माया यदधः शक्तिकुण्डली ।।१२६३।।

पूर्वोक्तकुण्डलाकारतया अशेषविश्वगर्भा शक्तिः शक्तिकुण्डलिनी, मायेत्य-शेषासूत्रणादेतदन्तोत्थापनभित्तिभूतत्वान्महामायारूपा, कुण्डलीति च्छान्दसत्वात्, यद् यस्माद् एतदीयक्रियाशक्तिव्यापकत्वात् कर्मरूपा स्थिता तेषां भगवानेतदा-भासकत्वेन कर्ता सन् कर्मीभूतः । यथोक्तं प्रत्यभिज्ञायाम्–

आत्मानमत एवायं ज्ञेयीकुर्यात्पृथक्स्थिति ।

ज्ञेयं न तु तदौन्मुख्यात्खण्ड्येतास्य स्वतन्त्रता' ॥ इति । (१/५/१५)

तथा–

'कर्तृकर्मत्वतत्त्वैव कार्यकारणता ततः' । इति । (२/४/२)

स्पन्देऽपि–

'अवस्थायुगलं चात्र कार्यकर्तृत्वशब्दितम्' । (१/१४)

इति ॥१२६३॥

इसकी करणरूपा व्यापिनी शक्ति है । व्यापी ही इसके कर्त्ता हैं । इनका कर्त्तृत्व इनके कर्म के प्रदर्शन से ही ज्ञात होता है । कर्मरूप में ही माया स्थित है । माया के अधोभाग में ही शक्ति कुण्डली स्थित है ।

शक्ति कुण्डलिनी कुण्डलाकार रूप में ही अपने गर्भ में समस्त विश्व को धारण करती है । जहाँ तक माया का प्रश्न है, यह अशेष विश्व का आसूत्रण करती है । यह विश्वात्मकता के उत्थापन की भित्ति है । इसी आधार पर इसे महामाया भी कहते हैं । चूँकि यह क्रियाशक्ति की व्यापकता के कारण कर्म रूपा भी है । कर्मों के आभासक स्वयं भगवान् हैं । इसका तात्पर्य यह है कि, कर्त्ता होते हुए भी कर्मीभूत हो जाते हैं ।

(१/५/१५) प्रत्यभिज्ञा में कहा गया है कि, यह स्वयं स्वात्म को ज्ञेय रूप भी बना लेता है । इस तरह पृथक् स्थिति शील ज्ञेय के होने पर भी वह ज्ञाता के औन्मुख्य में ही विलसित रहता है । परिणामतः उसकी स्वतन्त्रता खण्डित नहीं होती ।

इसी का समर्थन (२/४/२) इस वाक्य से भी हो रहा है कि, 'कर्त्तृकर्म-तत्त्वा ही कार्यकरणता भी है' ।

स्पन्दशास्त्र में भी 'कार्य और कर्त्तृत्व शब्द से जो कुछ भासित हो रहा है, इसे मात्र दो अवस्थाओं का स्वरूप मानना चाहिये ॥१२६३॥

न केवलमसौ महामायात्मा शक्तिस्तस्य कर्मतया स्थिता, यावत् तदन्तर्गतं तदुल्लास्यं च–

नादबिन्द्वात्मकं कार्यम्

एतच्चानन्तरपटले क्रमेण व्यक्तीकरिष्यति । अतश्च अस्माद् व्यापिभट्टारका-त्परमशिवाधिष्ठितात्–

इत्यादिजगदुद्भवः ।

महामायादिभूम्यन्तपरसूक्ष्मस्थूलवाच्यवाचकात्मकाशेषविश्वोद्भवः । एष एव भगवांस्तदाभासात्मना स्फुरतीत्यर्थः ।

यत एवं समनाभूमिमाश्रित्य परमेश्वरः परसूक्ष्मस्थूलरूपं विश्वमाभासयति, अत एव आभास्यमानम्–

यत्सदाशिवपर्यन्तं पार्थिवाद्यं च सुव्रते ।।१२६४।।
तत्सर्वं प्राकृतं ज्ञेयं विनाशोत्पत्तिसंयुतम् ।

सदाशिवः अत्र पररूपः अनाश्रितभट्टारकः । सूक्ष्मदृष्ट्या प्रकृतेर्विश्वकारणा-त्समनात आयातं प्राकृतम्, स्थूलदृष्ट्या तु सदाशिवतत्त्वात्प्रभृति क्षित्यन्ता चतुस्त्रिंशत्सङ्ख्या तत्त्वप्रसृतिः । प्रकृते शक्तितत्त्वात् शिवतत्त्वाभेदभाज आयातीति

यह महामायात्मिका शक्ति परमेश्वर के कर्म रूप से स्थित है, केवल यही नहीं, वहाँ यह भी देखना और समझना चाहिये कि, उसके अन्तर्गत उसके द्वारा क्या क्या उल्लसित हो रहा है, माया के अन्तर्गृह में कौन सी कैसी खिचड़ियाँ पक रही हैं ? ध्यान से सोचने पर यह मानना पड़ता है कि, यह नाद और यह बिन्दु क्या कार्य के अतिरिक्त कुछ अन्य है ? वस्तुतः परमशिवाधिष्ठित व्यापी रूप 'व्यापक' भट्टारक (१२४६) से ही कार्यरूप इस जगत् का उद्भव हुआ है । यह महामाया से क्षितिपर्यन्त परम स्थूल और सूक्ष्म वाच्यवाचक रूप यह उद्भव अपने आप में आश्चर्य को ही उल्लसित करता है ।

इस आभास में आभासनात्मा विश्वेश ही भासित हो रहा है; क्योंकि इसी प्रकार समना पद का आश्रय लेकर परमेश्वर शिव परम स्थूल और सूक्ष्म रूप विश्व का आभासन करता है । इस तरह सारा का सारा आभास्यमान पृथिवीतत्त्व से लेकर सदाशिव पर्यन्त, भगवान् कह रहे हैं कि, देवि ! सुव्रते ! सब कुछ प्राकृत ही है ।।१२६४।।

यह सब प्राकृत है; क्योंकि यह विनाश (संहार) और उत्पत्ति (सृष्टि) का ही ताना बाना है ।

अत्र द्विविधो व्याख्याक्रमः प्रसिद्धः । तत्र आद्य एव ज्यायान् भाविपटले अनाश्रितस्यापि सृष्टिसंहाराघ्राततत्वाभिधानात् । एतच्च विनाशोत्पत्तिमज्ज्ञेयं न पुनरत्र आधारपदे विश्रमितव्यम्, अथ च ज्ञेयं ज्ञेयमानतयैव ज्ञानोपारोह-परज्ञानैकात्म्यापत्तियुक्त्या विलाप्यमित्यर्थः । उत्पत्तिविनाशेति वक्तव्ये विपर्यय-पाठः सृष्टिसंहारपरम्पराया अनादित्वप्रतिपादनपरः ।

एवं समनान्तमध्वानमुक्त्वा पूर्वोपक्रान्तं दीक्षाविधिमेव स्मारयति–

या सा शक्तिः पुरा प्रोक्ता समना त्वध्वमूर्धनि ।।१२६५।।

सदाशिव यहाँ पररूप में अनाश्रित भट्टारक ही हैं । सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह पता चलता है कि, प्रकृति ही विश्व की कारण है । यह समना से ही निर्गत है । अतः प्राकृत है । स्थूल दृष्टि से सदाशिव से लेकर क्षित्यन्त तत्त्वों की संख्या ३४ है । प्रकृति क्या है ? एक तरह से शिवतत्त्वाभेदरूपा शक्ति-तत्त्व ही है । इससे यह विश्व आ रहा है–इस तथ्य को दो तरह से देखा जा सकता है ।

१– अनाश्रित अनाथ व्योमरूप और व्यापक ये सभी केवल सूक्ष्मता के प्रतीक हैं । इनसे प्राकृत रूप से कुछ लेना देना नहीं है ।

२– ये अनाश्रितादि भी विनाशोत्पत्ति रूपी सृष्टि संहार से नियोजित हैं । यहाँ सर्वाधार शिव के परम सूक्ष्म सत्ता के विचार को छोड़कर विश्वात्मक उल्लास की बात सोचने पर यह बात मन में बैठ जाती है कि, जितना भी ज्ञेयतत्त्व है, इसमें ज्ञेयमानता भी है । ज्ञान के उपारोह से एक विलक्षण ज्ञानैक्य दृष्टि का बोध होता है । इसलिये सारी ज्ञेय सत्ता ज्ञान के द्वारा ज्ञाता में अन्तर्निहित कर परम-बोध की स्थिति में बैठना ही श्रेयस्कर है । इसलिये पृथिव्यादि सदाशिवान्त ३४ तत्त्ववाद को शिवशक्त्यात्मक अभेदभाव से भावित कर परमानन्द मकरन्द का पीयूष पान ही श्रेयस्कर है और यही दृष्टि श्रेयस्कर है ।

यहाँ श्लोक में विनाशोत्पत्ति संयुत प्रयोग में यदि उत्पत्ति विनाश पाठ का प्रयोग किया जाय, तो इस विपर्यय का क्या प्रभाव पड़ेगा ? इस पर आचार्य कह रहे हैं कि, सृष्टि संहार के क्रम की परम्परा अनादि क्रम का ही प्रतिपादन करती है । इसमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं है ।

इस तरह श्लोक १२६० में आये समना के प्रकरण का उपसंहार करते हुए कह रहे हैं कि, अर्थात् जो शक्ति समना नाम से कही गयी थी, वह अध्वमूर्धा पर ही विराजमान है ।।१२६५।।

स्फुरत्सूर्यसहस्राभकिरणानन्तभास्वरा ।
ध्यात्वा चैतां समावाह्य स्थापयेत्तु विधानवित् ।।१२६६।।
उपचारं ततः कृत्वा वागीश्यावाहनं तथा ।
स्थापनं पूजनं चैव पशोर्यागं तथैव च ।।१२६७।।
गर्भधारित्वजनने अधिकारं तथैव च ।
योगं भोगं लयं चैव निष्कृतिं तदनन्तरम् ।।१२६८।।
भुवनाधिपहोमं च भुवनाधिपवासिनाम् ।
भुवनानां यथायोगं होमं कृत्वा वरानने ।।१२६९।।
त्रितत्त्वं शोधयेच्चातोऽवयवांश्च यथाक्रमम् ।
विश्लेषपाशच्छेदौ च कृत्वा पूर्णां तु पातयेत् ।।१२७०।।

यह उदयकालीन अरुणोदय के समय प्रथम दृश्यमान सहस्र सूर्यों की सुकुमार आभा से आभान्वित है । अनन्त किरणों से भास्वर है । इसका सर्व-प्रथम ध्यान और तब आवाहन कर स्थापित करें । पुनः पञ्चोपचार से पूजन कर वागीशी का भी आवाहन करें । उसकी स्थापना, पूजा कर साधक शिष्य की दीक्षा पाश का विधान अच्छी तरह सम्पन्न करना चाहिये ॥१२६६-१२६७॥

गर्भाधान, जनन, अधिकार, योग, भोग, लय और निष्कृति के सारे संस्कार और इनके विहित कर्मकाण्ड शिष्य की दीक्षा के सन्दर्भ में श्री सद्गुरुदेव पूरा करावें ॥१२६८॥

इसके बाद भुवनाधिप होम करें । यह भुवनेशों के भुवनों में रहने वाले लोगों के लिये होता है । इसके बाद हवन की प्रक्रिया अपनानी चाहिये । होमा-नन्तर त्रितत्त्व शोधन और अवयवों का शोधन भी अवश्य करें । इसके बाद विश्लेष और पाशों का छेदन करना चाहिये । तब पूर्णपात्र और पूर्णा सम्पात किया जाना चाहिये ।

यहाँ भगवान् भैरव ने दीक्षा के पूरे कर्मकाण्ड का एक चित्र ही रच दिया है । आचार्य श्रीक्षेमराज ने क्रमशः एक एक पर अपनी टिप्पणी भी दी है । इसे इस तरह समझें–

१.श्लोक १२६५– या सा । इसका अर्थ होता है–जो है, सो । किन्तु इन शब्दों की जगह माया का पाठ उत्तम है । इससे साफ हो जाता है कि, माया शक्ति पहले समना के रूप में कही गयी है ।

स्फुरदित्यादिना एतदाह–यथा विश्वमत्र आसूत्रितकल्पं प्रभामात्ररूपमव्यतिरिक्तशक्त्यात्मकमिति । या सेत्यत्र मायेति केचित् पठन्ति । एतामिति शिवतत्त्वाधिष्ठातृशिवभट्टारकात्मिकाम् । आवाहनादिः पूर्वोक्तक्रमात् । उपचारः पूजाः । वागीश्या आवाहनमत्र परस्वरूपायाः । वागीशीस्थापनपूजनानन्तरं शिष्यप्रोक्षण-ताडन-तद्धृत्प्रवेश-तच्चैतन्याकर्ष-तद् ग्रहणादिपूर्वं वागीशीगर्भे तच्चैतन्यस्य योगः । गर्भधारित्वमेतत्पदोचितमहामन्त्रमयतौचित्येन । भुवनानां ये भुवनाधिपाः प्रधानभूतास्तेषां होमं कृत्वा, ये अन्ये तत्प्रधानभुवनापेक्षया भुवनान्तरवासिनस्तत्तत्त्वगतावान्तरभुवननिष्ठा रुद्रास्तेषामपि । यथायोगमिति सङ्क्षिप्तदीक्षायामन्तर्भावनयुक्त्या, अन्यत्र तु पृथग् होमं कृत्वा श्रावणादि कार्यम् । यद्यपि समनान्तर्गतव्यापिनीपदे व्याप्यादिपञ्चकातिरिक्तानि भुवनेशान्तराणि न सन्ति, तथापि अस्य विधेः सर्वशेषत्वादेवमुक्तम् । पश्चादात्मविद्याशिवाख्यं तत्त्वत्रयं शोधयेदिति शारीरवाचिकमानसशुद्ध्यर्थं पूर्वोक्तहोमक्रमेण शुद्धं सम्पादयेत् । एवं हि आचार्यः अस्मिञ्छिवयागे शरीरादिव्यापाराविष्टशुद्धतत्त्वमय एव भवतीति दर्शयति । अवयवां-

---

२.स्फुरत्सूर्य– विश्व जो कुछ भी प्रकाशमात्र ही है । प्रकाश और प्रकाश की शक्ति विमर्श का ही उल्लास यह विश्व है । इसी तात्पर्य को मन में रखकर ये विशेषण दिये गये हैं ।

३.श्लोक १२६६–उपचार– पूजा के उपकरण । वागीशी का आवाहन पर रूप में करना चाहिये । वागीशी आवाहन के बाद शिष्य का प्रोक्षण, ताडन, हृदय प्रवेश, चैतन्याकर्षण, ग्रहण, वागीशीगर्भ में उसकी चैतन्य-योगादि क्रियायें भी आवश्यक हैं ।

४.गर्भधारित्व १२६८– इसके अनुरूप महामन्त्रमयता के औचित्य पर भी विचार करना चाहिये ।

५.श्लोक १२६९– भुवनेशों का होम करना चाहिये । इनसे सम्बन्धित अन्य भुवनों के वासियों के कल्याण के लिये भी हवन करें ।

६.यथायोग– दीक्षा जैसी हो । मानो संक्षिप्त दीक्षा हो, तो अन्तर्भाव युक्ति से इसे सम्पन्न करना चाहिये । अन्यथा पृथक् पृथक् होम और श्रावण प्रक्रिया भी पूरी करनी चाहिये ।

यद्यपि समना के अन्तर्गत व्यापिनी पद पर व्यापक व्योमकेशादि के अतिरिक्त अन्य भुवनेश नहीं होते, तथापि विधि तो विधि है । इसे पूरी तरह सम्पन्न करना चाहिये ।

श्चेति एतत्तत्त्वत्रयान्तर्वर्तित्वात् मायान्तसदाशिवान्तानि तत्त्वान्येव अवयवानेतदन्त-र्भावयुक्त्यैव होमकर्मणा शोधयेत् । यथोक्तं पुरस्तात्–

'आत्मतत्त्वविभागेन धाम्ना वै जुहुयाच्छतम् ।
सशब्दोच्चारयोगेन आत्मतत्त्वे तु होमयेत् ॥
मायातत्त्वावधि ज्ञेयं दैशिकेन शिवाध्वरे ।
विधिवैकल्यकर्मार्थं प्रायश्चित्तविशुद्धये' ॥ इत्यादि । (४/२१२)

अत्र च मध्ये निष्कृत्यनन्तरम्–

'विश्लेषो निष्कृतेर्भोगात्..................'। (४/१२६)

अत्र च पाशच्छेदानन्तरं तद्धोमचैतन्यैकभावनापूर्वं शिवेन पूर्णाहुति: ॥१२७०॥

ततस्तच्चैतन्यस्य उद्धारात्मस्थीकारतत्स्थीकारान् कृत्वा व्याप्यादिभुवनेश्वरा-ह्वान-तत्पूजन-पुर्यष्टकांशार्पण-श्रावणा-विसर्जनादि कृत्वा प्रायश्चित्तहोमस्त्रितत्त्व-युक्त्या कर्तव्य इति । ईदृशं क्रमं लेशत: स्मारयति पूर्वोक्तभावनामन्त्रादिक्रमेण–

७.श्लोक १२७०–त्रितत्त्वशोधन– आत्म, विद्यातत्त्व और तीसरे शिवतत्त्व के शोधन के साथ शारीरिक, वाचिक और मानसिक शुद्धि अपेक्षित है । इसके बाद हवन भी करना चाहिये ।

इस तरह इस शिवयाग में आचार्य और शिष्य दोनों सब प्रकार से अन्त-र्बाह्य रूप से शुद्ध हो जाते हैं । यह निश्चित है ।

८.अवयवाँश्च–१२७०– आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व रूप तत्त्व-त्रय के अन्तर्वर्त्ती मायान्त और सदाशिवान्त तत्त्व ही आवरणरूप हैं । इनका अन्तर्भाव युक्ति से ही होम के द्वारा सम्पादन होना चाहिये ।

लिखा है कि, आत्मतत्त्व विभाग के द्वारा ही धाममन्त्र से सौ अर्थात् १०८ का हवन करना चाहिये । इसमें मन्त्र का सशब्द उच्चारण होना चाहिये और आत्मतत्त्व में हवन कर देना चाहिये ।

दैशिक गुरु शिवयाग के पुरोधा होते हैं । माया तत्त्वावधि तत्त्वों का शोधन अवश्य करें । विधि वैकल्य होने पर अर्थात् कर्म में टूट पड़ जाने पर प्रायश्चित्त हवन भी करना चाहिये ।

मध्य में निष्कृति होम के बाद 'निष्कृति भोग के बाद 'विश्लेष' क्रिया आवश्यक है । इस क्रम में पाशच्छेद के बाद इसका होम भी आवश्यक है । इसमें चैतन्यैक भावना के साथ ही पूर्णाहुति का प्रयोग करना चाहिये ॥१२६५-१२७०॥

इसके बाद चैतन्योद्धार, आत्मस्थीकार आदि करने के बाद व्याप्य आदि भुवनेश्वरों का आवाहन, पूजन, पुर्यष्टकांशार्पण, समय श्रावण विसर्जन आदि

प्रायश्चित्तं ततो हुत्वा कर्तरीमभिमन्त्रयेत् ।

शिखां छित्त्वा समर्प्यैतां शिशुं संस्नापयेद् गुरुः ।।१२७१।।

स्नानाय आदिशेत् । एवमिहापि शिखाच्छेदविधेर्विशेषाचोदनाद् यत् टीकाकारैर्निर्बीजदीक्षाविषयत्वं प्राग्व्याख्यातम्, तदसदेव मन्तव्यम् ॥१२७१॥

अथ–

आचार्यः प्रयतो भूत्वा सकलीकरणादिकम् ।

कृत्वा ।

स्रुचोऽग्रे तु शिखां कृत्वा हुत्वा स्नायादनन्तरम् ।।१२७२।।

ततोऽपि–

सकलीकरणं कृत्वा आचार्यस्तु वरानने ।

शिशोरपि विधिं कृत्वा शिवकुम्भं समर्चयेत् ।।१२७३।।

प्रागवन्मन्त्रन्यासादिरूपम् ।

तथा–

भैरवं मध्यदेशस्थं

यागस्येत्यर्थात् । किञ्च–

भैरवाग्निं समर्चयेत् ।

कार्य सम्पन्न किये जाते हैं । पुनः प्रायश्चित्त होम, चित्तत्त्व युक्ति से करें । इन्हीं क्रमों का एक संक्षिप्त समीक्षण कर रहे हैं ।

प्रायश्चित्त हवन करने के बाद कर्त्तरी का आवाहन करना चाहिये । उसी से शिखा का छेदन करना चाहिये । शिखा कटने के बाद उसे अग्निनारायण को अर्पण कर देना चाहिये । पश्चात् गुरु उसे विधिपूर्वक स्नान करावें । यहाँ टीकाकारों ने निर्बीज दीक्षा विषयक इसे कहा है । आचार्य इसे असत् मानते हैं ॥१२७१॥

इस सन्दर्भ में आचार्य को अध्यवसायपूर्ण कार्यपद्धति अपनानी चाहिये । इस अवसर पर सकलीकरण आदि अवश्य कार्य करके स्रुक् के अग्रभाग पर शिखा को रखकर हवन करें । बाद में स्नान करे ॥१२७२॥

सकलीकरण के बाद आचार्य शिशु (शिष्य) सम्बन्धी सारी विधियों को पूरा करें । इसके बाद शिव कुम्भ की पूजा करें । इसमें मन्त्रन्यासादि कार्य अवश्य पूरा कर लेना चाहिये ॥१२७३॥

यागमण्डप के मध्य देश में भगवान् भैरव की स्थापना की जाती है । उनकी पूजा और उनके नाम से अर्चित भैरवाग्नि की भी पूजा करनी चाहिये ।

आचार्यः पूजयेत् । ततो भगवन्तं विज्ञाप्य, पूर्वोक्तयुक्त्या योजनिकार्थम्-

पूर्णां सम्पूर्य विधिवद्धाममन्त्रमनुस्मरन् ।।१२७४।।
पूर्वोक्तलक्षणेनैव प्रोच्चरेत्तं प्रयत्नतः ।

पूर्वोक्तं लक्षणं योजनिकोक्तसमस्तप्रमेयानुसन्धिपूर्वपूर्णाहुतिप्रयोगरूपम् । तं मन्त्रम् । तदत्र मन्त्रोच्चारावसरे-

हेयाध्वानमधः कुर्वन् रेचयेत्तं वरानने ।।१२७५।।
यावत्सा समना शक्तिः

समनान्तस्य पाशत्वाद्धेयाध्वत्वम् । रेचयेदिति ऊर्ध्वेन इत्यर्थात् ।

अथ उपादेयाध्वप्रवेशप्रमुखं परतत्त्वविश्रान्तिरूपां योजनिकामाह-

तदूर्ध्वे चोन्मना स्मृता ।

मनो मननमात्ररूपमपि तत्र न क्रमते न सम्भवति; अपि तु मन्त्ररूपैव इयं दशेत्यर्थः । अत एव अत्र प्राक्-

'व्यापारं मानसं त्यक्त्वा बोधरूपेण योजयेत् ।
तदा शिवत्वमायाति पशुर्मुक्तो भवार्णवात्' ॥ इत्युक्तम् ॥ (४/४३७)

इस प्रकार पूर्णाहुति सम्पन्न कर विधिवत् धाममन्त्र का अनुस्मरण करना चाहिये ॥१२७४॥

पूर्वोक्त लक्षण अर्थात् योजनिका क्रिया प्रक्रिया में उक्त समस्त प्रमेयों की अनुसन्धिसहित पूर्णाहुति रूप लक्षण ही पूर्वोक्त लक्षण का अर्थ है । ऐसे मन्त्र का प्रयत्नपूर्वक उच्चारण करना चाहिये । इस मन्त्र के उच्चारण के अवसर पर हेय अध्वावर्ग का तिरस्कार करे, अर्थात् परित्याग कर दे । एक तरह से इसका रेचन ही कर देना चाहिये । इसका तात्पर्य यही है कि साधक या याजक द्वारा समना पदाधिष्ठित होने की स्थिति में इसके नीचे के पृथिवी से व्यापिनी पद पर्यन्त समस्त हेय का परित्याग आवश्यक है ॥१२७५॥

यह क्रिया तब तक करनी चाहिये, जब तक समनातत्त्व को पार कर उन्मना में विश्रान्ति न हो जाय । उन्मना उपादेय अध्व प्रवेश का लक्ष्य है । वह परतत्त्व विश्रान्ति की पराकाष्ठा है और यहाँ समना की समाप्ति के बाद ही प्रवेश सम्भव है । उन्मना में मनन मात्र रूप में मन की गति वहाँ नहीं है । उन्मना की दशा तो मन्त्ररूपा ही होती है । इसलिये यहाँ पहले पहुँचने के लिये कुछ करना पड़ता है । जैसे-

१-मानस व्यापार का बिल्कुल परित्याग,

यतश्च अत्र मननं न क्रमते, अत एव–

नात्र कालः कलाश्चारो न तत्त्वं न च देवताः ।।१२७६।।

कालः क्षणादिपरार्धान्तः । कला निवृत्त्यादिशान्त्यतीतान्ताः । चारः प्राणवाहः । तत्त्वं तस्य भाव इति व्युत्पत्त्या तत्तद्भुवनावभासप्रमात्राद्यनुगततत्तत्सामान्याभासरूपम् । देवता ब्रह्माद्यनाश्रितान्ताः ॥१२७६॥

किं तर्हि इदम्–

सुनिर्वाणं परं शुद्धं गुरुवक्त्रं तदुच्यते ।

गुरोः परमशिवस्य वक्त्रं प्राप्त्युपायः । यदुक्तं त्रिशिरोभैरवे–

'गुरोर्गुरुतरा शक्तिः................'। इति ॥

अतश्च–

तदतीतं वरारोहे परं तत्त्वमनामयम् ।।१२७७।।

२–बोधमात्र का गुरु गभीरत्व,

३–सर्वत्र शिवत्त्वदर्शन की दृढ़ भावना,

ये शर्तें हैं, उन्मना के पद में प्रवेश की । पशु ऐसी अवस्था में भवार्णव से मुक्त हो जाता है । चूँकि यहाँ मन मनन भी नहीं कर सकता । अतः वहाँ न तो काल ही होता है, न काल की कलायें होती हैं, न श्वास चार होता, न कोई तत्त्व और न ही कोई देवता होती है ॥१२७६॥

काल क्षण से लेकर परार्धान्त होता है । कलायें निवृत्ति से शान्त्यतीता पर्यन्त पाँच होती हैं । चार का अर्थ प्राणापानवाह होता है । तस्य भावस्तत्त्वम् इस व्युत्पत्ति के अनुसार समस्त भुवनों के ऐसे अवभास जो प्रमाता के अनुगत रह कर सामान्यावभास के कारण होते हैं । अर्थात् किसी अवभास का भाव वहाँ नहीं होता । देवता ब्रह्मा से अनाश्रित पर्यन्त किसी की दिव्यता का आकलन वहाँ नहीं रहता । वह लोकोत्तर ललाम अनाकलित धाम है ॥१२७६॥

इसलिये उन्मना को सुनिर्वाण पद, परम शुद्ध पद और गुरुवक्त्र पद कहते हैं । यह गुरु अर्थात् परम शिव का वक्त्र अर्थात् उपाय है । उसकी प्राप्ति का उपाय है । त्रिशिरोभैरव शास्त्र कहता है कि,

'यह गुरु से भी गुरुतर शक्ति है' ।

इसलिये उन्मना पद सर्वातीत पद है । सर्वोत्तमतत्त्व है और अनामय तत्त्व है । यह जिसे हम गुरुता शक्ति कहते हैं, उससे भी अतीत पद है । उसकी पार्यन्तिक विश्रान्ति इसी पद में होती है । यह समना की तरह अतिक्रमणीय नहीं होती; क्योंकि इसे सुनिर्वाण पद मानते हैं ।

तामपि अतीतं तदीयपार्यन्तिकविश्रान्तिरूपम्, न पुनरसौ समनावदतिक्रमणीया भवति, सुनिर्वाणमित्यभिधानात् । वरारोहे इति प्राग्वत् । परं विश्वोत्तीर्णं विश्वमयत्वात्पूर्णं च । तस्य क्षित्यादेरुन्मनान्तरस्य सर्वस्य भावश्चित्प्रकाशमयः स्वभावँ इति व्युत्पत्त्या तत्त्वं पारमार्थिकं स्वरूपं न तु पृथ्वीतत्त्वादिवत्काठिन्यादिवेद्याभासरूपम् । अनामयमिति न विद्यते आमयः अख्यातिर्यत्र तत् । उक्तं च त्रिकसारे–

'बिन्दुनादात्मकैर्देहैः शान्तैश्च शिवसम्भवैः ।
अतीतस्तु भवेद्देवो निरञ्जनः परः शिवः ॥ इति ॥१२७७॥

यत एवमतः–

गुरुवक्त्रप्रयोगेण तस्मिन् योज्येत शाश्वते ।
निष्कम्पे कारणातीते विरजे निर्मले शुभे ।।१२७८।।

यह विश्वमयता को पूर्ण कर विश्वोत्तीर्णता की पराकाष्ठा का पद है । यह सर्वातिशायी चित्प्रकाशमय स्वभाव वाला पारमार्थिक तत्त्व है । पृथिवी आदि तत्त्वों की तरह काठिन्यादि वेद्याभास यहाँ अप्रकल्प्य है । अख्यातिरूप आमय यह न होकर अनामय रूप है । इसी भाव को त्रिकसार नामक परमोपादेयसाधक ग्रन्थ में कहा गया है—

'बिन्दु नादात्मक इस शारीरिक संरचना से और शिवसम्भव शान्ति के प्रतीकों से यह पद अतीत है और एक तरह से निरञ्जन परम शिव पद ही है' ।

इन उदाहरणों से यह सिद्ध है कि यह सर्वातीत पद है । इसे हमारा शास्त्र उन्मना संज्ञा से विभूषित करता है ॥१२७७॥

गुरुवक्त्र रूप उन्मना में जो प्रकृष्ट योग है, वह शिवैकात्म्य रूप है । निष्कम्प कारणातीत विरजस्क पद है । यह निर्मल और शुभ अर्थात् कल्याणप्रद है ॥१२७८॥

वास्तविकता यह है कि, 'मानसिक व्यापार रूप ऊहापोह का परित्याग कर बोध से योजित करना ही प्रयोग कहला सकता है । विधिक्रिया के द्वारा योजन का आदेश भी यह शास्त्र देता है ।

तदनुप्रवेश और तदवष्टम्भ दो क्रियायें हैं । इनमें पूर्वापर क्रम भी है । पहले अनुप्रवेश होता है । मानसिक व्यापार इसमें बाधक होते हैं । इसलिये साधक का यह कर्त्तव्य है कि, वह अमन हो जाय और बोध के साथ ऐकात्म्य में प्रवेश कर परानन्द रस को चूसना शुरू कर दे । यही क्रिया उसे अवष्टम्भ दे देगी ।

सर्वज्ञे परमे तत्त्वे व्योमातीते ह्यतीन्द्रिये ।

गुरुवक्त्रे उन्मानायां यः प्रकृष्टयोगः ऐकात्म्यम्, तेन–

'व्यापारं मानसं त्यक्त्वा बोधरूपेण योजयेत्' । (४/४३७)

इत्युक्तरूपेण तदनुप्रवेशतदवष्टम्भात्मना । योज्येतेति स्वात्मना सह शिष्यात्मा तत्सामरस्यमाप्येत । यथोक्तम्–

'तस्मिन् युक्तः परे तत्त्वे सार्वज्ञ्यादिगुणान्वितः ।

शिव एको भवेन्नित्यमविभागेन सर्वशः' ॥ इति । (४/४०२)

शाश्वते नित्योदिते, अत एव निष्कम्पे सर्वदा व्यवहारदशास्वपि विमल-चिद्घनैकरूपे । कारणानि ब्रह्माद्यनाश्रितान्तानि अतीते तदनुभवविलक्षणे अशेष-विश्वाभासमये इत्यर्थः । अशेषविश्वप्रकाशमपि चैतद् न तेन विश्वेन मनागपि उपहितं तस्य विश्वस्य तत्प्रकाशैकरूपत्वादित्यतो विरजस्कत्वाद् निर्मले । अतश्च शुभे परश्रेयःस्वभावे । सर्वं च तत् ज्ञं च तदिति सर्वज्ञं तस्मिन् विश्वाद्वयप्रकाश-रूपे परमे तत्त्वे। व्योम्न शून्यातिशून्यपदस्यापि अतीतमत्ययः प्रशमो यत्र तस्मिन् । अतीन्द्रिय इति सदा सर्वस्य सर्वत्र च स्वप्रकाशैकपरमार्थे ।

योज्येत यह क्रिया गुरु और शिष्य दोनों को इस व्यापार में योजित करने की प्रेरणा दे रही है । गुरु का यह उत्तरदायित्व है कि, शिष्य को इस प्रकाशपथ पर सावधानी से ले चले । शिष्य का यह कर्त्तव्य है कि, सजगतापूर्वक गुरु के आदेश का वह पालन करता रहे । तभी इस आनन्दबोध का सामरस्य सुख पा सकता है । कहा गया है कि, 'उस परतत्त्व में नित्ययुक्त योगी सर्वज्ञता, नित्य-तृप्ति स्वतन्त्रता आदि परमात्मतत्त्वस्थित गुणों से युक्त हो जाता है । परिणाम-स्वरूप वह स्वयं शिव ही हो जाता है । नित्य अवियुक्त भाव से उसी में मिल कर वही हो जाता है ॥४/४०२'॥

अतः उक्त योजन जिस पद में होता है, उसे शाश्वत पद कहते हैं । वह नित्योदित पद माना जाता है । इसीलिये वह निष्कम्प अर्थात् व्यवहारदशा में भी विमल चिद्घनैकरूप में रमता रहता है ।

ब्रह्मा से अनाश्रित पद पर्यन्त अशेष कारणतत्त्व हैं । इनसे अतीत अर्थात् सबको अतिक्रान्त कर एक विलक्षण अशेष विश्वाभासमय विश्वोत्तीर्णता में रम जाता है ।

सम्पूर्ण विश्वप्रकाश में और इस विश्वमयता में अन्तर का दर्शन समाप्त कर केवल प्रकाश में रहने के कारण विरजस्क पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है ।

उपसंहरति–

इत्यध्वा चैष वै प्रोक्तः समासेन मयानघे ।।१२७९।।

चकारात् तच्छुद्धिपरिकर्मापि । एष इति अध्वान्तरव्याप्तो भुवनाध्वा ।।१२७९।।

न चायं दीक्षायां शोधनार्थमेव इत्थमुक्तः; अपि तु एतावत्समस्तप्रमेय-करणे परप्रमात्रावेशमपि ज्ञानशालिनामुन्मीलयतीत्याह–

ज्ञात्वा चैवं महादेवि प्रयाति परमं पदम् ।

निर्मलता परमाता का गुण है । इस चिति दर्पण के नैर्मल्य में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द सभी एकसाथ प्रतिबिम्बत होते है । इसीलिये शुभ अर्थात् जीवन्मुक्ति की महनीयता में मिल जाता है । ऐसे परतत्त्व से युक्त गुरुशिष्य कितने महान् होते हैं, पाठक को इस कल्पना से प्रसन्न होना चाहिये और स्वयं इसमें समाहित होना चाहिये ।।१२७८।।

सर्वज्ञ पद वही होता है, जिसमें यह अशेष विश्वप्रसर और ज्ञत्व अर्थात् बोधप्रकाशत्व सब एक हो रहते हैं । अद्वय वैश्वात्म्यैकात्म्य प्रकाश रूप परम निर्मल पद में तथा व्योमरूप शून्यातिशून्यातीत तथा अतीन्द्रिय अर्थात् स्वात्म-प्रकाशैकपरमार्थ पद में योजित हो जाता है । यह सर्वोच्च पद है । सारी दीक्षाओं का सुफल सुपक्व अमृत फल है । आइये, हम सभी स्वाध्यायी इस उपांशु फल को प्राप्त करने के लिये अपनी वामनता के तीन पद तत्काल बढ़ाने का निश्चय कर लें ।

भगवान् भैरव भट्टारक इस विषय का उपसंहार करते हुए देवी उमा को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि, नैर्मल्यरमणीये देवि ! संक्षेप से मैंने सम्पूर्ण अध्ववर्ग का विशेष रूप से इस पटल में भुवनाध्वा का वर्णन किया है और यह स्पष्ट कर दिया है कि, इसका शोधन भुवनदीक्षा के द्वारा अवश्य किया जाना चाहिये । इसी में जीवन का परम कल्याण निहित है । किसी प्रकार की संशीति का लेशमात्र भी नहीं है ।।१२७९।।

इस सन्दर्भ में यह भी ध्यातव्य है कि, दीक्षा में केवल शोधन ही इसका उद्देश्य नहीं है, वरन् समस्त प्रमेयकरण में परप्रमातावेश दशा में दार्ढ्यपूर्वक व्याप्तिनिष्ठ होना भी इसका एक अन्तर्लक्ष्य है । इसी भाव को लेकर भगवान् कहते हैं कि, ऐसा सम्यक् निष्ठ योगी परम पद को प्राप्त कर लेता है । प्रमेय रूप से इस विश्व को परिच्छिन्न करने पर भी पराप्रमातृता का परावेश योगी को प्राप्त हो जाता है । इसी भाव से अर्थात् परप्रमाता के भाव में रहकर ही साक्षी बनकर सर्वप्रथम १–देह को देखना चाहिये, अर्थात् मैं देह में प्रतिष्ठित परप्रमाता

एवमुक्तरूपमिममध्वानं यः कश्चित्प्रमेयतया परिच्छिनत्ति, स परां प्रमातृतामाविशति ।

आचार्यः पुनः-

देहे देवे च शिष्ये च कलशे ह्यग्निमध्यतः ।।१२८०।।
एवं ज्ञात्वा वरारोहे मुच्यते मोचयत्यपि ।

'साक्षात्स्वदेहसंस्थोऽहं कर्तानुग्रहकर्मणाम्' ।

इत्युक्तत्वाद् आदौ देहे वास्तवीं सर्वाध्वमयतां जानीयात्, येन तावदशेषाध्वशरीरः परभैरवाविष्टौ भवति । ततो देवादावधिकरणचतुष्टये स्वाहम्भावाभेदप्रथां तथैव जानन् मुच्यते सर्वात्मकपरभैरवतामेति । तथाविधस्वात्माभेदेन चानुग्राह्यानपि पश्यन् मोचयति-

---

हूँ । यह दृढभाव सदा बना रखना चाहिये । मैं सर्वाध्वमय हूँ । यह मानना चाहिये ।

२-देव में भी यही भाव होना चाहिये ।

मैं स्वयं शिव हूँ । प्रकाशमय हूँ । बन्ध मुक्ति सबसे परे, परमेश्वर मैं ही हूँ । यह विश्वात्मक उल्लास मेरी ही लीला है, यह शैवमहाभाव अनवरत उल्लसित रहना चाहिये ।

३-शिष्ये च—गुरु-शिष्य पद पर मैं ही समासीन हूँ, गुरुभाव से दीक्षा दे रहा हूँ । शिष्यभाव से सीख रहा हूँ । किन्तु दोनों अवस्थाओं में मैं मेरी अस्मिता ही शाश्वत उल्लसित है ।

४-कलश में और ५-अग्नि में यागमण्डप में जो पूजा की जाती है, वह मेरी ही पूजा है । मैं ही पूजक हूँ । मैं सर्वमय हूँ ।

इस तरह स्वाहंभावाभेद प्रथा को इस रूप से सर्वथा जानते हुए इसी भाव में रहते हुए परमेश्वरमय हो जाता है । सर्वात्मक परभैरवता को प्राप्त कर लेता है ।

इस प्रकार वह इतना गौरवास्पद हो जाता है कि, अनुग्राह्यों के ऊपर भी अनुग्रह कर उन्हें पाशमुक्त कर पशुपति पद पर प्रतिष्ठित कर देता है ।

भगवान् स्वयं कहते हैं—

'मेरी समता को पाकर आराधक, उपासक और साधक मुक्त कहलाने का अधिकारी हो जाता है ।

'मत्समत्वं गतो जन्तुर्मुक्त इत्यभिधीयते' ।
इति स्थित्या परभैरवरूपानेव सम्पादयतीति शिवम् ॥१२८०॥

ग्रन्थग्रन्थिविभेदनं प्रतिपदं पूर्वापरालोचनं
तात्त्वी युक्तिरभङ्गुरान्तरबहिस्तत्त्वैक्यसन्दर्शनम् ।
सम्यक्सङ्कलनाः पुरेशविषयाः पूर्णाद्वयामर्शनं
स्वाच्छन्दे भुवनाध्वनीह तदियत्किञ्चिन्मया द्योतितम् ॥

इस तरह वह साधकों पर भैरव भाव भव्य बना देने में समर्थ हो जाता है । इति शिवम् ॥१२८०॥

ग्रन्थ के पद्य का भावानुवाद–

ग्रन्थ की ग्रन्थि का भेदन कर पद-पद पर
पूर्वापर भाव की समीक्षा करता रहा ।
तत्त्व-भावभव्यता का अन्तर्बाह्य आवरण
भेद नित एकता की धार बहता रहा ।
भुवन, भुवनेश्वरभावकलना में अद्वय मय
भैरव के भाव की भव्यता भरता रहा ।
दशम स्वच्छन्द उद्योत से प्रसन्न यह
भैरव की रम्यता में 'क्षेम' रमता रहा ॥

भाष्यकार का आत्मनिवेदन–

स्वच्छन्दो भैरवो देवः साधकानां शुभप्रदः ।
मूर्त्तिस्वरूपं तस्यैव तन्त्रं स्वच्छन्दनामकम् ॥१॥
तन्त्रस्यास्य स्वभाषायां निहितार्थप्रकाशकम् ।
नीर-क्षीर-विवेकाख्यं भाष्यं कर्त्तुं नियोजितः ॥२॥
'हंसः' सूनुः पराकाल्याः सोऽहं सूर्यमणिप्रियः ।
भैरवोत्सङ्गगामिन्या सर्वदाऽऽराध्यया धिया ॥३॥
स्वच्छन्दस्य तु तन्त्रस्य चतुर्थीयं चिदाकृतिः ।
स्वच्छन्दानुग्रहात् पूर्णा भुवनाध्वप्रकाशिका ॥४॥
स्वात्मनः प्रत्यभिज्ञानात् मुक्तिमार्गप्रकाशनात् ।
योज्यान्युनक्ति सद्योगे दीक्षाविधिप्रयोगतः ॥५॥
स्मर्यते सुसन्दर्भेऽस्मिन्, गुरुर्मे लक्ष्मणाभिधः ।
काश्मीरिकः शिवः साक्षात् स्वरूपेणेश्वरः स्वयम् ॥६॥

॥ इति स्वातन्त्र्योद्भासितविश्वमूर्त्तिस्वच्छन्दमहाभैरवप्रकीर्तिते
स्वच्छन्दतन्त्रे श्रीमन्महामाहेश्वरक्षेमराजकृतो
द्योतव्याख्योपेते भुवनाध्वदीक्षाविधि
र्नाम दशमः पटलः ॥१०॥

पिता, माता, भगवती ह्यन्नपूर्णा, परेश्वरः ।
वाङ्मयी मातृका देवी जयताच्च सरस्वती ॥७॥

इति शिवम्

॥ इस प्रकार स्वातन्त्र्योद्भासित विश्वमूर्त्ति श्रीसर्वस्वच्छन्दभैरवभट्टारकप्रकीर्त्तित
स्वच्छन्दतन्त्र का महामाहेश्वर श्रीक्षेमराजाचार्य विरचित
उद्योतविवरणयुक्त डॉ० परमहंसमिश्रकृत
नीर-क्षीर-विवेकभाषाभाष्यसमन्वित भुवनाध्वदीक्षाविधि नामक
दशम पटल परिपूर्ण ॥४॥

।। परिपूर्णोऽयं चतुर्थो भागः ।।

●

मूलश्लोकादि-पंक्तिक्रमः

अवर्गः

कवर्गः

चवर्गः

तवर्गः

पवर्गः

सवर्गः

●

उद्धरणश्लोकादिपंक्तिक्रमः

●

सूक्तयः

●

शास्त्राणि शास्त्रकाराश्च

विशिष्टशब्दादिक्रमः

अवर्गः

चवर्गः –

यवर्गः –

सवर्गः –

●

अशुद्धिशुद्धिक्रमः

भैरवाविष्टौ	भैरवाविष्टो	४२२
ता	तां	४१०
शशाङ्काशेखर	शशाङ्कशेखरः	३९६
शशाङ्केश्वरः	शशाङ्कशेखर (हि०)	३९६
प्रकारै	प्राकारैः	३७१
जीन्मुक्त	जीवन्मुक्तः	३५४
११७	१११७	३४६
वैचिन्त्य	वैचित्त्य	३३९
इत	इह	३४७
शोधनीयः	शोधनीयाः	३३९
अगस्यः	अगस्त्य (हि०)	३३३
यम	यमः	३३३
कोटिभि	कोटीभि	३१३
शिखराकरं	शिखराकारं	३११
इच्थमुच्यमानां	इत्थमुच्यमानं	२९०
वक्रादिनापि	वक्त्रादिनापि	२८७
८१२	९१२	२८३
७००	७७०	२४५
तुञ्चद्भिश्च	मुञ्चद्भिश्च	२३९ पं० ३
के रश्मियो	की रश्मियों	२१२
स्फारनुप्रवेशेनैव	स्फारानुप्रवेशेनैव	१९८
कृष्माण्डो	कूष्माण्डो	१९४
तस्योत्सङ्गता	तस्योत्सङ्गगता	१८९, ३६७
पक्तिम्	पंक्तिम्	१६५
४०८	५०८	१६३
पर ह्येषा	परा ह्येषा	१६०
स्वामात्मानं	स्वमात्मानं	११५
क्षीरस्वा	क्षीरास्वा	९१
जम्बुशब्दों	जम्बूशब्दो	९०

भागवत्	भगवत्	८५
१६१	२६१	८०
चन्दद्वीपं	चन्द्राद्वीपं	७४
शृङ्गावाँश्चैव	शृङ्गवाँश्चैव	२०२-२०३/६५,६६

●

